Saurashtra University
Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Dwivedi, Vandana J., 2007, "*गण्डावतरणम् कथाश्रित भारतीय-चिन्तन-परम्परा एवं उसके आलोक में कवि नीलकंठ दीक्षित विरचित गण्डावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/307

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट की विनयन विद्याशाखा के पी–एच्.डी. (संस्कृत) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–महानिबन्ध

‘‘गङ्गावतरणम् कथाश्रित भारतीय–चिन्तन–परम्परा एवं उसके आलोक में कवि नीलकंठ दीक्षित विरचित गङ्गावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन’’

‘‘*THE DESCENT OF GANGES AS REFLECTED IN INDIAN TRADITIONAL THINKING WITH SPECIAL REFERENCE TO THE GANGAVATERANAM OF POET NEELKANTH DIXIT - A CRITICAL STUDY*’’

❀❀❀

❀ प्रस्तुतकर्त्री ❀
द्विवेदी वन्दना जयप्रकाश
शोधछात्रा संस्कृत
सौराष्ट्र युनिवर्सिटी,
राजकोट

❀❀❀

❀ शोध–निर्देशक ❀
डॉ. सी. वी. बालधा
प्राचार्य
श्री के. ओ. शाह म्युनि. आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज,
धोराजी

ई. स. २००७

प्रतिज्ञापन / जाहेरनामा

मैं शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैंने प्रस्तुत शोध महानिबन्ध पूर्वोक्त संदर्भ–ग्रंथों, शोध पत्रिकाओं, कोशों एवं अन्यान्य शोध स्रोतों से प्राप्त शोध सामग्री के आधार पर तैयार किया है । इसमें प्रतिपादित सभी तथ्य एवं निष्कर्ष नितान्त मौलिक हैं । अतः मैं इसकी मौलिकता तथा प्रामाणिकता के लिए विश्वास दिलाती हूँ ।

मेरी प्रतिज्ञा है कि इस शोध–ग्रंथ में सन्निरूपित मंतव्यों एवं सभी विवरणों के प्रति मैं एकमात्र उत्तरदायिनी हूँ ।

द्विवेदी वन्दना जे.

मार्गदर्शक शिक्षक का हस्ताक्षर

डॉ. सी. वी. बालधा
प्राचार्य
श्री के. ओ. शाह म्युनि. आर्ट्स
एण्ड
कॉमर्स कॉलेज,
धोराजी

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि *द्विवेदी वन्दना जयप्रकाश* द्वारा सौराष्ट्र युनिवर्सिटी में पी–एच्.डी. (संस्कृत) उपाधि के प्राप्ति हेतु परीक्षाणार्थ प्रस्तुत यह शोध–प्रबन्ध, जिसका शीर्षक है – ''गङ्गावतरणम् कथाश्रित भारतीय–चिन्तन–परम्परा एवं उसके आलोक में कवि नीलकंठ दीक्षित विरचित गङ्गावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन'' ***''THE DESCENT OF GANGES AS REFLECTED IN INDIAN TRADITIONAL .THINKING WITH SPECIAL REFERENCE TO THE GANGAVATERANAM OF POET NEELKANTH DIXIT - A CRITICAL STUDY''*** मेरे निर्देशन में मेरे द्वारा प्रदत्त सूचनाओं एवं निर्देश के अनुसार तैयार किया गया है; जो पूर्णतया मौलिक, स्वतंत्र एवं शोधपूर्ण है ।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, यह अनुसंधान कार्य अभी तक किसी भी प्रकार की उपाधि के लिए इस युनिवर्सिटी अथवा अन्य किसी युनिवर्सिटी में किसी के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

(डॉ. सी. वी. बालधा)
शोध–निर्देशक

दिनांक :
स्थल :

शोध महानिबंध का सार

❀ शीर्षक :

गङ्गावतरणम् कथाश्रित भारतीय–चिंतन–परंपरा एवं उसके आलोक में कवि नीलकंठ दीक्षित विरचित गङ्गावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

भारतीय सनातन धर्म संस्कृति एवं परम्परा के परिवेश में पले होने के कारण मुझे बाल्यावस्था से ही तीर्थ, गो, गङ्गा एवं वेद के प्रति असीम श्रद्धा रही है, जो समुचित व अनुकूल स्थितियाँ पाकर दृढ़ से दृढ़तर होती चली गयी और रामायण, महाभारत एवं पुराणादि का अध्ययन कर निष्ठा किंवा भक्ति के रूप में परिवर्तित हो गयी क्योंकि गीता माहात्म्य से मुझे ज्ञात हुआ कि 'गीता गङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते' गीता का ज्ञान रूपी गङ्गोदक भक्त के जन्म–मरण के बंधन को विनष्ट कर देता है । विद्वानों का मत है कि गंगा जीव के लिए लोक–परलोक सर्वत्र पुण्यदायिनी है । यही कारण है कि महाराज भगीरथ के वे पूर्वज, जो महर्षि कपिल के क्रोधाग्नि से भस्म हो गये थे, उन्हें ब्रह्मद्रव गंगाजल से मुक्ति प्राप्त हुई ।

यह गङ्गाजल कृषि, उद्योग, धर्म, संस्कृति, दर्शन एवं व्यापारादि की उपयोगी दृष्टियों से भारतभूमि को करोड़ों वर्षों से वरदान के रूप में प्राप्त है । गङ्गा के क्रोड में ही यहाँ की प्राचीनतम तपःपूत संस्कृति सतत विकसित होती रही । जिसके परिणाम स्वरूप भारतभूमि न केवल स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूता स्वीकार की गयी, प्रत्युत् समूचे विश्व के लिए ज्ञान की ज्योति सर्वप्रथम यहीं से प्रकट हुई तथा इस देश ने जगद्गुरु के गौरव को प्राप्त किया ।

सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक भगवती गङ्गा के तटवर्ती तीर्थों में आकर विश्व की कोटि–कोटि जनता स्नान करती है और अपने जीवन को धन्य बनाती है क्योंकि न केवल आमुष्मिक दृष्टि से ही प्रत्युत् लोक–जीवन की स्वस्थता की दृष्टि से भी गङ्गाजल अत्यंत महत्त्वपूर्ण व वैज्ञानिक स्वीकार किया जाता रहा है । यही कारण है कि चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, चक्रपाणि, भोजनकुतूहलकार सदृश विद्वान् एवं मुहम्मद तुगलक, अकबर, दाराशिकोह, औरंगजेब तथा टीपू सुल्तान जैसे प्रशासक भी भोजन में गङ्गाजल का ही उपयोग करते थे । परिणामतः प्राचीन काल से लेकर अब तक गङ्गा यहाँ के साहित्यकारों, ऋषियों, संतों, कृषकों, व्यापारियों, धर्मप्राणमनीषियों, शिक्षा शास्त्रियों एवं तपोधन महापुरुषों के चिन्तन, मनन, जप तथा आराधना का विषय रही है । इसीलिए प्रकृत शोध के लिए ऋग्वेद के मंत्रों से लेकर सन् २००६ के गाण्डीवम् में प्रकाशित स्तोत्रों तक वर्णित गङ्गाचरित का अध्ययन करने का मुझे व्यापक अवसर प्राप्त हुआ ।

प्रस्तुत शोध का शीर्षक मेरे विद्वद्धुरीण मार्गदर्शक गुरु डॉ. सी. वी. बालधा जी के गहन चिंतन का परिणाम होने के कारण मुझे वेद से लेकर आधुनिक काल के गङ्गा–चिन्तन संबंधी सुदीर्घकालीन साहित्य का आलोडन–विलोडन करना पड़ा । इसीप्रकार इसमें प्राचीन भारतीय विचार सरणि के अध्ययन के साथ–साथ एक ऐसे महामनीषी द्वारा प्रणीत गङ्गावतरणम् महाकाव्य की समीक्षा करनी थी, जिनका नाम है – कवि श्री नीलकंठ दीक्षित ।

प्रकृत महानिबंध में श्री दीक्षित जी के इस अष्टसर्गीय महाकाव्य की साहित्यशास्त्रीय समीक्षा की गयी है, जिसमें रस, छन्द, अलंकार, रीति आदि की दृष्टि–से कृत प्रतिपादन में मुख्य–मुख्य स्थलों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने का मैने लघु प्रयास किया है । शोध–प्रबंध के वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने

के लिए मैंने जिन तीर्थों में स्नान किया है, उनमें वैदिक वाङ्मय (संहिता, ब्रह्मणादि), रामायण, महाभारत, कुछ प्रतिनिधि पुराण, शिवलीलार्णवम्, नलचरितनाटकम् नीलकंठ विजय, गङ्गावतरणम्, अनेक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ, स्तोत्र, कोश, शोध–प्रबंध एवं शोध–पत्रिकाओं का प्रमुख स्थान है । एतदतिरिक्त आधुनिक मूल्यांकन के लिए वेदों में विज्ञान, शेफाली झर रही है, देश, धर्म और साहित्य, जल और जल–प्रदूषण, प्रकृति और काव्य, संचारिणी, हिन्दूधर्मः जीवन में सनातन की खोज, संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास तथा भारत एक भौगेलिक समीक्षा प्रभृति ग्रंथों से सहयोग लेने का मैंने भरपूर प्रयास किया है । यही कारण है कि यह प्रबंध वर्ण्यविषय की दृष्टि से कुल ग्यारह अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसे विषय–सूची में देखा जा सकता है ।

अध्ययन, प्रतिपादनशैली एवं शोध–सामग्री की व्यवस्था की दृष्टि से विविध शोध–चिंतनों का ध्यान रखते हुए भी प्रस्तुत शोध–प्रबंध मेरा अपना तथा सर्वथा मौलिक है एवं इसके अंतर्गत विषय–सूची के अनुरूप शोधशीर्षक को न्याय देने का मैने यथाशक्ति प्रयत्न किया है । हाँ इतना अवश्य है कि अपने तर्क तथा विषय की प्रामाणिकता के लिए मैंने विद्वानों द्वारा प्रदत्त उद्धरणों व विचारों को बहुविध स्थलों में अक्षरशः उपस्थापित कर दिया है ।

इस शोध महानिबंध की तैयारी मैने जिन विषम परिस्थितियों में की, उनमें अनुसंधान कर पाना सामान्यतः असंभव था फिर भी इस कार्य को जो पूर्णता प्राप्त हुई, उसमें मैं भगवान् द्वारकाधीश एवं भगवती गङ्गा की कृपा को मुख्य कारण मानती हूँ । अतः इन्हें प्रणाम करती हूँ । तत्पश्चात् मैं अपने देवतुल्य पूज्य स्व. दादा जी, स्वर्गीया पूज्या दादी जी, पूज्य पिता जी, पूज्या माता जी, पूज्य श्वसुर जी, पूज्य सास जी, सम्मान्य जेठ–जेठानी जी एवं परिवार के अन्य सभी श्रेष्ठ जन को साष्टाङ्ग प्रणाम करती हूँ, जिनके आशीर्वाद से मेरा शोधकार्य पूर्ण हो सका ।

मानव जीवन की परिस्थितियाँ काल व पात्र के सापेक्ष होती हैं । शोध–प्रबंध के लेखन–काल में मेरे विवाहादि की पृष्ठभूमि इतनी जटिल रही कि उस समय यदि मेरे पूज्य माता–पिता जी, पतिदेव श्री राजीव कुमार मिश्र जी,, मेरे बड़े भाई श्री वेद व्यास द्विवेदी, डॉ. वशिष्ठधर द्विवेदी, श्री पवनकुमार द्विवेदी, परमादरणीय श्री नृगेन्द्र प्रसाद पाण्डेय जी (लाल जी महाराज, स्वामिनारायण संप्रदाय, बड़ताल), मेरी मातृतुल्या आदरणीया भाभी श्रीमती रमा कुँवर बा.वी. द्विवेदी व सखी–सहचरी सदृश भाभी श्रीमती आरती वी. द्विवेदी का स्नेह संबल तथा प.पू.ध.धु. आचार्य महाराज श्री स्वामिनारायण संप्रदाय दक्षिण देश, वडताल श्री अजेन्द्र प्रसाद जी महाराज, पूज्या गादीवाला व बहू जी, के आशीर्वाद का सहारा न मिला होता, तो जीवन के झंझावात के कारण मेरे शोध की नौका सदा–सदा के लिए डूब गयी होती । इसी प्रकार यदि राजकोटस्थ अपने पितृतुल्य आदरणीय स्व. श्री यशवन्तभाई त्रिवेदी, मातृतुल्या आदरणीया श्रीमती सुधाबेन यशवन्तभाई त्रिवेदी तथा इस शोध की परम सहयोगिनी छोटी बहन अर्चना तिवारी का नामोल्लेख न करुँ तो बहुत कृतघ्नता होगी क्योंकि अर्चना मेरी बहन होने के साथ–साथ मेरी एक अच्छी सहेली, परामर्शदात्री व अद्भुत शुभाशंसिका है । विगत २६ वर्षों से जीवन के प्रत्येक मोड़ पर एक सुनिश्चित मर्यादा में शील, संकोच और औचित्य का ध्यान रखते हुए वह मनसा, वाचा, कर्मणा सतत मेरे साथ रही है तथा शोध–सामग्री के संकलन में अपूर्व सहायता भी की है । अतः कृतज्ञता सदृश शब्द का उपयोग कर मैं उसे संकोच में डालना नहीं चाहती क्योंकि वह मात्र शरीर से मुझसे पृथक् दिखायी देती है, आत्मना हम दोनों अभिन्न हैं, फिर भी उम्र में ज्येष्ठ होने के कारण मैं उसके जीवन के उज्ज्वल भविष्य की कामना से उसे आशीर्वाद देने का अपना अधिकार नहीं खोना चाहती । अतः भगवान् से प्रार्थना है कि वे उसे सर्वतोभावेन सपरिवार उन्नति के पथ पर ले जाएँ ।

इसीप्रकार अपने मायके व श्वसुराल पक्ष के सभी भतीजों, भतीजियों व लालू भाई श्री पुष्पेन्द्र प्रसाद पाण्डेय को इस अवसर पर लाख–लाख आशीर्वाद दे रही हूँ ।

इस शोध कार्य के सहयोगियों में श्री द्वारकाधीश संस्कृत एकेडमी, द्वारका की पुस्तकालयाध्यक्षा सुश्री कुमुद बहन सामाणी जी को स्मरण न करुँ तो इस अवसर पर कृतज्ञता संभवतः अधूरी रह जाएगी क्योंकि उदार मन से उन्होंने मेरे लिए पुस्तकादि की व्यवस्था में जो सहयोग किया, वह मेरे जीवन के लिए चिरस्मरणीय बना रहेगा ।

विषय सूची

अध्याय क्रमांक	*शीर्षक*	*पृष्ठ क्रमांक*
प्रथम अध्याय	: भारतीय–चिंतन परम्परा और गङ्गा : एक अनुशीलन	००१-०३६
द्वितीय अध्याय	: महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका उदय	०४०-०६१
तृतीय अध्याय	: कवि नीलकंठ दीक्षित का परिचय तथा कर्तृत्व	०६२-१६५
चतुर्थ अध्याय	: गङ्गावतरणम् की कथावस्तु	१६६-२४७
पंचम अध्याय	: गङ्गावतरणम् महाकाव्य एवं उसमें सन्निरूपित काव्यशास्त्रीय तत्त्व	२४८-३४५
षष्ठ अध्याय	: गङ्गावतरणम् महाकाव्य में बिम्ब–विधान एवं पात्र–चित्रण	३४६-३८७
सप्तम अध्याय	: गङ्गावतरणम् महाकाव्य में प्रकृति चित्रण	३८८-४०७
अष्टम अध्याय	: गङ्गावतरणम् महाकाव्य का सामाजिक जीवन–दर्शन	४०८-४२०
नवम् अध्याय	: परवर्ती संस्कृत साहित्य में गङ्गा–संबंधी चिंतन	४२१-४४३
दशम् अध्याय	: गङ्गा और तत्सम्बद्ध प्रदूषण–चिंतन	४४४-४५७
एकादश अध्याय	: उपसंहार	४५८-४७४
	सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची	४७५-४८८

❀❀❀

प्रथम अध्याय
भारतीय–चिन्तन–परम्परा और गङ्गा : एक अनुशीलन

१.१ भारतीय विचारसरणि में गङ्गाजल एवं उसका महत्त्व

❀ प्रस्तावना

१.२ प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में गङ्गा का वर्णन

१.२.१ वैदिक वाङ्मय में गङ्गा – चिन्तन

(अ) वैदिक संहिताएँ

(ब) ब्राह्मण ग्रन्थ और गङ्गा

(स) आरण्यक ग्रन्थों में गङ्गा

(द) उपनिषदों में गङ्गा

१.२.२ कोश–ग्रन्थ और गङ्गा

१.२.३ रामायण और गङ्गा

१.३ भारतीय–संस्कृति में गङ्गा संबंधी अन्य चिन्तन

१.३.१ काशिका में गङ्गा–चिंतन

१.३.२ वामनपुराण और गङ्गा

१.३.३ वृहन्नारदीय पुराण और गङ्गा

१.३.४ रहीमादि हिन्दी कवियों की दृष्टि में गङ्गा का महत्त्व

१.३.५ अन्य चिंतन

प्रथम अध्याय
भारतीय चिन्तन-परम्परा और गङ्गा : एक अनुशीलन

१.१ भारतीय विचारसरणि में गङ्गाजल एवं उसका महत्त्व :

❀ प्रस्तावना :

त्याग, तपस्या और तपोवन की विशुद्ध शाश्वत चेतना से अनुप्राणित वाल्मीकि-व्यास-कालिदास आदि महाकवियों की सशक्त वाणी ने भारतीय संस्कृति के उस महनीय स्वरूप को प्रकाशित किया है जिसमें जीवन और जगत् की एकाकारता पदे-पदे उपलब्ध है । इस संस्कृति में त्याग और भोग, दोनों का समन्वय है । इसीलिये गृहस्थ और संन्यास - जिसके मूल आधार ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ हैं, को जीवन के अनिवार्य अङ्ग के रूप में स्वीकार किया गया है । गृहस्थों के लिए नगर और संन्यास के लिए अरण्य की उपयोगिता अपरिहार्य है । नगर और अरण्य का सन्तुलन पर्यावरण को शुद्ध रख सकता है । इसी क्रम में दोनों प्रकार के आश्रमधर्मियों के लिए शुद्ध पर्यावरण-संवाहिका, अन्नौषधि-उत्पादिका तथा भुक्ति-मुक्ति - उभयोपपादिका भगवती गङ्गा को भारत ने सर्वदा आध्यात्मिक माना है । यही कारण है कि ऋषियों के मत में यह गङ्गाजल जल नहीं, ब्रह्मद्रव है । फलतः इस अध्याय का श्रीगणेश गङ्गाजल के महत्त्व प्रतिपादन से किया जा रहा है यथा -

गङ्गाजल के स्पर्श मात्र से बड़े-बड़े पाप दूर हो जाते हैं । उसके स्वास्थ्य सम्बन्धी गुणों का भी प्राचीन काल से उल्लेख मिलता है । चरक ने, जिनका काल आधुनिक विद्वानों द्वारा आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले माना जाता है, लिखा है कि हिमालय से निकलनेवाले जल पथ्य हैं - हिमवत्प्रभवाः

पथ्याः । इसमें विशेष रूप से गङ्गाजल का ही संकेत है, क्योंकि इस वचन के आगे ही आता है – पुण्या देवर्षिसेविताः । वाग्भट्टकृत 'अष्टाङ्गहृदय' में, जिसका निर्माणकाल ईसवी सन् की आठवी या नवीं शताब्दी माना जाता है, इसको इसप्रकार स्पष्ट किया गया है –

हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः ।

चक्रपाणिदत्त ने भी, जो सन् १०६० के लगभग हुए, लिखा है कि हिमालय से निकलने के कारण गङ्गाजल पथ्य है –

यथोक्तलक्षणहिमालयभवत्वादेव गाङ्गं पथ्यम् ।

भण्डारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूना में अठारहवीं शताब्दी का एक हस्तलिखित ग्रन्थ है – 'भोजनकुतूहल', इसमें कहा गया है कि गङ्गाजल श्वेत, स्वादु, स्वच्छ, अत्यन्त रुचिकर, पथ्य, भोजन पकाने योग्य, पाचनशक्ति बढ़ानेवाला, सब पापों को हरनेवाला, प्यास को शान्त तथा मोह को नष्ट करनेवाला, क्षुधा और बुद्धि को बढ़ानेवाला होता है –

शीतं स्वादु स्वच्छमत्यन्तरुच्यं पथ्यं पाक्यं पाचनं पापहारि ।
तृष्णामोहध्वंसनं दीपनं च प्रज्ञां धत्ते वारि भागीरथीयम् ।।

इस तरह गङ्गाजल के स्वास्थ्य सम्बन्धी गुणों पर बराबर अपने यहाँ जोर दिया गया है । इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर विदेशियों और अहिंदुओं को भी इसे अपनाना पड़ा ।

इब्नबतूताने सन् १३२५–५४ में अफ़रीका तथा एशिया के कई देशों की यात्रा की थी । वह भारत भी आया था । वह अपने यात्रा–वर्णन में लिखता है कि सुलतान मुहम्मद तुगलक के लिये गङ्गाजल बराबर दौलताबाद जाया करता था । इसके वहाँ पहुँचाने में ४० दिन लग जाते थे (गिब्स कृत अंग्रेजी अनुवाद पृ. १८३) । मुगलबादशाह अकबर को तो गङ्गाजल से बड़ा ही प्रेम था । अबुलफ़ज़ल अपने 'आईने अकबरी' में लिखता है कि 'बादशाह गङ्गाजल को' अमृत समझते हैं और उसका बराबर प्रबन्ध रखने के लिये उन्होंने योग्य

व्यक्तियों को नियुक्त कर रक्खा है । वे बहुत पीते नहीं हैं, पर तब भी इस ओर उनका बड़ा ध्यान रहता है । घर में या यात्रा में वे गङ्गाजल ही पीते हैं । कुछ विश्वास पात्र लोग गङ्गातटपर इसीलिये नियुक्त रहते हैं कि वे घड़ों में गङ्गाजल भराकर और उसपर मुहर लगाकर बराबर भेजते रहें । जब बादशाह सलामत राजधानी आगरा या फतेहपुर सीकरी में रहते हैं, तब गङ्गाजल सोरों से आता है और जब पंजाब जाते हैं, तब हरिद्वार से । खाना पकाने के लिये वर्षाजल या यमुनाजल, जिसमें थोड़ा गङ्गाजल मिला दिया जाता है, काम में लाया जाता है ।' अकबर के धार्मिक विचार दूसरे प्रकार के थे, इसलिये उन्हें यदि गङ्गाजल में श्रद्धा हो तो कोई आश्चर्य नहीं । परन्तु सबसे मजे की बात तो यह है कि कट्टर मुसल्मान औरंगजेब का भी काम बिना गङ्गाजल के नहीं चलता था । फ्रांसीसी यात्री बर्नियर, जो भारत में सन् १४५६ से १४६७ तक रहा था और जो शाहजादा दाराशिकोह का चिकित्सक था, अपने 'यात्राविवरण'में लिखता है कि 'दिल्ली और आगरा में औरंगजेब के लिये खाने-पीने की सामग्री के साथ गङ्गाजल भी रहता था । यात्रा में भी इसका प्रबन्ध रहता था । स्वयं बादशाह ही नहीं, दरबार के अन्य लोग भी गङ्गाजल का व्यवहार करते थे । बर्नियर लिखता है कि ऊँटों पर लदकर यह बराबर साथ रहता था । प्रतिदिन सवेरे नाश्ते के साथ उसको भी एक सुराही गङ्गाजल भेजा जाता था । यात्रा में मेवा, फल, मिठाई, गङ्गाजल, उसको ठंडा करने के लिये शोरा और पान बराबर रहते थे ।'

फ्रांसीसी यात्री टैबर्नियर ने भी, जो उन्हीं दिनों भारत आया था, लिखा है कि इसके स्वास्थ्य सम्बन्धी गुणों को देखकर मुसल्मान नवाब इसका बराबर व्यवहार करते थे । कप्तान एडवर्ड मूर, जो ब्रिटिश सेना में था और जिसने टीपू सलतान के साथ युद्ध में भाग लिया था, लिखता है कि सबन्नर (शाहनवर) के नवाब केवल गङ्गाजल ही पीते थे । इसको लाने के लिये कई ऊँट तथा 'आबदार' रहते थे (नैरेटिव पृ. २४८) । श्री गुलामहुसेन ने अपने बंगाल के

इतिहास 'रियासत–सलातीन' में लिखा है कि मधुरता, स्वाद और शुद्धि की दृष्टि से गङ्गाजल अद्भुत है । विद्वानों ने कहा है कि –

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ।।

पुनः भक्त गङ्गा का उच्चारण करता हुआ पृथ्वी माँ का चरण स्पर्श करता है, क्योंकि यह माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः की भावना से अभिभूत है । शौच के निमित्त जाने वाले उसके मन में यह विचार समाहित रहता था कि शौचक्रिया जल में, अग्नि में, उद्यान में, वृक्ष के नीचे शस्ययुक्त क्षेत्र में बस्ती तथा देवस्थान के पास नहीं करनी चाहिये । विष्णुस्मृति में भी यही बात कही गई है –

ब्राह्ममुहूर्ते उत्थाय मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । नाप्रच्छादितायां भूमौ ।
न फलकृष्टायाम् । न चोषरे । न शाद्वले । ..... न पथि ।
न रथ्यायां । न उद्याने । नोद्यानोदकसमीपयोः । न गोव्रजे ।
नाकाशे । नोदके ।

शौच के बाद वे नीम, बबूल, डिठवन, पाकड़, महुआ इत्यादि वृक्षों की दातून करते थे । स्नान चाहे जहाँ हो किन्तु उनके मन में पवित्र नदियों की भावना समाई रहती थी –

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती ।
नर्मदे सिन्धुकावेरीजलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।

कूप, नदी या सरोवरादि के जलको प्रदूषित करना निन्दनीय माना जाता था जैसा कि तैत्तिरीय आरण्यक में कहा गया है –

नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात् न निष्ठीवेत्
न विवसनः स्नायात् गुह्यो वा इषोग्निः ।

जल में अग्नि का वास होता है अतः नग्नस्नान वर्जित था । इसीप्रकार पुराणों में ऐसे कार्यों की सूची दी गई है, जिनको किसी भी पवित्र नदी के

किनारे नहीं करना चाहिये । नदियों में प्रदूषण रोकने के लिये ये आज भी प्रभावकारी हैं –

गङ्गां पुण्यजलां प्राप्य त्रयोदश विवर्जयेत् ।
शौचमाचमनञ्चैव निर्माल्यं मलघर्षणम् ।।
गात्रसंवाहनं क्रीडां प्रतिग्रहमधोरतिम् ।
अन्यतीर्थरतिञ्चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम् ।।
वस्त्रत्यागमथाघातं सन्तारञ्च विशेषतः ।
नाभ्यङ्गितः प्रविशेच्च गङ्गायां न मलार्दितः ।।

अपवित्र जल का स्पर्श करना पाप माना जाता था । अशुद्ध जल पीने पर चान्द्रायण व्रत करने का नियम था । गङ्गाजल के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए आगे पं. बालकृष्ण शर्मा अपने शोध–निबन्ध में कहते हैं कि –

रामायणस्य बालकाण्डे गङ्गावतरणोपाख्याने सगरपुत्राणामुद्धरणं गङ्गाजलस्पर्शेनोपनिबद्ध्य प्रकारान्तरेण महर्षिः जलविषयिकाम्पर्यावरणचेतनामेव निबध्नाति । निर्मलम्पवित्रञ्च जलम्भवति सर्वमलापहारि प्राणदायि चेति वर्णयतादिकविना पर्यावरणचेतना सम्यग्निभालिता । एवमेव सरयूगङ्गाप्रभृतिनदीनां वर्णनावसरे सागरवर्णनावसरे सरोवरप्रपातादीनां वर्णनावसरे च वाल्मीकिः भूयोभूयः जलतत्त्वस्य सर्गप्रवृत्तिषु महत्त्वं प्रतिपादयति । गङ्गाजलस्पर्शस्य माहात्म्यं वर्णयन्नाह मुनिवरः

तत्रर्षिगणगन्धर्वा वसुधातलवासिनः ।
भवाङ्गपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुः ।।
शापात् प्रपतिता ये च गगनात् वसुधातलम् ।।
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः ।।
धूतपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ शुभान्विताः ।।
पुनराकाशमाविश्य स्वाँल्लोकान् प्रतिपेदिरे ।।

१.२ प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में गङ्गा का वर्णन

(१) वैदिक वाङ्मय में गङ्गा – चिन्तन
   (अ) वैदिक संहिताएँ
   (ब) ब्राह्मण ग्रन्थ और गङ्गा
   (स) आरण्यक ग्रन्थों में गङ्गा
   (द) उपनिषदों में गङ्गा

(२) कोश ग्रन्थ और गङ्गा

(३) रामायण और गङ्गा

(४) महाभारत कोश में गङ्गा एवं तत्सम्बद्ध तीर्थों का वर्णन
   (क) गङ्गा
   (ख) गङ्गाद्वार
   (ग) गङ्गामहाद्वार
   (घ) गङ्गावतरणम्
   (ङ) गङ्गासुत
   (च) गङ्गाह्रद

१.२.१ वैदिक वाङ्मय में गङ्गा – चिन्तन

(अ) वैदिक संहिताएँ

गङ्गा भारत की पवित्र नदियों में से प्रमुख नदी है । जो नगराज हिमालय के गङ्गोत्री नामक स्थान से निकलकर अनेक तीर्थों से होती हुई असंख्य भूभागों को पवित्र करती हुई गङ्गासागर नामक स्थान पर हिन्द महासागर के बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है । यह इस देश की सनातन संस्कृति की प्रतीक है । जिसका उल्लेख संसार के सर्वप्रथम प्राचीन एवं पवित्रतम ग्रन्थ ऋग्वेद में पाया जाता है । ऋग्वेद के ऋषि गङ्गा के साथ–साथ अन्य नदियों का भी उल्लेख करते हुए दशवें मण्डल में कहते हैं कि –

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति, शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिकन्या मरुदवृधे वितस्तऽऽयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।।

ऋ. १०.७५.१.५[१]

इसमें इन नदियों का उल्लेख है – गङ्गा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि (सतलज), परुष्णी (इरावती या रावी), असिक्नी (चन्द्रभागा या चेनाब), मरुद्वृधा (वर्तमान मरुबर्दवान, चेनाब की एक सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), आर्जीकीया (झेलम और सिन्धु के बीच की एक नदी, यास्क ने इसका अर्थ विपाशा अर्थात् व्यास माना है), सुषोमा (अटक जिले में बहने वाली सोहन नदी) ।

इसीप्रकार ऋग्वेद के ऋषि ने ऋग्वेद में तथा बाद में अथर्ववेद के ऋषि ने अथर्ववेद में अनेक मुख्य नदियों का वर्णन किया है । जिन्हें सप्त सिन्धव कहा गया है । यथा –

सप्त सिन्धव :

ऋग्वेद और अथर्ववेद में 'सप्त सिन्धव' अर्थात् सात नदियों का कई बार उल्लेख है ।[२] एक मंत्र में कहा गया है कि ये सात नदियाँ हिमालय से निकलती हैं और सिन्धु में मिलती हैं ।[३]

ऋग्वेद के अन्तर्गत "इमं मे गंगे ....." के अतिरिक्त १०–७५–६ वाले मन्त्र में भी गङ्गा के अतिरिक्त सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियों के नामों का उल्लेख देखा जाकता है । यथा –

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्यात्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ।।

अर्थात् तृष्टामा (जासकार नदी), सुसर्तु (सुरु), रमा, श्वेती, कुभा (काबुल), गोमती, क्रुमु (कुर्रम) एवं मेहत्नु (सवान नदी) ।

(ब) ब्राह्मण ग्रन्थ और गङ्गा :

गोपथब्राह्मण :

इस ग्रन्थ के २/१० में ''अंगमगधेषु'' समस्त पद मिलता है । इससे ज्ञात होता है कि दो प्रदेश परस्पर समीपस्थ हैं । बिहार में दक्षिण–पूर्वी मैदान ''अंग'' देश रहा होगा, जिसमें आजकल मुंगेर और भागलपुर जिले हैं । इसकी राजधानी चम्पा थी ।[४] कहना न होगा कि भारत के उपर्युक्त प्राचीन वर्गीकृत महाजनपद गङ्गादि नदियों के अस्तित्व के द्योतक हैं । यथा –

मगध : यह भूभाग बिहार में गङ्गा का दक्षिण–पश्चिमी हिस्सा माना जाता है, जिसमें पटना और गया जिले हैं । यजुर्वेद में मागध को अतिक्रुष्ट (उच्चस्वर में गाना) का काम दिया गया है ।[५]

कोसल–विदेह – इन जनपदों का उल्लेख शतपथब्राह्मण में प्राप्त होता है । नाम की संयुक्तता से प्रतीत होता है कि दो जनपद आस–पास रहे होंगे । सदानीरा (गंडकी) नदी को इनकी विभाजक रेखा माना गया है ।[६] विदेह बिहार का तिरहुत जनपद है, जहाँ के राजा जनक हुए थे ।

(स) आरण्यक ग्रन्थों में गङ्गा :

तैत्तिरीय आरण्यक में गङ्गा – यमुना के मध्यवर्ती प्रदेश को अति पवित्र माना गया है । इसी में कुरुक्षेत्र व खाण्डववन का भी उल्लेख है । यथा –

नमो गङ्गायमुनयोर्मध्ये ये वसन्ति ।[७]

शांरवायन आरण्यक (६/१) में उशीनर, कुरुपांचाल, मत्स्य, काशी और विदेह जनपदों का वर्णन है । यथा –

उशीनेरषु, मत्स्येषु, कुरूपाञ्चालेषु, काशीविदेहेषु ।

मैत्रायणी आरण्यक में भारत के जिन चक्रवर्ती सम्राटों के नाम मिलते हैं, वे हैं –

अन्ये महाधनुर्धराः चक्रवर्तिनः । केचित् सुद्युम्न–भूरिद्युम्न – इन्द्रद्युम्न – कुवलयाश्व – यौवनाश्व – अश्वपति – शशबिन्दु – हरिश्चन्द्र – अम्बरीष – ननकतु – शर्याति – ययाति – अनरण्य – अक्षसेनादयः । मरुत्त – भरत प्रभृतयो राजानः ।[८]

(द) उपनिषदों में गङ्गा

काशी (काशि – काश्य) :

अथर्ववेद, शतपथ, जैमिनीय ब्राह्मण और बृहदारण्यकोपनिषद् में काशी का उल्लेख है । यथा – अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा ५/२२/१४, शत.ब्रा. १३/५/४/१६, जैमिनीय ब्रा. २/३१६ एवं बृहदारण्यकोपनिषद् २/१/1 ।

यह वर्तमान काशी या वाराणसी है । काशीवासियों को काशि और वहाँ के राजा को काश्य कहते थे । बृहदारण्यकोपनिषद् में अजातशत्रु को काशी का राजा कहा गया है ।

गङ्गा व गङ्गा के मैदानी भागों में स्थित इन जनपदों का वैदिक वाङ्मय के विविध ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त होने के कारण गङ्गा की तत्कालीन महत्ता को भी सरलतया रेखांकित किया जा सकता है ।

गङ्गा नदी को जाह्नवी भी कहते हैं, जिसका अर्थ है – अवाञ्छनीय या कठिन श्रम का नाश करने वाली । यह शब्द वैदिक जह् धातु से निष्पन्न होता है । चूँकि जह्न नामक ऋषि गङ्गा का पान कर जाते हैं और फिर जाह्नवी के रूप में बाहर निकालते हैं । इसलिए इसे जह्नुसुता भी कहते हैं । ''पुराणों में वैदिक सन्दर्भ'' नामक ग्रन्थ के संकलन कर्ता विपिनकुमार जी का मानना है कि जह्नु मन का प्रतीक है, जो विज्ञानमय कोश से प्रवाहित सत्य रूपी गङ्गाजल का पान कर जाते हैं और पुनः उसे श्रुति ज्ञान के रूप में मुक्त करते हैं ।[९] इसके अतिरिक्त गङ्गा का उल्लेख जाह्नवी के नाम से ऋग्वेद में अन्यत्र भी किया गया है ।[१०]

१.२.२ कोश–ग्रन्थ और गङ्गा

वैदिक सम्पत्ति के अन्तर्गत वेदों में नदियों के नामों से क्या भाव निकलता है और नदियों से क्या तात्पर्य है ? यह बताया गया है । यथा –

नदियों के नाम :

जिन शब्दों से यहाँ लोक की नदियाँ पुकारी जाती हैं, वेदों में उन्हीं शब्दों के कई अर्थ होते है । उन शब्दों का जो धात्वर्थ है, वह 'चलनेवाला – बहनेवाला – वेगवाला' आदि होता है । नदियाँ भी इसीप्रकार का गुण रखती हैं । वे भी चलनेवाली, बहनेवाली और वेगवाली होती हैं । इसीलिये लोक में वे शब्द केवल नदियों के ही लिये रुढ हो गये हैं । किन्तु वेद में उन शब्दों से किरण, नदी, वाणी आदि अनेक भावों का वर्णन किया गया है ।

वेद में गङ्गा, यमुना और सरस्वती आदि नामों के आ जाने मात्र से संयुक्तप्रान्त में बहनेवाली उक्त नदियों का वर्णन बताना, बहुत ही सरल प्रतीत होता है । किन्तु जिन मन्त्रों में नदीवाची शब्दों के अतिरिक्त अनेक चमत्कारिक शब्द आते हैं (जिनमें आकाश अथवा मनुष्य–शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली बाते हैं) उनका अर्थबोध कठिन है ।

गङ्गा और यमुना के लिये प्रसिद्ध है कि गङ्गा विष्णु के चरण से निकली है और यमुना सूर्य की कन्या है । 'इदं विष्णुर्विचक्रमे' आदि मन्त्रों से सिद्ध हो चुका है कि वेद का विष्णु, सूर्य के सिवा और कुछ नहीं है । जब गङ्गा और यमुना का सम्बन्ध सूर्य से है तो वे संयुक्तप्रान्त में बहनेवाली नदियाँ नहीं हो सकतीं । अमरकोश में लिखा है कि –

गङ्गा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा ।
भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्त्रोता भीष्मसूरपि ।। (अमर. १/३१)

अर्थात् गङ्गा का नाम विष्णुपदी है, निम्नगा अर्थात् नीचे जानेवाली है और तीन रास्तों तथा तीन स्रोतोंवाली है । विष्णु सूर्य है । सूर्य के पैर से

गङ्गा निकली है और नीचे जानेवाली है । यमुना के लिए भी लिखा है कि 'कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा' (अमर. १/३२) अर्थात् यमुना और सूर्यतनया एक ही वस्तु है । सूर्य से उत्पन्न होनेवाली ये दोनों क्या सूर्य की किरणें ही नहीं हैं ?

अन्य जगहों पर ऋषियों ने इन नदियों को सिन्धु पत्नी के रूप में बताया है । इन्हें सिन्धु की पत्नी और सिन्धु को इनकी रानी भी कहा गया है । इन सात नदियों में पंजाब की ५ नदियाँ शुतुद्री (सतलज), विपाशा (व्यास), इरावती (राप्ती), चन्द्रभागा (चेनाब) और वितस्ता (झेलम) ली जाती हैं । इनके अतिरिक्त दो नदियाँ सिन्धु और सरस्वती ली जाती हैं । ये सात मिलकर 'सप्त सिन्धु' कही जाती हैं ।

ध्यातव्य है कि गङ्गा के साथ–साथ ऋषि परंपरा ने गङ्गा की सहायक नदियों का भी उल्लेख किया है तथा इन नदियों के वर्णन के लिए अलग से एक नदी सूक्त की परिकल्पना की है ।

गङ्गा आदि नाम नव किरणों का भी है । १०वीं रश्मि कपिल कहलाती है क्योंकि ऋग्वेद के ऋषि ने ही जहाँ सूर्य की १० रश्मियों का वर्णन किया है, वहाँ ऋग्वेद के ८/७२/८ में 'आ. दशभिः खेदया', ६/७५/२३ में 'रश्मिभिर्दशभिः' एवं १०/२७/१६ में 'दशनामेकं कपिलम्' ऐसा कहा है । ऋषियों ने गङ्गा आदि नदियों को सूर्य से उत्पन्न बताया है, जो सूर्य की किरणों की ही प्रतीक है ।

१.२.३ रामायण और गङ्गा :

रामायण में वाल्मीकि जी कहते हैं कि –

तत्रर्षिगणगन्धर्वाः वसुधातलवासिनः ।

भवाङ्गपतितं तोयं पवित्रमिति पस्पृशुः ।।

शापात् प्रपतिता ये च गगनात वसुधातलात् ।
कृत्वा तत्राभिषेकं ते बभूवुर्गतकल्मषाः ।।
धूतपापाः पुनस्तेन तोयेनाथ शुभान्विताः ।
पुनराकाशमाविश्य स्वाँल्लोकान् प्रतिपेदिरे ।।"

चूँकि गङ्गा भारतीयता अथवा भारतीय अस्मिता का आधार है । इसलिए वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त प्रायः सभी पुराणों में गङ्गा के सन्दर्भ में थोड़े बहुत अन्तर के साथ अपने विचार व्यकत किये गये हैं ।

१.२.४ महाभारत कोश में गङ्गा और तत्सम्बद्ध तीर्थों के वर्णन

भगवान् वेदव्यास प्रणीत महाभारत में भी गङ्गा के विषय में असंख्य स्थानों पर विस्तार से चर्चा की गयी है जिसमें गङ्गा से सम्बन्धित कथानक, गङ्गा के पर्यायवाची तथा उनसे सम्बन्धित तीर्थ जैसे – गङ्गाद्वार, गङ्गामहाद्वार, गङ्गाह्रद व गङ्गोद्भेद आदि के सन्दर्भ में विस्तृत विवेचन किया गया है । इन सारे विवेचनों को महाभारत–कोश के प्रणेता डॉ. रामकुमार राय ने इसके द्वितीय भाग में पृ. २३० से २३२ तक व्यवस्थित रूपेण उपस्थापित किया है । यथा –

१.२.४.१ गङ्गा – एक प्रसिद्ध नदी का नाम है : "गङ्गाकूले" (१.२.१११) । 'नागवेश्मानि गङ्गायास्तीर उत्तरे', (१.३.१३६) । 'गङ्गायाः, (१.६१.११) । यह भीष्म की माता थी (१.६३.६१) । शान्तनु द्वारा गङ्गा के गर्भ से पुत्रों के रूप में अष्टवसुओं का जन्म भी हुआ (१.६७.७४) । 'नर–नारायणस्थानं गंगयेवोपशोभितम्', (१.७०.२६) । ययाति ने गङ्गा और यमुना के बीच के समस्त प्रदेश को पूरु को दे दिया (१.८७.५) । 'शान्तनुः खलु गङ्गा भागीरथीमुपयेमे तस्यामस्य जज्ञे देवव्रतो नाम यमाहुः – भीष्ममिति (१.९५.४७) । 'गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम्', (१.९६.४) । महाभिष तथा गङ्गा को मनुष्यों के बीच जन्म लेने का शाप दिया गया (१.९६.७) । 'गङ्गोवाच' (१.९६.१७.१८.२०) । 'गंगया वसवः सह', (१.९६.२३) । इन्होंने प्रतीप से कहा

कि ये उनके पुत्र, शान्तनु के साथ विवाह करेंगी (१.९७.१.२) । 'गङ्गामनुचचारैक – सिद्धचारणसेविताम्', (१.९७.२६) । त्रिपथगामिनी दिव्यरूपिणी देवी गङ्गा ही अत्यन्त सुन्दर मनुष्य देह धारण करके शान्तनु को पत्नी रूप में प्राप्त हुई (१.९८.८) । 'जातं जातं च सा पुत्रं क्षिपत्यम्भसि भारत । प्रीणाम्यहं त्वामित्युक्त्वा गङ्गा स्रोतस्यमज्जयत् ।।', (१.९८.१३) । 'गङ्गाजह्नुसुता महर्षिगणसेविता', (१.९८.१८) । गङ्गा से विवाह करने के पश्चात् शान्तनु ने उनसे जो पुत्र उत्पन्न किए, उनमें से सात को गङ्गा ने जल में फेंक दिया था, परन्तु आठवें पुत्र, भीष्म को शान्तनु ने बचा लिया (१.९८.२४) ।। 'जाह्नवी' (१.९९.४) । "शान्तनु के पूछने पर गङ्गा ने बताया कि पूर्वकाल में वरुण ने जिन्हें पुत्र रूप में प्राप्त किया था, वे वसिष्ठ नामक मुनि ही 'आपव' के नाम से विख्यात हैं । तदनन्तर गङ्गा ने यह बताया कि किस प्रकार वसिष्ठ द्वारा वसुओं को शाप प्राप्त हुआ (१.९९) ।" 'गङ्गामनुसरन्नदीम्',(१.१००.२३) । 'नदी गङ्गा', (१.१००.२७) । १.१००.३०.३१.३३–३६ (इन्होंने भीष्म को शान्तनु को दे दिया । १.१०४.३६, १२७.१६, १२८, २६, १३०, ३४, १३३, ११, १६६, २, १६७, ५, १७०, ३.५.१४.१७.१६ ।[१२] "प्राचीन काल में हिमालय के स्वर्णशिखर से निकली हुई गङ्गा सात धाराओं में विभक्त हो समुद्र में जाकर मिल गई । जो जो व्यक्ति गङ्गा, यमुना, सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी नामक सात नदियों का जल पीते हैं, उनके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं । यह गङ्गा अत्यन्त पवित्र नदी है । आकाश ही इसका तट है । आकाशमार्ग से विचरती हुई गङ्गा देवलोक में अलकनन्दा नाम धारण करती है । यही वैतरणी होकर पितृलोक में बहती है । वहाँ पापियों के लिए इसे पार करना अत्यन्त कठिन होता है । इस लोक में आकर इसका नाम गङ्गा होता है, ऐसा श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास का कथन है (१.१७०.१९–२२) ।" १.१९७.१०.११, २१४–११, २१५-७, ३८, २२८–३२ (गङ्गायमुनयोर्मध्ये), (गङ्गायाश्चनरश्रेष्ठ सरस्वत्याश्च संगमे). ८१ (गोमतीगङ्गायोश्चैव संगमे), ८५, ४

(गङ्गायास्तत्र..... सागरस्य च संगमे). ६६.७५ (यमुना गङ्गायासार्धं संगतालोकपावनी । गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्). ८५ (गङ्गायमुनसंगमे). ८७–९० (गङ्गा कलियुगेस्मृता) ९२ (गङ्गायां मगधेषु). ९४.९६.९७, ८७, १४ (गङ्गा यत्र नदी पुण्या यस्यास्तीरे भगीरथः). १८ (गङ्गायमुनयोर्वीर संगमं लोकविश्रुतम्). ८८, ६.९०, २१ (बिभेद तरसा गङ्गा गङ्गाद्वारं). २६ (उष्णतोयवहा गङ्गा शीततोयवहा पुरा), ९३.१०, ९५, ५ (गङ्गायमुनयोश्चैव संगमे) । ''अगस्त्याश्रम के समीप ही देवगन्धर्वसेविता पुण्यसलिला भागीरथी है, जो आकाश में वायु की प्रेरणा से फहरानेवाली श्वेत पताका के समान सुभोभित है । यह (गङ्गा) क्रमशः नीचे–नीचे के शिखरों पर गिरती हुई सदा तीव्र गति से बहती हुई शिलाखण्डों के नीचे इसप्रकार समाती जाती है, जैसे भयभीत सर्पिणी विवर में घुसी जा रही हो । पहले भगवान् शङ्कर की जटा से गिरकर प्रवाहित होनेवाली समुद्र की प्रियतमा यह गङ्गा सम्पूर्ण दक्षिण दिशा को इसप्रकार आप्लावित कर रही है जैसे माता अपनी सन्तान को नहला रही हो (३.९६, ३१–३३) ।'' ३.१०७, ६७, १०८.४.१४–१५ (गङ्गोवाच)[१३]. २१.२७, १०६, ६–८ (हिमवतः सुता). ६ (गगनमेखलाम्) ।'' ''भूतल पर पहुँचकर गङ्गा ने भगीरथ से कहा : 'मैं किस मार्ग से चलूँ ? तुम मुझे मार्ग बताओ । मैं तुम्हारे लिए ही इस भूतल पर उतरी हूँ । यह सुनकर भगीरथ, जहाँ महात्मा सगरपुत्रों के शरीर पड़े थे, वहाँ गङ्गा के जल से उन शरीरों को प्लावित करने के लिये उस स्थान से प्रस्थित हुए । भगवान् शङ्कर गङ्गा को मस्तक पर धारण करके देवताओं के साथ कैलास पर्वत चले गये । भगीरथ ने गङ्गा के साथ समुद्रतट पर जाकर वरुणालय समुद्र को बड़े वेग से भर दिया और गङ्गा को अपनी पुत्री बना लिया । इसप्रकार लोमश जी ने त्रिपथगा (स्वर्ग, पाताल और पृथिवी पर गमन करनेवाली) गङ्गा के अवतरण का प्रसङ्ग सुनाया । (३.१०९, १४–१९)'' ३.११४, २ (ये सागर में गिरती हैं), ११५, २८, १३४, ६ (नदीषु गङ्गा प्रवरा यथैव), १३५, ७.३२.३६, १६९, २ (सप्तविधाः यहाँ सदा अग्नि

प्रज्वलित रहते हैं, परन्तु इस अद्भुत तीर्थ को कोई मनुष्य नहीं देख सकता). १४.१६, १५८.६८ (महागङ्गा....पुण्यांदेवनदीं शुभाम्), १८७.१६ (समुद्रमहिषीं). २१.२३.२४, १८८, १०२ (मार्कण्डेय ने इन्हें भी नारायण के उदर में देखा), २१७.४ (यथा रुद्राश्च सम्भूतो गङ्गायां कृत्तिकासु); २२२, २२ (अग्नि की माता नदियों में एक यह भी है), २५२, ४६ (गङ्गौघप्रतिमा), ३०८, २५.२६ (कर्ण जिस मंजूषा में बन्द था वह यमुना से गङ्गा में बह कर आ गई), ५.१६, ३०, ५१, ३५, १११, ८ (अत्र गङ्गा महादेवः पतन्तीं गगनाच्युताम् । प्रतिगृह्य ददौ लोके मानुषे ब्रह्मवित्तम), १२०, १ (गङ्गायमुनसङ्गमे), १२१, १२ (गङ्गा गामिव गच्छन्तीमालम्ब्य), १३५, १८ (गत्वा गंगेव सागरम्), १३६, ११, १४४, २७; १५१, ५४, १५८, १३ (गंगयेव प्रवृद्धया), १६०, १६, १६६–१० (मकराइव..... गङ्गाविक्षोभयिष्यन्ति), १७८, ६४ (राम जामदग्न्य से युद्ध करने से विरत करने के लिए यह भी भीष्म के पास आई), १६६, १२ । "पर्वत शिखर से उतरने के बाद भागीरथी गङ्गा चन्द्रमस् सरोवर में गिरती हैं । शिव ने गङ्गा को १०,००,००० वर्षों तक अपने मस्तक पर धारण किया (६.६, २६–३१) ।" ६.६, १४.३६; ११, ३१; १८, १८; १६, १४; ८३, ५ (गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम्), ११६, ६७ (हिमवतः सुता), ७.१०, ६६; ४६; ३०, ३०; ५४, २४; ६०, १.५–६ (तस्यांके निषसादह ।[१४] तथा भागीरथी गङ्गा उर्वशी चाभवत् पुरा) ८, ६८, ८; ८०, २७; १५६, ६७; ८, २८, ४४ (उन्मत्तगङ्गा – प्रतिमम्), ३४, २४; ४४, ६; ४६, ८७; ६०, ७३; ६.१८, ११; ३७, ४६; ४४, ८.६.१४.२०.३५, ४०; ४६, ५०, ६६, ११.११, १६; १२, ५; १४, ४; ४, २३, ४२; २६, ४४; २७, १.५.६.३०; १२.१, २३; २६, ४६, ६८ (यस्यांके निषसाद ह । गङ्गा भागीरथी तस्मादुर्वशी चाभवत्पुरा). ११८ (यावत्यः सिकता ..... गङ्गाः), ४६, १६; ४६, ८१; १०६, ८; ११३, ७, ८ (गङ्गोवाच), १७०, ४ (देशान् गङ्गानिषेवितान्), २२८, ६; २५८, २२; २८३, १७ (गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा), ३२४, १२ (सरिता श्रेष्ठा मेरुपृष्ठे), ३४७, ५० (गङ्गा

और सरस्वती नारायण के कूल्हे हैं); ३५३, १ (महापद्मे पुरोत्तमे । गङ्गाया दक्षिणे तीरे), ३५५, ११; १३, ४, ३, १६, १७ (कान्यकुब्ज के पास गङ्गातट पर वह अश्वतीर्थ स्थित है, जहाँ वरुण के वरदान केअनुरूप ऋचीक के चिन्तन करते ही गङ्गा के जल से चन्द्रकान्ति के समान एक सहस्र अश्व प्रगट हो गये थे), २५, १५ (यत्र भागीरथी गङ्गा पततेदिशमुत्तराम्); २६, २६.२७.३०.३२ – ५३.५६–७२, ७४–८४, ८६, ८८–९२, ९४–९६, ९८, १००, १०२, १०३–१०६ (छब्बीसवें अध्याय के इन श्लोकों में गङ्गा का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है); ३०, ११.१८; ३५, २०; ४३, १८; ५०, ६.८.१५; ५३, ५६, ५४, २२; ६८, ३ (ग्रामः ..... गङ्गायमुनयोर्मध्ये यामुनस्य गिरेरधः), ७३, ४२ (यथा निपतितं च यत । तत्तेजोऽग्निर्महद्भूतं द्वितीयमिति पावकम् ।। वधार्थं देवशत्रूणां गङ्गायां जनयिष्यति). ५५ (गङ्गा भागीरथीं). ५७–५९.७०.७२ (गङ्गोवाच), १०२, ४६; १०३, २४ (स्रोतश्च याबद्गङ्गायाः). २७ दीर्घकालं हिमवति गङ्गायाश्च दुरुत्सहाम् (मूर्ध्ना धारां महादेवः शिरसायामधारयत्), १२५, ४८; १४६, १६ (गगनान्दां गता देवी गङ्गा). २१ (गङ्गाद्याः सरितां वराः). २४ देवनदी गङ्गा). (२६, ३२; १५५, २३.१६५ १२.२०; १६८, ३०; १४, १, ३; ४४, १४ (त्रिपथगा गङ्गा नदीनामग्रजा स्मृता); ८१, ११, १५, १६, ५, ६; ३१, २०, २२; ३७, ५, ६, १८, ३३; ३६, ११; १८, ३, ३६ (गङ्गा त्रिलोकगाम्), ४१ (गङ्गादेवनदीं) । तुकी. आकाशगङ्गा, भगीरथसुता, भागीरथीं, शैलराजसुता, शैलसुता, देवनदी, हिमवती, जाह्नवी, जह्नुकन्या, जह्नुसुता, समुद्रमहिषी, त्रिपथगा, त्रिपथगामिनी ।[१५]

१.२.४.२ गङ्गाद्वार – उस स्थान का नाम है जहाँ गङ्गा पर्वतमालाओं से निकलकर समतल भूमि या मैदानों में प्रवेश करती हैं, इसी स्थान पर प्रतीप ने तपस्या की थी (१,९७,१) । भरद्वाज का आश्रम यहीं था (१.१३०,३३) । अपनी तीर्थयात्रा के समय अर्जुन यहाँ पधारे थे (१.२१४,६.१०.३५) ‘गङ्गाद्वारे महाभाग

देवगन्धर्वसेविते; (३.८१,१४) । ३.८४,२७,८६,१५; ६०.२१ (शैलं... विभेद तरसा गङ्गा गङ्गद्वार); ६७,११;१४०,७;१४२,६ (एतस्याः सलिलं मूर्ध्नि वृषाश्चं पर्यधारयत्), ५६, ६; २७२, २५; ६.३८; २८; १२. २८३, २१; २८४, ३ । 'गङ्गाद्वार, कुशावर्त, बिल्वक तीर्थ, नील पर्वत तथा कनखल में स्नान करके पापरहित हुआ व्यक्ति स्वर्गलोक को जाता है । जहाँ उत्तर दिशा में भागीरथी गङ्गा गिरती हैं और जहाँ उनका स्रोत तीन भागों में विभक्त हो जाता है, वहीं भगवान् महेश्वर का त्रिस्थान नामक तीर्थ है । जो मनुष्य एक मास तक निराहार रहकर वहाँ स्नान करता है, उसे देवताओं का प्रत्यक्ष दर्शन होता है । सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और इन्द्रमार्ग में पितरों का तर्पण करनेवाला व्यक्ति यदि पुनर्जन्म लेता है तो उसे अमृत–भोजन मिलता है (१३.२५, १३–१७) ।" भीष्म ने इसी स्थान पर शान्तनु का श्राद्ध कर्म किया था (१३:८४.११) । 'पुण्या गङ्गाद्वारमथापि च; (१३.१६५,२६) । 'गङ्गाद्वारं ययौनृप; (१५.३७,१०) । इसी स्थान पर धृतराष्ट्र, कुन्ती और गान्धारी ने अग्नि में प्रवेश किया था (१५.३६,१४.१५) ।[१६]

१.२.४.३ गङ्गामहाद्वार – गङ्गोत्तरी से भी आगे उस स्थान का नाम है, जहाँ हिमालय के शिखर से गङ्गा उतरती हैं । एक सत्यवादी महात्मा, धामामुनि, इसकी रक्षा करते हैं । उनकी मूर्ति, आकृति, तथा संचित तपस्या का परिणाम किसी को ज्ञात नहीं होता । इस स्थान से आगे जानेवाला व्यक्ति हिमराशि में गल जाता है । नरनारायण को छोड़कर अन्य कोई व्यक्ति कभी गङ्गामहाद्वार से आगे नहीं गया (५.१११,१६–२०)[१७] ।

गङ्गा – यमुनयोस्तीर्थम् एक तीर्थ का नाम है । यहाँ कालञ्जर तीर्थ में एक मास तक स्नान और तर्पण करने से दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है (१३.२५,३५) ।[१८]

१.२.४.४ गङ्गावतरणम् - "राजा सगर ने अपने पौत्र, अंशुमान् से कहा : 'यज्ञ में विघ्न पड़ जाने से मैं मोहित और दुःख से पीड़ित हूँ । तुम अश्व को

लाकर नरक से मेरा उद्धार करो ।' महात्मा सगर के ऐसा करने पर अंशुमान् उस स्थान पर गये; जहाँ पृथिवी विदीर्ण की गई थी । उन्होंने उसी मार्ग से समुद्र में प्रवेश किया और महात्मा कपिल तथा यज्ञीय अश्व को देखा । उन्होंने कपिल मुनि को अपने आने का प्रयोजन बताया । प्रसन्न होकर कपिल ने अंशुमान् से वर माँगने के लिए कहा । अंशुमान् ने पहले तो यज्ञकार्य की सिद्धि के लिए वहाँ उस अश्व के लिए प्रार्थना की और दूसरा वर अपने पितरों को पवित्र करने की इच्छा से माँगा । महर्षि कपिल ने अंशुमान् को वह यज्ञीय अश्व प्रदान करते हुए कहा : 'तुम्हारा पौत्र शङ्कर को संतुष्ट करके सगरपुत्रों को पवित्र करने के लिए स्वर्गलोक से गङ्गा को ले आयेगा ।' अंशुमान् उस अश्व को लेकर सगर के यज्ञमण्डप में आये और अपने पूर्वजों के विनाश का जो दृश्य देखा था, उसे भी बताया । तदनन्तर अंशुमान् की प्रशंसा करते हुए सगर ने अपने यज्ञ को पूर्ण किया । देवताओं ने भी सगर का सत्कार किया । सगर ने वरुणालय को अपना पुत्र माना और दीर्घकाल तक शासन करने के पश्चात् अपने पौत्र, अंशुमान् को, राज्यभार सौंपकर स्वर्गलोक चले गये । अंशुमान् राज्य करने के पश्चात् अपने पुत्र दिलीप को राज्य सौंपकर परलोकवासी हुए । दिलीप ने गङ्गा को भूतल पर उतारने के लिये महान् प्रयत्न किया परंतु कोई फल नहीं हुआ । दिलीप को एक पुत्र हुआ जिसका नाम भगीरथ पड़ा । भगीरथ का राज्याभिषेक करने के पश्चात् दिलीप वन चले गये (३.१०७) ।"

"अपने पितरों के विनाश की कथा सुनकर भगीरथ ने अपने मंत्री को अपना राज्य सौंप दिया और स्वयं हिमालय के शिखर पर तपस्या करने के लिए चले गये ।[९६] भगीरथ ने फल मूल, और जल का आहार करते हुए सहस्र वर्षों तक घोर तपस्या की । तदनन्तर गङ्गा ने साकार हो, उन्हें दर्शन दिया । भगीरथ के निवेदन पर गङ्गा ने पृथिवी पर उतर कर सगर–पुत्रों की भस्मराशि को पवित्र करना स्वीकार कर लिया परन्तु भगीरथ से यह भी कहा कि वे तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न करें क्योंकि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई उनके (गङ्गा के)

स्वर्ग से गिरने के वेग को सहन नहीं कर सकेगें । गङ्गा का आदेश पाकर भगीरथ कैलास पर्वत पर जाकर शिव की आराधना करने लगे । कुछ समय के पश्चात् उन्होंने शिव को प्रसन्न करके उनसे गङ्गा के वेग को धारण करने का निवदन किया (३.१०८) ।" "भगीरथ की प्रार्थना सुनकर शिव, भाँति-भाँति के अस्त्रों से सुसज्जित अपने भयंकर पार्षदों से घिरे हुए हिमालय पर आये । तदनन्तर उन्होंने भगीरथ से गङ्गा को भूतल पर उतारने के लिए प्रार्थना करने का आदेश दिया । भगीरथ के प्रार्थना करने पर और शङ्कर को खड़ा देख पुण्यसलिला रमणीय गङ्गा सहसा आकाश से नीचे गिरीं । उन्हें गिरते देख दर्शन के लिए उत्सुक महर्षियों सहित देवता, गन्धर्व, नाग तथा यक्ष वहाँ उपस्थित हुए । आकाश की मेखलारूप गङ्गा को शिव ने अपने ललाट देश में पड़ी हुई मोतियों की माला की भाँति धारण कर लिया । नीचे गिरती हुई गङ्गा तीन धाराओं में बँट गई । गङ्गा के कहने पर भगीरथ उनको मार्ग दिखाते हुए उस स्थान पर लाये, जहाँ सगर-पुत्रों के शरीर पड़े थे । शिव भी गङ्गा को धारण करने के बाद देवताओं के साथ कैलास पर्वत पर चले गये । राजा भगीरथ ने गङ्गा के साथ समुद्रतट पर जाकर वरुणालय समुद्र को अत्यंत वेग से भर दिया और गङ्गा को अपनी पुत्री बनाया । तदनन्तर उन्होंने पितरों के लिए जलदान किया और पितरों का उद्धार होते ही सफल-मनोरथ हो गये (३,१०६) ।[२०]

१.२.४.५ गङ्गासुत – स्कन्द : ३.२३२,१५ ।[२१]

१.२.४.६ गङ्गाह्रद : एक तीर्थ का नाम है । कुरुक्षेत्र की सीमा में स्थित यौवन-तीर्थ के अन्तर्गत गङ्गा नामक एक कूप है, जिसमें तीन करोड़ तीर्थों का वास है । इसमें स्नान करनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोक में जाता है (३.८३, १७६. २०१; १३, २५, ३४) ।

गङ्गोद्भेद – एक तीर्थ का नाम है जिसमें तीन रात उपवास व्रत करनेवाला व्यक्ति वाजपेय यज्ञ का फल पाता है । (३.८४,६५)[२२]

१.३ भारतीय-संस्कृति में गङ्गा संबंधी अन्य चिन्तन

१.३.१ काशिका में गङ्गा-चिंतन

अम्बु का महत्त्व बताते हुए व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रंथ काशिका के अंतर्गत भी गङ्गा जल का उल्लेख मिलता है ।[२३] यथा –

गाङ्गम्बु सितमम्बु यामुनंकज्जलाभमुभयत्र मज्जतः ।
राजहंस तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ।।

यहाँ पर दिखाया गया है कि गङ्गा का जल शुभ्र है और यमुना का जल कज्जलवत् मलिन है । प्रयाग तीर्थ में दोनों में स्नान कर लेने पर भी है । राजहंस ! तुम्हारी शुभ्रता न तो क्षीण ही होती है और न ही वृद्धि को ही प्राप्त होती है । किसी विशेष पुरुष की प्रशंसा में उसे ऐसा राजहंस बताया गया है कि जिसके संग में सज्जन और दुर्जन दोनों साथ-साथ रहते हैं परन्तु वह अपनी शुभ्रता – सज्जनता नहीं खोता । सदा एक रसानन्द रहता है । पितरों को जलदान देने की क्रिया को अम्बु क्रिया कहते हैं । जिसके लिए गङ्गाजल का धर्मशास्त्रों में अतीव महत्त्व है । अन्यत्र भी गङ्गाजल का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है । जिसे नीचे की पंक्तियों में देखा जा सकता है । यथा –

(१) गङ्गालाभः परं सुखम् ।
(२) गङ्गाजलं शौण्डिकहस्ते
(३) गङ्गाजलमपि स्वादु लवणत्वं निर्गच्छति – ७६-५ भीष्म पर्व
(४) गङ्गां प्राप्य गङ्गेव पूज्यते जनैः ।
(५) गङ्गाम्बुसंगमेनापि क्षारतामेतिनीरधिः २११-४; पद्म पु. उ. खं.
(६) गाधोदके मत्स्य इव सुखं विन्देत कस्तदा २७७-११ शान्ति पर्व
(७) गिरि नदी वेगोपमं यौवनम् १-१७५ पंचतंत्र

भारतीय संस्कृति में गङ्गा का इतना महत्त्व है कि यहाँ की सामान्य जनता प्रायः प्रत्येक नदी को गङ्गा नाम से ही स्वीकार करती है और उसे आदर देती है । यह नदी जिन-जिन स्थानों से होकर आगे बढ़ती है । उन

सभी स्थानों के रजकण और वायु आस्थावान् जनसमुदाय को स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने लगते हैं । यही कारण है कि इस नदी में स्नान करनेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्वयम् को भाग्यशाली मानता है और प्रायः हर पर्व पर गङ्गा तट के तीर्थों में असंख्य जन सम्मर्द पहुँचकर स्वयं को बड़ भागी मानता है । यह नदी एक तरफ जहाँ श्रद्धालु को स्वर्ग–मोक्ष, पितरों को आहार और मोक्ष, प्यासे जड़ चेतन को जल, व्यापारी को जीविका एवं तपस्वी को शान्ति प्रदान करती है, वहीं कृषक समुदाय को अपने जल से सींचकर समूची सृष्टि को भोजन प्रदान करती है । भारतीय हिन्दुत्व मृत्यु के समय अपने मुख में गङ्गाजल प्राप्त कर परलोक के मार्ग को प्रशस्त कर लेता है । हिमालय द्वारा प्रदत्त प्रसाद रूपा इस नदी का जल महादेव के सिर पर चढ़ता है । इसका माहात्म्य इतना अधिक है कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा आद्य जगद् गुरु शंकराचार्य सभी महापुरुषों ने भगवती गङ्गा की आराधना की है तथा तीर्थों में जाकर पूजा भी की है । जहाँ एक और महर्षि वाल्मीकि रामायण में गङ्गा का वर्णन करते हैं, वहीं शंकराचार्य गङ्गाष्टकम् की रचना करते हैं ।

१.३.२ वामनपुराण और गङ्गा :

वामन पुराण के अंतर्गत जिन सात नदियों का उल्लेख प्राप्त होता है उनमें गङ्गा प्रथम क्रम में है । यथा – गङ्गे च यमुने चै व गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धोकावेरि जलेरस्मिन् सन्निधिं कुरु ।।''[२४]

हे गङ्गा, यमुना, सरस्वती, कावेरी और गोदावरी नदियों !!! आप इस जल में अपनी सन्धि स्थापित करें । आगे चलकर पृथक्–पृथक् नदियों का पृथक्–पृथक् मास में पृथक्–पृथक् महत्त्व बताया गया है । जैसे गङ्गा, यमुना कार्तिक में, नर्मदा पौष में, देविका मार्गशीर्ष में, संहिता माघ में, वरुणा फाल्गुन में, सरस्वती चैत्र में, चंद्रभागा वैशाख में, कौशिकी ज्येष्ठ में, तापिका (ताप्ती)

आषाढ़ में, सिन्धु आषाढ़ में, गंडकी भाद्रपद में, सरयू अश्विन में और गोदावरी चन्द्रग्रहण में फलदायिनी होती हैं ।

महाभारत के भीष्म पर्व (६/३७–३८) में नदियों को विश्व की माता के रूप में स्वीकार किया गया है । यथा –

विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।

इत्येता सरितो राजन्समाख्याता यथास्मृतिः ।।

नदियाँ एवं उनके तटवर्ती तीर्थ भारतीय परंपरा में धर्म, साधना, व्यापार, अध्ययन, तप, दर्शन एवं आध्यात्मिक संस्कृति के केन्द्र रहे हैं । सरस्वती शब्द नदी, वाक्, देवता एवं विद्या प्रभृति सभी के लिए प्रयोग में आता रहा है । ऋग्वेद में गङ्गा, यमुना व सरस्वती आदि नदियों का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं कि हे गङ्गादि नदियों !!! आप लोग मेरी स्तुतियाँ सुनें –

१.३.३ वृहन्नारदीय पुराण और गङ्गा :

बृहन्नारदीय पुराणं (४/२६) में गङ्गाजल के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहा गया है कि –

वर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।

न वर्ज्यं जाह्नवीतोयं न वर्ज्यं तुलसीदलम् ।।

अर्थात् बासी पानी या पत्र पूजाकार्य में वर्ज्य या निषिद्ध अवश्य माने गये हैं किन्तु गङ्गाजल या तुलसी का वृक्ष–पत्र निषिद्ध नहीं है । वामनपुराणकार नदियों की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे गङ्गा प्रभृति नदियों !!! आप सभी मेरे इन पूजन के जल में एक ही साथ अपनी सन्निद्धि (उपस्थिति) स्वीकार करें यथा –

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।

नर्मदे सिन्धो कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिंकुरु ।।

१.३.४ रहीमादि हिन्दी कवियों की दृष्टि में गङ्गा का महत्त्व

रहीम पानी को जल, प्रतिष्ठा और कान्ति (चमक) तीनों अर्थ में प्रयुक्त करते हैं – रहिमन पानी राखिए बिनुपानी सब सून । पानी गये न ऊबरै मोती मानुष चून ।। तो कबीर 'जल की काया जल की माया' कहकर जल की महत्ता बढ़ाते हैं । इसीलिए समुद्र को नदी का पति तथा विष्णु का स्वरूप माना गया है । और मानव जीवन को नदी की भाँति प्रवहणशील कहा गया है ।

१.३.५ अन्य चिंतन :

गङ्गा आदि नदियों की वर्तमान परिस्थिति पर विचार करते हुए विद्वान् पर्यावरणवेत्ता डॉ. गोविन्द चातक कहते हैं कि –

अब गङ्गा ही नहीं नर्मदा भी संकट में पड़ गयी है । आज हिमालय से खिलवाड़ करते दिमाग भागीरथी, अलकनन्दा आदि नदियों को बाँधने को बेताब हैं । जो देश अपनी नदियों की बाढ़ नहीं सँभाल पाता, बरसात के जल को न संचित कर पाता और न ही उसका सदुपयोग कर पाता । वह नदियों को बाँधने की बेगार उठा रहा है । हिमालय में नदियों के स्रोतों पर स्थित ग्लेशियर पहले ही पीछे हट रहे हैं । अब बाँधों का सिलसिला शुरू होने लगा है, तो दोहन क्रिया से प्रतिगामी परिणामों की शुरुआत हो गयी है । गङ्गोत्री में पहले ही पानी कम और गाद ज्यादा हो गया है । वहाँ से करीब २०० कि.मी. की यात्रा पर भागीरथी टिहरी पहुँचती है, यह पूरा प्रवाह–क्षेत्र काफी रमणीय और समतल है । वहां के निवासियों के लिए गङ्गा माता है । किन्तु वहां बाँध बन जाने से लगभग ४७०५ हेक्टेअर समतल भूमि की क्षति और एक लाख लोगों के विस्थापन की क्षतिपूर्ति कितनी कठिन हुई, जो संभवतः आजतक सम्पन्न न हो सकी ।

इसीप्रकार अलकनन्दा प्रभृति नदियों पर बनाये जाने वाले बाँधों से भी भौगोलिक, सांस्कृतिक, भूकम्पीय एवं अनेक प्रकार की हानियाँ संभावित हैं ।[२५]

इसीप्रकार गङ्गा से संबंधित माया (हरिद्वार), केदारनाथ, काशी, प्रयाग, कर्णपुर, गङ्गोत्री, गोमुख और अन्त में गङ्गासागर जैसे महत्त्वपूर्ण तीर्थ हैं, जहाँ स्नान करके मानव न केवल अपने जीवन में धन्यता का अनुभव करता है । प्रत्युत् अखंड पूण्यराशि की प्राप्ति की अनुभूति भी करता है । भारतीय संस्कृति के परम प्रख्यात विद्वान् प्रो. विद्यानिवास मिश्र गंगा एवं उसके तटवर्ती तीर्थों के संदर्भ में कहते हैं कि –

तीर्थ का एक अर्थ है वह घाट, जहाँ से नदी को पार कर सकना सुगम होता है[२६], वैसे लोग सेतु या पुल से भी पार करते थे, पर सेतु से पार करने का अर्थ है केवल ज्ञान हो जाना, ऊपर से देखकर निकल गये, नाव से पार करने से थोड़ा अधिक सामीप्य रहता है जल से, पर तैरकर या चलकर पार करना ही असली पार करना है, क्योंकि तभी नदी में हम होते हैं और हम में नदी होती है । इसीलिए गुरु को तीर्थ कहते हैं, गुरु साथ–साथ रहता है, हम पार हो जाते हैं, फिर गुरु दूसरे को पार कराता है, पर ज्योंही हम गुरु के साथ अपने को जोड़ते हैं, हम विद्या की साधना के साथ जुड़ जाते हैं और हम स्वयं गुरु होने की – तीर्थ होने की – क्षमता अपने में अनुभव करने लगते हैं । तीर्थ का दूसरा अर्थ जल है, क्योंकि अधिकतर तीर्थ या तो नदियों के उद्‍गम हैं, नदियाँ हैं, सरोवर हैं, सागर हैं या नदियों झरनों वाले अरण्य प्रदेश, जहाँ मौन की नदी झरती रहती है ।[२७] आज भी दक्षिण भारत में पूजा के निमित्त जल या पवित्र भावना से दिया गया जल तीर्थ कहा जाता है, बालिद्वीप में तो गुरूपेदण्ड (पण्डित गुरु) का कार्य ही है मंत्र से जल को पवित्र करना, वही जल लोग थोड़ा–थोड़ा घर लाकर धर्मकृत्य करते हैं । इस जल को तीर्थ कहते हैं । जल और नदी से हिन्दू की आत्मीयता जुड़ने के कई कारण हैं । पहला कारण तो यह है कि उसकी संस्कृति के विकास में जल और अग्नि का बड़ा योगदान रहा है, जहाँ अग्नि को उसने व्यक्त देवता माना, वहाँ जल को अव्यक्त देवता माना,[२८] अग्नि को सृष्टि का अंकुरण माना तो जल को सृष्टि

का गर्भ माना और यज्ञ का जल से अपरिहार्य संबंध देखा ।[२९] दूसरा कारण यह है उसने वाक् को सरस्वती (जलधार वाली) के रूप में, प्रवाहशील शक्ति के रूप में देखा, नदी की गतिशीलता, भाषा की गतिशीलता और धर्म की गतिशीलता – इन सबको जल के एक बिन्दु में देखा ।[३०] इसी एक बिन्दु का आचमन उसे पवित्र कर देता है । तीसरा कारण है, उसका भौतिक संस्कार जो नदीमातृक रहा है । नदियाँ उसकी खेती को उर्वर करती रही हैं । हजार–हजार वर्षों से जोती जाती हुई भूमि नदियों के कारण नयी होती रही है ।

तीर्थस्नान कितना बड़ा संकल्प है, कितना बड़ा भावैक्य है, बड़े सुख के लिए छोटे सुख के उत्सर्ग की कितनी बड़ी बुद्धिमता है । जो धर्म की दूकान लगाते हैं, वहाँ धर्म नहीं रहता, वह रहता है इस जन–पारावार में, जो तीर्थ में एक साथ सन्तरण कर रहा है, जो सचमुच जीवन के रस का आस्वाद पा रहा है, कोई उसे अंधविश्वास माने, परन्तु जिससे सच्चाई का इतना गहरा रिश्ता जुड़ता हो कि तीर्थ में, गङ्गा में झूठ नहीं बोलेंगे, उसे छोटा या अन्धा मानने को मन नहीं होता । 'गङ्गा के जल में' रासायनिक गुण हैं या नहीं, या जो थे, वे भी तकनीकी अंधविश्वास के कारण लुप्त हो रहे हैं या बढ़ रहे हैं, इसका निर्णय तो परिवेशविज्ञानी करेंगे, परन्तु गङ्गा में या किसी भी तर्थ के जल में असंख्य मनुष्यों की पवित्र भावना की सूक्ष्मशक्ति का सघन संचयन तो है ही, क्या इतने आश्चर्यों का स्रष्टा मानव मन शक्ति का विकिरण यहाँ नहीं करता रहा है, इस जल से जुड़कर कि वह जुड़ने वाले कलुषित से कलुषित मन का शोधन न कर सके ।[३१]

भारतीय संस्कृति के ख्यातनाम ध्वजवाहक विद्वान् मनीषी पं. विद्यानिवास मिश्र ने गङ्गा के ऊपर अपनी अनेक कृतियों में गंभीरतया विचार किया है । वे देश, धर्म, साहित्य नाम की रचना में गङ्गा को प्राण नाड़ी मानते हैं । इसीलिए उनका एक प्रसिद्ध लेख है – गङ्गा : ''देश की प्राण नाड़ी'' इस निबंध में सनातन तत्त्व–चिन्तक प्रो. मिश्र गङ्गा के स्वरूप पर विधिवत् विचार

करते हुए कवि रहीम तथा विद्वान् द्विजेन्द्रलाल राय के चिन्तन का उपयोग करते हुए वर्ण्य विषय की उपस्थापना करते हैं और कहते हैं कि –

गङ्गा तो विराट् नारायण भाव की सेवा और तप का पिघलन है, जिसे ब्रह्मा का ज्ञान कमंडल नहीं संभाल पाता, सेवा और तप से पिघला हुआ पदार्थ असंख्य–असंख्य चर–अचर जीवों को तारने और सन्तप्त करने के लिए उमड़ पड़ता है । हिमालय की जटों की लट सरीखी पर्वत श्रेणियाँ इस पिघली धारा को रोक नहीं पाती, हिमालय की जमी हुई शीतलता और आकाश–चुम्बी गरिमा नहीं रोक पाती, शिखरों की ऊंचाई का आकर्षण, देवदारु के वनों से गुजरती हुई सुरभित बयार नहीं रोक पाती, वह देवताओं के बीच में जनमी – पली देवताओं के रोके नहीं रुकती, स्वयं एक महान् देश की महादेवता बन जाती है क्योंकि वह इस देश का सामान्य धर्म बन जाती है, जियो दूसरों के लिए जियो, दूसरों को लेकर जियो ।

रहीम यह कह सकते हैं –

अच्युत चरण तरंगिनी हरसिर मालतिमाल ।
हरि न बनायो सुरसरि कीजै इन्दव भाल ।।

तुम विष्णु के चरणों की द्रव हो, उन्हीं चरणों से निकली हो, तुम शिव के सिर में गुंथी हुई मालती की माला हो, तुमहारे किनारे शरीर छूटेगा तो एक न एक तो होना ही है, शिवरूप हों या विष्णु रूप । परन्तु माँ ! तुम शिवरूप नहीं । तुम सिर पर विराजना ।[३२] ऐसे मन वाला आदमी गङ्गा में पैर रखने के पहले, जल माथे लगाता है, बड़े ही विनम्र समर्पित भाव से जल में प्रवेश करता है, केलि के लिए नहीं, निमज्जन के लिए अपने शरीर के मल छुड़ाने के लिए नहीं, स्नान के सुख के लिए नहीं मन की पवित्रता के लिए । ऐसी पवित्रता के लिए, जिसमें सबका हित अपना हित होता है,

“सुरसरि सम सब कर हित होई ।”

ऐसी पवित्रता से एकाकार होना ही गङ्गा–स्नान का लक्ष्य है । गङ्गा के पास आदमी आता है, अपनी आपूर्ति पाने के लिए, गङ्गा सब अधूरापन अपने बहाव से पूरा कर देती है, गङ्गा एक अनविच्छिन्न आहुति का आमंत्रण है, यह जीवन लोक के लिए अर्पित होने के लिए इसी में अधूरे जीवन की पूर्ति है, यही सबसे बड़ा साकल्य है ।[३३]

ऐसा मन जीवन के अंतिम क्षण में द्विजेन्द्रलाल राय की तरह सोचता है कि उस क्षण में माँ तुम्हारे जल का कलरव कानों को भरे, तुम्हारे जल के छीटें रोमाँच बन जायें, तुम्हारा जल आँखों का जुड़ाव बन जाय, तुम्हारे स्पर्श से पुलकित हवा मेरे प्राणों की प्राण बन जाय, बस वह क्षण जीवन का साकल्य बन जायेगा । ऐसा मन दुर्भाग्य से मेरा भी है और असंख्य ऐसे लोगों का है, जिनके पास तथाकथित समझदारी का भाव नहीं है ।[३४]

समाज–दर्शन :

इसीप्रकार पं. विद्यानिवास जी अपने 'शेफाली झर रही है' नामक निबंध संग्रह में गङ्गा पर एक अत्यंत व्यवस्थित निबंध लिखते हैं । जिसका शीर्षक है ''शिव सिर मालति माल'' इस निबंध के अंतर्गत आप गङ्गा शब्द के अर्थ से लेकर उसके संपूर्ण भूगोल तथा अलग–अलग तीर्थों में अलग–अलग स्वरूपों का विधिवत् चित्रांकन करते हैं, जिसे हम भारतीय सनातन धर्म और परंपरा की गङ्गा संबंधी व्याख्या कह सकते हैं । कहना न होगा कि श्री नीलकण्ठ दीक्षित द्वारा संरचित गङ्गावतरणम् महाकाव्य इसीप्रकार के भारतीय–चिन्तन के प्रेरणावश सुमूर्त हआ होगा क्योंकि यह चिन्तन वैदिक एवं पौराणिक मनीषा का पवित्र सार है । इसीलिए मैं इस प्रसंग में पं. जी के इस निबंध को अक्षरशः प्रस्तुत करना उचित समझती हूँ । यथा –

गङ्गा शब्द में ही एक अद्भुत सौंदर्य है । बच्चा पानी को देखते ही गं गं कहते लगता है, तर्पण या श्राद्ध करते हैं, तो माँ के आगे गङ्गा–रूपा शब्द जरुर लगाते हैं । गङ्गा के लिए मन वैसे ही हुमकता है जैसे शाम को गाय के लिए उसके बछड़े का । गङ्गा कोटि–कोटि बछड़ो के लिए पिन्हाती है और उन्हें अमृत–स्तन्य पान कराती है । ऐसी वत्सल गङ्गा को इसी से हम प्रत्यक्ष देवता कहते हैं, गङ्गा की मूर्ति की आवश्यकता नहीं, उसकी लहरें ही उसकी साकार बाँहें हैं, जिनमें छिपाने के लिए बुलाती है, त्रयताप से घबराए बच्चे, यहीं आकर ताप निवार लो । यहीं एक–एक बूंद में गोविन्द हैं, एक–एक डुबकी में शिव हैं और एक–एक कलरव में ब्रह्मा हैं, एक–एक मोड़ में प्रणव का आकार है ।

इस गङ्गा की अनेक छबियाँ आँखों के आगे नाच रही हैं । हिमालय की जटिल पर्वत श्रृंखलाओं में अनेक गङ्गाएँ हैं, हिमालय की ऊँचाई को अपनी गहराई में और हिमालय की विशालता की अपनी तनुता में खींचती हुई, शिलाखण्डों को दुलराती हुई, उन्हें चिकनाती हुई उनको बहलाकर निकल जाती हुई, इठलाती हुई, मुस्कुराती हुई और कभी–कभी जंगलों की चुप्पी तोड़ने के लिए अट्टहास करती हुई उजले फेनों के और हरहर ध्वनि के ब्याज से । अलकनन्दा, मन्दाकिनी और भागीरथी ये गङ्गा की तीन प्रमुख वेणियाँ है । अलकनन्दा की कोर पकड़ के बदरीनाथ पहुँचते हैं और भागीरथी के किनारे पकड़े उतर काशी और गङ्गोत्री पहुँचते हैं । मन्दाकिनी, अलकनन्दा में पहले मिलती है; इसके बाद अलकनन्दा भागीरथी में । तब पूरी त्रिपथगा गङ्गा बन जाती है । हिमालय की गोद में जाने कितने प्रयाग बनाती है गङ्गा । प्रत्येक प्रयाग का परिसर बस भाँति–भाँति के रत्नों से जटित एक स्वप्नजाल–सा लगता है । उस क्षेत्र में यात्रा ऊपर की ओर करते समय लगता है, अपना अस्तित्व अपने से आगे चला जा रहा हो, पीछे घूमकर देखने को न मन होता है, न अवकाश रहता है, बस ऊपर की ओर चलो, कहाँ से यह धार आ रही है ।[३५]

खोजो उस कमण्डलु को, जिसमें से जल निकला है, जोखो उस चरणनखचन्द्रिका को जिसको स्पर्श किया है किसी तपस्वी की उंगलियों ने और वह चन्द्रिका पिघल गई है, खोजो उस बौड़म को, जिसने ये जटाएँ खोल दी हैं। या शायद उस बौड़म ने जटाएँ नहीं खोलीं, जैसा कि एक लोक कथानक है। शिव पार्वती के कठोर नियंत्रण से भाग कर गङ्गा के किनारे बाटी लगाने लगे और गङ्गा को फुसलाने लगे कि मेरे साथ आओ, रहो, मुझसे यह भोजन नहीं बनता, दाढ़ी जटाजूट आग फूँकते–फूकते फूँक उठते हैं। गङ्गा ने कहा – तुम गौरी–पति हो। तुम्हें क्यों दूसरी चाहिए। शिव कहते हैं गौरी तो मर गई। गङ्गा शिव के साथ हो लेती है। नारद पार्वती के आगे आदत से मजबूर शिव का यह छल बतला देते हैं, तब पार्वती दोनों की खबर लेने आती है। शिव गङ्गा को जटा में छिपा लेते हैं। पार्वती तो पार्वती, एक–एक जटा की गाँठें खोलती जाती है और गङ्गा खिसियाती हुई निकलती हैं, पार्वती से कहती हैं कि इस बौड़म दिखने वाले ने दोनों को छला, अब मैं तुम्हारे बच्चों को खिलाऊँगी, मुझे घर से बाहर न निकालो। तो उस पार्वती को ढूँढ़ें, जिसने ये लटें खोली और पार्वती के बच्चों को ढूँढ़ें, जिन्हें गङ्गा जाने कब–से खिला रही हैं, कालिदास ने देवदारु को पार्वती का तनय कहा, है भी वह पार्वतीनन्दन कहलाने लायक। एक गङ्गा तो कुमाऊँ में विशाल देवदार की जड़ों से ही निकल रही हैं, कहलाती है जटा गङ्गा। सचमुच हिमालय का यह हिस्सा एक अलौकिक प्यार का, एक उन्मादी प्यार का प्रसार है, जिसमें मान मनौवल, उद्दाम मिलन, उत्कट विरह, सभी कुछ है, साथ ही माँ और धरती का दुलार भी। पर्वतीय प्रकृति और गङ्गा की धारा परस्पर सहेलियाँ भी हैं, सोते भी हैं, सगी बहनें भी हैं, पर्वतीय उपत्यका में वैभव और प्रभुत्व कुछ ज्यादा है, इसी से वहाँ से गङ्गा बिचारी दुबकी–सी निकलती है, पर मैदान आते ही हर की डेवढ़ी, पार्वती के विशाल शतखण्डी महल का पौर लाँघते ही तो गङ्गा स्वामिनी बन जाती है, धार चौड़ी हो जाती है, चाल कुछ गर्व में मन्द पड़ जाती है, पर

शिव को विफल करने के लिए राह टेढ़ी ही रहती है ।[३६] शिव कैलास में टिक नहीं पाते, काशी में गङ्गा अपने ओंकार पाश में उतर जाने का भ्रम देकर बाँध लेती है और विश्वनाथ का साथ देने के लिए आचार पार्वती अन्नपूर्णा बनकर गङ्गा के राज्य में बस जाती हैं ।

प्रयाग में गङ्गा की एक दूसरी छवि है, राम की भक्ति की तरह उमड़ती आती है, कर्म को अपनी बाँहों में समेट करके तीव्र गति दे देती है, यमुना गहन कर्म की गति है, बड़ी गहरी, पर बड़ी मन्द लगती है, चलती ही नहीं, गङ्गा से भेंटकर यमुना भी गतिशील हो जाती है । कुछ दूर तक यमुना की श्यामलता अलग दिखाना चाहती है, पर भक्ति रूप गङ्गा का स्वरूप ऐसा विवश करने वाला होता है कि कोई उसमें पड़ जाय तो अपनी निजता रख नहीं पाता । जाति–पाँति, धन–धरम–बड़ाई, सब छूट जाते हैं ।[३७]

गङ्गा आगे चलती है । विन्ध्याचल से मिलती है । विनयी विन्ध्याचल अपना लगभग तीन चौथाई जल–स्रोत गङ्गा के हवाले कर देता है । अकेली एक नर्मदा है जो विन्ध्याचल का कुछ पानी जबर्दस्ती पश्चिम जलधि की ओर ले जा पाती हैं, नहीं तो विन्ध्याचल अपने मन से गङ्गा को सब कुछ निवेदित कर देता है, अपनी देवी के स्थान, अपने सहज वनवासी, उनका सहज जीवन, झाड़–झंखाड़, रूखे पहाड़, सब गङ्गा को सौंप देता है, और इसे पाकर ही गङ्गा मुक्तिदायिनी होती है । वे विन्ध्याचल की कन्या तमसा से मिलकर ही सीता की व्यथा की साक्षी बनती है और राम की कुलदेवी होती हुई भी सीता की करुणा को अपने आँचल में लेकर कुलवधू मात्र की अधिदेवता हो जाती है । सन्तान कामना के लिए कुलवधू गङ्गा से ही एक लहर मांगती है । विन्ध्याचल के सोन का ही पानी पाकर गङ्गा साम्राज्ञी बनती है, पटना के पास गंगा का पाट विशाल हो जाता है । गङ्गा में बड़े–बड़े जहाज चलने लगते हैं, गङ्गा में बाजों पर संगीत–नृत्य का उत्सव मनने लगता है ।[३८]

गङ्गा काशी में पहुँचती है तो जैसे टिक जाती है, घाट, घाटों के पास के मंदिरों की घंटा–ध्वनि, घाटों पर तैरायी जाती दीप पंक्तियाँ, सब गङ्गा को रोक लेते हैं, ठहर जाओ, बड़ी दौड़ लगाई, काशी में आई हो, बड़ी ज्ञान–गुरु नगरी है । तुम भी कुछ सीख लो, केवल शास्त्र के पंडित से नहीं, शास्त्रों की उपेक्षा करनेवाले औघड़ से भी सीख लो, केवल मधुसूदन सरस्वती और तुलसीदास से न सीखो, कबीर और कीनाराम बाबा से भी सीखो, उस चंडाल से भी सीखो, जो शंकराचार्य की राह रोककर खड़ा हो गया और चुनौती दने लगा, क्यों मुझसे कतराते हो, कहाँ गया तुम्हारा 'तत्त्वमसि' । गङ्गा को काशी के पूरे फैलाव के साथ राजघाट पुल से ही देखा जा सकता है, अन्यत्र तो गङ्गा बस आँख मिचौनी खेलती रहती है । काशी का कौतुक देखने आई गङ्गा काशी में कौतुक बन गई है ।[३६]

काशी के आगे गङ्गा सरयू से मिलकर फिर सोन और नारायणी से मिलकर एकदम बदल जाती है । वे भारत रूपी चक्र की धुरी बन जाती है । गङ्गा ही भारत है । भारत का अर्थ, भारत का काम, भारत का धर्म और भारत का मोक्ष चारों पुरुषार्थ गङ्गा है । यही नहीं, चारों पुरुषार्थों को अर्थ देने वाला पंचम भक्ति रूप पुरुषार्थ भी गङ्गा है । सबको समेटो और चल पड़ो अनन्त की ओर, ऐसा बड़ा सन्तरण और ऐसा बड़ा संरक्षण और कौन है ।[४०]

मुझे जब हवाई जहाज से गङ्गा के मैदान में यात्रा करने का अवसर मिलता है तो मैं उस तरफ की खिड़की के पास बैठना चाहता हूँ जहाँ से दूर तक गङ्गा की धार दिखती रहे, उसके मोड़, उसमें मिलने वाली छोटी–बड़ी धाराएँ, उसके किनारे के खेत, पहाड़ दिखते रहें, गङ्गा को देखना सर्वेश्वर की, सर्वकामेश्वर की प्राणनाड़ी को स्पंदित होते देखना है, धूप में बस लगता है कि बिजली की कौंध हो, बादलों की छाया में लगता है दर्द की रेखा हो और चाँदनी रात में जैसे शिव की बाँकी अमृत कला हो या फिर भारत माता के

गले में पड़ी मोतियों की लड़ी हो । गङ्गा हमारे जीवन की धारा है, इसी से मरकर भी, राख होकर भी हम इसमें प्रवाहित होना चाहते हैं कि गङ्गा में विलयन ही जीवन की चरम सार्थकता है, गङ्गा में विलयन ही परार्थ है । गङ्गा नहीं मिलती तो किसी भी नदी को गङ्गा कह लेते हैं, दूर कम्बोज और चम्पा के लोगों ने अपने देश की विशाल नदी को मे–फाङ अर्थात् 'माँ गङ्गा' नाम दिया है । नदी भी नहीं मिलेगी तो किसी जल में स्नान करते समय जय गंगे कहकर गङ्गा का स्मरण कर लेते हैं, क्योंकि यह स्मरण ही जीने का प्रयोजन देता है; पर दुःख–निवारण के लिए जियो, तरण–तारण बनने के लिए जियो और न रुकने के लिए सतत चलने के लिए जियो, यही लालसा पालते हुए जियो कि अन्तिम क्षण में गङ्गा ही देह को छुए और गङ्गा ही साँसों में भरे । यह जीवन पूरी तरह गङ्गा को वहन करके शिव हो जाय । रहीम के शब्दों में बस जीवन एक साध बन जाय ।[४१]

अच्युत चरन तरंगिनी सिव सिर मालति माल ।
हरि न बनायो सुरसरी कीजै इन्दव भाल ।।''

गङ्गा का संबंध कुंभ, जन, जल और मानवीय आस्था के साथ जुड़ा है यही कारण है कि 'शेफाली झर रही है' नामक संग्रह में पं. जी ने एक अलग निबंध ही लिखा है जिसका नाम है ''कुंभ : जन, जल और आस्था'' इस निबंध के अंतर्गत विद्वान् निबंधकार ने कुंभ के विशिष्ट अर्थों पर विचार करते हुए उसका 'गङ्गा के संदर्भ' विषय पर विशद विवेचन किया है । चूंकि; उज्जैन, प्रयाग, नासिक अथवा हरिद्वार चारों जगहों के कुंभ के प्रति भारतीय जनमानस में अपार श्रद्धा है इसीलिए कुंभ हो या अर्धकुंभ सब में देश की करोड़ों–करोड़ जनता पहुँचकर जल स्नान करती है और कुंभ में सम्मिलित होकर अपने जीवन को धन्य बनाती है । विद्वद् धुरीण श्री नीलकण्ठ दीक्षित भारतीय परंपरा के पोषक हैं । इसीलिए वे कहीं न कहीं भारतीय धर्म–शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट इस कुंभ

परंपरा से अवश्य जुड़ें हैं तथा गङ्गा की आराधना में उन्होंने कुंभ से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की होगी । अतः मैं यहाँ (इस प्रसंग में) पं. विद्यानिवास मिश्र के कुंभ संबंधी विचारों को प्रस्तुत करना उचित समझती हूँ । यथा –

कुंभ का हमारी संस्कृति में कई दृष्टियों से महत्त्व है । पूर्णता प्राप्त करना हमारा लक्ष्य है, पूर्णता का अर्थ है समग्र जीवन के साथ एकता, अंग को पूरे अंगी की प्रतिस्मृति, एक टुकड़े के रूप में होते हुए अपने समूचे रूप का ध्यान करके अपने छुटपन से मुक्ति । इस पूर्णता की अभिव्यक्ति है – पूर्ण कुंभ । अथर्ववेद में एक कालसूक्त है, जिसमें काल की महिमा गाई गई है, उसी के अन्दर एक मंत्र है, जहाँ शायद पूर्ण कुंभ शब्द का प्रयोग मिलता है,[४२] वह मंत्र इसप्रकार है –

पूर्णः कुंभोधिकाल आहितस्तं वै पश्यामो बहुधा नु सन्तः ।
ता इमा विश्वा भुवनानि प्रत्यङ् कालं तमाहुः परमेव्योमन् ।।

इसका मोटा अर्थ है, पूर्ण कुंभ काल में रखा हुआ है, हम उसे देखते हैं तो जितने भी अलग–अलग गोचर भाव हैं, उन सबमें उसी की अभिव्यक्ति पाते हैं, जो काल परम व्योम में है । अनन्त और अन्त वाला काल दो नहीं एक हैं; पूर्ण कुंभ दोनों को भरने वाला है । पुराणों में अमृत–मन्थन की कथा आती है, उसका भी अभिप्राय यही है कि अनन्त को समस्त सृष्टि के अलग–अलग लोग, अलग–अलग तत्त्व मथते हैं तो अमृत कलश उद्‌भूत होता है, अमृत की चाह देवता असुर सबको है, इस अमृत कलश को जगह–जगह देवगुरु बृहस्पति द्वारा अलग–अलग काल–बिन्दुओं पर रखा गया । वे जगहें प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक हैं, जहाँ उन्हीं काल बिन्दुओं पर कुंभ पर्व बारह–बारह वर्षों के अंतराल पर आता है । बारह वर्ष का फेरा बृहस्पति के राशि मंडल में घूम आने का फेरा है । बृहस्पति वाक् के देवता हैं । मंत्र के अर्थ के ध्यान के देवता हैं, वे देवताओं के प्रतिष्ठापक हैं । यह अमृत वस्तुतः कोई द्रव पदार्थ

नहीं है, यह मृत न होने का, जीवन की आकांक्षा से पूर्ण होने का भाव है । देवता अमर हैं । उसका अर्थ इतना ही है कि उनमें जीवन की अक्षय भावना है । चारों महाकुंभ उस अमृत भाव को प्राप्त करने के पर्व हैं ।[४३]

ये कुंभ पर्व इसका स्मरण दिलाते हैं कि तुम्हारा अधूरापन जब तक रहता है, तुम्हारी विच्छिन्नता जब तक रहती है, तुम्हारा अपने से भिन्न के प्रति अलगाव जब तक रहता है, तब तक तुम मृत्यु के घेरे में हो, मृत्यु के भय से ग्रस्त हो । जब तुम सोच लेते हो कि यह सब कुछ मैं हूँ, मुझमें ही सब कुछ हैं, मैं पूर्ण कुंभ हूँ जिसमें काल है और काल में सब है, तब मत्यु घेरा नहीं रह जाती, वह पड़ाव बन जाती है, वह वैदिक ऋषियों के शब्दों में यज्ञ–समाप्ति का स्नान बन जाती है । कुंभ स्नान में यही स्मरण कहीं न कहीं अन्तर्निहित है कि हम अमुक के रूप में विलीन हो रहे हैं, हम जल के भीतर से संपूर्ण बनकर निकल रहे हैं, जीवन के भाव से भरकर अमृत होकर, अमृत सन्तान होकर । हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अमृत विष का सगा भाई है । हम अहंकार मन्थन करते हैं तो पहले विष ही निकलता है, वह कम लुभावना नहीं होता । जीने की एक लालसा ऐसी भी होती है, जब हम अपने लिए ही जीवन का समस्त उपभोग चाहते हैं, वह लालसा विष है । जिस जीवन की लालसा अमृत है, उसमें जीना अपने लिए, भोग अपने लिए नहीं, सबके लिए है । दूसरे से बचे, तो अपने लिए है । परम अमृत है उच्छिष्ट भाव, सबका जूठन बन जाना, सृष्टि मात्र को निवेदित होकर बच जाना, वही भाव सार्थक अस्तित्व है । पूर्ण से पूर्ण को उलीच देने पर जो बचता है वह पूर्णतर है ।[४४]

कुंभ शब्द का एक अर्थ है रोकना, प्राणों के नियमन को कुंभक कहते हैं, प्राणायम के तीन हिस्से होते हैं, पूरक (सांस रोकना), रेचक (साँस छोड़ना) और बीच में है कुंभक । यह शरीर भी एक कुंभ है, घर है, इसमें प्राणों का प्रवाह है पर जब हम प्राणों को रोककर पूरे शरीर को प्राणमय बनाते हैं तो यह घर

पूर्ण हो जाता है, पर पूर्ण बने रहने में क्या रखा है, खाली हो होकर पूर्ण होने के लिए आकुल होना, यही वास्तविक पूर्णता है । कुंभ पर्व साँसों का मेला है, कितनी साँसें भरती हैं, कितनी साँसें खाली होती हैं, कितना उच्छ्वास होता है । आज गङ्गा स्नान हुआ, कितना निःश्वास होता है, जीवन हमने कितना खोया, किन व्यर्थ प्रपंचों में हमने अपनी साँस गँवाई, असंख्य–असंख्य लोगों के भीतर रहते हुए, विशाल महासागर की लहर के रूप में अपने को अनुभव करते हुए कितनी विशालता का बोध होता है और यहीं कभी अपने साथ के लोगों से बिछुड़ने पर कितनी असहायता, कितनी विपन्नता का बोध होता है । यह पूरक, यह रेचक, यह कुंभक सभी महाकुंभ का ही एक रूप है ।[४५]

कुंभ को इस रूप में लेना और अपने शरीर के भीतर कुंभ को देखना एक सहज भाव उमड़ाता है जो ब्रह्मांड में है, वही पिण्ड में है, जो इस पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है । इस भाव के उमड़ने से देह के प्रति एक दूसरी तरह की भावना हो जाती है, यह साधनधाम है, पर कंचन–काया है, हम खामखाह इसे अपदार्थ माने हुए हैं । इस देह को साधने की जरूरत है, इस देह को इन्द्रियों के साथ, मन के साथ, बुद्धि के साथ और आत्मा के साथ जोड़ने की जरूरत है । इस देह को कमल के रूप में देखने की जरूरत है । ऐसे कमल के रूप में, जिसका नाल जितना जल के ऊपर है उतना ही जल के भीतर है, जिसकी पुरइन रूपी चिति पर पानी की बूँदें आती हैं, ढुलक जाती हैं, टिकती नहीं, जिसके कोष में से स्रष्टा निकलते हैं । प्रत्येक व्यक्ति केवल घड़ा ही नहीं है, वह घड़े के साथ–साथ उस पर रखा गया, पंचपल्लव है, पूर्ण पात्र है, पूर्ण पात्र पर रखा गया दीप है, बाहर गोंठी गई रचना है, उस रचना में खोंसा गया जौ है और जौ का अंकुर रूपांतर है । दूसरे शब्दों में वह एक छोटा विश्व है, जो जैसा है, वैसा ही रहना नहीं चाहता, वह उगना चाहता है, वह आलोकित करना चाहता है, यह भाव भरने की जरूरत है ।[४६]

मंत्राभिषिक्त कुंभ–जल से जब व्यक्ति सींचा जाता है, तो अभिवृद्धि होती है । यही आस्था का, जल के रूप में निष्पन्द है । कुंभ पर्व मनुष्य को आस्था में अभिषिक्त करने के लिए तो है ही, वह मनुष्य को अभिषेक का द्रव बनाने के लिए भी है । द्रव के संपर्क से द्रव नहीं बनता । तप के सम्पर्क से द्रव बनता है, इसीलिए उस तप की भावना का स्मरण ऐसे पर्व के अवसर पर आवश्यक है, जिसने गङ्गा को द्रवित किया, जिसने गङ्गा को सर्वजन कल्याण के लिए उन्मोचित किया, जिसने गङ्गा के किनारे तप करके इसकी धारा को संस्कृति की मुख्य धारा बनाया ।[४७]

इसीप्रकार भारतेन्दुबाबू हरिश्चन्द्र भी ''नव उज्ज्वल जल धार हार हीरक–सी सोहति'' आदि पंक्तियों द्वारा गङ्गा की महत्ता प्रतिपादित करते हैं ।

संदर्भ–सूची :

१	ऋग्वेद १०.७५.५
२	ऋग्वेद १.३५.८ । अथर्व. ४.६.२, ६.६१.३
३	डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, पृ. २५०
४	तैत्तिरीयारण्यक २/२०
५	मैत्रायणी आरण्यक १/४
६	जर्नल ओफ बिहार रिसर्च सोसायटी, भाग–१, पृ. १५०
७	अतिक्रुष्टाय मागधम् (यजु. सं. ३०/५)
८	सैषाप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा (शत. ब्रा. १/४/१/१७)
६	पुराणों में वैदिक सन्दर्भ भाग–१, पृ. ३०
१०	ऋग्वेद संहिता १/११६/१६
११	वाल्मीकि रामायणम्, बालकाण्डम् ४३/२६–२६
१२	महाभारत कोश – डॉ. रामकुमार राय (द्वितीय भाग) पृ. २३०–२३१
१३	महाभारत कोश – डॉ. रामकुमार राय (द्वितीय भाग) पृ. २३१
१४	महाभारत कोश – डॉ. रामकुमार राय (द्वितीय भाग) पृ. २३१
१५	महाभारत कोश – डॉ. रामकुमार राय (द्वितीय भाग) पृ. २३१–२३२
१६	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
१७	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
१८	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
१६	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
२०	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
२१	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
२२	महाभारतकोश, डॉ. रामकुमार राय, (द्वितीय भाग), पृ. २३२
२३	काशिका ६/३/१०१
२४	वामन पुराण ३४/३/४–५

२५	पर्यावरण और संस्कृति का संकट, पृ. ६७–६८
२६	हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृ. ६८
२७	हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृ. ६८
२८	हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृ. ६९
२९	हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृ. ६९
३०	हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृ. ७०
३१	हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज, पृ. ७३
३२	देश धर्म और साहित्य, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ८१
३३	देश धर्म और साहित्य, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ८२
३४	देश धर्म और साहित्य, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ८२
३५	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १६
३६	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १६
३७	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १७
३८	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १८
३९	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १८
४०	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १८
४१	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. १९
४२	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ४६
४३	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ४७
४४	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ४७
४५	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ४७
४६	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ४८
४७	शेफाली झर रही है – डॉ. विद्यानिवास मिश्र, पृ. ४८

❀❀❀

द्वितीय अध्याय
महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका उदय

२.१ भूमिका

❀ रामायण और महाभारत का योगदन

२.१.१ महाकाव्य एवं उनका वर्गीकरण

२.१.२ कालिदास के पूर्ववर्ती लुप्त महाकाव्य

२.१.३ प्रशस्तिपरक काव्यों की काव्य-प्रवृत्तियाँ

२.१.४ महाकाव्यों की परम्परा का उदय

२.१.५ उत्कर्षकाल के अप्रसिद्ध महाकाव्य

२.१.६ श्रीहर्षोत्तरवर्ती महाकाव्य

२.२ महाकाव्य के लक्षण और उनका विवेचन

द्वितीय अध्याय
महाकाव्यों की उत्पत्ति एवं उनका उदय

२.१ भूमिका :

लौकिक संस्कृत वाङ्मय के अन्तर्गत 'रामायण' और 'महाभारत' को हम एक युगविशेष के प्रतिनिधि महाकाव्य कह सकते हैं । इन दोनों ग्रन्थों में हम दूसरी अनेक बातों के साथ-साथ अद्भुत वीरभावना का वर्णन विशेष रूप से पाते हैं । इसीलिए यदि हम यह कहें कि ये दोनों ग्रन्थ भारत के वृहद् इतिहास के प्राचीनतम किसी वीर-युग के प्रतिनिधि महाकाव्य हैं, तो उनकी वास्तविकताओं को समझने में असुविधा न होगी ।

वाल्मीकि, व्यास, होमर और वर्जिल ने अपने इन ग्रन्थों के लिए प्राचीन-कला से मौखिकरूप में चले आते अनेक आख्यानों और उपाख्यानों का दाय समेटकर उसको समृद्ध एवं सिलसिलेवार संबद्ध किया । इन ग्रन्थों की प्रायः समग्र और विशेषरूप से उनके प्रधान विषयवस्तु पर विचार, उनके निर्माण से पहले किया है । वे पूर्वागत कथाएँ 'रामायण' अदि ग्रंथो में अपनी सिद्धावस्था को प्राप्त हो गई हैं ।

कुछ विद्वानों के अनुसार बहुत पुराने समय में सामूहिक नृत्य-गीतों द्वारा मनुष्य अपने जिन धार्मिक उत्सवों का आयोजन करता था, अपनी सुदीर्घ परंपरा में वे गीत-नृत्य एक आख्यान के रूप में स्मरण किए जाने लगे । ये आख्यान-गीत ही ऋग्वेद के संवाद सूक्त हैं । ऐसे संवाद सूक्त ऋग्वेद में अनेक हैं, जैसे : यम-यमी (१०/११), पुरुरवा-उर्वशी (१०/१५), अगस्त्य-लोपामुद्रा (१/१७६), इन्द्र-अदिति (४/१८), इन्द्र-इन्द्राणी (१०/८६), सरमा-पणी (१०/५१/३) और इन्द्र-मरूत् (१/१६५/१७०) आदि । वैदिक मनीषी यास्क ने इन संवाद सूक्तों को आख्यान संज्ञा दी है ।

इन संवादात्मक आख्यानों को ही गाथा नाराशंसी भी कहा जाता था, किन्तु अपनी ख्याति के कारण थोड़े ही समय बाद उन्हें इतिहास और पुराण भी कहा जाने लगा । ये सारी मान्यताएँ वैदिक युग की हैं । क्योंकि ये संवाद–सूक्त गद्य–पद्यात्मक थे, इसलिए ओल्डेनबर्ग ने उनके आधार पर यह अनुमान लगाया कि भारतीय महाकाव्यों का प्राचीनतम स्वरूप गद्य–पद्यात्मक था । मैक्समूलर, लेवी और हर्टेल आदि ने उक्त संवाद–सूक्तों को नाटक कहा है । विण्टरनित्स ने इन्हें प्राचीनतम गाथाएँ कहा है । उनके कथनानुसार उन्हीं का दाय ग्रहण कर बाद में काव्य, महाकाव्य और नाटकों का विकास हुआ ।

महाभारत ने आख्यान, उपाख्यान, कथा, आख्यायिका, पुराण और इतिहास इन सभी शब्दों को प्रायः समान अर्थ में ही प्राचीन कहानी के रूप में प्रयुक्त किया है ।

'रामायण' और 'महाभारत' में हम जिन विभिन्न आख्यानों – उपाख्यानों का वर्णन हम पाते हैं, वे ही संस्कृत के महाकव्यों के उद्‌भवरूप हैं और उन्हीं का संकलन, संशोधन और परिवर्द्धन करके 'रामायण' तथा 'महाभारत' का कलेवर निर्मित होकर उनसे महाकाव्यों की एक प्रौढ–परंपरा का आविर्भाव हुआ ।

'रामायण' और 'महाभारत' की शैलियों और उनके द्वारा अनुप्राणित काव्य–परंपरा को देखते हुए सहज ही कहा जा सकता है कि 'महाभारत' की अपेक्षा 'रामायण' में काव्योत्कर्षकारक गुण तथा अन्विति अधिक है । इसलिए महाभारत प्रधानतया इतिहास और गौणतया महाकाव्या है; किन्तु इसके विपरीत 'रामायण' प्रधानतया महाकाव्य और गौणतया इतिहास है । किन्तु 'रामायण' का विकास अलंकृत शैली के काव्यों के रूप में हुआ । इसलिए 'महाभारत' को संस्कृत के काव्यों, महाकाव्यों और दूसरे उपजीव्य विषयों और ग्रन्थों का मूल उत्स भी मान सकते है; तथा 'रामायण' को हम निश्चित रूप से महाकाव्यों की

श्रेणी में भी रख सकते हैं और उसको अलंकृत शैली के उत्तरवर्ती काव्यों का जनक भी कह सकते हैं ।

❀ रामायण और महाभारत का योगदन :

'रामायण' और 'महाभारत' का स्वतन्त्र अस्तित्व और उनकी पारस्परिक स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाने के बाद संस्कृत – साहित्य की सर्वांगीण समृद्धि के लिए उनके द्वारा कितना हित हुआ, इस बात को जान लेने के बाद उनकी सार्वभौम सत्ता का सहज में ही पता लग जाता है । संस्कृत के उत्तरवर्ती काव्य–साहित्य का लगभग अधिकांश भाग इन्हीं दो ग्रन्थों के दाय को लेकर पूरा किया गया ।

संस्कृत के काव्यकारों ने 'महाभारत' से तो अपनी कृतियों के लिए कथावस्तु चुनी और उसको 'रामायण' की शैली में बाँधकर दोनों ग्रन्थों की स्थिति को स्पष्ट कर दिया । 'रामायण' से रूप–शिल्प और 'महाभारत' से विषयवस्तु को लेकर महाकाव्यों की परंपरा आगे बढ़ी । अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों में शिल्प–संबंधी तत्त्व, अलंकार–योजना, रूपकों, उपमाओं का आधिक्य और प्रकृति–चित्रण सभी का आधार 'रामायण' ही है ।

'महाभारत' के पुराणों के अधिक निकट होने के कारण संस्कृत के काव्यकारों ने कुछ कथानक दूसरे पुराणों से भी लिया; किन्तु उस कथानक को काव्यरूप से सुसज्जित करने के लिए 'रामायण' की शैली का ही आश्रय लिया । कुछ ग्रन्थकारों ने 'महाभारत' की शैली पर काव्य लिखने की चेष्टा की भी; किन्तु वे विशुद्ध महाकाव्यों की श्रेणी में नहीं आ सके । ऐसे काव्यों में ''राजतरंगिणी'' और 'कथासरित्सागर' को रखा जा सकता है, जिन्होंने स्वयं को एक प्रबंध के रूप में विख्यात करना भी चाहा; किन्तु जिनकी स्थिति आज दूसरे ही रूप में विश्रुत है ।

२.१.१ महाकाव्य एवं उनका वर्गीकरण :

संस्कृत–साहित्य में श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' तक, अर्थात् बारहवीं शताब्दी तक कितनी ही महाकाव्य–कृतियों का निर्माण हुआ । ये सभी महाकाव्य कृतियाँ एक जैसी शैली के नहीं हैं । मेक्डोनेल ने 'महाभारत' का तो लोक महाकाव्य (पापुलर एपिक), 'रामायण' को अनुकृत महाकाव्य (आर्टिफिशियल एपिक) और बाद के महाकाव्यों को अलंकृत महाकाव्य कहा है ।

डॉ. दासगुप्ता ने पाश्चात्य विद्वानों की इस धारणा को कि – 'रामायण', 'महाभारत' तो 'एपिक' और बाद के महाकाव्य 'कोर्ट एपिक' तथा इस धारणा को कि संस्कृत काव्य–साहित्य प्रारम्भ से ही आडम्बरपूर्ण और रूप–शिल्प से रहित था, खंडित करके यह स्पष्ट किया है कि बाद के महाकाव्यों में यह बात ठीक–ठीक नहीं उतरती है । पाश्चात्यों ने आर्नेट (अनुकृत) कहकर जिन महाकाव्यों को कलात्मक कहा है, वे वास्तविक रूप से 'एपिक ऑफ आर्ट' या 'आर्टिफिशियल' (अलंकृत) महाकाव्य हैं ।

महाकाव्यों का यह श्रेणी–विभाजन पूर्णतया और अंशतया दोनों प्रकार से है, क्योंकि एक ही महाकाव्य ग्रन्थ में प्रधानतया एक शैली और अंशतया अनेक श्रेणियाँ मिली जुली हैं । 'रामायण' और 'महाभारत' जैसे ग्रन्थ एवं कालिदास, अश्वघोष, भारवि तथा माघ जैसे कवियों की रचनाएँ ऐतिहासिक, पौराणिक, अलंकृत, शास्त्रीय, रीतिबद्ध और रोमांचक आदि अनेक दृष्टियों का एक साथ परिचय देती हैं । इसलिए प्रधानतया उनकी एक श्रेणी होने पर भी गौणतया उनको दूसरी श्रेणियों में भी परिगणित किया गया है ।

संस्कृत की सुदीर्घ परंपरा की भूमिका का और उसकी मूलभूत प्रवृत्तियों का समीक्षण करने के बाद महाकवि कालिदास से उसका अभ्युत्थान युग आरम्भ होता है । इस अभ्युत्थान युग की सीमा लगभग १२वीं शताब्दी तक जाती है । इस बीच भी यद्यपि कुछ ऐसी कृतियों का निर्माण हुआ, जिनको इस अभ्युत्थान युग की प्रतिनिधि कृतियाँ नहीं कहा जा सकता हैं, फिर भी जिन बहुत

उच्चकोटि की कृतियों का निर्माण इस युग में या इन शताब्दियों में हुआ, उनकी तुलना में फिर दूसरी कृतियाँ नहीं रची गई ।

२.१.२ कालिदास के पूर्ववर्ती लुप्त महाकाव्य :

संस्कृत में महाकाव्यों की परंपरा की उपलब्धि यद्यपि कालिदास के ग्रंथों से उद्धृत की जाती है, किन्तु कालिदास से भी बहुत पहले इस विषय पर अनेक ग्रंथ लिखे जा चुके थे । स्फुट कविताओं तथा स्फुट काव्यों के पुरातन अस्तित्व को प्रकट करने वाली ये कृतियाँ यद्यपि आज जीवित नहीं है; किन्तु उनके अस्तित्व को बताने वाले प्रबल साक्ष्य आज भी विभिन्न ग्रन्थों में देखने को मिलते हैं ।

'महाभारत' के शांतिपर्व में गार्ग्य को 'देवर्षिचरित' का कर्ता बताया गया है । इस कथन को प्रमाण माना जाय तो चरितविषयक ऐतिहासिक काव्यग्रन्थों का निर्माण बहुत प्राचीन समय में ही होने लग गया था । गार्ग्य, वैयाकरण, निरूक्तकार या आयुर्वेदज्ञ गार्ग्य ही थे कि उनसे भिन्न हुए; इस संबंध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता; किन्तु इतना निश्चित है कि वह 'महाभारत' से पहले हुए ।

संस्कृत के विद्यार्थी के लिए वैयाकरण पाणिनि का परिचय कोई नया नहीं है । किन्तु एक अद्धितीय वैयाकरण के अतिरिक्त वे सिद्धहस्त काव्यकार भी थे, इस बात को कम लोग जानते हैं, अथवा जानकार भी ध्यान में नहीं लेते हैं । उन्होंने एक 'जाम्बवतीविजय' नामक महाकाव्य की रचना की थी, जिसमें १८ सर्ग थे । विभिन्न विषयों के प्राचीन–नवीन लगभग ३३ ग्रन्थों में पाणिनि के इस महाकाय ग्रन्थ के संबंध में सूचनाएँ लिखी मिलती हैं ।

व्याडि, पाणिनि के ही समकालीन थे । संग्रहकार के रूप में उनकी प्रसिद्धि है । उन्होंने 'बालचरित' नामक एक महाकाव्य का निर्माण किया था । जिसके संबंध में महाराज समुद्रगुप्त का कथन है कि 'व्याडि रसतंत्र के आचार्य,

महाकवि, शब्दब्रह्मैकवाद के प्रवर्तक, पाणिनि–सूत्रों के व्याख्याता और मीमांसकों में अग्रणी थे । उन्होंने 'बालचरित' लिखकर 'भरत' और व्यास को जीत लिया । महाकाव्य के क्षेत्र में व्याडि का ग्रंथ प्रदीपभूत था ।' समुद्रगुप्त के इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि व्याडि ने 'महाभारत' से भी बड़ा महाकाव्य लिखा था । व्याडि के काव्यकार होने की पुष्टि 'अमरकोष' के एक अज्ञातनामा टीकाकार की टीका से होती है । उसमें लिखा है कि 'भट्टिकाव्य के १२ वें सर्ग के व्याडि के काव्य में भी 'भाषा–समावेश' नामक एक भाग या अध्याय था । शब्द मर्मज्ञ व्याडि के महाकाव्य में इसप्रकार का अध्याय होना उपयुक्त ही प्रतीत होता है ।

महाराज समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' में वार्तिककार वररूचि कात्यायन को 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य का रचयिता बताया गया है । उनकी प्रशंसा में कहा गया है कि ऐसे सुन्दर काव्य को लिखकर कात्यायन ने स्वर्ग को पृथ्वी पर उतार दिया । अपने रुचिर कवित्व कर्म के कारण पृथ्वी भर में उनका कवित्व–यश फैला । दूसरे श्लोक में कहा गया है कि दाक्षीपुत्र वार्तिककार कात्यायन केवल व्याकरण की रचना कर ही विरमित नहीं हो गये थे, अपितु उस निपुण कवि ने एक काव्यकृति का भी निर्माण किया था ।

वररूचिकृत काव्य की पुष्टि 'महाभाष्य' में उद्धृत श्लोकों से भी होती है । 'शार्ङ्गधरपद्धति', 'सदुक्तिकर्णामृत' और 'सुभाषितमुक्तावली' आदि ग्रन्थों में उद्धृत श्लोकों में वररूचि के कविकर्म के प्रमाण सुरक्षित हैं ।

'महाभाष्य' में 'भ्राजसंज्ञक श्लोकों' का उल्लेख मिलता है । कैयट, हरदत्त और नागेशभट्ट के मतानुसार ये 'भ्राज' संज्ञक श्लोक वार्तिककार कात्यायन की रचनाएँ ठहरते हैं । ये श्लोक संप्रति लुप्त हो गए हैं । इन श्लोकों में एक श्लोक महाभाष्य के प्रथमाह्निक में उद्धृत हुआ मिलता है ।

'महाभाष्य' में तित्तिरि प्रोक्त का उल्लेख मिलता है । यह तित्तिरि, वैशम्पायन के जेठे भाई एवं उन्हीं के शिष्य थे । उनका दूसरा नाम चरक भी

था । इसी चरक द्वारा प्रोक्त 'चारकश्लोकों' का निर्देश 'काशिकावृत्ति' और अभिनव शाकटायन कृत 'चिन्तामणिवृत्ति' में भी मिलता है ।

इसीप्रकार सायण भी माधवीया 'धातुवृत्ति' में उक्त प्राचीन व्यक्ति मालूम होते हैं, क्योंकि पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' में भी उनका नामोल्लेख हुआ है ।

महाभाष्यकार के रूप में पतंजलि के असामान्य व्यक्तित्व का परिचय मिलता है; किन्तु उन्होंने भी एक महाकाव्य की रचना की थी, यह बात कम प्रचलित है । महाराज समुद्रगुप्त के 'कृष्णचरित' की प्रस्तावना में तीन श्लोक इस आशय के उद्धृत हैं, जिनसे पता चलता है कि 'महाभाष्य' के रचयिता पतंजलि ने चरक में धर्मानुकूल कुछ योग सम्मिलित किए, और योग की विभूतियों के निदर्शक, योगव्याख्यानभूत 'महानंद' नामक महाकाव्य की रचना की । सम्भवतः यह महाकाव्य मगधसम्राट् महानन्द से सम्बद्ध रहा होगा ।

इसीप्रकार प्राचीन ग्रन्थों से लुप्त महाकाव्यों व काव्यग्रन्थों की स्फुट कविताओं के संबंध की अनेक सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं । औखीय या तैत्तिरीय श्लोक, बहुत सम्भव है, काव्यविषयक न रहे हों किन्तु जिस रूप में उनके संबंध की सूचनाएँ दी गई हैं, उनसे तो यही विदित होता है कि उनमें कविबुद्धि एवं काव्यतत्त्व के गुण भरपूर थे ।

२.१.३ प्रशस्तिपरक काव्यों की काव्य-प्रवृत्तियाँ :

संस्कृत-साहित्य की प्राचीनतम काव्य-प्रवृत्तियों के जीवित प्रमाण आज हमें प्रस्तर-पुस्तिकाओं पर उत्कीर्ण हुए मिलते हैं । उनमें रूद्रदामन का गिरनार-शिलालेख (१५० ई.) तथा इसीसमय का पुलुभावि का नासिक-शिलालेख प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति (३४५ ई.), वीरसेन का उदयगिरि-गुफा का अभिलेख (४७० ई.) वत्सभट्टि की मन्दसौर-प्रशस्ति (४३७ ई.) रविशांति का हरहा-अभिलेख (५५५ ई.) और वासुल की मंदसौर प्रशस्ति

(छठी शताब्दी) आदि ऐसे ही प्रमाण हैं, जिनमें संस्कृत की पूर्वागत काव्य–परंपरा के सूत्र ग्रथित हैं ।

संस्कृत के इन अज्ञातनामा या अपरिचित काव्यकारों के संबंध में कुछ छिटपुट प्रकाश आर्कियोलोजिकल सर्वे ओफ इण्डिया, एपिग्राफिया इंडिका, इंडियन इस्क्रिप्शन्स, गुप्ता इस्क्रिप्शन्स, विभिन्न प्रदेशों के गजेटियर, अथवा एशियाटिक सोसायटी, बंगला, बिहार, बंबई, उड़ीसा आदि के जर्नल्स या प्रोसीडिंग्स में पड़ चुका है ।

सन् १६०३ ई. में स्व. बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने 'प्राचीन लेखमणिमाला' के नाम से विभिन्न दानपत्रों, अन्तर्लेखों, शिलाखंडों, प्राचीन हस्तलिखित पोथियों, कई इतिहास–ग्रन्थों और विशेषतया डॉ. कीलहार्न के एक विद्वतापूर्ण लेख के आधार पर अपनी एक पुस्तक का निर्माण किया था । इस पुस्तक में ७१६ लेखों का संग्रह है । इस पुस्तक को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्कृत के कितने ही निर्माताओं का नाम तक आज हमें विदित नहीं है ।

संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार संपूर्ण काव्य–साहित्य दो भागों में विभक्त है । दृश्य और श्रव्य । दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक एवं रूपकों की गणना आती है और श्रव्य काव्य के अन्तर्गत गद्य, पद्य तथा चंपू की । पद्य–काव्य पुनः महाकाव्य, खंडकाव्य और मुक्तक काव्य, तीन भेदों में विभाजित हैं और गद्यकाव्य कथा, आख्यायिका आदि में । चंपूकाव्य का कोई भेद नहीं है । वह गद्य–पद्य–मिश्रित होता है ।

२.१.४ महाकाव्यों की परम्परा का उदय :

संस्कृत के महाकाव्यों को हम तीन मोटी श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं । जो विशुद्ध संस्कृत में लिखे गए, जैसे कालिदास, माघ श्रीहर्ष आदि महाकाव्य के वे प्रथम श्रेणी में हैं, दूसरी श्रेणी में पालि तथा प्राकृत भाषा के

महाकाव्य आते हैं और तीसरी श्रेणी के महाकाव्य अपभ्रंश में हैं, जिनसे हिन्दी साहित्य में काव्य–परम्परा का प्रवर्तन हुआ ।

ऐतिहासिक दृष्टि से महाकाव्यों की लंबी परंपरा को हमने तीन विभिन्न युगों में विभाजित किया है । पहला उद्‌भवयुग कालिदास से पहले, दूसरा अभ्युत्थान–युग कालिदास से लेकर श्रीहर्ष तक और तीसरा ह्रास–युग तेरहवीं शती से अन्त तक ।

उज्जयिनी के प्रति कालिदास के हार्दिक मोह को देखते हुए यह मानना युक्तिसंगत जान पड़ता है कि उनका जन्म वहीं ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में हुआ था, क्योंकि आगे चलकर उज्जयिनी के अधीश्वर विक्रमादित्य के आश्रय में कालिदास के रहने के लिए हम जो युक्तियाँ प्रस्तुत करेंगे, उनसे यह बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी कि कालिदास की जन्मभूमि उज्जयिनी ही थी । कालिदास के स्वीकृत ग्रन्थ निम्नलिखित है :–

(१) ऋतुसंहार, (२) मालविकाग्निमित्रम्, (३) कुमारसम्भवम्, (४) विक्रमोर्वशीयम्, (५) मेघदूतम्,(६) अभिज्ञानशाकुन्तलम्, (७) रघुवंशम् ।

इसके अतिरिक्त इतिहासकारों के अनुसार अश्वघोष भी ई. पूर्व प्रथम शताब्दी में ही हुए । उन्होंने अधोलिखित ग्रन्थों की रचना की –

(१) महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह, (२) वज्रसूची, (३) गण्डीस्तोत्रव्याख्या, (४) सूत्रालंकार, (५) बुद्धचरित, (६) सौन्दरानन्द, (७) शारिपुत्र – प्रकरण ।

भारवि का समय लगभग ६०० ई. है । इनका एक मात्र प्रसिद्ध ग्रन्थ 'किरातार्जुनीयम्' ही है ।

भट्टि का समय लगभग ६५० ई. के पश्चात् आता है । इन्होंने 'रावणवध' लिखा; जो २२ सर्गों का ग्रन्थ है ।

भट्टि के पश्चात् लगभग ७०० ई. के बाद माघ का जन्म हुआ, जिनकी एकमात्र कृति 'शिशुपालवध' ही है ।

माघ के पश्चात् १२ वीं शदी के उत्तरार्ध में श्रीहर्ष का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने (१) स्थैर्य–विचार–प्रकरण (२) विजयप्रशस्ति, (३) गौणो–र्वीशकुलप्रशस्ति, (४) छन्दप्रशस्ति, (५) नवसाहसांकचम्पू, (६) अर्णववर्णन, (७) शिवशक्तिसिद्धि (८) खण्डनखण्डखाद्य, (६) नैषधीयचरितम्' आदि ग्रन्थों की रचना की ।

२.१.५ उत्कर्षकाल के अप्रसिद्ध महाकाव्य :

संस्कृत के महाकाव्यों की परम्परा में कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि, माघ और श्रीहर्ष, इन छः महाकाव्यकारों की कृतियों का प्रमुख स्थान माना गया है; किन्तु श्रीहर्ष तक महाकाव्यों की जिस उन्नत परम्परा का प्रवर्तन हुआ उनमें बौद्ध महाकवि अश्वघोष के बाद बुद्धघोष का नाम आता है । बुद्धघोष ४०० ई. में हुए और उनके नाम से 'पद्यचूडामणि' नामक, दस सर्गों की एक काव्यकृति का उल्लेख हुआ है । इसीप्रकार भीम या भीमक (५०० ई.) ने २७ सर्गों की एक कृति 'रावणार्जुनीय' का 'अर्जुन–रावणीय' नाम से लिखी । भर्तृमेंठ का 'हयग्रीववध' संप्रति उपलब्ध नहीं है; किन्तु कल्हण ने 'राजतरंगिणी' (३/२६०–२६२) में लिखा है कि मेंठ नामक एक महाकवि स्वनिर्मित 'हयग्रीववध' नामक महाकाव्य को लेकर कश्मीर के तत्कालीन राजा मातृगुप्त के यहाँ गया था । मातृगुप्त स्वयमेव अच्छा कवि और काव्यप्रेमी राजा था । वह चक्रवर्ती सम्राट् विक्रमादित्य हर्ष की राजसभा का सम्मानित कवि था और राजा हिरणय् के निःसंतान निधन हो जाने के बाद विक्रमादित्य हर्ष ने उसको कश्मीर की राजगद्दी पर बैठाया था ।

कुमारदास, भट्टि के बाद और माघ से पूर्व सातवीं शताब्दी के मध्य में हुए । उन्होंने 'जानकीहरण' नामक महाकाव्य की रचना की थी, जिसके केवल १५ सर्ग ही उपलब्ध हैं ।

रत्नाकर के महाकाव्य 'हरविजय' का क्रम माघ के 'शिशुपालवध' के बाद आता है । वे कश्मीर के राजा चिप्पट जयापीड (७७६–८३१ ई.) के राजकवि

थे । उनका यह प्रबन्ध ५० सर्गों तथा ४,३२० श्लोकों में समाप्त हुआ है । नवम शताब्दी के आरम्भ में शिवस्वामी ने भारवि तथा माघे की काव्यशैली पर 'कफिफशाम्भ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की थी । वे भी कश्मीरी थे । ठीक इसी शताब्दी में कश्मीर के महाकवि अभिनन्द ने 'रामचरित' महाकाव्य लिखा । इसी समय कश्मीर के महाकवि शक ने 'भुवनाभ्युदय' की रचना की । कश्मीर के काव्यकारों में क्षेमेन्द्र का नाम उल्लेखनीय है । वे अनन्त और कलश के राज्यकाल (११ वीं शताब्दी) में हुए । उनके महाकाव्य का नाम 'दशावतारचरित' है । इसीप्रकार कश्मीर के राजा जयसिंह (११२६–११५० ई.) के सभापण्डित मंखक के 'श्रीकण्ठचरित' का नाम भी उल्लेखनीय है ।

संस्कृत–साहित्य में हरिश्चन्द्र के नाम से अनेक विद्वानों का उल्लेख हुआ है । 'धर्मशर्माभ्युदय' नामक महाकाव्य के लेखक हरिश्चन्द्र अथवा हरिश्चन्द्र का स्थितिकाल ११ वीं शताब्दी था । ये जैन थे । दूसरे जैन आचार्य हेमचन्द्र १२ वीं शताब्दी में हुए । उन्होंने 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' का निर्माण किया, जो 'महाभारत' की शैली का ग्रन्थ है । इसी शताब्दी में जैन महाकवि वाग्भट्ट ने 'नेमिनिर्वाण' की रचना की । वाग्भट्ट नाम से भी अनेक ग्रन्थकार हुए, जिनका उल्लेख इस ग्रन्थ के 'जैनयुग' में किया गया है ।

१२ वीं शताब्दी में श्रीहर्ष से पूर्व के महाकवियों में माधवभट्ट, चण्ड़कवि और बिल्वमंगल का नाम उल्लेखनीय है । माधवभट्ट, अवन्तिपुरी के कदम्ब–नरेश रामदेव (११८२–११९७ ई.) के सभापण्डित थे । उन्होंने ' राघवपाण्डवीयम्' पारिजातहरण नामक महाकाव्य का रचयिता का निर्माण किया । इसीप्रकार चण्डकवि का 'पृथ्वीराजविजय', जो केवल आठ सर्गों तक ही उपलब्ध है और बिल्वमंगल (श्रीकृष्ण–लीलांशुक) का 'गोविन्दाभिनिवेश' या 'श्रीचिह्नकाव्य' का नाम उल्लेखनीय है ।

इसप्रकार यद्यपि अश्वघोष के बाद और श्रीहर्ष से पूर्व की विभिन्न शताब्दियों में अनेक महाकाव्यों का निर्माण हुआ; फिर भी जो रचनाकौशल और

काव्यसौष्ठव कालिदास, अश्वघोष, भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों में देखने को मिलता है, उसका उक्त महाकाव्यों में अभाव है ।

२.१.६ श्रीहर्षोत्तरवर्ती महाकाव्य :

महाकवि कालिदास से लेकर महाकवि श्रीहर्ष तक के बारह–सौ वर्षो में जिन महाकवियों की विशेष चर्चा रही और गौण रूप से चर्चित इस बीच जिन महाकाव्यों का निर्माण हुआ, उनका यथोचित उल्लेख तो मेरे द्वारा किया जा चुका है ।

किन्तु श्रीहर्ष के बाद से लेकर अब तक जो महाकाव्य रचे गये, उनमें बिरली ही ऐसी कृतियाँ हैं, जिनमें परम्परा के निर्वाह की अनुवृत्ति के अतिरिक्त कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ देखने को मिलती हैं । इस बीच जो उच्च कोटि की कृतियाँ रची गई, उनमें जयरथ (१३वीं श.) का 'हरचरितचिन्तामणि', अमरसिंह (१३वीं श.) का 'सुकृतसंकीर्तन, बादसूरि (१३वीं श.) का 'वसन्तविलास', चन्द्रप्रभसूरि (१३वीं श.) का 'पाण्डवचरित', नयनचन्द्र (१३१ ई.) का 'हम्मीरमहाकाव्य', वासुदेव कवि (१४वी श.) का 'युधिष्ठरविजय', अगस्त्य (१४वीं श.) का 'बालभारत', वेंकटनाथ वेदान्त–देशिक (१२६८–१३६९ ई.) का 'यादवाभ्युदय', गंगादेवी (१४वीं. श.) का 'मथुराविजय', मल्लाचार्य (१४वीं. श.) का उदारराघव', वामनभट्ट बाण (१५वीं श.) का 'रघुनाथचरित' जोचस्तज (१४५० ई.) के शिष्य श्रीवर का 'जैन राजतरंगिणी', राजनाथ द्वितीय (डिंडिमकविसार्वभीम १४३० ई.) का 'सालवाभ्युदय', राजनाथ तृतीय (१६वीं श.) का 'अच्युतरायाभ्युदय', रुद्र कवि (१५९६ ई.) का 'राष्ट्रौढ़वंश', चन्द्रशेखर (१६वीं श.) का 'सुर्जनचरित', यज्ञनारायण दीक्षित (१७वीं श.) का 'रघुनाथभूपविजय', नीलकण्ठ दीक्षित (१७वीं श.) का 'शिवलीलार्णव', मेघविजयगणि (१७वीं. श.) का 'सप्तसंधान' और चक्रकवि (१७वीं श.) 'जानकीपरिणय' इत्यादि का नाम लिया जा सकता है । इन महाकाव्यों में श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती महाकाव्यों की भाँति सौष्ठव

और मार्दव का अभाव है । इसी हेतु महाकाव्यों के समीक्षाकार विद्वानों ने १२वीं शताब्दी के बाद के समय को महाकाव्यों के ह्रास का युग कहा है ।

२.२ महाकाव्य के लक्षण और उनका विवेचन :

श्रीभामह आचार्य द्वारा विनिर्मित काव्यालंकार[१] : के प्रथम परिच्छेद में महाकाव्य का लक्षण इसप्रकार उद्‌धृत है –

सर्गबन्धो महाकाव्यं महताञ्च महच्चयत् ।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यञ्च सालंकारं सदाश्रयम् ।।
मन्त्रदूतप्रयाणानि नायकाभ्युदयश्च यत् ।
पंचभिः सन्धिभिर्युक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत् ।
चतुर्वर्गाभि धानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत् ।
युक्तं लोकस्वभावेन रसैश्च सकलैः पृथक् ।।[१]

अर्थात् दण्डी का 'महाकाव्य लक्षण' (१/१४–२३) भरत के काव्य बन्ध कविकेल्पन का सर्वाधिक व्यवस्थित और संक्षिप्त प्रतिसंस्कार है ।

दण्डी के काव्यादर्श में महाकाव्य का लक्षण इसप्रकार उद्‌धृत है ।

१. आशीर्नमस्क्रिया वस्तु–निर्देशो वाऽपि तन्मुखम् ।।
२. इतिहास–कथोद्‌भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
३. चतुर्वर्ग–फलायत्त,
४. चतुरोदात्त नायकम् ।।
५. (क) नगरार्णव–शैलर्तुर्चन्द्रोऽर्कोदयवर्णनैः ।
(ख) उद्यान–सलिल–क्रीड़ा–मधुपान–रतोत्सवैः ।
विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनैः ।।
(ग) मन्त्रदूत–प्रयाणाजि–नायकाभ्युदयैरपि–अलंकृतम्
६. असंगक्षिप्त रस–भाव–निरन्तरम् ।
७. सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्य–वृत्तैः सु–सन्धिभिः ।।[२]

महाकाव्य के लक्षणों में आचार्य दण्डी ने महाकाव्य के (१) आरम्भ, (२) कथा का स्रोत, (३) प्रयोजन, (४) नायक, (५) उद्दीपन विभाव, (६) चारुत्वा धायक तत्त्व और (७) अवयवों का स्वरूप, इन सातों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करके अन्त (१/१६) में उसके सर्वप्रधान दो तत्त्वों (लोकरंजन और सौन्दर्य) का विशिष्टतया उल्लेख किया है । यह स्वच्छ, व्यवस्थित, सन्तुलित और सूक्ष्म दृष्टि उस युग के अन्य आचार्यों में उपलब्ध नहीं होती ।

अग्निपुराण में महाकाव्य का लक्षण इसप्रकार उद्धृत है –

सर्ग–बन्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ।।
तादात्म्यमजहत् तत्र तत्समं नाति दुष्यति ।
इतिहास–कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
मन्त्रन्दूत–प्रयाणाजि–नियतं नातिविस्तरम् ।
शक्वर्याति जगत्याति शक्वर्या त्रिष्टुभा तथा ।।
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्राभि र्जनैश्चारुभिः समैः ।
मुक्ता तु भिन्न–वृत्तान्ता, नाति संक्षिप्त–सर्गकम् ।।
अतिशक्वरिकाऽष्टिभ्यामेकसंकीर्णकैः परः ।
मात्रयाऽप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिमः ।।
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन् विशेषानादरः सताम् ।
नगरार्णव–शैलर्तु–चन्द्रार्काश्रमपादपैः ।।
उद्यान–सलिल–क्रीडा–मधुपान–रतोत्सवैः ।
दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः ।।
तमसा मरुताऽप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः ।
सर्व–वृत्ति–प्रवृत्तं च, सर्व–भाव प्रभावितम् ।।
सर्वरीतिरसैः पुष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः ।
अतएव महाकाव्यं, तत्कर्ता च महाकविः ।।
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।

पृथक्–प्रयत्न–निर्वर्त्य वाग्वक्त्रिम्णि रसाद् वपुः ।।

चतुर्वर्गफलं विष्वग् व्याख्यातं नायकाख्यया ।।[३]

अग्निपुराण में महाकाव्य को दण्डी की तरह चतुवर्गफल कहा गया है । किन्तु भामह ने चारों पुरुषार्थों का अभिधान अपेक्षित होने पर भी अर्थ के उपदेश को अधिक आवश्यक बताया है । मन्त्र, दूत आदि को वर्ण्य विषय बताने से भी भामह का यही मन्तव्य पुष्ट होता है । अर्थात् भामह के मत में धर्म और काम अर्थ के अंग के रूप में प्रतिपादित होने चाहिए ।

इसप्रकार कथा और प्रयोजन इन दो व्यापी तत्त्वों का प्रतिपादन करने के बाद आचार्य ने चार (४–७) अन्य तत्त्व आगे बताये हैं ।

यथा – महाकाव्यम्–निपुणं कवेः कर्म्म काव्यं । सर्गबन्धरूपे अन्युपभेदे तत्लक्षणं साहित्यदर्पणे[४] –

सर्गबन्धो महाकाव्यं[३] *तत्रैको नायकः सुरः ।।*

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।

एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।।

शृंगाखीरशान्तानामेकोंऽगी रस इष्यते ।

अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः ।

इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यदवा सश्र्नाश्रयम् ।

चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।।

आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।

क्वचिन्निंदा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम् ।।

एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।

नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।।

नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।।

संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागराः ।।
संभोगविप्रोलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वरा ।
रणप्रयाणोपयमन्त्रपुत्रोदयादयः ।।
वर्णनीया यथा योगं सांगोपांगं अमी इह ।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।।
नामास्य सर्गोपादेय कथया सर्गनाम तु ।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः ।।
प्राकृतैर्निमिते तस्मिन्सर्गा आश्वाससंज्ञकाः ।
छन्दसा स्कन्धकेनैतत्क्वचिद्गलितकैरपि ।।[५]

काव्य का प्रमुख उद्देश्य यही होता है कि काव्य के द्वारा रसिकों को चतुर्वर्ग में दीक्षित किया जा सके । इसको इसप्रकार स्पष्ट किया जा सकता है –

चतुर्वर्ग

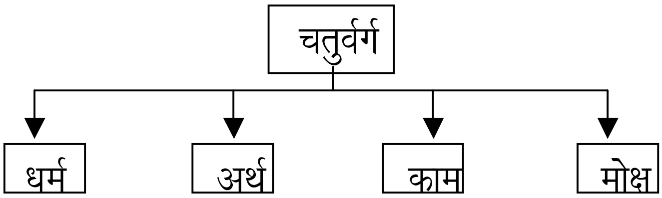

कवियों को चाहिए कि प्रबन्धों में (नायक के चरित्र का बन्धन जिसमें हों) इन्हें विशिष्ट रूप के उपन्यस्त करें ।

प्रबन्ध

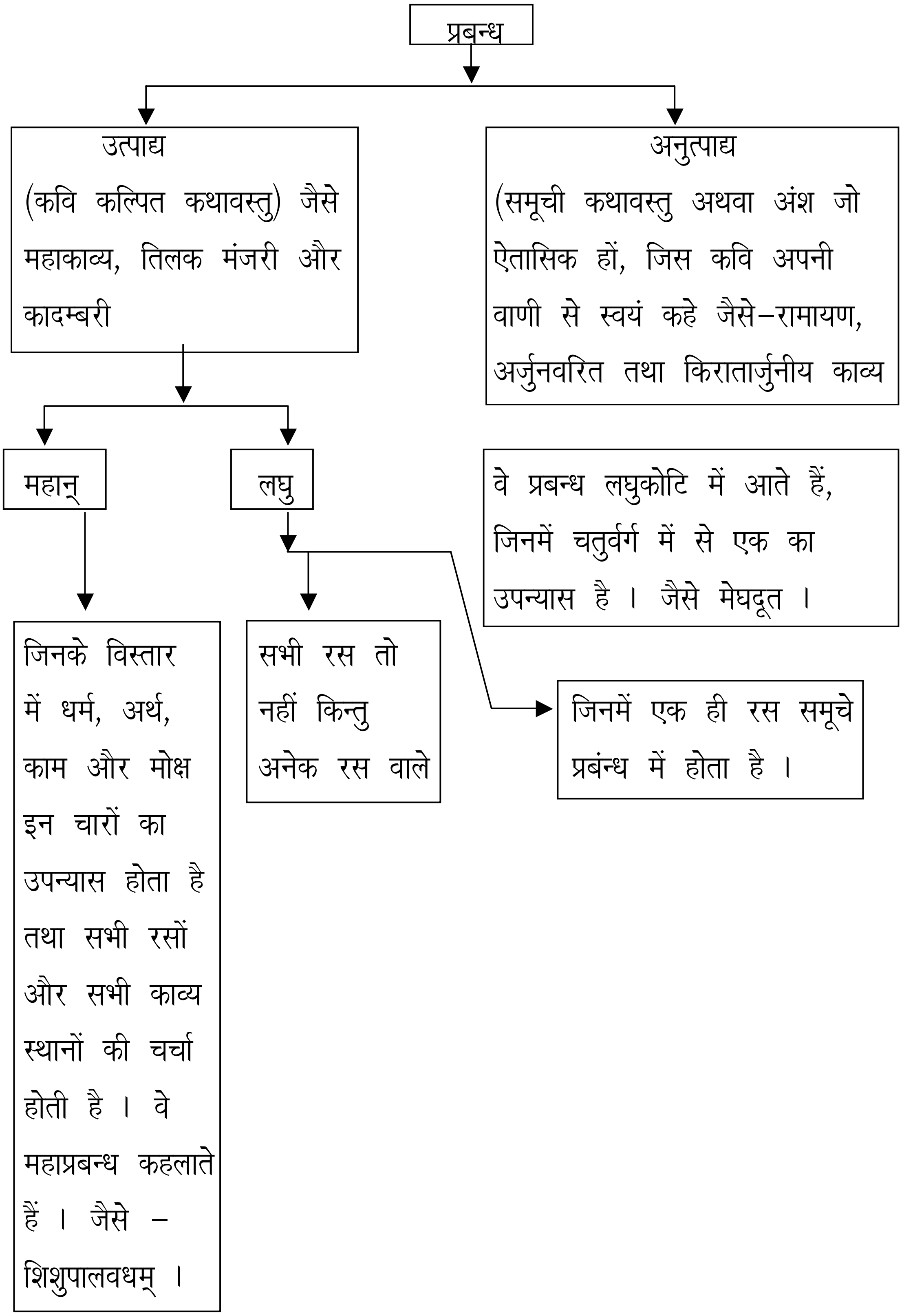
प्रबन्ध
उत्पाद्य
(कवि कल्पित कथावस्तु) जैसे महाकाव्य, तिलक मंजरी और कादम्बरी
अनुत्पाद्य
(समूची कथावस्तु अथवा अंश जो ऐतासिक हों, जिस कवि अपनी वाणी से स्वयं कहे जैसे–रामायण, अर्जुनवरित तथा किरातार्जुनीय काव्य
महान्
लघु
वे प्रबन्ध लघुकोटि में आते हैं, जिनमें चतुर्वर्ग में से एक का उपन्यास है । जैसे मेघदूत ।
जिनके विस्तार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का उपन्यास होता है तथा सभी रसों और सभी काव्य स्थानों की चर्चा होती है । वे महाप्रबन्ध कहलाते हैं । जैसे – शिशुपालवधम् ।
सभी रस तो नहीं किन्तु अनेक रस वाले
जिनमें एक ही रस समूचे प्रबंध में होता है ।

इसीप्रकार आचार्य रुद्रट ने भी अपने ग्रन्थ में काव्य का निम्न प्रकार से निरूपण किया है । यथा –

तत्रोत्पाद्ये पूर्वम् सन्नगरीवर्णनं महाकाव्ये ।
कुर्वीत तदनुतस्यां नायकवंशप्रशंसां च ।।

अर्थात् उनमें उत्पाद्य महाकाव्य में प्रारम्भ में सुन्दर नगरी तदनन्तर उसमें नायक कुल की प्रशंसा का वर्णन होना चाहिये ।

तत्र त्रिवर्गसक्तं समिद्धशक्तित्रयं च सर्वगुणम् ।
रक्तसमस्तप्रकृतिंविजिगीषुं नायकं न्यस्येत् ।।

तदनन्तर मन्त्र, प्रभु और कोप शक्ति से सम्पन्न, सभी गुणों से युक्त समस्त प्रजाओं को प्रिय विजयेच्छु नायक का उपन्यास करना चाहिये ।

विधिवत्परिपालयतः सकलं राज्यं च राजवृत्तं च ।
तस्य कदाचिदुपेतं शरदादिं वर्णयेत्समयम् ।।

समूचे राज्य और राजधर्म का भली भाँति पालन करते हुये उसके प्रसंग में आये हुए शरदादि ऋतुओं का वर्णन करना चाहिए ।

स्वार्थं मित्रार्थं वा धर्मादि सार्धयिष्यतस्तस्य ।
कुल्यादिष्वन्यतमं प्रतिपक्षं वर्णयेद्गुणिनम् ।।

अपने मित्र अथवा धर्म आदि के प्रयोजन को सिद्ध करते हुये उस नायक के प्रतिनायक को कुलीनों में अग्रगण्य और गुणवान् रूप में चिह्नित करना चाहिये ।

स्व चरात्तद्दूताद्वा कुलोऽपि वा वर्णयतोरिकार्याणि ।
कुर्वीत सदसि राज्ञां क्षोभं क्रोधेद्धचित्तगिराम् ।।

राजसभा में अपने चर, (प्रतिपक्षी के दूत अथवा किसी अन्य सूत्र से शत्रु के कार्यों को सुनते हुये क्रोध से जले हुये (नायक) के चित्त एवं वाणी के क्षोभ का वर्णन करें ।

सम्मन्त्र्य समं सचिवैर्निश्चित्य च दण्डसध्यितां शत्रोः ।

तं दापयेत्प्रयाणं दूतं वा प्रेषयेन्मुखरम् ।।

सचिवों के साथ मन्त्रणा करके शत्रु की दण्डसाध्यता का निश्चय करके उस (शत्रु) के ऊपर आक्रमण करे अथवा (उसक पास) चंचल दूत भेजे ।

अत्र नायकप्रयाणे नागरिकाक्षो भजनपदाद्रिनदीनः ।

अटवीकाननसरसीमरुजलधिद्वीपभुवनानि ।।

तदनन्तर नायक के प्रस्थान में नागीरकों के धैर्य, देश, पर्वत, नदी, अटवी, वन, सरसी (तालाब) मरुस्थल, सागर, द्वीप, लोक का कवि वर्णन करें ।

स्कन्धवारनिवेशं क्रीडां, यूनां यथायथं तेषु ।

रव्यस्तमयां संध्यां संतमसमथोदयं शशिनः ।।

पड़ाव तथा यथातथ्य उनमें युवकों की क्रीड़ा सूर्य के अस्त होने के समय संध्या, अन्धकार और चन्द्रोदय का (कवि वर्णन करें) ।

रजनीं च तत्र यूनां समाजसंगीतपानश्रृंगारान् ।

इति वर्णयेत्प्रसंगात्मकथां च भूयो निबध्नीयात् ।।

रात्रि, युवकों के समाज, संगीत, पान–गोष्ठी और श्रृंगार का प्रसंगानुकूल वर्णन करें और इसप्रकार कथा का प्रभूत विस्तार करे ।

पतिनायकमपि तद्वत्तदभिमुखममृष्यमाणमायान्तम् ।

अभिदध्यात्कार्यवशान्नगरीरोधस्थितं वाणि ।।

नायक के ही समान उस (नायक) के सामने आते हुए प्रतिनायक का वर्णन करना चाहिए । प्रयोजनवश उसमें नगरी पर घेरा डालने का भी वर्णन होना चाहिये ।

योद्धव्यं प्रसरिति प्रबन्धमधुपीति निशि कलत्रेभ्यः ।

स्ववधं विशंकमानान्संदेशान्दापयेत्सुभटान् ।।

'प्रातः काल युद्ध करना है, इस कारण अपने मृत्यु की शंका करने वाले सैनिकों के द्वारा रात में स्त्रियों के लिए प्रबन्धवश (प्रसंगतः) मदिरा पान का संदेश दिलवाये ।

संनह्य कृतव्यूहं सविस्मयं युध्यामानयोरुभयोः ।

कृच्छ्रेण साधु कुर्यादभ्युदयं नायकस्यान्तम् ।।

सन्नद्ध होकर व्यूह बनाकर आश्चर्य पूर्वक परस्पर युद्ध करते हुये दोनों में से परिणाम में नायक की बड़ी कठिनाई से सुन्दर अभ्युदय करना चाहिये ।

सर्गाभिधानि चास्मिन्नवातप्रकरणानि कुर्वीत ।

संधीनपि संश्लिष्यंस्तेषामन्योन्यसंबन्धात् ।।[६]

इस उत्पाद्य महाकाव्य ने (भरत आदि आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट) परस्पर संबद्ध संश्लिष्ट संधियों की तथा अवान्तर प्रकरणों की सर्गबद्ध रचना करनी चाहिए ।

इसीप्रकार काव्यशास्त्र के अन्य अनेक ग्रन्थों में काव्य सम्बन्धी हेतु, प्रयोजन एवं अन्यान्य विषयों का सविस्तार वर्णन किया गया है ।

संदर्भ–सूची :

१. काव्यालंकार – भामह – प्रथम परिच्छेद कारिका १६–२१

२. काव्यादर्श कारिका १४–१८

तिरूपति संस्करण तथा टीकाओं में एकवचनान्त 'अनांगक्षिप्त' पाठ धृत और व्याख्यात हैं ।

३. अग्निपुराण – ३३७/२४–३४

४. साहित्य–दर्पण : विश्वनाथ कविराज, षष्ठ परिच्छेद कारिका ३१५ से ३२६

५. वाचस्पत्यम् – श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति महाचार्येण संकलितम् षष्ठोभागः, पृष्ठ ४७४०, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी १६६२

६. आचार्य रुद्रट

❀❀❀

तृतीय अध्याय
कवि नीलकण्ठ दीक्षित का परिचय तथा कर्तृत्व

३.१ नीलकण्ठ दीक्षित : एक परिचयात्मक विश्लेषण
३.१.१ जन्मस्थान
३.१.४ वंश–वृक्ष
३.१.५ अध्ययन
३.१.६ कवित्व शक्ति
३.१.७ विकसित मेधा के धनी कवि नीलकण्ठदीक्षित
३.१.८ स्वभाव निरूपण
३.१.६ कवि नीलकण्ठदीक्षित की लोकप्रियता
३.२ कृतियाँ
३.२.१ शिवलीलार्णव
३.२.२ नीलकण्ठ दीक्षित का पाण्डित्य
३.२.३ नीलकण्ठदीक्षित की मुद्रित रचनाएँ

तृतीय अध्याय
कवि नीलकण्ठ दीक्षित का परिचय तथा कर्तृत्व

कवि नीलकण्ठ दीक्षित दक्षिणी आरकाट में पैदा हुए थे । इनकी माता भूमिदेवी और पिता नारायणाध्वरि थे । ये अप्पय दीक्षित के भ्रातृ–पौत्र होने के साथ–साथ दक्षिण भारत में दीक्षित वंश के एक उज्ज्वल रत्न थे ।

३.१ नीलकण्ठ दीक्षित : एक परिचयात्मक विश्लेषण

'शिवलीलार्णव' नामक ग्रन्थ के रचयिता नीलकण्ठ–दीक्षित भरद्वाज कुलोत्पन्न अप्पय दीक्षित के लघु भ्राता, आच्चा दीक्षित के पौत्र तथा नारायण दीक्षित के पुत्र थे । इनकी माता का नाम भूमिदेवी था । पिता, पितामह का यह परिचय तो हमें उनके प्रमुख ग्रंथ 'शिवलीलार्णव' महाकाव्य की पुष्पिका से ही प्राप्त हो जाता है :

इति श्रीमद्राजकुलजलधिशौस्तुमश्रीकण्ठमतप्रतिष्ठापनाचार्य –
चतुरधिकशतप्रबन्धनिर्वाहमहाव्रतयाजिना श्रीमदप्प्य्यदीक्षितसोदर्य –
श्रीमदाच्चादीक्षितपौत्रेण नारायणदीक्षितात्मजेन भूमिदेवीगर्भसमवेन
महाकविनीलकण्ठदीक्षितेनविरचितम् शिवलीलार्णवमहाकाव्यं सम्पूर्णम् ।[१]

श्री जे. के. बालसुब्रह्मण्यम् कवि का परिचय इन शब्दों में देते हैं :

"Nilakantha Dikshita otherwise, known as Ayya Dikshita, who flourished, in the first half of the seventeenth century was the grand son of the brother of the renowned Appaya Dikshita and was the prinul Minister and Court Pandit of Tirumale, Nayaka."[२]

श्री सुब्रह्मण्यम् प्रदत्त श्री नीलकण्ठ दीक्षित का यह सूत्रतुल्य संक्षिप्त परिचय पर्याप्त नहीं है । नलचरितनाटक की भूमिका में उद्धृत 'शिवोत्कर्षमंजरी' की शिवानन्दयोगीन्द्र द्वारा लिखे उपसंहार से अधिक परिचय प्राप्त होता है जिसका सार इसप्रकार है :–

भरद्वाज कुलोत्पन्न अप्पयदीक्षित से दीक्षित होकर नीलकण्ठ नामक १२ वर्षीय बालक ने गुरुमुख से तीनों वेदों का अध्ययनकर रुद्राक्ष, महालिंग आदि शिवसम्पत्ति को प्राप्त कर चिदम्बर सभा में महामना अप्पय के शिव में लीन हो जाने पर माता के साथ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया ।

इन्होंने तिरुमल नामक राजा के राज्य में सभापण्डित, सर्वतंत्र स्वतंत्र होकर सुन्दरेश और अम्बा की बहुप्रकार से अर्चना कर राजा का अभिषेक करके कलिविडम्बन, अन्यापदेशशतक, वैराग्यशतक, आर्याशतक, शान्तिविलास, नीलकण्ठ–विजयचम्पू, आनन्दसार आदि सरस कविताओं से विश्व को आनन्दित करते हुए चोल, केरल, पाण्डय देश के राजा का ३५ वर्षों तक साचिव्य किया और अन्त में ताम्रा नदी के किनारे निर्जन वन में परमानन्द का अनुभव किया, ऐसी किंवदन्ती है ।

शिवार्चन, शिवज्ञान एवं शिवध्यान में लीन ये कवि समूची आयु को शिव में लगाकर अन्त में परम शिवपद को प्राप्त हुए ।[३]

शिवलीलार्णव महाकाव्य की भूमिका में उद्धृत 'गंगावतरण' के प्रथम सर्ग के दो तीन श्लोकों में भी इनका कुछ परिचय प्राप्त हो जाता है :

तत्समानप्रभावस्य तदनन्तरजन्मनः ।
आसीदाच्चादीक्षितस्य पुत्रौ नारायणाध्वरी ।।
जयन्ति तनयास्तस्य पंच सौभ्रात्रशालिनः ।
गर्भदासामहेशस्य कवयश्च विपश्चितः ।।
तेषामहं द्वितीयोऽस्मि भूमिदेवी तनूभुवाम् ।
नीलकण्ठ इति ख्यातिं नीतः शंभोः प्रसादतः ।।[४]

अर्थात् उनके अनन्तर जन्म लेने वाले अनुज के समान स्वभाव वाले आच्चा दीक्षित के पुत्र नारायणाध्वरि थे । उनके पाँच पुत्रों में से सभी जन्म से ही महेशभक्त, कवि एवं विद्वान् थे । उनमें से मैं भूमिदेवी का द्वितीय पुत्र हूँ और भगवान् शंकर की कृपा से नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध हूँ ।

(क) वंशरेखा

नीलकण्ठ दीक्षित ने अपनी समस्त रचनाओं में अप्पय दीक्षित को अपना पितामह भ्राता और अपने को उनका भ्रातृपौत्र कहकर सम्मानित किया है । नीलकण्ठ दीक्षित के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र ने अपनी कृति शृंगारकोशभाण में अप्पय दीक्षित को शिव का द्वितीयावतार मानकर उन्हें सम्मानित किया है । श्री नीलकण्ठ ने तो शिवलीलार्णवमें १०४ ग्रंथों की रचना के कारण अप्पय दीक्षित को शिव से भी श्रेष्ठ बताया है ।[५]

'गंगावतरण' के प्रथम सर्ग में भी श्री नीलकण्ठ दीक्षित कहते हें कि अप्पय दीक्षित भरद्वाज गोत्र में श्री क्षीरसागर से उत्पन्न चन्द्रमा के समान उत्पन्न हुए थे ।

तस्यान्वये महत्यासीत्क्षीरोद इव चन्द्रमाः ।
श्रीकण्ठचरणासक्तः श्रीमानप्पयदीक्षितः ।।[६]

दक्षिण प्रदेश के श्री सम्पन्न भरद्वाज कुलोत्पन्न श्री कण्ठमत के प्रतिष्ठापक आचा महाव्रतयाजिन् अप्पय दीक्षित कांचीपुर के समीप स्थित आडयप्पल नामक अग्रहार ग्राम में उत्पन्न छन्दोम, सामवेदत्र, श्रीमद्आचार्य दीक्षित के पुत्र महान् अद्वैताचार्य तथा अद्वैत विद्यामकरन्दम व विवर्णदर्पण आदि अन्य ग्रंथों के रचयिता रंगराजाध्वरिन् के पुत्र थे ।[७]

अप्पयदीक्षित शैवागम / मीमांसा तथा साहित्य के धुरन्धर विद्वान् थे । इन्होंने शताधिक ग्रंथों की रचना की है ।[८] इनकी ख्याति इतनी अधिक थी कि पंडित लोग इन्हें अपना सम्बन्धी बताने में आत्मगौरव का अनुभव करते थे ।[९]

वैलूर के तत्कालीन राजा चिन्नवौम्म ने हेमाभिषेक द्वारा आचार्य अप्पय दीक्षित का सम्मान किया तथा उनके पांडित्य के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की ।

कर्णश्रीचिन्नबोम्मक्षितिपतिरभितो लम्भयञ्जातकुम्भ–
स्तोमं हेमाभिषेक प्रणयनसमये यस्य मूर्तिं प्रशस्याम् ।
रेजे श्रीरंगराजाध्वरिवरकलशाम्भोधिलब्ध प्रसूते –
विद्याकल्पद्रुमस्य स्वयमिव कलयन्जातरूपालवालम् ।।[१०]

समरपुर्गदीक्षित ने अपने यात्राप्रबन्धचम्पूकाव्य में हेमाभिषेक का उल्लेख इसप्रकार किया है :–

हेमाभिषेकसमये परितोनिषण्णसावर्णसहतिमिषाच्चिन्नवोम्मभूपः ।
अप्पयदीक्षितमणेरनवद्यविद्याकल्पद्रुमस्य कुरुतेकनकालवालम् ।।[११]

कवि नीलकण्ठदीक्षित ने उपर्युक्त विषय का उल्लेख अपने ग्रंथ 'गंगावतरणम् काव्य' में किया है :–

गंगया यः पुरा स्नातीदेवश्चन्द्रार्धशेखरः ।
गांगयेन पुनः सस्नो साऽवतीर्य यदात्मना ।।[१२]

अपने कुटुम्ब और पितामह भ्राता अप्पयदीक्षित के संबंध में कवि का, अपने ग्रन्थ 'वैराग्यशतक में कथन है :–

कृतदीक्षो घोरमखे कुलकूटस्थो भरद्वाजः ।
विद्येश्वरेषु कश्चन् पितामहो इति विश्रम्भः ।।[१३]

श्री नीलकण्ठ दीक्षित के ही वंशज वीरराघव कवि रचित आच्चा (अवकन) दीक्षित वंशावली[१४] से भी इनके वंश का कुछ विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त होता है, जिसका उल्लेख शिवानन्दयोगीन्द्र ने अपने ग्रन्थ अप्पयदीक्षितेन्द्रविजय[१५] में और नीलकण्ठदीक्षित ने अपने शिवतत्त्वरहस्य[१६] की प्रस्तावना में किया है ।

नलचरित नाटक में कविने अपना वंश परिचय प्रपितामह से प्रारम्भ किया है । यथा –

पारिपार्श्वकः

आः स्मृतम् । अस्य किल कूटस्थाः साक्षात्कृतब्रह्माणः सर्वविद्यामुरवश्छन्दोगाः सोमपीथिनो द्वैतवादासहिष्णवो जगद्विदिता एव । अमीष्वपि विशेषात्तत्रभावनाच्चादीक्षितः ।

सूत्रधार :

साधुस्मृतं साधु, तस्य किल कृष्णराजवन्दितचरणारविन्दस्य भरद्वाजकुल चूडामणेरष्टभिः क्रतुभिरष्टभिरायतनैः शंभोरष्टभिर्ग्रामैरष्टभिस्तटाकैरष्टभिश्च सर्वविद्याविशारदैस्तनयैरष्टापिदिशो यशोभिर्ज्वालिताः ।[१७]

'नलचरित' नाटक के इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि भरद्वाज कुल में कोई आच्चादीक्षित हुए, जो कृष्णराज के आश्रय में थे, इसका उल्लेख अन्यत्र 'यादवाभ्युदय' की भूमिका में भी प्राप्त होता है :

''Acharya Dikshita enjoyed the Patrenage of Krishna Deva Raya.''[१८]

अर्थात् आचार्य दीक्षित महाराज कृष्णदेव राय के राज्याश्रित थे ।

नीलकण्ठदीक्षित ने नलचरित नाटक में आच्चा और अन्यत्र अच्चन् शब्द का प्रयोग किया है, यह शब्द आचार्य का तामिल शब्द है ।[१९]

कुछ विद्वानों के मत में अप्पय के दादा आचार्य (आच्चान्) दीक्षित वृक्षः स्थालाचार्य कहलाते थे । दूसरे उल्लेखानुसार वक्षःस्थल अप्पय के प्रपितामह थे ।[२०]

'यादवाभ्युदय' की भूमिका में उपर्युक्त संशय का यथार्थ समाधान किया गया है :

उनके अनुसार आचार्य दीक्षित अप्पयदीक्षित के पितामह थे । वे वक्षःस्थलाचार्य के नाम से अधिक विख्यात थे । इस सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है, जब कि उनको यह मनोरंजक नाम दिया गया था । कृष्णदेवराय विजयनगर के महान् शासक थे, जिन्होंने १५०९ से १५३० ई. तक राज्य

किया । वे एक बार कांचीवरम् में अपनी रानी तथा परिचरों के साथ वरदराज भगवान् की पूजा कर रहे थे, उसी समय आचार्य दीक्षित ने एक श्लोक की रचना कर दी :

काचित् कांचनगौरागीं वीक्ष्य साक्षादिवश्रियम् ।

वरदः संशयापन्नो वक्षःस्थलमवैक्षत् ।।

अर्थात् किसी स्वर्णिम आकृति वाली स्त्री को देखकर जो साक्षात् लक्ष्मी प्रतीत हो रही थी, वरदराज भगवान् संशकित होकर अपने वक्षःस्थल (हृदय) को देखने लगे ।

राजा के समीप बैठी रानी को देखकर वरदराज को संशय हो गया । उन्होंने समझा कि हमारी लक्ष्मी ही हमारे पास से वहाँ (राजा के समीप) चली गयी है और इसी आशंका से बार–बार अपना हृदय देखते हैं । इस विचार से प्रसन्न होकर राजा कृष्णदेव ने आचार्य दीक्षित को वक्षःस्थलाचार्य (की उपाधि प्रदान की थी) नामकरण कर दिया ।[२१]

उपर्युक्त श्लोक को अप्पयदीक्षित ने चित्रमीमांसा में संदेहालंकार ध्वनि के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है । उसके अनुसार (के. एम. संस्करण पृ. ६३) वक्षःस्थलाचार्य अप्पय के पूर्वज थे :–

संदेहालकारध्वनिर्यथा अस्मदकुलकूटस्थवक्षःस्थलाचार्यकृते वरदराज वसन्तोत्सवे... कांचित्....वैक्ष्यत् ।।[२२]

हुल्श की साउथ इंडियन मैन्युस्क्रिप्ट्स रिपोर्ट (भाग–२ पृ. ९०–१००) में अप्पय के ग्रन्थ शिवाकर्मणिदीपिका में उद्धृत एक अवतरण में अप्पय नेआचार्य दीक्षित और रंगराज को क्रमशः अपना दादा और पिता बताया है । अतः आचार्य दीक्षित का ही अन्य नाम वक्षस्थलाचार्य मानना अधिक उपयुक्त होगा ।

आचार्य दीक्षित के ८ पुत्रों में से पंचम रंगराजाध्वरि थे ।[२३] 'शिवाकर्मणिदीपिका' में अप्पय ने अपने को आचार्य दीक्षित का पौत्र तथा रंगराजाध्वरि का पुत्र कहा है और नीलकण्ठ ने रंगराज आचार्य दीक्षित के ८

पुत्रों में पंचम बताया है । इसका विवेचन काणे ने किया है । उनका कथन है :

"Achcha had from his second wife several sons of whom Rangaraja was the eldest. His sons were Appayya and Achcha"[२४]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि आच्चा (आचार्य) दीक्षित के दो विवाह हुए । प्रथम पत्नी से चार और द्वितीय से भी चार पुत्र हुए । रंगराज सभी पुत्रों में से पंचम और द्वितीय पत्नी से उत्पन्न पुत्रों में ज्येष्ठ थे तथा अप्पय और आच्चा रंगराज के पुत्र थे ।[२५] आचार्य दीक्षित के सम्बन्ध में श्री ए. वी. गोपालाचारी न विशद विवेचन दिया है । उनका कथन है –

आचार्य दीक्षित ने दो स्त्रियों से विवाह किया था । प्रथम उन्हीं की भाँति शैवमतावल्मबी थी, द्वितीय पत्नी तोतम्बा श्री रंगराजाचार्य की पुत्री थी, जो वैंकुठाचार्य वंश की कट्टर वैष्णवमतावलम्बी थी । उन दिनों शिव और विष्णु उपासकों के मध्य विवाह होना बड़े वाद–विवाद की बात थी किन्तु ४ शताब्दी पूर्व दो कट्टरपंथी वंशों में विवाह हुए थे । तोतम्बा के ४ पुत्र हुए । सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्री रंगराजाध्वरि या रंगराजमखी था । इनका यह नाम इनके नाना की इच्छा के कारण रखा गया था ।[२६]

श्री रंगराजाध्वरि के दो पुत्र थे, अप्पयदीक्षित और आच्चा दीक्षित, आच्चा दीक्षित के पुत्र नारायण दीक्षित और उनके द्वितीय पुत्र श्री नीलकण्ठदीक्षित थे ।

नीलकण्ठदीक्षित रचित नलचरितनाटकम् नामक प्रकाशित पुस्तक के अन्त में उद्धृत हस्तलिखित प्रति के लेखक वीरराघवसूरि के कुछ श्लोकों से ज्ञात होता है कि आच्चा दीक्षित का दूसरा नाम नृसिंहमखी भी था ।

अप्पयदीक्षितसहोदरविंदचनृसिंहमखिपौत्रवरेण्यम् ।
नीलकण्ठमखिना कृतमेतन्नाटकं नलचरित्रं पवित्रम् ।।[२७]

अर्थात् इस पवित्र नलचरित नाटक की रचना अप्पयदीक्षित के भाई विद्वान् श्री नृसिंहमखी के पौत्र नीलकण्ठमखी द्वारा की गई है ।

अतएव दीक्षितवंश की आख्यावली का क्रम आचार्य दीक्षित (आच्चा, आच्चान् या वक्षःस्थलाचार्य दीक्षित), तत्पौत्र आच्चा दीक्षित और उनके पौत्र अय्यादीक्षित, इसप्रकार रहा ।[२८] नीलकण्ठदीक्षित का ही अन्य नाम अय्या दीक्षित था ।[२६] इस सम्बन्ध में एक और प्रामाणिक कृति उपलब्ध होती है – तञ्जौर के वेदमूर्ति जम्बूनाथ भट्ट के सरस्वती महल ग्रंथालय में सुरक्षित नीलकण्ठदीक्षित की नीलकण्ठविजयचम्पू की हस्तलिखित दो प्रतियाँ हैं – उनकी पुष्पिका के अन्त में लिखा है –

समाप्तं चेदमप्पयदीक्षितविरचितं चम्पूकाव्यम् ।[३०]

अर्थात् अप्पय रचित यह चम्पू काव्य समाप्त होता है ।

पितामह के नाम पर पौत्र का नाम रखे जाने की प्रथा द्रविडों में रही है । 'शिवालीलार्णव' महाकाव्य की भूमिका में श्री टी. एस. कुप्पुस्वामी ने लिखा है :

''विदितमेवहि सर्वेषामस्माकमस्मद्देशीयाः प्रायशोबिभ्रति पितामहानां नामेति तच्च किञ्चिदपरिवर्त्यैव विकृतमेव वा कीर्तयन्ति तन्मातरः स्वश्वसुराणां साक्षान्नाम ग्रहणमनुचितमिति च । अतः एवं नाम परम्परा आसीत् श्रीमदप्पययदीक्षितानां वंशे ।[३१]

अर्थात् दक्षिणवासियों के नाम के साथ पितामह का भी नाम संलग्न रहता है । उसी को थोड़ा परिवर्तित करके उनकी माताएँ नाम लेती हैं, क्योंकि श्वसुर का नाम लेना अनुचित माना जाता है ।

यही कारण है कि प्रपितामह पितामह तथा पौत्र के नामों में काफी साम्य परिलक्षित होता है । अतः नीलकण्ठ दीक्षित का अन्य नाम अप्पय दीक्षित भी अकारण ही नहीं था ।

अप्पयदीक्षित के अनुज आच्चादीक्षित विभिन्न शास्त्रों के विद्वान् थे । नलचरित नाटक में नीलकण्ठ ने उनको व्याकरण, वैशेषिक तर्क, वेदान्त, सांख्य तथा साहित्य सभी का पंडित कहा है :–

सूत्रधार :

तत्सोदर्यस्य विदत्कवेराच्वादीक्षितस्य महिमा केन वर्ण्यते । तथापि किञ्चिद्वर्णितं गुरुरामकविना :

शब्दब्रह्मजगाहुषी जगृहुषी वैशेषिकं साहुषी

तर्कोन्मर्दमपेयुषी श्रुतिशिखां भाट्टे पदं दाशुषी ।

साखयार्थानधिजग्मुषी विविदुषी साहित्यमर्माखिलं

कस्मिन्नस्य हि शेमुषी नृपसमे नापूपुषद्वैदुषीम् ।।[३२]

आच्चा दीक्षित के दो पुत्र थे, नारायणाध्वरि और अप्पय दीक्षित । आच्चा दीक्षित के यह द्वितीय पुत्र अप्पय दीक्षित द्वितीय कहे जाते हैं । नीलकण्ठदीक्षित ने अपनी समस्त रचनाओं में अपने पिता को अम्बिका पुरुष के अवतार रूप में प्रशंसित किया है । इन्होंने (नारायणाध्वरि ने) अधिकतर दार्शनिक एवं साहित्यिक ग्रंथों की व्याख्या की है; जिनमें मुख्य रूप से साहित्यरत्नाकर व्याख्या और महावीरचरित व्याख्या की चर्चा नीलकण्ठ ने अपने नाटक नलचरित के प्रथम अंक में की है ।[३३]

नारायणध्वरि और भूमिदेवी के ५ पुत्रों में से नीलकण्ठदीक्षित द्वितीय पुत्र थे । पाँचों पुत्र कवि, शैवमत के विद्वान् थे; किन्तु शिव में प्रगाढ भक्ति होने के कारण शिव के प्रसाद से नीलकण्ठ अधिक विख्यात हुए । इसका उल्लेख कवि ने गंगावतरण काव्य के प्रथम सर्ग में स्वयं किया है ।[३४]

इनके अन्य छोटे भाइयों के सम्बन्ध में वीरराघव कवि विरचित 'अच्चन् दीक्षितवंशावली' में चर्चा की गई है । 'कुशकुमद्वतीय' नाटक और 'त्रिपुराविजयचम्पू' के लेखक अतिरात्रयज्वा तथा वसुमतिचित्रसैन्यम् आदि रचनाओं के अनुसार अप्पयदीक्षित के विचारों की रक्षा करने वाले चिन्ना अप्पय और चन्द्रकलावतस रगशेखर ये नीलकण्ठ के तीन अनुज और आच्चा दीक्षित ज्येष्ठ भ्राता थे । 'कुशकुमुद्वतीय' नाटक में इस बात का उल्लेख मिलता है कि अतिरात्रयज्वा और चिन्ना अप्पय नीलकण्ठदीक्षीत से छोटे थे तथा

'अच्चनदीक्षितवंशावली' से ज्ञात होता है कि आच्चादीक्षित ज्येष्ठ और चन्द्रकलावतंस रंगशेखर अन्य अनुज थे ।[३५]

ज्येष्ठ भ्राता आच्चादीक्षित का निर्देश कवि ने नलचरितनाटक में भी किया है । जिसके प्रमाणस्वरूप निम्नलिखित युक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

१. वे दक्षिण आरकाट के हैं क्योंकि वहीं की धरती पर इनका जन्म हुआ है ।[३६]

२. वे तंजौर के हैं, क्योंकि कवि की शिक्षा यहीं पर हुई है । कवि के गुरु वेंकटेश्वरमखी तंजौर जिले के पतीश्वरम् ग्राम के निवासी तथा तंजौर के राजा रघुनाथ नायक के राजकवि थे ।[३७]

३. मदुरै निवासी कवि को इसलिए अपना मानते हैं क्योंकि बहुत समय तक वहाँ पर निवास किया तथा अपनी योग्यता के कारण राजदरबार में उच्च पद पर आसीन रहकर राज्य करते रहे ।[३८]

४. तिरुन्नैवेली जिले के पालामडई ग्राम के अपने जीवन के अन्तिम दिनों को व्यतीत करने के कारण वहाँ के निवासी उन्हें अपना मानते हैं ।

इन प्रमाणों के आधार पर कवि के दक्षिण प्रान्त का निवासी मानने में कोई आशंका नहीं रह जाती है, फिर इस शिवलीलार्णव कृति में मदुरै प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ मंदिर मीनाक्षी मंदिर का वर्णन कवि के दाक्षिणात्य होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । उपर्युक्त सभी स्थानों के लोग कवि को अपना कहने में गौरव तथा गर्व का अनुभव करते हैं । संस्कृत काव्य तथा दर्शन के अतिरिक्त अर्थशास्त्र और राजनीति के ज्ञान के कारण परिवार, समाज तथा राज्य में इनको बहुत सम्मान प्राप्त हुआ ।

(ख) कवि का काल–निर्णय :

श्री नीलकण्ठदीक्षित के समय के सम्बन्ध में कोई निश्चित सूचना न तो उनके ग्रन्थों से और न अन्य किसी स्रोत से उपलब्ध होती है । कवि के

काल–निर्णय से सम्बन्धित तीन उपपत्तियाँ प्राप्त होती हैं और तीनों ही अपने–अपने प्रमाणों के आधार पर उचित प्रतीत होती हैं ।

(व) प्रथम उपपत्ति :

यह उपपत्ति एम. कृष्णमाचारियर ने अपने ग्रंथ "History of Sanskrit Literature"[३९] में तथा श्री रामचन्द्र मिश्र ने 'नीलकण्ठविजय' चम्पू नामक ग्रन्थ की स्वरचित भूमिका में दी है ।[४०]

इनका कथन है कि जब अप्पय दीक्षित का समय १६ वीं. शताब्दी के अन्त से १७ वीं शती के प्रारम्भ तक है तो नीलकण्ठदीक्षित का समय १७ वीं शती के प्रारम्भ में मानना निराधार नही होगा । त्रैमासिक पत्रिका 'सागरिका' में उद्धृत अपने एक लेख में श्री अच्युतानन्द झा भी इसी समय की पुष्टि का समर्थन करते हैं ।[४१] कवि ने अपने ग्रन्थ नीलकण्ठविजय चम्पू काव्य में स्वयं उसका रचना–काल दिया है :–

अष्टत्रिंशदुपस्कृतसप्तशताधिकचतुःसहस्रेषु ।
कविवर्येषु गतेषु ग्रथितः किल नीलकण्ठविजयोऽयम् ।।[४२]

(अर्थात् ४७३८ कलिवर्ष के व्यतीत होने पर यह नीलकण्ठविजय नामक ग्रन्थ रचा गया ।)

इसके अनुसार इस चम्पू की रचना का वर्ष सन् १६३७ सिद्ध होता है । इसकी पुष्टि का अन्य आधार हमारे पास कवि के आश्रयदाता का नाम है । प्रायः सभी विद्वानों ने मदुरा के राजा तिरुमल नायक को कवि का आश्रयदाता माना है ।[४३] तिरुमल नायक ने १६२३ ई. से १६५६ ई. तक मदुरा में शासन किया और १६५६ ई. में उनका स्वर्गवास हो गया ।[४४] इसकी चर्चा श्री सत्यनाथ अय्यर ने अपने ग्रंथ "History of Nayakas of Madura" में की है ।[४५] शिवानन्दयोगीन्द्र का कथन है कि नीलकण्ठदीक्षित ने ही तिरुमल नायक का अभिषेक किया था :–

अकण्टकं भूपालं धाराधिपत्येऽभिषिच्य ।[४६]

साथ ही उनका यह भी कथन है कि ३५ वर्ष तक कवि ने तिरुमल नायक के राज्य में मंत्री के रूप में कार्य किया ।

पाण्ड्यदेशाधिपसाचिव्यं सबहुमानं पञ्चत्रिंशदत्यशन् ।[४६]

इसका तात्पर्य यह हुआ कि १६२३ ई. में तिरुमल के राज्याभिषेक के समय कवि एक युवा पंडित होगा और नीलकण्ठविजयचम्पू के रचनाकाल में वह प्रौढ़ावस्था की सीढ़ी पर कदम रख चुका होगा तथा पाण्ड्य नायक की स्वर्गयात्रा के साथ ही कवि का साचिव्य कार्य भी समाप्त हुआ होगा ।

श्री टेलर महोदय का कथन है कि सन् १६२६ ई. में कविने तिरुमल नायक की ही आज्ञा से नवनिर्मित मंदिरों में शास्त्रानुसार धार्मिक कृत्य करवाये थे ।[४८]

टेलर महोदय का यह भी कथन है कि मन्दिर के निर्माण कालमें खुदाई के दौरान एक गणेश जी की मूर्ति मिली थी, जिसकी स्थापना के सम्बन्ध में शैवों और वैष्णवो में मतभेद हो गया था । अतएव तत्सम्बद्ध उपर्युक्त निर्णय करने के लिए शैवों की ओर से अप्पयदीक्षित तथा वैष्णवों की ओर से अय्या दीक्षित निर्णायक घोषित किए गए थे ।[४६]

इस घटना से यह संकेत मिलता है कि १६२६ ई. में नीलकण्ठदीक्षित न केवल तरुण ही थे वरन् शास्त्रों में पारंगत होकर विद्वानों के मध्य प्रसिद्ध हो चुके थे । क्योंकि अय्या, नीलकण्ठदीक्षित का ही अन्य नाम है और अप्पयदीक्षित का मूल नाम है, जिसे अप्पयदीक्षित ने स्वयं 'कुवलयानन्दम्' में दिया है ।[५०]

श्री ए. वी. गोपालाचारी ने भी यही माना है कि अप्पयदीक्षित का मूल नाम है, जिसमें आर्य बोधक आदरसूचक अय्य शब्द जोड़ देने से वह अप्पय्य हो गया है ।[५१]

इन तथ्यों के आधार पर कवि का जन्म १६०० ई. के लगभग होने का अनुमान किया जा सकता है और यही समय उपयुक्त भी प्रतीत होता है ।

(२) द्वितीय उपपत्ति

श्री पी. पी. एस. शास्त्री ने 'नलचरितनाटकम्' की भूमिका में नीलकण्ठ का जन्म १६१३ ई. माना है ।[५२] उद्धरण का मूल आधार शिवानन्द योगीन्द्र द्वारा लिखी 'शिवोत्कर्षमंजरी' का उपसंहार है, जिसमें उन्होंने कवि की १२ वर्ष की अवस्था में अप्पय दीक्षित का निर्वाण माना है ।[५३]

पाद टिप्पणी में उद्धृत पंक्तियों से ज्ञात होता है कि अप्पयदीक्षित के निर्वाण के समय कवि की आयु १२ वर्ष की थी । उन्होंने अप्पयदीक्षित की मृत्यु के पश्चात् अपनी माता के साथ चिदम्बर से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया था ।

इस उपपत्ति का समर्थन करते हुए वाचस्पति गैरोला अपने ग्रंथ में लिखते है :

अप्पयदीक्षित के पौत्र नीलकण्ठदीक्षित, मदुरा के राजा तिरुमल नायक के प्रधान सचिव, १६१३ ई. में पैदा हुए थे ।[५४]

इस उद्धृत अंश में गैरोला ने नीलकण्ठ दीक्षित को अप्पयदीक्षित का पौत्र माना है । नलचरितनाटक की भूमिका में पी. पी. एस. कुप्पुस्वामी ने भी अप्पयदीक्षित को नीलकण्ठ का पितामह माना है और अप्पयदीक्षित की मृत्यु के पश्चात् कवि को बिल्कुल अनाथ ही मान लिया है ।[५५]

पुनः श्री टी. एस. कुप्पूस्वामी शास्त्री ने शिवलीलार्णव की भूमिका में इस बात का उल्लेख किया है कि सन् १६२६ में अप्पयदीक्षित शैव-वैष्णव- विवाद का निर्णय करने के लिए मदुरा के राजा तिरुमलनायक द्वारा बहुत बार प्रार्थित होने पर मदुरा गए और वहाँ शास्त्र का निर्णय किया ।[५६] इसका समर्थन ओरियण्टल हिस्टोरिकल म्युनिस्क्रिप्ट्स में उद्धृत एक अंश द्वारा भी होता है ।[५७] इसके पश्चात् मदुरा से लौटकर अपने देश आकर कुछ समय व्यतीत कर वे कालगति को प्राप्त हुए :

अथ स्वेदशमागत्य कियता कालेन कालधर्मगता – दीक्षिताः । अतः सर्वथा निर्णीयते १६२६ तमाब्दात्पूर्वं न तेषां निर्वाणसमय इति ।।[५८]

इसप्रकार कुप्पुस्वामी शास्त्री ने अप्पयदीक्षित का समय १५५४ ई. से १६२६ ई. माना है ।[५९] काणे महोदय ने भी इसी तिथि को मान्य ठहराया । उनका कथन है कि अप्पय दीक्षित के निश्चित समय के विषय में मत भिन्नता है । सामान्यतः १५५४ ई. सन् से १६२६ ई. सन् का समय स्वीकार किया जाता है । (दे.ई. आई.भाग १२, पृ. ३४० श्रीरंगार्य द्वितीय का ताम्रपत्र, तिथि शक १४६६) । इस ताम्रपत्र के लेख के अनुसार तंजौर के नायक वंश के राजा शिवाप्पनायक की प्रार्थना पर विजयनगर के राजा श्रीरंगदेवराय ने माधव (विजयेन्द्रतीर्थ) को अरमोली मंगल नामक गाँव दान में दिया । यही माधव संन्यासी बनने से पूर्व सुविख्यात अप्पय के मित्र थे । ३४५ पृ. पर संपादकों ने अप्पय की आत्मसमर्पण स्तुति के विषय में लिखी गई शिवानन्द योगीन्द्र कृत टीका से निम्नश्लोक उद्धृत किया है :–

वीणातत्त्वज्ञसंख्यालसितकलिसभाभाक्प्रमातीचवर्षे
कन्यामासे तु कृष्णप्रथमतिथियुतेऽप्युत्तरप्रोष्ठपादे ।
कन्यालग्नेऽद्रिकन्यापतिरमितदयाशैवधिर्वैदिकेषु
श्रीगौर्यैप्राग्यथाह स्म समजनि विरिञ्चिशिपुर्यां कलेशः ।।[६०]

अप्पयदीक्षित के अन्तिम समय के अपूर्ण श्लोक :

आभाति हाटकसभानटपादपद्म
ज्योतिर्ययौ मनसि मे तरुणारुणोऽयम् ।[६१]

को बाद में उनके पुत्रों ने ही इसप्रकार पूर्ण किया : ।

नूनं जरामरणघोपरपिशाचकीर्ण –
संसारमोहरजनी विरतिप्रयाता ।[६२]

किन्तु अप्पयदीक्षित के ११ पुत्रों में से किसी की भी ख्याति इतनी नहीं थी, जितनी अधिक नीलकण्ठ दीक्षित की थी ।

३.१.१ जन्मस्थान

महाकवि नीलकण्ठदीक्षित ने अपनी कृतियों में कहीं भी अपने जन्म स्थान आदि के विषय में कोई संकेत नहीं दिया है किन्तु इतस्ततः कुछ उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह निश्चित है कि एक उच्च शिक्षित एवं सम्पन्न भरद्वाज वंश में उत्पन्न होने वाले महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित दक्षिण भारत की एक महान् विभूति थे । भारतीय इतिहास में १७ वीं शताब्दी के समस्त कवियों तथा दार्शनिकों में कवि को एक उच्च एवं प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है, विशेषकर तामिलनाडू में तो सर्वोच्च स्थान है । इन्होंने सर्वत्र अपने को पितामह भ्राता अप्पय दीक्षित का एक योग्य भ्रातृपौत्र प्रमाणित करने का सफल प्रयास किया है । समस्त दीक्षित वंश का प्रादुर्भाव दक्षिण प्रान्त में ही हुआ है तथा वहीं पर पल्लवित एवं फलित होकर विकसित हुआ है । तामिलनाडु के चार जिलों में दक्षिण आरकाट, तञ्जौर, मदुरै तथा तिरुन्नवेली में कवि को अपना कहने का दावा किया है,[६३] और अपने दावे की पुष्टि में वे लोग क्रमशः अधोलिखित ''लग्ने रवीन्दु सुतयोर्मकरे च मान्यो मीने शशिन्यथवृषे रविजे च राहौ । चाषे गुरौ क्षितिसुते मिथुने तुलायां शुक्रे शिखिन्यलिगते शुभलग्न एवम् ।''

अप्पय दीक्षित की जन्मपत्रिका के अनुसार उनका जन्म काल ४६५४ में सिद्ध होता है । पत्र के सम्पादकों ने आगे लिखा है कि नीलकण्ठदीक्षित के शिवलीलार्णव काव्य के अनुसार (नीलकण्ठ अप्पय के छोटे भाई अच्चन् का पोता था) अप्पय ७२ वर्ष तक जीवित रहे ।[६४]

इसप्रकार उपर्युक्त उद्धरण के आधार पर श्री पी. वी. काणे ने अप्पय दीक्षित का समय १५५४ ई. से १६२६ ई. तक माना है और १६१३ ई. में उत्पन्न श्री नीलकण्ठदीक्षित अप्पयदीक्षित की मृत्यु के समय १२ वर्ष के थे, इस तथ्य का समर्थन होता है । इसी तथ्य का अनुमोदन के. एस. सुब्रह्मणयम् शास्त्री ने भी किया है ।[६५]

कवि ने अप्पयदीक्षित के चरणों में ही बैठ कर शिक्षा ग्रहण की थी और १२ वर्ष की अवस्था से पूर्व ही वे वेद–वेदांगों के पंडित हो गये थे ।[६६] जिस समय अप्पय दीक्षित ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में नीलकंठ को आशीर्वाद दिया था । उस समय अप्पयदीक्षित ७२ वर्ष के वृद्ध और कवि नीलकण्ठ दीक्षित १२ वर्ष के बालक थे । 'अप्पयदीक्षितेन्द्रविजय' नामक ग्रन्थ में इसका उल्लेख प्राप्त होता है ।[६७] 'नलचरितनाटकम्' की भूमिका में श्री पी.वी.एस.शास्त्री ने इसका उल्लेख इसप्रकार किया है :

"It is —lear and this agrees with the extant tradition that Nilakantha must have been a yaung lad of twelve when his grand father Appayya Dikshita Showered his choicest blessing onhim at Chidambaram just before him demise."[६८]

सूत्रधार :

अग्रजन्मा खलु तस्य रसिकलोकमौलिमणि
राच्चादीक्षितो व्याकरोदिदं रूपकमनुजस्नेहात् ।[६९]

स्पष्ट है कि नारायणाध्वरि ओर भूमिदेवी के ५ पुत्र क्रमशः आच्चादीक्षित नीलकण्ठदीक्षित (अययादीक्षित) अतिरात्रयज्व, चिन्ना अप्पय, तथा रंगशेखर थे । इनमें अप्पयदीक्षित और रंगशेखर की कोई कृति उपलब्ध नहीं होती है । अति रात्रयज्वा ने स्वयं अपना परिचय अपने ग्रन्थ 'कुशकमुद्वतीय' नाटक में इसप्रकार दिया है ।[७०]

सूत्रधार

नन्वस्यैव समानेतुरनुजन्मा विदितवेदितव्यः कविलोकमित्रमतिरात्रयाजी ।[७१]

अर्थात् इनके ही सभानेता के अनुज प्रसिद्ध कवियों के मित्र अतिरात्रयज्वा हैं ।

'कुशकुमुद्वतीय' के अतिरिक्त प्रतिरघुवंश आदि की रचना भी अतिरात्रयज्वा ने की है । अपने अनुज रंगशेखर के नाम की चर्चा कवि नीलकण्ठ ने 'नलचरितनाटक' में की है –

सूत्रधार

अद्वितीय किल रूपकाभिनयेष्वनुजो मे रंगशेखरः ।।

अर्थात् मेरा अनुज रंगशेखर निश्चय ही रूपकाभिनय में अद्वितीय है –

कवि के पुत्रों की संख्या निश्चित रूप से नहीं बताई जा सकती है, किन्तु उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कवि को कम से कम चार पुत्र रत्न प्राप्त थे । इनके तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र ने 'शृंगारकोशभाण' की रचना की है, जिसमें उन्होंने अपना परिचय स्वयं दिया है ।

उनका कथन है कि भरद्वाज कुलमें कौस्तुभ मणि की तरह कैयट व्याख्यान, शिवतत्त्वरहस्य आदि प्रबन्धों के निर्माता, अद्वैत विद्या के आचार्य पवित्र नीलकण्ठमखी के तृतीय पुत्र, अपने पिता के चरणकमलों में अध्ययन करने वाले तथा उनके गुणों का अनुवर्तन करने वाले गीर्वाणेन्द्र द्वारा रचित यह शृंगारकोशभाण' है ।[७२]

'शिवलीलार्णव' की भूमिका में टी.एस.कुप्पुस्वामी लिखते हैं कि नीलकण्ठमखी मधुरानगरी में तिरुमल नायक की सभा में सार्वभौमपंडित और मुख्य अमात्य थे । उनके पुत्र भी उसी नगरी में निवास करते थे । यह अंश कवि के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्दु ने अपने ग्रन्थ 'शृंगारकोशभाण' में सूचित किया है :

शृंगारकोशोनामभाणइत्यधुनैव खलु निवेदितं मधुरापुरादागतेन रंगकेतुना ।।[७३]

प्रस्तुत अंश से स्पष्ट हो जाता है कि रंगकेतुगीर्वाणेन्द्र के अनुज और कवि नीलकण्ठ के चतुर्थ पुत्र थे ।

अब शंका यह उठती है कि एक ही वंश में तीन व्यक्ति अप्पय नाम के कैसे हुए । इस शंका को प्रकट करते हुए डॉ. राघवन् (प्रोसीडिंग ओफ दि टेन्थ सेशन आफ आल इंडिया ओरियन्टल कान्फ्रेन्स, पृ.सं. १७६–१८०) ने बताया है कि एक ही परिवार को तीन पीढ़ियों में अप्पय नाम के तीन व्यक्ति पैदा हुए हैं । इस निरूपण से पर्याप्त भ्रम उत्पन्न होता है ।[७४]

किन्तु अब इस भ्रम का निराकरण हो चुका है । ये तीन व्यक्ति अप्पयदीक्षित वंश के ही हें और अप्पय प्रथम, अप्पय द्वितीय तो अप्पय तृतीय के नाम से विख्यात हैं । इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित वंशावली से हो जाएगा ।

अतएव श्रीमद्नीलकण्ठदीक्षित के वंश की सम्पूर्ण विस्तृत वंशावली इसप्रकार हुई –

३.१.४ वंश–वृक्ष

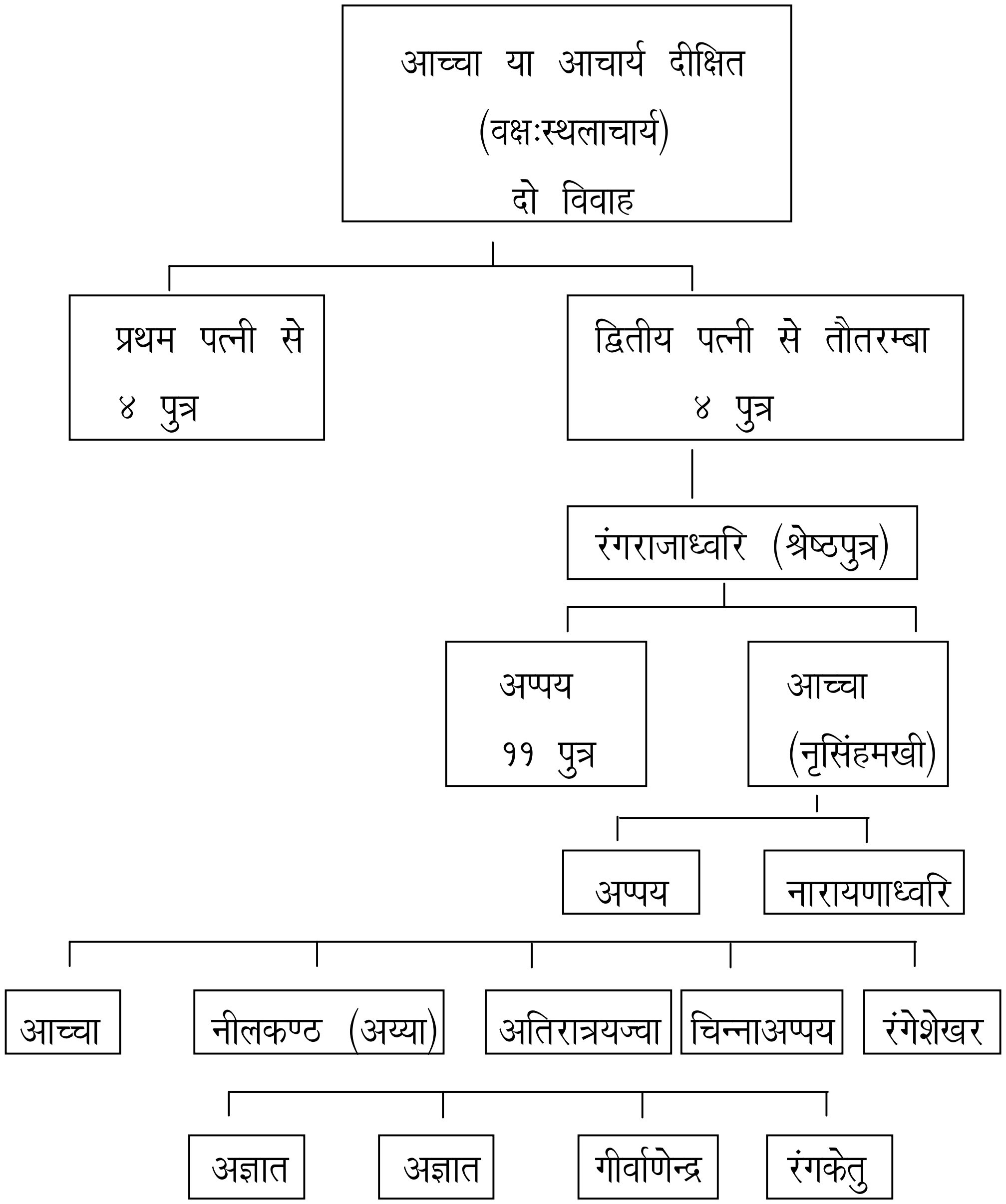

अप्पय दीक्षित ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में इनके लिए यह भविष्यवाणी भी की थी कि नीलकण्ठदीक्षित पाण्ड्य नायक के मंत्री होंगे।[७५]

यदि इस कथन को सत्य मानें, तो शिवानन्द द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त अभिषेक एवं साचिव्य का कथन असत्य हो जाएगा और यदि यह मानें कि सन् १६२३ ई. में तिरुमल का अभिषेक किया तो यह नहीं माना जा सकता कि

१६२६ ई. में अप्पयदीक्षित ने कवि के मंत्री बनने की भविष्यवाणी की थी । इसके अतिरिक्त 'नलचरितनाटकम्' की भूमिका में उद्धृत पी.पी.एस. शास्त्री के कथन से 'अप्पयदीक्षितेन्द्रविजय' में वर्णित के.एस. सुब्रह्मण्यम् शास्त्री के कथन का खंडन हो जाता है क्योंकि यदि नीलकण्ठ दीक्षित अपने माता–पिता, पितामह, सबकी मृत्यु के बाद अप्पयदीक्षित के संरक्षण में गए, तो पी. पी. एस. शास्त्री का कथन है कि अप्पयदीक्षित की मृत्यु के बाद उन्होंने अपनी माता के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, असंगत–सा प्रतीत होता है ।

इतना ही नहीं, कवि के काल–निर्णय के उपलक्ष्य में एक मत और उपस्थित होता है ।

श्री वाई. भट्टिलिंग शास्त्री काणे के मत से सहमत नहीं है । उनके मत को काणे महोदय ने स्वयं अपनी पुस्तक "History of Sanskrit Poetics" में उद्धृत किया है, जिसका हिन्दी रूपान्तर इसप्रकार है –

श्री वाई. भट्टिलिंग शास्त्री (जे.ओ.आर. मद्रास भाग ३ पृ. १४०–१६०) ने अप्पयदीक्षित की) इस तिथि को नितान्त संदिग्ध माना है । इनके मत में अप्पयदीक्षित की जन्मपत्रिका के सम्बन्ध में उनके जीवन चरित्र के लेखकों द्वारा रचे गए इन दो पद्यों में उल्लिखित अप्पय की जन्म पत्रिका कृत्रिम है ।

वीणातत्त्वज्ञसंख्यालसितकलिसभाभाक्प्रमादीचवर्षे
कन्यामासे तु कृष्णप्रथमतिथियुतोऽप्युत्तरप्रकोष्ठ पादे ।
कन्यालग्नेऽद्रिकन्यापतिरभितदयाशेवधिर्वैदिकेषु
श्रीगौर्यैर्प्राग्यथाह स्म समजनि विरिंचीशपुर्यांकलेशः ।।
लग्ने रवीन्दु सुतयोर्मकरे च मन्यौ ।
मीने शशिन्यथ वृषे रविजे च राहौ ।।
चाषे गुरौ क्षितिसुते मिथुने तुलायां ।
शुक्रे शिखिन्यलिगते शुभलग्न एवम् ।।[७६]

इन्होंने यह भी कहा है कि इनकी रचनाओं में आए हुए चिन्ना, तिम्मा, चिन्नवोमा तथा वैकट राजाओं के नामों से उनका समय १५२० ई. से १५६३ ई. के बीच माना जाना चाहिए । अप्पय के पूर्वजों के निवास स्थान अद्यपालम् में कलाकठेश्वर नामक मंदिर के एक शिलालेख की तिथि १५०४ शक अथवा १५८२ ई. है । उपर्युक्त लेखकों ने इस तिथि को अप्पय की तिथि निर्धारण का आधार माना है (पृ. १४१–१४६) । इसकी लिपि के अनुसार वे रंगराज के पुत्र थे तथा चिन्नवोमा उनके आश्रय दाता थे और इन्होंने १०० ग्रन्थ लिखे थे ।

श्री शास्त्री के अनुसार अप्पयय् १५५२ ई. में वृद्ध हो चुके होंगें । यह तर्क देना सम्भव है कि किसी व्यक्ति ने अप्पय की मृत्यु के बहुत समय बाद यह शिलालेख खुदवाया हो, साथ ही यह कैसे स्द्धि किया जा सकता है कि यह लेख अप्पयय् के जीवन–काल में ही खोदा गया होगा । श्री शास्त्री के अनुसार यदि अप्पयय की १५६३ ई. सन् में मृत्यु मानी जाए, तो उनके जीवन से सम्बद्ध कतिपय तथ्यों की व्याख्या करनी कठिन हो जाएगी ।[७७]

इसप्रकार शास्त्री के इस मत को आधार मानकर कवि नीलकण्ठदीक्षित का काल निर्णय करना असम्भव है । काणे महोदय ने श्री शास्त्री द्वारा प्रतिपादित अप्पयदीक्षित के समय (१५२०–१५६३) का खंडन किया है –

"I am not prepared to place implicit reliance on the insription referred to by Mr. Shastri and would still stick to the generaily accepted dates of 1554-1626 A.D."[७८]

इसप्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर सिद्ध होता है कि अप्पय दीक्षित के निर्वाण–काल में नीलकण्ठ दीक्षित १२ वर्ष के थे ओर उपर्युक्त तृतीय मत को बहुत तर्कसम्मत नहीं कहा जा सकता है ।

कवि के काल–निर्णय सम्बन्धी उपर्युक्त तीनों मतों के समर्थक अपनी अपनी उपपत्तियाँ प्रस्तुत करके अपने–अपने पक्ष का समर्थन करते हैं, किन्तु

१६०० ई. के लगभग कवि का समय मानना अधिक प्रमाणिक और तर्कसंगत प्रतीत होता है ।

राजकार्य से विश्राम लेने बाद कवि ने संन्यास ले लिया था परन्तु उसके बाद उन्होंने कितना समय व्यतीत किया, उनकी आयु की पराकाष्ठा के विषय में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता । उनके ग्रन्थों से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि वे वृद्धावस्था अवश्य प्राप्त कर चुके थे । पी.पी.एस.शास्त्री भी इसी मत के समर्थक हैं ।[७६]

नीलकण्ठ दीक्षित के कुछ शिष्यों द्वारा इतना संकेत अवश्य मिलता है कि तमिल मास मारगाझी के शुक्ल पक्ष से ८ दिनों पूर्व कविका निर्वाण समय है । राजा द्वारा एक ग्राम उनको दान में दिया गया था, जो तमिलनाडु में तिन्नेवैली जिले के अन्तर्गत ताम्रपर्णी नदी से बाएँ तट पर बसा हुआ है और पालामडई नाम से प्रसिद्ध है । यहीं पर कवि ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों को व्यतीत किया था । इस गाँव में मन्दिर के निकट एक समाधि है जिसे नीलकण्ठ दीक्षित की समाधि बताई जाती है । उस मन्दिर में आज भी उनके निर्वाण–दिवस के उपलक्ष्य में आराधना–दिवस के नाम से उत्सव मनाया जाता है । जनश्रुति है कि अपने निर्वाण के समय अप्पय दीक्षित ने जो विनायक विग्रह और स्त्रीचक्र नीलकण्ठ को आशीर्वाद रूप में दिए थे,[८०] उन्हें नीलकण्ठ दीक्षित ने आजीवन सुरक्षित रखा और आज भी वे पालामडई गाँव (ग्राम) में बनी समाधि के निकट किसी शिवमंदिर में उनकी पुण्य–स्मृति हेतु सुरक्षित रखे हुए हें ।

३.१.५ अध्ययन

कवि के वंश–परिचय से ज्ञात होता है कि कवि को ज्ञान प्राप्ति का अवसर परम्परा से ही प्राप्त था क्योंकि उनके पूर्वज, पिता, पितामह, प्रपितामह आदि सभी शास्त्र के ज्ञाता, कवि तथा पंडित थे । कवि के परिवार का समस्त

पर्यावरण ही शैक्षिक था । कवि ने अपने ग्रन्थ ''गंगावतरण'' में अपने गुरु का परिचय दिया है –

वार्तिकाभरणग्रन्थनिर्माणव्यक्तानैपुणः ।
श्रीवेंकटेश्वरमखीशिष्ये मय्यनुकम्पते ।।[८१]

इस उद्धरण में कविने अपने को वेंकटेश्वरमखी का शिष्य स्वीकार किया है और यह वेंकटेश्वरमखी वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न गोविन्द दीक्षित के पुत्र, मीमांसा ग्रन्थ की टुप टीका की व्याख्या वार्तिकाभरण तथा 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' के रचयिता थे । दर्शन के विद्वान् होने के कारण कवि ने षड्दर्शन की शिक्षा वेंकटेश्वरमखी से तिरुवेल्लूर में प्राप्त की थी । इसके अतिरिक्त व्याकरण तथा शैव–दर्शन का अध्ययन कवि ने अपने पितामह अप्पय दीक्षित से भी किया था । यद्यपि इनके पितामह आच्चा दीक्षित भी व्याकरण तथा षड्दर्शनों के ज्ञाता थे,[८२] किन्तु उनके साथ कवि की उपस्थिति का संकेत कहीं भी प्राप्त नहीं होता ।

शैवदर्शन के तत्कालीन सर्वोच्च विद्वान् अप्पय ही थे और उन्होंने 'श्रीकण्ठमत' 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' पर 'शिवाकर्मणि दीपिका' की रचना करके इस कथन की पुष्टि भी कर दी है –

श्रीकण्ठदेशिकग्रन्थसिद्धान्तद्योतचन्द्रिका ।
श्रीमतीनिर्मिता येन शिवाकर्मणिदीपिका ।।[८३]

इस विषय में कवि नीलकण्ठ का कथन है कि जिस शिवतत्त्व को आगमों द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है, उसे अप्पय दीक्षित के मुख से सुनकर कोई बालक भी सरलता से ग्रहण कर सकता है –

आगमैरप्यसंवेद्यमाद्यं येतत्त्वमैश्वरम् ।
आकुमारं परिज्ञातं तदेवासीद्यदुक्तिभिः ।।[८४]

इससे अनुमान किया जा सकता है कि शैवतंत्र का अध्ययन भी कवि ने अप्पयदीक्षित से ही किया था ।

श्री ए. वी. गोपालाचारी ने यादवाभ्युदय की भूमिका में लिखा है कि अप्पयदीक्षित का कवि पर बहुत स्नेह था और व्याकरण के वे असाधारण पंडित थे । वैयाकरण मूर्धन्य भट्टोजी दीक्षित भी व्याकरण शास्त्र में उनका लोहा मानते थे । अप्पयदीक्षित की महत्ता, उनके मस्तिष्क की विशालता एवं निःस्वार्थ स्वभाव से प्रेरित और प्रभावित होकर ही उन्होंने एक शैवभक्त को अपना गुरु बनाया था, जबकि वे स्वयं कट्टर विष्णुभक्त थे ।[८५]

पंडितराज जगन्नाथ जी ने स्वयं अपने ग्रनथ 'शब्दकौस्तुभ सनोत्तेजन' में एक स्थल पर अप्पय द्वारा भट्टोजीदीक्षित को दिए प्रोत्साहन प्रसंग का उल्लेख किया है –

अप्पयदुग्रहविचेतितचेतनानां ।
आर्यद्रक्षा................ ।।[८६]

कुप्पुस्वामी लिखते हैं –

शाब्दिकसार्वभौमश्रीमान्भट्टोजीदीक्षितोऽपि तानेव गुरुन्प्रार्थयमानस्तेभ्य एवाध्यैष्ट श्रीमद्भाष्यं ब्रह्मसूत्राणां श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीतम् ।[८७]

और भट्टोजी की प्रार्थना पर ही अप्पयदीक्षित ने 'नक्षत्रवादावली' नामक एक व्याकरण ग्रंथ की रचना की ।[८८] अतः यह कथन तर्कसंगत है कि व्याकरण का अध्ययन कवि ने अप्पयदीक्षित से ही किया था ।

अपने पितामह भ्राता अप्पयदीक्षित से शिक्षा ग्रहण करने के बाद नीलकण्ठदीक्षित उनमें आशीर्वाद स्वरूप पञ्च शिवलिंग, ईशान, तत्पुरुष, अघोर, सत्योजात तथा वामदेव और दो ग्रंथ 'देवी माहात्म्य' और 'रघुवंश' प्राप्त करके तुरन्त चिदम्बर से प्रस्थान करके वेंकटेश्वरमखी के समीप पहुँचे ।[८९]

जो तञ्जौर के राजा श्री रघुनाथ नायक के (जिन्होंने १६७२ ई. तक शासन किया था) राजकवि थे[९०] और वेंकटेश्वरमखी तञ्जौर जिले के पतीश्वरम् गाँव (ग्राम) के निवासी थे । यहाँ दर्शनाध्ययन समाप्ति के बाद कवि परम्परा नुकूल त्रिचिन्नापली के निकट चिन्तामणि नामक स्थान पर कावेरी में स्नान करते

समय सौभाग्यवशात् उपस्थित हुए । गीर्वाण योगीन्द्र द्वारा तंत्र–विद्या और मंत्र दीक्षा से दीक्षित हुए । 'शिवलीलार्णव' महाकाव्य में कवि ने अपने गुरु गीर्वाणयोगीन्द्र की उपासना करते हुए उल्लेख भी किया है –

गीर्वाणयोगीन्द्रमुपास्महे तम् ।[६१]

अनुमानतः नीलकण्ठ ने अपने गुरु के ग्रन्थ 'प्रपञ्चसार संग्रह' के आधार पर अपने जीवन के अन्तिम क्षणों के एक तंत्र ग्रन्थ 'सौभाग्यचन्द्रातप' की रचना की थी ।

गीर्वाणयोगीन्द्र १७ वीं शताब्दी के महान् तान्त्रिक विद्वान् थे और नीलकण्ठदीक्षित एक अति लघु काव्य 'गुरुतत्त्वमालिका', जिसमें कुल २८ श्लोक हैं की रचना करके अपने तंत्र गुरु गीर्वाणयोगीन्द्र की गुरु दक्षिणा से मुक्त भी हुए थे ।[६२]

साहित्यशास्त्र का अध्ययन कवि ने साहित्यशास्त्र में पारंगत अपने पिता से किया था ।

इस कथन की पुष्टि नलचरितनाटकम् के अधोलिखित अंश से हो जाती है –

परिपार्श्विक :

(साश्चर्यम्) इदमनेन शास्त्रसाहित्ययोः कौशलमासादितं किमनुग्रहेण ।

सूत्रधार :

कस्य वा पुनरन्यास्यानुग्रहेण भविष्यति । तत्र भवत्याः परदेवतायास्तदवतारस्य च भगवतो नारायणाध्वरिणः प्रसादेन ।[६३]

नीलकण्ठदीक्षित को निर्भ्रान्त तथा गम्भीर ज्ञान के प्रति बहुत आग्रह था । तभी उन्होंने इतस्ततः भ्रमण करते हुए, प्रत्येक विषय के विद्वान् के समीप रहकर तत्तद् विषयों का अध्ययन किया था । इस तरह कवि ने शैवागम, साहित्य, व्याकरण, दर्शन आदि सभी विषयों पर गहन अध्ययन किया । कवि स्वयं शैवमतानुयायी था तथापि शैवशास्त्र के साथ ही साथ वैदिक साहित्य, पुराणों तथा

स्मृतियों का भी अध्ययन किया था । इस तथ्य का संकेत हमें 'शिवतत्त्वरहस्य' ओर 'अघविवेक से प्राप्त होता है –

शिवतत्त्वरहस्य में वर्णित शैवागम तथा पुराण :

कामिकागम, वामुलागम, स्कन्दपुराण, वशिष्ठलिंग पुराण, शिवपुराण, शिवत त्त्वविवेक, साम्बपरुाण तथा शिवार्चन चन्द्रिका ।

विष्णुपुराण तथा स्मृतियाँ

विष्णुपुराण, पद्मपुराण, वाराहपुराण, कूर्मपुराण, हरिवंश, महाभारत, ब्रह्माण्ड पुराण, मत्स्य पुराण और भगवद्गीता ।

स्मृति ग्रन्थ

याज्ञवल्क्यस्मृति तथा माधवीयस्मृतिरत्न ।

वैदिक–ग्रन्थ

यजुर्वेद, वाजसनेयि संहिता, षड्विंश ब्राह्मण,
तैत्तिरीयोपनिषद्, मैत्रायणीयोपनिषद्, बौधायनसूत्र आदि ।

दर्शन–ग्रन्थ

ब्रह्मसूत्र, सारथसप्तति, पातञ्जलयोगशास्त्र ।

साहित्यग्रन्थ

रघुवंश, शिशपालवधम्, किरातार्जुनीयम्, नैषधीयचरितम् ।

अघविवेक में उल्लिखित स्मृति–ग्रन्थ

गौतम, मरीचि, वशिष्ठ, मनु, वृहन्मनु, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, हारीत, भारद्वाज, देवल, जाबालि, विष्णु, व्याघ्र, व्यास, अंगिरा, पारस्कर, लौगाक्षि व नारद आदि से सम्बद्ध स्मृतियाँ ।

अघविवेक के आरम्भ में कविने लिखा है कि समस्त स्मृतियों तथा संग्रह ग्रंथों का अध्ययन करके ही इस ग्रन्थ की रचना की गई है ।[६४]

कवि के वृहत् ज्ञान का अनुमान उनके रचे ग्रन्थों से ही किया जा सकता है । जब कवि ने महाकाव्य चम्पू, स्तोत्र, नाटक, अन्योक्ति तथा मुक्तक आदि काव्य के सभी क्षेत्रों को अपनाया है, तो यह कल्पना करना कठिन नहीं है कि कवि ने प्रत्येक शाखा के कितने ग्रन्थों का अनुशीलन किया होगा ।

व्याकरण में कवि ने कैयूयट व्याख्या की रचना की, जिसका उद्देश्य कवि के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'शृंङ्गार कोशभाण' में पूर्ण किया है ।[६५]

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि के अध्ययन में गहन अनुशीलन, निरन्तर चिन्तन तथा विचार मंथन का समुचित समावेश था ।

३.१.६ कवित्व शक्ति

नीलकण्ठ दीक्षित की कवित्व शक्ति अद्वितीय थी । उन्होंने अनेक विधाओं में काव्य–रचना की । गीति–काव्य, नाटक, चम्पू, गद्यकाव्य तथा शास्त्रीय गद्य सभी कुछ लिखने की सामर्थ्य उनमें थी और उन्होंने उसका उपयोग भी किया । उनमें गीतिकाव्य लिखने के लिए भावसंकुलता भी थी तथा महाकाव्य लिखने के लिए जीवन को व्यापक फलक पर देखने के लिए दृष्टि भी और व्यंग्यपूर्ण लघु काव्य लिखने के लिए क्षेमेन्द्र की सूक्ष्म पर्यवेक्षण तथा उपहास करने की प्रवृत्ति भी थी । नीलकंठ दीक्षित की शक्ति का वैशिष्ट्य संतुलन में है ।[६६]

चाहे भयानक युद्ध का वर्णन ही क्यों न हो । यथा –

ज्योनिर्घोषच्छादिताशावकाशं
नणासारध्वस्तहस्त्वश्वयांधम्
रक्तस्रोतः पातस्तं समन्ता
ज्जज्ञे युद्धं तस्य चाखण्डलस्य ।।

क्रन्ददन्वदिपमपसरत्सैन्धवाद्धूतयोध –

प्रत्युद्धारव्यसनविमुखाप्ततनादातजातम् ।

यावद्देवप्रवरसमरोदन्तयाथार्थ्यबोध –

भ्राम्यत्योरनगरमभवज्जर्जरं निर्जराणाम् ।।[९७]

या मनोरम प्राकृतिक दृश्यों का –

उदन्वतामुदरतलेषु शोषिता –

स्तदीरिता लवणमया महाद्रयः ।

समन्ततः सदसि विधातुरुधयु –

र्महोपला इव युधि यन्त्रनिःसृताः ।।

प्रकल्पयन् प्रथमहर्निशाकरां

प्रणाशयन्कवलितविष्टपं तमः ।

विशेषयन्सलिलमशेषमुत्थितं

विनिर्ममे विधिरमरेलयं पुरः ।।[९८]

कवि सभी परिस्थितियों में समान रूप से सभी तथ्यों के वर्णन में सिद्धहस्त है । इनकी यह विशेषता आत्मसंयम, तटस्थता और काव्यसाधना से उत्पन्न हुई है । भवभूति की भाँति वे अत्यधिक भावाभिभूत कभी नहीं होते और न शाब्दिक चमत्कार के फेर में ही पड़ते हें । अतः उनके चम्पू काव्य का स्वर सामञ्जस्यपूर्ण और मनोज्ञ है ।[९९]

कवि की समस्त कृतियों की समीक्षा ही कवि के कवित्वशक्ति का द्योतक है । यदि उनके महाकाव्य भक्तिभाव युक्त हैं, तो नाटक शृङ्गार रस से ओत प्रोत है । चम्पू अद्भुत रस प्रधान है, तो मुक्तक शान्त रस का सागर ।

साथ ही नीलकण्ठ ने अपनी वंश–परम्परा को आत्मसात् करके उस पर शताब्दियों से लगी काई को साफ करके, उसके स्थिर विजड रूप को मनुष्य के हृदय की अन्तः स्फूर्ति और संवेदन को जोड़कर गतिमान भी बनाया । अतः इस दृष्टि से उन्हें कालिदास और भवभूति के साथ ही रखा जाना चाहिए ।

इसप्रकार नीलकण्ठ ने परम्परा को जिस प्रकार हृदय की आन्तरिकता में जीवन्त बना दिया है, उससे हम उनकी कवित्व शक्ति, प्रतिभा, नूतनता तथा अलौकिकता का अनुमान कर सकते हैं ।

३.१.७ विकसित मेधा के धनी कवि नीलकण्ठदीक्षित

सर्वोत्कृष्ट श्रेणी के परम्परागत विद्वानों के वंश में उत्पन्न नीलकण्ठदीक्षित प्रखर व्यक्तित्व वाले कवि थे । तभी जिन शब्दों में कविने अपने ग्रन्थों में अप्पय दीक्षित की प्रशंसा की है, उन्हीं या उनसे श्रेष्ठ प्रबल शब्दों में नीलकण्ठ की, उनके अनुज तथा पुत्रों ने उनकी अपने ग्रन्थों में की है । इसके साथ ही दीक्षित वंश में अप्पय दीक्षित के बाद अन्य विख्यात विद्वान् भी वहीं हुए हैं । इस प्रशंसा तथा ख्याति का कारण उनके व्यक्तित्व के साथ उनकी विकसित एवं विस्तृत प्रतिभा की प्रखरता थी । कवि के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र ने कवि की प्रशंसा का जो परिचय अपने ग्रन्थ 'शृङ्गारकोशभाण' में दिया है, उससे कवि की प्रतिभा का समुचित अनुमान किया जा सकता है –

अस्त्यसेकगुणो हिमाद्रिशिखरोत्संगात् पतज्जाह्न्वी

....

सर्वज्ञोहीरदन्तविश्रुतयशः श्री नीलकण्ठाध्वरी ।।

अपि च

यस्मिन्क्षोणिभुजां सभासुविदुषामग्रेसरे जानुचि ।

....

स्वेदाम्भः कणासिक्तसर्वतनवो दीनाः प्रतिद्वन्दिनः ।।[१००]

इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण कवि का शिष्यत्व ग्रहणकर उनके गुणों का यशोगान विद्वान् चोवकनाथमखी के जमाता श्री रामभद्रमखीन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'शृंगारतिलकभाण' में इसप्रकार किया है –

श्री नीलकण्ठमखिनां सदसि सकृत्प्रविष्टस्यापि समुल्लसति सरसपदसंदर्भवैदग्धी । अस्य पुनः कवेस्तदीयशिष्यस्य विशिष्टस्य सद् जनानुरक्तस्य किमुवक्तव्यम् ।[१०१]

कवि ने अप्पयदीक्षित को दीक्षित वंश का द्वितीय शंकर या शंकर का अवतार कहकर उनकी प्रशंसा की है, ठीक उसी प्रकार उनके अनुज और पुत्र ने भी अपने अपने ग्रन्थों में कविको साक्षात् गौरी का अवतार मानते हुए उनकी प्रशंसा की है –

'कुशकुमुद्वतीय' नाटक में इनके अनुज का कथन है कि –

दिगन्तविश्रान्तकीर्तिरपारमहिमा मानवाकृतिः साक्षादेव
दाक्षायणी वल्लभः श्रीकण्ठमतसर्वस्ववेदी श्री नीलकण्ठाध्वरी ... ।[१०२]

तथा 'शृंगारकोशभाण' में पुत्र के शब्दों में –

भरद्वाजकुल जलधिकौस्तुभस्य कैयटव्याख्यानशिवतत्त्वरहस्याद्यनेक प्रबन्धनिर्मातुरद्वैतविद्यागुरोर्भगवत्याःपरमदेवाय एव पुरुषावतारस्य पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठमखिनः ।[१०३]

इसप्रकार अप्पयदीक्षित के पश्चात् द्वितीय प्रसिद्ध विद्वान् नीलकण्ठदीक्षित थे । अतः अप्पयदीक्षित यदि शंकर के अवतार थे, तो नीलकण्ठदीक्षित को पुरुष रूप में गौरी का अवतार कह देना उनके लिए उपयुक्त ही है ।[१०४]

उनकी विकसित प्रतिभा की पुष्टि इससे भी अधिक उनके राजसेवाकार्य से हो जाती है । कवि नीलकण्ठदीक्षित नायकवंश के सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वशक्तिमान् राजा के मंत्री तथा परामर्शदाता (डलवाय[१०५] = परामर्शदाता) थे । अतः राजा के साथ–साथ वे व्यवहार तथा नीतिकुशल व्यक्ति अवश्य रहे होंगे, अन्यथा सम्मानपूर्वक इतनी दीर्घकालीन अवधि राजदरबार में व्यतीत करना सम्भव न होता । राजा अथवा उसके द्वारा राज्य प्रबंध के लिए नियुक्त अधिकारी में यदि वांछित ज्ञान का अभाव होता है, तो सम्पूर्ण राज्य में अव्यवस्था फैल जाती है । अपनी राजनीति कुशलता का परिचय कवि ने स्वयं यह कहकर दिया है कि राज्यसभा में एक दूसरे पर मिथ्या आरोप लगाए जाते हैं ।[१०६]

अतः राजकार्य एवं राजनीति के विषय में भी कवि का ज्ञान विस्तृत था । इसके साथ ही ज्योतिषज्ञान का परिचय भी कवि ने अपने ग्रन्थ 'अघविवेक' में दिया है ।[१०७]

'शिवलीलार्णव' में भी कवि ने अनेक स्थलों पर ज्योतिष की चर्चा की है –

ताराग्रहाणां पंचानां जाता या क्वापि वक्रता ।[१०८]

अपि च –

अवश्वत्थे क्षणमम् .... योगम् ।।[१०९]

इसके अतिरिक्त कवि ने 'नीलकण्ठ विजय–चम्पू' में अपनी व्यस्तता का भी परिचय दिया है –

यः संरम्भः कृतिविरचने दुष्कवीनाममेद्यो
यच्चैकाग्र्यं तदुचितपदान्वेषणे चित्तवृत्तेः ।
लभ्यं तच्चेदपि कवयतामन्ततस्त्रीण्यहानि –
स्यादेवं किं सरसकविता राज्यदुर्भिक्षयोगः ।।[११०]

अर्थात् कुकवियों के ग्रन्थ निर्माणोपयोगी पदों के अन्वेषण में प्रस्तुत चित्त की एकान्तता का आग्रह तीन दिन के लिए भी यदि सत्कवि (हमारे सदृश कवि) को प्राप्त हो जाए, तो अच्छी कविता की कमी न रह जाए ।

इसप्रकार कवि की यह व्यस्तता एवं कार्य बहुलता राज्य से ही सम्बन्धित रही होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है । अतः अपने जीवन की ३५ वर्षों की दीर्घावधि तक राजसभा में राजकार्य में रत रहने वाले कवि की समस्त उपलब्ध एवं अनुपलब्ध कृतियों से ही उनकी नैसर्गिक प्रतिभा, ज्ञान तथा विद्वता का निर्णय किया जा सकता है और ऐसे कवि के लिए यह कहना सर्वथा न्याय संगत ही होगा कि संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में कवि की इस देन का श्रेय कवि के परिश्रम से अधिक कवि की विकसित प्रतिभा की है । कवि की बहुमुखी

प्रतिभा का संकेत हमें 'कुशकुमुद्वतीय' नाटक के एक अंश से भी प्राप्त हो जाता है ।[१११]

अतः कविनीलकण्ठ साहित्यकार, तन्त्रकार, सलाहकार, मैत्री, पुरोहित, कवि आदि सभी कुछ थे । वस्तुतः विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने में उनका प्रबल आग्रह था । कविका कथन है कि हमें समस्त विद्याओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए । उसके उपयोग का अवसर तो मनुष्य के जीवन में कभी भी प्राप्त हो सकता है ।[११२]

इसप्रकार नीलकण्ठदीक्षित वास्तव में सर्वज्ञ थे, इस सम्बन्ध में किंचित् मात्र भी सन्देह की आशंका नहीं की जा सकती है ।

३.१.८ स्वभाव निरूपण

नीलकण्ठदीक्षित अत्यन्त भावुक, स्वाभिमानी तथा रागात्मक प्रकृति के व्यक्ति थे । भावों को ग्रहण करने एवं उनका अनुभव करने में वे बहुत निपुण थे । जिस प्रकार सुगन्धि व्यक्ति का मन मोहकर अपनी ओर आकर्षित करती है और दुर्गन्ध पल भर में स्थान छोडने के लिए बाध्य कर देती है । उसीप्रकार उक्ति की कठोरता को सहने में असमर्थ नीलकंठ का हृदय काव्य गुणों की भाँति दोषोक्ति से उत्पन्न पीडा को सहन करने में असमर्थ था ।

शृण्वन्तु ते दुष्कवितां परेषां
श्रोत्रेषु तप्तं जतु यैर्निषिक्तम् ।
शब्दार्थयोर्दुष्कविवक्रमाजोः
किं दुष्कृतं स्यादवधारयन्तु ।।[११३]

अर्थात् दूसरे की दुष्कविता को वे ही लोग सुनें, जिन्होंने पहले से अपने कान में पिघला हुआ गर्म लाख डाल रखा हो और तब यह निर्णय करें कि दुष्कवियों के मुख में रहने वाले शब्द और अर्थ कितने दुष्कर्म करते हैं ।

धीरे–धीरे अवस्था वृद्धि के साथ–साथ उनका झुकाव वैराग्य की ओर होता गया । सम्भवतः उनके जीवन की परिस्थितियाँ भी इसका कारण थी । 'शान्तिविलास' में उद्धृत एक अंश से प्रतीत होता है कि जीवन के अन्तिम दिनों में सम्भवतः कवि को अपनी पत्नी और पुत्रों से वैमनस्य हो गया था, जिसके कारण वैराग्य की भावना उनके मन में और अधिक पनपी तथा समृद्ध हुई थी ।[११४]

जीवन के अन्तिम चरण में पहुँच कर नीलकण्ठ सम्भवतः अपने मन की अकथनीय व्यर्थ की भाग–दौड़ और कुप्रवृत्तियों से व्यथित भी होते रहते थे ।[११५] कुछ आक्रोश और विक्षोभ से युक्त प्रकृति उनकी प्रारम्भ से ही थी, जो उनके समसामयिक कवियों पर व्यंग्य करते फूट पड़ी है ।[११६] व्यंग्य और विनोद की ओर उनका झुकाव प्रारम्भ से ही था और अन्त तक बना रहा ।[११७] नलचरित में विदूषक की विनोद गर्भ उक्तियाँ कलिविडम्बन व सभारंजन के विभिन्न अंगों पर करारे व्यंग्य, 'गंगावतरण' में गर्वीली गंगा के शंकर की जटाओं में फँसने पर उपहासास्पद स्थिति,[११८] इन सब प्रसंगों में उनकी विनोदगर्भित चेतना झलकती है । व्यंग्य कवि के रूप में नीलकण्ठ दीक्षित ने क्षेमेन्द्र को भी पीछे छोड़ दिया है । क्षेमेन्द्र की भाँति उनमें गहरी सामाजिक चेतना की विकृतियों को उभाड़कर सामने रखने की साहसिक प्रवृत्ति है, परन्तु क्षेमेन्द्र में जो कहीं सुरुचि का खटकने वाला अभावमिलता है वह नीलकण्ठ में कहीं नहीं है ।[११९] 'कलिविडम्बनम्' में नीलकण्ठ ने मंत्रियों, दैवज्ञों, कवियों, पंडितों, वैद्यों, स्त्रियों आदि पर जितनी मीठी चुटकी ली हे, वे उनके प्रत्युत्पन्नमतित्व तथा सूझ–बूझ का परिचायक है । अपने पूर्ववर्ती या सामाजिक कवियों की तरह नीलकण्ठ में अनावश्यक गर्व और डींग हाँकने तथा अपनी कवित्व – शक्ति का व्यर्थ में दम्भ भरने की प्रवृत्ति कहीं भी नहीं मिलती ।[१२०] हाँ, उन्हें कहीं अनुचित रूप से उपेक्षा या उपहास मिला, तो उन्होंने उसका अवश्य आत्मविश्वास के साथ उत्तर

दिया । वस्तुतः वे शिष्ट व विनम्र प्रकृति के थे ।[१२१] आत्मविश्लेषण तथा अपनी त्रुटियों या हीनताओं पर पश्चात्ताप करने की प्रवृत्ति भी उनमें थी ।[१२२]

नीलकण्ठ दीक्षित का हृदय स्नेह और वात्सल्य से परिपूर्ण था । कालिदास की भाँति वे शिशु के प्रति स्नेह की अभिव्यक्ति दिखाने का कोई अवसर नहीं छोड़ते । 'शिवलीलार्णव' महाकाव्य में यज्ञवेदिका से उत्थित कथा के वर्णन में, राजा मलयध्वज तथा उनकी महिषी काञ्चनमाला का उसे देखकर स्नेह द्रवित होने के चित्रण में तथा उसकी दिग्विजय यात्रा में ग्रामवधुओं को उसे देकर प्रतिक्रिया में[१२३] नीलकण्ठ का वात्सल्यपूर्ण हृदय छलक उठा है । शिशु के प्रति माता पिता के प्रेम की अन्तरंग अनुमति कवि ने अवश्य की होगी –

आलिंग्न्त्यसकृदनुक्षणं स्पृशन्ती
चुम्बन्ती मुखकमलं मुहुर्मुहुश्च ।
पश्यन्ती विकसितपक्ष्मभिः कटा
स्तां बालामलभत निवृत्तिं न माता ।।
आनन्दत्रुटितावशीर्णकञ्चुकान्ता –
बक्षोजादथ मलयध्वजप्रियायाः ।
अन्वस्यन्दत मधुरं पयः प्रभूतं
बिभ्रत्यास्त्रिभुवनमातरं कुमारीम् ।।
प्रेयस्या सविधमुपेत्य दीयमाना –
मुहलुत्य स्वयमुपगूहितं पतन्तीम् ।
कन्याताममृतमयीमिवाददानः
कैवल्यं धरणिपतिस्तृणाय मेने ।।[१२४]

अर्थात् कई बार उसका आलिंगन करती, हर क्षण स्पर्श करती, बार बार उसके मुख कमल का चुम्बन लेती हुई विकसित पलकों वालीमाता के कटाक्ष द्वारा उस कन्या को देखने पर संतोष प्राप्त नहीं होता था । इसके पश्चात् मलयध्वज की पत्नी का अत्यन्त आनन्द के कारण कंचुकी बंधन टूट जाने से ओर

त्रिभुवनमाता स्वरूप कन्या को धारण करने से रानी के स्तनों से मधुरदुग्ध निकल पड़ा । रानी के समीप आने पर उसके द्वारा दी जाती हुई वह कन्या राजा का आलिंगन करने के लिए स्वयं कूदने से गिर पड़ी । उस अमृत–तुल्य कन्या को पाकर राजा ने मोक्ष को भी तृणतुल्य समझा ।

इसप्रकार कवि वास्तविक जगत् की काव्यकल्पना में माता–पिता द्वारा प्राप्त शिशु के प्रति अलौकिक आनान्दानुभूति के असंतोष की अभिव्यक्ति करता है ।

समजनि सुखिता कुमारिका सा
सकृदुपधाय मुखं स्तने जनन्याः ।
वदनसरसिजदशापिबन्ती
न तु दुहितुर्जननी जगाम तृप्तिम् ।।[१२५]

अर्थात् वह कन्या माता के स्तन में मुख लगाकर दुग्ध पान कर एक बार में ही तृप्त हो गयी किन्तु कन्या की माता उसके मुखकमल के सौन्दर्य का आँखों से पान करती हुई सन्तुष्ट न हो सकी ।

अतएव शिशु की निश्छलता और सौन्दर्य पर कवि का हार्दिक अनुराग कवि की सहज प्रकृति का द्योतक है ।

३.१.९ कवि नीलकण्ठदीक्षित की लोकप्रियता

कवि की लोकप्रियता का मुख्य आधार उनके काव्य की वास्तविक उत्कृष्टता तथा उनकी विकसित बहुमुखी प्रतिभा है । भरद्वाज वंश में उत्पन्न कवि के अतिरिक्त अप्पयदीक्षित के बाद अन्य कोई विद्वान् नहीं हुआ इनकी लोकप्रियता के विषय में कही गई रामभद्रमखी की उक्ति जनश्रुति के रूप में इसप्रकार प्रचलित भी हो गई । महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित की विद्वत्–सभा में एक बार प्रवेश करने मात्र से विद्वत्ता प्राप्त हो जाती है । विशिष्ट संदर्भो की तो बात ही क्या ?[१२६] कवि के तृतीय पुत्र गीर्वाणेन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'शृंगारकोशभाण' में कवि का जो परिचय दिया है, उससे भी कवि की ख्याति का समुचित संकेत मिलता

है ।[१२७] जिस समय कवि ने राजसभा में प्रवेश किया था, उस समय राज कवि लोग केवल राजा की प्रशंसा में ही लगे रहते थे, अन्य कोई चिन्ता ही नहीं रहती थी –

क्वार्थः क्व शब्दाः क्व रसाः क्व भावाः
क्व व्यंग्यभेदाः क्व च वाक्यरीतिः ।
कियत्सु दृष्टिः कविना न देया
किमस्ति राज्ञामियतीह चिन्ता ।।[१२८]

अर्थात् कहाँ अर्थ, कहाँ शब्द, कहाँ रस, कहाँ भाव, कहाँ व्यंग्यभेद, कहाँ वाक्य रीति ? इस ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाती हैं । उन्हें केवल राजाओं की प्रशंसा की चिन्ता लगी रहती है ।

वे केवल अपने राजाओं के नाम पर काव्यों की रचना किया करते थे जैसे – वेंकटेश्वरमखी के ज्येष्ठ भ्राता यज्ञनारायण दीक्षित ने अपने राजा रघुनाथ से समादृत होकर 'रघुनाथभूपविजय' तथा 'रघुनाथविलास' नाटक आदि ग्रन्थों की रचना की ।[१२९] ऐसे समय में भी प्रस्तुत कवि ने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपने आश्रयदाता का नाम तक नहीं दिया है क्योंकि कवि नाम का नहीं गुण का प्रशंसक था तथा अपनी योग्यता को राज्य का आवश्यक अंग समझता था । राजसेवा भी कवि ने सम्पति के लिए नहीं वरन् परम्परागत ब्राह्मणवंश के सम्मान के लिए की थी ।[१३०] कवि ने उस समय की राजसभाओं को दुष्प्रवृत्ति के व्यक्तियों से युक्त माना है, जो राजा को कुमार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करतें हैं ।[१३१] साथ ही साथ स्वशत्रु प्रशंसा एवं स्वमित्रनिन्दा करते हुए राजा को संशय में डालकर केवल अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं ।[१३२] इस तथ्य की सार्थकता के कारण ही कवि राजा को मंत्री के अधीनस्थ उसके अंकुश में रहने का आदेश देता है । प्रस्तुत कृति में कवि ने राजकुलशेखर से अपने पुत्र मलय ध्वज को यही उपदेश दिलवाया है कि राजा भिक्षार्थी एवं मन्त्री शिक्षक होता है ।[१३३] इसप्रकार के आक्षेपयुक्त वातवरण में भी कवि ने अपने आलेचकों के

प्रति किसी प्रकार का आक्षेप नहीं किया और अपने कार्य में संलग्न रहकर उनकी आलोचना का संक्षिप्त एवं मुधर उत्तर देकर आलोचकों की वाणी को कुंठित कर दिया है –

प्रायो जडामत्सरिणश्च लोको
दोषोत्तरं मृग्यगुणं वचो नः ।
गुणैकलुब्धोऽपि जनः क्वचित्स्या
दित्याशयैर्वायमियान्प्रयासः ।।[१३४]

अर्थात् इस संसार में प्रायः लोग मूर्ख ओर ईर्ष्यालु हैं । अतएव हमारी वाणी गुणों की खोज करने वाली, दोषों को त्यागने वाली तथा दोषों से भिन्न है । गुण से लोभ रखने वाला भी कोई व्यक्ति होगा ही । इसी आशय से हमने यह प्रयास किया है ।

उपर्युक्त पद्य में भवभूति रचित 'मालतीमाधव' के इस पद्य की छाया स्पष्ट प्रतीत होती है । भवभूति विविध शास्त्रों के प्रकांड पंडित थे । उन्हें अपने पाण्डित्य एवं कृतियों पर पूरा भरोसा था । बड़े आत्मविश्वास के साथ एक पद्य[१३५] को उद्धृत किया है जिससे अपने तात्कालिक आलोचकों की उन्होंने चिन्ता नहीं की बल्कि ललकार कर कहा है कि उनका यह काव्य सामान्य आलोचकों के लिए नहीं है । उनका कोई समानधर्म गुण वाला व्यक्ति कभी अवश्य उत्पन्न होगा, जो उनकी कृतियों का मूल्यांकन करेगा । अतः स्पष्ट है कि कालिदास के पश्चात् भवभूति ही नीलकंठ के दूसरे आदर्श कवि थे । अन्तर केवल इतना है कि भवभूति वैष्णवधर्म के प्रति अनुरक्त थे और नीलकंठदीक्षित को शिव के प्रति अगाध भक्ति थी । इसके अतिरिक्त कवि ने कहीं भी अपनी आत्मप्रशंसा और कवित्व–पांडित्य–कुशलता में एक शब्द भी नहीं लिखा । जब कि कवि का युग वह युग था जिस समय 'पंडितराज जगन्नाथ तथा भट्टोजिदीक्षित जैसे विद्वान् भी आत्मप्रशंसक थे । कवि अपनी काव्य रचना, राज्यसेवा आदि समस्त कार्यों का कारण शिव और पार्वती की कृपा ही मानता है । कवि की समस्त कृतियों में

ऐसी आकर्षक शक्ति है, जिसके अध्ययन से पाठक का मन स्वयमेव उद्वेलित हो और उसकी ओर आकर्षित हो जाता है । इसप्रकार की लोकप्रियता ही किसी भी प्रकार के कृतित्व की सच्ची कसौटी होती है ।

३.२ कृतियाँ

संस्कृत–साहित्य–सागर में न जाने कितने ग्रन्थ–रत्न ऐसे प्राप्त होते हैं, जिनके रचयिता का कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है और कुछ महाकवि ऐसे होते हें, जो ग्रन्थान्त में या प्रतिसर्गान्त में अपना पूर्ण परिचय वंश–परिचय सहित भी लिख देते हैं ।

प्रस्तुत महाकवि दीक्षित ने भी अपना पूरा परिचय वंश परिचय सहित दिया है[१३६] और कुछ ग्रन्थों के अन्तिम श्लोक में अपना नाम भी उद्धृत किया है । कवि द्वारा रचित कुल मिलाकर प्रकाशित – अप्रकाशित २० ग्रन्थ प्राप्त होते हैं, जो निम्नलिखित है –

१. शिवलीलार्णव, गङ्गावतरण, मुकुन्दविलास,

२. लघुकाव्य – कलिविडम्बनम्, सभारंजनशतकम्, वैराग्यशतकम्, शान्तिविलास, अन्यापदेशशतक

३. चम्पूकाव्य – नीलकण्ठविजय चम्पू

४. नाटक – नलचरितनाटकम्

५. भक्तिकाव्य – चण्डीरहस्य, शिवोत्कर्षमञ्जरी, रामायणसारसंग्रह, रघुवीरस्तव, गुरुतत्त्वमालिका आनन्दसागरस्तव,

६. भाष्य ग्रन्थ – शिवतत्त्वरहस्य

७. संग्रह ग्रन्थ – अघविवेक

८. व्याकरण ग्रन्थ – कैय्यट व्याख्यान

९. तन्त्र ग्रन्थ – सौभाग्यचन्द्रातप ।

३.२.१ शिवलीलार्णव

यह महाकाव्य कवि की ही कृति है । इसकी प्रामाणिकता में उपलब्ध सभी साक्ष्य उपर्युक्त ही हैं । यह कृति सन् १९११ में वाणी विलास प्रेस श्रीरंगम् से प्रकाशित है ।

इसमें २२ सर्ग हैं और ग्रन्थान्त की पुष्पिका कवि की कृति होने का उल्लेख करती है ।[१३७] इसके अतिरिक्त नीलकण्ठविजयचम्पू काव्य की भूमिका में[१३८] और तञ्जौर लाईब्रेरी के Discriptive catalogue में[१३९] भी यह स्वीकार किया गया है कि शिवलीलार्णव नीलकण्ठदीक्षित की कृति है । साथ ही साथ कृष्णमाचारियर,[१४०] वाचस्पति गैरोला,[१४१] दासगुप्ता और डे[१४२] तथा जे. के. बालसुब्रह्मण्यम्[१४३] ने अपने-अपने ग्रन्थों में यही प्रमाणित किया है । इसके अतिरिक्त नीलकण्ठ दीक्षित ने अपने प्रमुख ग्रन्थ शिवलीलार्णव में स्वयं इसकी प्रामाणिकता सिद्ध की है –

लीला चतुःषष्टिमिमां प्रणीतां
हालास्यनेतुस्तरुणेन्दुमौलेः ।
श्री-नीलकण्ठे भयि वर्णजाह-
मानीय मीनाक्षि चिरं दयेथाः ।।[१४४]

अर्थात् चन्द्रयुक्त मस्तक वाले हालास्यके लिए प्रणीत इन ६४ लीलाओं को सुनकर हे मीनाक्षि ! मुझ नीलकण्ठ पर चिर दया करो ।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर कवि की कृति होने में संदेह की सम्भावना नहीं रह जाती है ।

३.२.२ नीलकण्ठ दीक्षित का पाण्डित्य

नीलकण्ठ दीक्षित किसी घटना को इसप्रकार प्रस्तुत करते थे, मानो वह उसी स्थल पर खड़े हों, जिसका वे वर्णन कर रहे हैं, उनका उक्ति वैचित्र्य इतना प्रभावकारी है कि पाठक को मन्त्रमुग्ध कर देता है । उन्होंने अपने

महाकाव्य 'गङ्गावतरणम्' में जिस प्रकार अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है, वह अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

३.२.२.१ काव्य में कवि का चमत्कार के प्रति आग्रह

कवि प्रखर नीलकण्ठदीक्षित का मानना है कि काव्य में चमत्कार को होना ही चाहिए । चमत्कृति से रीहत कविता व्यर्थ है, वह सुन्दर नहीं लगती और न ही विद्वान् लोग उसका सम्मान करते हैं । यही कारण है कि आप कहते हैं –

अचमत्कृतसन्दर्भमर्थनैवाद्रियामहे ।
अत्यन्तभोगौपयिकमैश्वर्यमिव देहिनाम् ।।[१४५]

चमत्कार रहित अर्थवाले काव्य का हम आदर नहीं करते । जैसे अत्यन्त मुक्त शारीरिक वैभव का सम्मान नहीं होता ।

३.२.२.२ आत्मश्लाघा का निषेध

सनातन परम्परा में आत्मप्रशंसा को पाप माना गया है क्योंकि महान् से महान् व्यक्ति भी यदि आत्मप्रशंसा करता है तो न वह लोक में प्रतिष्ठा प्राप्ति कर पाता है और न ही पुण्यशाली माना जाता है । अत : शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार कवि को कभी भी आत्मप्रशंसक नहीं होना चाहिए । यथा –

स्वर्गःकस्यास्तु सुधियः श्लाघन्ते चेन्निजं पदम ।
ततोऽन्यः कोऽस्ति निरयस्तत्र ते यद्युदासते ।।[१४६]

३.२.२.३ महाकवि का वैशिष्ट्य

प्रकृत कवि नीलकण्ठदीक्षित को वही विद्वान् कवि प्रिय है जो मौलिक हो, स्वतंत्र–चिन्तन का धनी हो और अनुकरण करके काव्य प्रणयन न करे, प्रत्युत् स्वयं अपनी प्रतिभा से नूतन प्रकार की काव्य सृष्टि करता हो । इसीलिए वह कहते हैं कि –

अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परैर्भवेत् ।
परेषां तु यदाक्रान्तः पन्थास्ते कविकुञ्जराः ।।[१४७]

जिसका अभिप्राय यह है कि जिनका मार्ग शत्रुओं से अवरुद्ध हो, वे कवि अन्धे होते हैं । जो कवि हाथी की तरह अपना मार्ग स्वयं निर्मित करे, वही महाकवि है ।

३.२.२.४ व्यङ्ग्य काव्य ही उत्तम काव्य

आचार्य मम्मट के मतानुसार वही काव्य उत्तम माना जाता है, जिसमें व्यङ्ग्य का आतिशय्य हो, क्योंकि शब्द चित्रमर्थचित्रमव्यङ्ग्यं त्ववरं स्मृतम् । .... है कि प्रस्तुत कविनीलकण्ठ जी भी व्यङ्ग्यातिशयता को ही उत्तम काव्य का लक्षण मानते हैं । आपके अनुसार जिन काव्यों में व्यङ्ग्य की प्रधानता न हो, वे उत्तम नहीं होते । यथा –

सव्यङ्गपि कवेर्वाणी सापभ्रंशा न शोभते ।
लम्बस्तनीं को वीक्षेत रम्भामप्युर्वशीमपि ।।[१४८]

व्यङ्ग्यपूर्ण अपभ्रंशित कवि की वाणी सुशोभित नहीं होती । जैसे – लम्बे स्तनों वाली रम्भा और उर्वशी अप्सरा को भी कौन देखना चाहेगा ।

३.२.२.५ अहङ्कार का परिणाम

अहङ्कार मनुष्य की अधोगति तथा उसके अपमान व विनाश का कारण है । मानव को कभी भी अहङ्कार न करके उससे सदा दूर रहना चाहिए और सभी के साथ विनम्रता पूर्वक सौहार्दपूर्ण व्यवहार मानना चाहिए संसार में जो अहङ्कारी है उससे सभी दूर रहते हैं और न उसे कोई पसन्द करता है और न उससे कोई स्नेह करता है । इसीलिए प्रकृत कवि दीक्षित ने अहङ्कार का विरोध करते हुए प्रस्तुत श्लोक में कहा है कि –

न यदाह मनुर्वध्यात्र च नासृजदजन्भूः ।
न वान्तकः कविमन्यान्नयते तन्मदंहसा ।।[१४९]

अर्थात् मनु ने कहा है कि अभिमानी कवियों का वध नहीं करना चाहिये, ब्रह्मा इनकी सृष्टि नहीं करते, और यमराज भी इनका अन्त नहीं करते । अपने प्रबल अहंकार से ही इनका विनाश सम्भव है ।

३.२.२.६ स्वाभाविकता

जिस काव्य – कृति में सहजता, सरलता व स्वाभाविकता रहती है, वह लोक प्रिय व विद्वदवर्ग समादृत होती है तथा जहाँ स्वाभाविकता नहीं होती, वह काव्य आदृत नहीं होता । इसीलिए गंगावतरणम् के प्रणेता दीक्षित जी काव्य में सहजता के आग्रही हैं । परिणामतः वे कहते हैं कि –

किं प्रपासु कुहचित्तरुणीनामास्पदं कुचतटेष्वधिगम्य ।
विध्यति स्म विजने पति पान्थान्कुण्ठविक्रमतया कुसुमास्त्रः ।।[१५०]

तात्पर्य यह है कि उस निर्जन पथ में तरुणियों को क्षुद्र जलाशय रूपी उचित स्थान में प्राप्त कर कुण्ठित पराक्रम के कारण (थके होने से) कामदेव क्या पथिकों पर बाण वृष्टि कर रहा था ।

३.२.२.७ व्यङ्ग्यार्थ

यह तथ्य पहले निरुपित किया जा चुका है कि कवि ... नीलकण्ठदीक्षित काव्य प्रणयन में व्यङ्ग्य के पक्षपाती हैं । यही कारण है कि वे अपनी कृतियों में ऐसे श्लोकों की उपस्थापना करते हें जिनमें व्यङ्ग्य का अस्तित्व सर्वाधिक हो । प्रस्तुत श्लोक इनकी व्यङ्ग्यप्रधान रुचि का प्रतिनिधित्व करता है और उसे प्रमाणित भी करता है यथा –

सत्यपि श्रमविनोदिनि कामं तालवृन्तपवने तरुणानाम् ।
प्रेमभाजनमभूत्परमेकः प्रेयसीकुचदुकूलसमीरः ।।[१५१]

भानार्थ यह है कि युवकों के विनोदार्थ पर्याप्त शीतल वायु के स्पन्दित होने पर भी उस समय प्रेयसियों का स्तनांशुकजन्य वायु एकमात्र प्रेमपात्रता को प्राप्त हो सका ।

३.२.२.८ प्रयत्न की प्रशंसा

संसार में प्रयत्न के अभाव में किसी भी क्षेत्र में मानव को सफलता नहीं मिलती इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें सफलता हेतु कृतप्रयत्न रहना चाहिए । कहते हैं, प्रयत्न से पत्थर भी मोम हो जाता है । इसलिए कवियुवा दीक्षित जी निम्नांकित श्लोक में प्रयत्न की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि –

विषादमभ्येमि भुवं पदे पदे विपद्यमानामनु रचिन्त्य यद्यपि ।
तथापि नन्दामि चिरोपसंभृतां तरंगकण्डूमपनेष्यता त्वया ।।[१५२]

तात्पर्य यह है कि यद्यपि पृथ्वी पर पदे–पदे अपनी विपद्यमानता को सोचकर विषाद प्राप्त कर रही हूँ । तथापि बहुत समय से धारण की गयी तरंगों को तुम्हारे द्वारा मुक्त कराने के प्रयास की मैं प्रशंसा करती हूँ ।

३.२.२.६ ब्रह्म–स्वरूप का निरूपण

सर्वाधिष्ठान परमात्मा सर्वेश्वर है उसकी कृपा के विना सृष्टि, पालन व संहार कुछ भी सम्भव नहीं है । सभी भारतीय दर्शनों ने किसी न किसी रूप में ब्रह्म का प्रतिपादन अत्यन्त गम्भीरता के साथ किया है । इसीलिए 'गंगावतरणम्' के प्रणेता कवियुवा दीक्षितजी भी यहाँ ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि –

यदस्ति विश्वं क्रियते स्म येन तद्यतः स चाभूत्स च यत्र लीयते ।
स च स्वयं येन किलानुगृह्यते ततोऽप्यतीतं तदवैहिदैवतम् ।।[१५३]

अर्थात् जो यह विश्व हे, जिसके द्वारा इसका निर्माण हुआ है, वह भी जहाँ से हुए और जहाँ व स्वयं लीन हो जाते हैं, वे स्वयं है या किसी के द्वारा गृहीत हैं; इन सबसे जो परे हैं, वही अनिर्वचनीय ब्रह्म ईश्वर है ।

इसप्रकार हम देखते हैं कि गङ्गावतरणम् के प्रणेता महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित की कृतियों में एक ओर जहाँ चमत्कार के प्रति आग्रह है, मौलिकसूक्तियों का बाहुल्य, काव्यगुणों की प्रधानता, व्यङ्ग्य का आतिशय्य, उत्कृष्ट आत्मविश्वास,

स्वाभिमान किंवा भावानुल भाषा–शैली की उपास्थापना है, वहीं वे आत्मप्रशंसा को अनुचित व अहङ्कार को दुःखदायी मानते हैं । अतः स्वाभाविक ही है कि इससे इतर प्रकृति के लोगों को वे पसन्द नहीं करते । अहङ्कारियों एवं आत्मप्रशंसकों से दीक्षित जी सदा दूर रहना चाहते हैं तथा अभिधावादी कवियों का स्वभाव उन्हें रुचिकर नहीं लगता । कृत्रिमता से सर्वथामुक्त कविप्रवर नीलकण्ठ दीक्षित स्वाभाविकता के परम आग्रही हैं । अतः कृत्रिम जन से उनका सामञ्जस्य स्थापन भला कैसे सम्भव है ?

लोक में प्रायः व्यवहार की दृष्टि से अधिकांश लोगों का समूह स्वाभाविक कम और कृत्रिम अधिक होता है । यही कारण है कि जीवन में कवि दीक्षित का सम्बन्ध बहुधा सभी के साथ अच्छा नहीं रहा क्योंकि लोक और नीलकणठ दोनों विपरीत दिशाओं के दो ध्रुव हैं । इसीप्रकार ये चिन्तन की दृष्टि से भी रहने गम्भीर अलौकिक व प्रकृष्टतापन्न थे कि सामान्य स्तरीय जनसम्मर्द से सतत दूर रहना उन्हें रुचिकर प्रतीत होता था । इसीलिए लोक शास्त्र की गहनता को समझते हुए आप स्वयं के चिन्तन में अनवरत केन्द्रित रहते थे । परिणामतः श्री दीक्षित की आदर्शशीलता व विचारधारा अन्यों को तो रास नहीं ही आयी, यहाँ तक कि उनके परिवार के प्रियजन भी उनसे अलग हो गये, जिसका उन्हें अन्तिम समय तक दुःख रहा ।

३.२.२.१० व्यङ्ग्यप्रधान रचना के प्रति कवि की रुचि

ध्वनिकाव्य के आग्रही कविवर दीक्षित के श्लोकों के ध्वन्यर्थ प्रस्तुत पंक्तियों में देखे जा सकते हैं –

हिमस्पृशां यन्मरुतां प्रसादतो विलासिनां मुग्धवधूरतेष्वपि ।
न शिक्षणीयाजनि जातु सीत्कृतिर्न चार्थनीया परिरम्भसान्द्रता ।।[१५४]

अर्थात् बर्फीले वायु की कृपा से मुग्धवधओं के साथ विलासियों के रति काल में सीत्कार की शिक्षा और गाढालिंगन की याचना नहीं करनी चाहिए ।

इसीप्रकार आगे रोमांचरूपी कञ्चुक का उदाहरण प्रस्तुत है –

कञ्चुकाहरणातंककातराणां मृगीदृशाम् ।
दयालुर्हैमनो वायर्ददौ रोमांचकञ्चुकम् ।।[१५५]

तात्पर्य यह है कि रतिकाल के समय वस्त्र रहित होने से लजीली मृगनेत्रियों को दयालु बर्फीले वायु ने रोमांच रूपी कञ्चुक (वस्त्र) प्रदान किया ।

उत्तमकाव्यता की दृष्टि से प्रस्तुत श्लोकों की अपूर्व अर्थ छटाएँ यहाँ दर्शनीय हैं –

स्वस्तिकस्थगितोरोजाः सीत्कारतरलाधराः ।
स्नानान्तेषु स्त्रियो मुग्धा यूनामाचकृषुर्मनः ।।[१५६]

अर्थात् स्तनों को पतले वस्त्र से आच्छादित करने वाली तथा सीत्कार करने में चंचल अधरों वाली मुग्धा स्त्रियों ने स्नानान्त में युवकों का मन आकृष्ट कर लिया ।

और इसीप्रकार आगे भी द्रष्टव्य है –

आरोपयन्निव स्वैरमालिलिंग शिवः शिवाम् ।
इति संकथयन्तीषु सखीष्वैक्षिष्ट सान्यतः ।।[४]

अर्थात् पार्वती को वृष पर चढ़ाते हुए शिव ने उनका यथेष्ट आलिंगन किया, सखियों द्वारा आपस में इसप्रकार कहने पर पार्वती दूसरी ओर देखने लगी ।

३.२.२.११ गङ्गा का अहङ्कार

प्रस्तुत श्लोक में गङ्गा के अहङ्कार का विशद विवेचन देखा जा सकता है, यथा –

स प्रकामजरठो गुरुः पिता सा च मुग्धहृदया यवीयसी ।
व्याहतो यदि न मे समुद्यमः कःशिवः क इव राजतोगिरिः ।।[१५७]

अर्थात् अत्यन्त वृद्ध गुरु पिता और मुग्धहृदया लघु भगिनी से यदि मेरा प्रयास बाधित न हुआ तो शिव और कैलास दोनों का विनाश निश्चित है ।

३.२.२.१२ अर्थान्तरन्यास का प्रभाव

अलङ्कार शास्त्र में विशेष कथ्य की पुष्टि हेतु जब सामान्य उक्ति का प्रयोग किया जाय अथवा सामान्यविषय निरूपण के लिए किसी विशिष्ट उक्ति द्वारा समर्थन दिया जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है । जिसका दर्शन प्रस्तुत श्लोक में किया जा सकता है क्योंकि यहाँ "भक्तैकरक्षा..." सूक्ति के द्वारा नदी–मोक्ष हेतु शिव के सिर को झुकाने जैसे निरूपद्दीय विषय को समर्थन दिया गया है –

मौक्तुं नदीमानमनानभिज्ञं मूर्धानमीशो नमयांबभूव ।
भक्तैकरक्षाव्रतदीक्षितानांदूरे स्वमानद्रढिमाभिमानः ।।[१५८]

तात्पर्य यह है कि तदनन्तर भगवान् शिव ने कभी न झुकनेवाले अपने मस्तक को नदी मोक्ष के लिए झुका ही दिया, मात्र भक्तों की रक्षा का व्रत धारण करने वाले अपने स्वाभिमान को महत्त्व नहीं देते ।

मधुरिमैकरसापि सुरापगा लवणतामगमत्पतितार्णवे ।
भुवनमूल्यरसापि ही साहिती कुकविवक्रगता कुरुते व्यथाम् ।।[१५९]

अर्थात् जिसके जल में केवल मधुरता ही व्याप्त है, ऐसी मधुर सलिला सुरनदी भी समुद्र में गिरने से लवणता को प्राप्त होगयी क्योंकि अमूल्य रसपरिपूर्ण साहित्य भी कुकवि की कुटिलता से नीरस होकर कष्टदायी होता है ।

३.२.३ नीलकण्ठदीक्षित की मुद्रित रचनाएँ

३.२.३.१ नीलकण्ठविजय चम्पू

प्रकृत ग्रन्थ के वर्ण्यविषय का परिचय एवं संक्षिप्त उपस्थापन आगे किया जा सकता है । यथा –

प्रथमाश्वासः

इस चम्पूकाव्य में श्री नीलकण्ठदीक्षित सर्वप्रथम यह निश्चय नहीं कर पाते कि अपने अभीष्ट अर्द्धनारीश्वर महादेव की वन्दना किस प्रकार की जाय क्योंकि पूर्ववर्ती कवियों जैसे – कालिदास आदि ने 'जगतः पितरौवन्दे पार्वती परमेश्वरौ, आदि कहकर शंकर की प्रार्थना की है –

तथापि

कति कवयः कति कृतयः
कति लुप्ताः कति चरन्ति कति शिथिलाः ।
तदपि प्रवर्तयति मां
शंकरपारम्यसंकथालोभः ।।[१६०]

अर्थात् कितने कवि हो चुके है, कितने ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं, उनमें कुछ लुप्त हो गये हैं तथा कुछ लुप्तप्रचार हैं, फिर भी महादेव की भक्ति की चर्चा करने का लोभ मुझे प्रेरित कर रहा है ।

ऐसा कहकर वह अपनी बुद्धि और वाणी से निवेदन करते हैं कि, यदि मैं मार्ग से विचलित भी होने लग जाऊँ तो तुम अप्रसन्न मत होना और कभी भी मेरे द्वारा प्रसाद गुण का त्याग मत होने देना ।

इतना कहकर वे रसज्ञ और कविगणों को इंगित करते हुए कहते हैं कि चाहे ऐसे लोग प्रसन्न हों या रुष्ट (नाराज), मैं कामशास्त्र से लेकर वेदान्त के सिद्धान्त तक, जिससे उत्पन्न विद्या सर्वत्र संचरणशील है – उस सरस्वती की स्तुति करता हूँ ।

स्तुति के पश्चात् दीक्षित जी अमरावती नामक नगरी का वर्णन करते हैं, इसका वर्णन वे कलात्मक और अलौकिक रूप से करते हैं । वे कहते हैं कि इस नगरी की सभी चीजें और व्यवहार विलक्षण हैं ।

जैसे यहाँ कामदुधा गायें हैं, जो न तो अमृत पर जीती है और न चारा ही खाती हैं क्योंकि चारा यहाँ मिलता ही नहीं है । अतएव वे हवा पीकर ही

जीती हैं । यहाँ पर हाथी महान् पराक्रमी और घोड़े हवा की भाँति शीघ्रगामी हैं । इस नगरी की वेश्याओं की हवा शुल्क है, जो हम यहाँ यज्ञों में ऋत्विजों को दक्षिणा के रूप में देते हैं । इस नगरी का मार्ग वही है जो तीर्थ स्थलों का दुर्गम मार्ग है और यहाँ का द्वार वही है जो मनुष्य अपने इन्द्रियों के द्वारों को बन्द करता है ।

अमरावती नामक यह विचित्र नगरी देवबालाओं रम्भा, मेनका आदि से युक्त है । ये देवबालायें ब्रह्मर्षियों के आचरणों पर कभी दुःखी होती हैं; हँसती हैं और लज्जित भी होती हैं तथा आश्चर्य भी प्रकट करती हैं । जहाँ देवबालायें आश्चर्य चकित रह जाती हैं, ऐसी नगरी की विलक्षणता तथा उसके सौन्दर्य की विवेचना करने की अपेक्षा लज्जाशाली कवियों के लिए मौन धारण ही श्रेयस्कर है ।

अमरावती नगरी में इन्द्र की आज्ञा से पृथ्वी के पुण्यात्मा वहाँ लाये गये हैं । वे निरालम्ब काम को ही देखते हैं । वे लोग न वहाँ रहना चाहते हैं और न वहाँ से उतरना ही चाहते हैं ।

एक बार पवित्र हृदय से स्नान कर भगवान् शिव का स्नान पूजादि कर ध्यान किया तत्पश्चात् श्वेत वर्ण ऐरावत पर आरुढ़ होकर आकाश मार्ग से जाते हुए इन्द्र ने दुर्वासा ऋषि को देखा । यह जानते हुए भी कि दुर्वासा समस्त संसार को एक ही शाप में अन्यथा कर सकते हैं, फिर भी उन्होंने सवारी नहीं छोड़ी, न वचनों से उनका सत्कार ही किया और न उन्हें प्रणाम किया । इन्द्र ने ऐसा करके केवल दुर्वासा द्वारा दी गई माला एक हाथ में लेकर महर्षि के सामने ही बिना सिर झुकाये उस माला को हाथी के गले में लटका दिया । गले में डाली गई माला को हाथी ने तत्काल शूँड से उतारकर मसल डाला । जब तक देवगण दुर्वासा के क्रोध शान्ति के लिए उन्हें मनाते, तब तक उन्होंने इन्द्र को शाप दे दिया कि जिस राज्य के गर्व में तुम ये चेष्टाएँ कर रहे हो, वह राज्य तुम्हारे शत्रु असुरों के पास चला जाए । इन्द्र द्वारा दुर्वासा से

अनुनय–विनय करने पर उन्होंने कहा कि अब भगवान् विष्णु ही तुम्हारा कुशल करेंगे ।

दुर्वासा द्वारा इन्द्र को दिये गए शाप की बात सुनकर मन्त्री भार्गव ने राक्षसों को आदेश दिया । राक्षसों को यह जानकर अत्यन्त खुशी हुई और वे युद्ध हेतु तत्पर हो गए । शची ने भी इन्द्र को रोकना चाहा किन्तु उन्होंने शची के आग्रह को ठुकरा दिया और पुत्र जयन्त को घर की रखवाली का भार सौंपकर देव योद्धाओं सहित युद्ध के लिए प्रस्थान किया । देव–असुर की युद्ध–भयंकरता इसप्रकार थी जैसे कि एक सागर दूसरे सागर से प्रलयकाल में मिलता है । इसी बीच इन्द्र के हाथ से हुआ युद्ध इतना भयंकर हुआ कि सूर्य छिप गया । सूर्य का छिपना ही असुरों की विजयप्रद हुआ । उन्होंने यमराज का भी कालदण्ड छीनकर उन्हें आहत कर दिया । यह असुरों की पहली जीत हुई किन्तु यमराज की मृत्यु नहीं हुई क्योंकि उन्हें ले जाने वाला दूसरा यमराज नहीं था ।

इन्द्र दानवों कीविजय और देवों की पराजय देखकर युद्धभूमि में अपना शरीर त्याग देने का निश्चय कर आगे बढ़े, उसी समय वृहस्पति उनके समक्ष उपस्थित हो गए और इन्द्र को समझा दिया ।

दुर्वासा द्वारा दिये गये शाप की याद दिलाई और योगमाया द्वारा इन्द्र सहित स्वयं अन्तर्हित हो गये । सभी देवों के रणस्थल से भाग जाने के बाद दानव अट्टहास करने लगे । दानवों ने देवपुरी की बाजार को लूट दिया । तत्पश्चात् अमरावती की देव–सुन्दरियों और खजाने आदि को लूटने का निश्चय किया । अमरावती में इन्द्र के दरबार में बैठकर देवताओं के सम्पूर्ण पद दानवों में बाँट दिये । मन्त्रोच्चारण में भी देवताओं के स्थान पर दानवों के नाम लिये जाने लगे ।

तत्कालीन मान्यता को बताते हुए श्री दीक्षित जी ने लिखा है कि आदि विद्वान् दिगम्बर जैन, सौत्रान्तिक तथा माध्यमिक लोग अच्छे साधु हुए जो चार्वाक

मत के पोषक थे, आगम–निगम के मानने वाले निरे पाखण्डी हैं, यह कलियुग सर्वोत्तम काल है, दैत्यों का शासन ही देवराज्य है ।

यह आश्वास इन्द्र के भाग खड़े होने तथा सभी देवों से मिलकर वृहस्पति की आज्ञा से मन्दर पर्वत पर छिपकर कुछ वर्ष व्यतीत करने में पूर्णता को प्राप्त हो जाता है ।

द्वितीयाश्वास :

द्वितीय आश्वास में शत्रुओं द्वारा भुजार्जित लक्ष्मी की पुनः प्राप्ति की इच्छा रखने वाले इन्द्रादि देवगण मन्दर पर्वत पर जाकर एक हजार वर्ष तपस्या में बिताते हुए वृहस्पति के आगमन की प्रतीक्षा किया करते थे । देवता स्वप्न नहीं देखते । इसलिए तपस्वियों से वृहस्पति के आगमन को पूछा करते थे । एक दिन वृहस्पति मन्दरगिरि पर आये, सभी देवताओं ने उनको अभिवादन कर बैठाया । उस समय वृहस्पति ने कहा कि बहुत समय से आप लोग यहाँ रहकर सकुशल हैं, अब आपके आपत्ति का समय समाप्त हो गया है । यह पर्वत शिवका अतिप्रिय स्थान है तथा सभी को मोक्ष प्रदान करने वाला है ।

इसके पश्चात् वृहस्पति इन्द्र आदि देवों को लेकर सत्यलोक में विधाता के पास गये और उन्हें आदर पूर्वक प्रणाम किया । विधाता ने कहा इन्द्र उदास क्यों दिख रहे हैं । ब्रह्मा के द्वारा इसप्रकार पूछे जाने पर वृहस्पति ने पुनः कहा हम उदास तथा दीन हो रहे हैं, बहुत दिन हुए हमारे भवन छीन लिए गए हैं, हम लोग भिखमंगों की तरह पैदल चलकर जिस दुःख का निवेदन करने के लिए आप के पास आये हैं, वह दुःख आज आप के निर्मल स्थान में आकर हम भूल गए हैं तथा प्रश्न की मर्यादा की रक्षा के लिए हम कुछ कहने जा रहे हैं । यह जो आप के आगे करुणा की मूर्ति एवं शम, दम तथा उपरम के स्वरूप बनकर बैठे हुए हैं, यही दुर्वासा हमारी सारी आपत्तियों की जड़ हैं । इस अकृत्रिम कोप के निधान दुर्वासा मुनि ने ही स्वर्गलोक की लक्ष्मी को स्वर्ग

से भगा दिया है, वह लक्ष्मी दानवों के पास चली गई है और देवगण, दीन मनुष्य के योग्य दुर्दशाओं के पात्र बन गए हैं ।

इसप्रकार ऐसा कहकर बृहस्पति चुप हो गए । देवों ने भी एक साथ मिलकर ब्रह्मा को नमस्कार किया । तब सभी को प्रसन्न करते हुए ब्रह्मा ने कहा – आप सारी बातें जानते हैं आप को दुर्वासा के प्रति इसप्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए । यह दुर्वासा की करुणा का ही परिणाम है कि उन्होंने छोटा–सा शाप देकर इन्द्र पर अनुग्रह दिखाया । उन्होंने फिर कहा कि नारायणी के प्रसाद के तिरस्कार से उत्पन्न इस अपराध का नारायण के प्रसाद से ही समाधान किया जाय, यही वह उपाय है क्योंकि – केश, जघन, स्तन आदि स्त्री–चिह्नों से युक्त जो शिव का वामांग है, वह कभी कमला तथा कौस्तुम्भ से युक्त कभी विष्णु बन जाता है, इस प्रकार जगन्माता देव विष्णु ही कर सकते हैं ।

अतः आपलोग क्षीरसागर आइये, हम वहाँ भगवान् का दर्शन करा देंगे । इसप्रकार कहकर ब्रह्मा आसन से उठे और अन्तर्हित हो गये । देवगण भी भय का परित्याग कर वहाँ से चलकर मार्ग में जाते हुए गरुड़ध्वज विष्णु के ध्वजस्वरूप गरुड़ के दर्शन किये, और उनको ही देवों ने अपने ऊपर होने वाले भगवदनुग्रह का चिह्न समझा । देवगण जब तक वहाँ जाने का उपाय सोच रहे थे, तब तक उन्होंने देखा कि वहाँ स्वयं पितामह चले आ रहे थे । ब्रह्मा ने जब यह देखा कि देवगण हताश हो रहे हैं तो उन्होंने कहा कि आप लोग मेरे साथ चलें । यह कहकर वे आगे आगे चलने लगे । ब्रह्मा जब कुछ आगे बढ़े तो श्री वल्लभ में लीन पुराने ब्रह्मगण से उनका साक्षात्कार हुआ । ब्रह्मा ने उन्हें नमस्कार किया और कहा है वत्स ! इन देवों को छोड़कर तुम कुछ अपने विषय में लक्ष्मी वल्लभ परब्रह्मस्वरूप विष्णु से प्रार्थना मत करना क्योंकि भगवान् विष्णु के प्रत्येक श्वास में कितने इन्द्र, लोकेश तथा ब्रह्मा उत्पन्न हुआ करते हैं ।

इसप्रकार नम्र व्यवहार करने वाले ब्रह्मा को देखकर प्रसन्न पार्षदगण हाथ पकड़कर खींचते हुए ब्रह्मा को उस परमात्मा विष्णु का दर्शन कराया जो उपनिषदों का रहस्य माना जाता है । उन्होंने परमात्मा को शेष के फणों पर सोते देख अपने को धन्य माना । इसी बीच इन्द्रादि देवों ने वृहस्पति को आगे करके पुष्पांजलि अर्पित की, दूर से ही शतशः प्रणाम किया, उठकर सिर से अञ्जलि बाँधी, फिर स्तम्भ की तरह विस्मय से ठिठक कर खड़े रहे ।

इसके बाद भगवान् के चरणों के समीप में बैठी हुई लक्ष्मी ने देखा कि भगवान् इन्द्रादि देवगण पर प्रसन्न दृष्टिपात कर रहे हैं, बस लक्ष्मी भगवान् के अभिप्राय को समझ गईं और लक्ष्मी ने स्वभावतः मधुर तथा वात्सल्यभावपूर्ण शब्दों में कहा – बेटा, बहुत दिनों पर आये, अच्छी तरह तो हो ? ये प्रजायें कौन हैं, जो भयभीत–सी लग रही हैं, इसप्रकार पूछे जाने पर ब्रह्मा आनन्द से पूर्ण हृदय हो गये, लक्ष्मी स्वरूप परा देवता को शतशः प्रणाम किया, और इसप्रकार कहा तुम्हारी जय हो । हे माता ! आप कृपया मुझे बतायें कि भगवान् से किस प्रकार अपनी बात कही जाय, इसका उपाय कृपया आप बता दें । जब ब्रह्मा ने लक्ष्मी से इसप्रकार की प्रार्थना की, तभी स्वयं भगवान् ने इसप्रकार कहा – हे ब्रह्मन् ! आप इस चराचर जगत् के स्रष्टा हो, तुमने अपने मुखों द्वारा वेदों को धारण किया है, तुम लोक के प्रति दयालु हो, अतएव मेरे प्रिय हो । बताओ मैं आपकी कौन–सी इच्छा पूर्ण करूँ ।

ब्रह्मा ने कहा – हे नाथ ! स्वप्न और उन्माद भी मिथ्या वस्तुओं की सृष्टि किया करते हैं, मनुष्यगण भी वेदों को धारण करते ही हैं, इतने भर से मुझे कुछ महत्त्व नहीं प्राप्त हो जाता है । हाँ यह बात अवश्य है कि आपकी इस शीतल कृपा दृष्टि से मुझे मंगलों में भी मंगल प्राप्त हो गया है । ब्रह्मा ने कहा – भगवन् ! देव कौन हैं ? दानव कौन हैं ? जगत् क्या हैं ? अन्ततः मैं ही कौन हूँ ? मैं आपका भक्त हूँ, कृपया इस मोह को दूर करके मेरी रक्षा कीजिए । इसप्रकार लक्ष्मी की कृपादृष्टि तथा भगवान् का अनुग्रह पाकर आप

उदासीन हो गए । तब भगवान् ने ब्रह्मा को इसप्रकार उपदेश दिया कि आप देवों से कह दो – हे देवगण ! आप पहले असुरों से मिलकर मन्दराचल को मन्थन का साधन बनाकर राक्षसों के साथ मन्दराचल को बाँधकर सागर में डालें, वासुकि नाग को रज्जु बनावें, उसी से मन्दराचल को बाँधकर सागर को मथें, उससे जो अमृत निकलेगा, उसे पीकर आप ही अमर होंगे, आप के शत्रु असुर अमर नहीं होंगें । परन्तु इसमें बड़ा भारी विघ्न होगा, अतः महादेव की ही शरण में जायँ । तत्पश्चात् देवों को ब्रह्माने समझाकर भगवान् शिव के पास भेजकर स्वयं अन्तर्हित हो गए ।

तृतीयाश्वास :

तृतीयाश्वास में देवगण नाना प्रकार के उपहारों द्वारा लोकशरण्य महादेव की आराधना करने लगे । उन लोगों ने स्वभावतः कुटिल दानवों के साथ झूठी सन्धि करने के लिए दूत के रूप में वृहस्पति का वरण किया, जैसा कि ब्रह्मा ने उन्हें आदेश दिया था ।

वृहस्पति सन्धि की अभिलाषा से असुरों के गुरु शुक्राचार्य से मिले जो त्रिकालज्ञानी थे । उन्होंने कहा – मैं सब कुछ जानता हूँ तथापि यदि मैं सन्धि न भी करवाऊँ तो भी ब्रह्मा की इच्छानुसार ही होगा । इसलिए जिस प्रकार होगा, मैं आपको असुरों से मिला दूँगा । वहाँ जैसा आप चाहिएगा, कह लीजियेगा, इसप्रकार प्रशंसा करके शुक्राचार्य वृहस्पति को बलि की सभा में बुला ले गये । वहाँ जाकर वृहस्पति ने महाराज से देवों और दानवों को मिलाकर एक करने की प्रार्थना की । इस पर शुक्रचार्य जी ने वृहस्पति के कथन को ठीक बताया । राजा बलि ने भी इन्द्र के विषय में वृहस्पति से जानकारी हेतु प्रश्न किया कि आजकल इन्द्र कहाँ रहते हैं ? वह सकुशल तो हैं ? क्या करते हैं ? इन दिनों उनका नाम भी नहीं सुना जाता । बलि के इसप्रकार पूछने पर वृहस्पति ने कहा – महाराज ! आपकी कीर्ति का वर्णन कौन कर सकता है ।

मैं भी आपके दर्शनार्थ बहुत दूर से चलकर आया हूँ । मैं आपके भ्राता का वृत्तान्त बताता हूँ ।

भूः भुवः स्वः नामक तीनों लोकों को अधिकार में रखने वाले, आप जिसके बड़े भाई हैं, भगवान् विष्णु जिसके अनुज हैं, वचन और काय से महादेव की शरण में जा चुका है, वह अकुशल कैसे हो सकता है । वह मन्दर पर्वत पर शिव की भक्ति में इसलिए अनुरक्त हैं कि दुर्वासा के शाप का मालिन्य समाप्त हो जाय । वहाँ पर उन्हें तमोगुणयुक्त प्राणी देख भी नहीं सकता । देव और दानव वहाँ पहुंच नहीं सकते । ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु – दैत्यों को वरदान प्रदान करते हैं और फिर वर को दूसरे रूप में बदल देते हैं, यह बात आप को स्फुट रूप से ज्ञात है । यह भी बात नहीं हैं कि वे नियमपूर्वक देवों पर दयालु ही रहा करते हैं, क्योंकि देखा जाता है कि वह बीच–बीच में असुरों को उन्नत कर दिया करते हैं । अतएव मैं समझता हूँ कि ब्रह्मा, विष्णु या शिव शुद्धचित स्वरूप भले ही रहें परन्तु उनका शरीर नख से शिख तक मायामय है । इसलिए दूसरों को बनाने या बिगाड़ने का अवसर नहीं देकर यदि आप लोग आपस में मिल जाते हैं तब जो निश्चिन्तता, जो उन्नति, जो बल तथा जो सुख और यश प्रतापादि आप के पास होगा, वह अद्वितीय होगा, कृपया इस पर विचार कर लें । आपको तथा देवों को जब तक झगड़ते देखेंगे, तब तक हम तथा भार्गव प्रकाश में नहीं आयेगें और देव तथा असुर बड़े प्रयत्नों से जिन क्रियाओं को करना चाहेंगे, वे क्रियायें भी क्या हमारे प्रकाश में नहीं रहने पर सफल हो सकेंगीं ।

इन्द्र तो दूसरे ही प्रकार की धारणा रखते हैं, वे कहते हैं कि मेरे बड़े भाई स्वर्ग में रहें, मेरे छोटे भाई विजयी बनें, भाइयों के सौभाग्य से मेरा प्रयोजन सिद्ध हो जाता है, इतना कहकर वृहस्पति चुप हो गए । तब बलि ने शुक्र की ओर देखा, शुक्र ने सभासदों की उपेक्षा करके बलि से कहा – कि आप समस्त अभिप्राय के ज्ञाता हैं, समयज्ञ हैं, सन्धि–विग्रह के रहस्यों को जानते

हैं, नीतिमार्ग के पारदर्शी तथा कर्तव्य निर्णय में दक्ष हैं । यद्यपि इस समय देवों के साथ सन्धि करने से कोई लाभ नहीं होगा, तथापि इस बात पर विचार करना चाहिए कि समुद्र को मथकर अमृत निकालेंगे और हम लोग अमृतपान करेंगे । इसप्रकार इस स्वर्गवासी मुनि ने हमसे कहा था । इस बात को सुनते ही वैष्णवी माया से मोहित दानवों ने तत्काल अनुमति दे दी । राक्षसों ने कहा – हम इस मुनिवर के कथनानुसार बिना खेद के देवों के साथ सन्धि कर लेंगें । पहले समुद्र मथेंगें । फिर वहाँ अमृत प्राप्त करेंगें । अगर देवगण ठीक रहेंगे तो हम दोनों ही अमृत प्राप्त करेंगे । यदि देवगण कुछ इधर–उधर करेंगे तो अन्य स्थिति के लिए हमारे हाथ तो हैं ही, वह तो कहीं अन्यत्र नहीं चले गये रहेंगे । इस पर मंत्री ने साधु–साधु कह कर अनुमोदन किया और वृहस्पति को विदा करके दैवगण तत्काल मन्दराचल की ओर चल पड़े ।

इसके पश्चात् वृहस्पति ने देवों से सारा समाचार तथा दैत्यों का अभिप्राय बताया और उन्होंने देवों को दैत्यों के साथ सन्धि करने के लिए प्रस्तुत किया । इसके बाद देव और दानव गले मिले और एक दूसरे की प्रशंसा की तथा दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य का देवों ने विधिवत् स्वागत किया । दैत्यों ने अपने भाई इन्द्र से पूछा कि भगवान् ने समुद्रमन्थन का क्या उपाय बताया है, इन्द्र ने भी यथाश्रुत समुद्रमन्थनोपाय उन्हें बता दिया और उसी मन्दराचल को उखाड़कर समुद्र में डालने के लिए बलिको उत्साहित किया । तत्पश्चात् सभी ने भगवान् शिव से इच्छित वस्तु की प्रार्थना की, जिसे भगवान् की आकाशवाणी ने स्वीकार कर लिया और मन्दराचल को ले जाने की अनुमति दे दी, किन्तु दैत्यों के अनेक प्रयत्न के बाद भी वह पर्वत यथास्थान बना रहा । अन्त में वासुदेव की कृपा से वह मन्दरपर्वत चलायमान हो गया, जिसे देव और दानवों ने सागर में उतार दिया । तत्पश्चात् भगवान् के समीप में वर्तमान ब्रह्मा ने कहा कि वासुकि नाग को ले आइये । देवताओं ने ऐसा करने के लिए दानवों से आग्रह किया और वे लाने हेतु पाताल चले गये । वासुकि को 'येन केन प्रकारेण' वे दानव

पृथ्वी पर ले आये । भगवान् ने वासुकि को सामर्थ्य प्रदान कर मन्दर को वेष्ठित करने की आज्ञा दी । वासुकि ने भगवान् के कथनानुसार उसे वेष्ठित कर लिया ।

तुरीयाश्वासः

तुरीयाश्वास में नागराज वासुकि ने ढाई फेरे डालकर समुद्र में मन्दराचल को वेष्ठित किया और पूँछ एवं मुख की ओर सौ योजन करके अपने शरीर को अवशिष्ट रखा, जिस अवशिष्ट भाग को देव और दानव हाथों से पकड़कर समुद्र मन्थन करेंगे ।

इसके पश्चात् दानवों ने कहा कि जो पहले पैदा हुए हैं, वह नागराज के पूर्व देह भाग को पकड़ें, यही न्याय्य है । इस पर भगवान् के इशारे तथा ब्रह्मा के आदेश से शिरोभाग असुरों के लिए छोड़कर देवों ने पुच्छ भाग ग्रहण किया । तत्पश्चात् समुद्रमन्थन प्रारम्भ हुआ जिसे देखकर भगवान् को बड़ी प्रसन्नता हुई ।

यद्यपि देव–दानवगण बड़े उत्साह से समुद्र मन्थन कर रहे थे, फिर भी भगवान् ने देखा कि उनकी शक्ति क्षीण होती जा रही है तब भगवान् ने वासुकि को तथा आकाशचारी देवों को अपने तेज से पूरित किया और स्वयं भी समुद्र–मन्थन करने लगे । जब भगवान् अपने हाथों से समुद्र मथने लगे, तब वह मन्दराचल भ्रमर की तरह घूमने लगा ।

सर्वप्रथम कालकूट विष की उत्पत्ति हुई, जिसकी गर्मी के प्रभाव से पर्वत फटने लगे, वृक्ष जलने लगे, पशु–पक्षी आदि जीव नष्ट होने लगे । असंख्यों स्फुलिंग की जो कालकूट की ज्वाला से निकले थे तथा धूम आदि से मिलकर भीषणतम वायु अद्भुत रूप में प्रकट हुई । वह वायु निकलते ही दिशाओं को आतंकित करती हुई गरजने लगी । अन्त में असंख्य प्राणियों के संहार से उत्पन्न पापपुंज को प्रक्षालित करने लिए वह सागर के पास आई । उस वायु से

सम्पर्क होते ही सात समुद्र धृत बिन्दुओं की तरह एक ही प्रकार की ज्वाला से प्रज्वलित हो उठे । इससे व्यथित देवों ओर दानवों ने ब्रह्म से शिकायत की । उनकी शिकायत से पैदा होने वाली लज्जा से ब्रह्मा सन्तप्त होकर भगवान् से कहने लगे – भगवन् । आप क्या समझ रहे हैं ? क्यों हो रहा है ? ब्रह्मा इसप्रकार भगवान् से कह ही रहे थे कि पाताल में खलबली मच गई जिससे कालरुद्र की समाधि टूट गई । यहाँ तक कि भगवान् के भी ओष्ठादि कोमल अङ्ग काले पड़ने लगे । तब उन्होंने अमृतेश्वरी की याद की जो चर्तुदिक् अमृत वर्षा से उस अग्नि को शान्ति करने लगी । तब कालकूट विष थोड़ा दूर चला गया । तत्पश्चात् भगवान् ने महादेव का साक्षात्कार किया तथा उन्हें बार–बार प्रणाम किया । शिवजी ने भी लक्ष्मीपति भगवान् को बाहुओं से आलिंगित किया और कहा मुझे आप के दर्शन से अत्यानन्द की प्राप्ति हुई किन्तु आप कृपया बतायें कि यह है क्या ? जिससे सम्पूर्ण संसार आतंकित है । यह सुनकर शिवजी ने अपना दाहिना हाथ फैलाया और हालाहल का स्मरण किया । तत्पश्चात् वह विलीन हो गया । इसके बाद प्रकृति की वस्तुएं और प्राणी पूर्वरूप से होने लगे । उस विष को शिव ने खा लिया ।

देव दानव सभी ने भगवान् शिव की अनेक प्रकार से स्तुति की । इसप्रकार स्तुति किये जाने पर पुरारि ने कहा – ब्रह्म, नारायण, ईश प्रभृति देवगण हमारे जगत् विदित पुत्र हैं, इन्द्रादि देव हमारे दास है, असुरगण तो उससे भी बढ़कर मेरे भक्त हैं । कालकूट को निगृहीत करके मैंने किस अन्य जन का दू:ख दूर किया है, मैंने आत्मीय जन पर ही तो अनुकम्पा की है । फिर भी आप मेरी स्तुति करते हैं, जिससे मुझे लज्जा मालूम पड़ती है । अतः इस समय स्तुति की बात व्यर्थ है, समुद्र मन्थन का काल बीता जा रहा है । अतएव आप सभी मेरे उपदेश को सुन लें – आप जिस कमलनयन पुरुष को सामने देख रहे हैं, वह आप सभी की माता है, मेरी प्रियतमा है । इसकी आज्ञा को मेरी आज्ञा तथा इसकी भक्ति को मेरी भक्ति जानते हुए आप सभी

इसको भी उसी तरह प्रणाम करें जैसे मुझे प्रणाम किया करते हैं । उनका कहना है कि भगवान् और भवानी में कोई भेद नहीं है । यह सुनकर देव और असुर पुनः समुद्र मन्थन करने लगे ।

पंचमाश्वासः

पंचमाश्वास में समुद्र मन्थन से ऐरावत नाम के महान् गज की उत्पत्ति हुई । जो मन्दरपर्वत के समान था । अतर्कित रूप में उपस्थित होने वाले उस ऐरावत को देखकर देवों तथा दानवों ने क्षीरसागर को फिर मथा । तब उससे उच्चैःश्रवा नामका अश्व निकला । अश्व के कान खड़े होने के कारण उसका नाम उच्चैःश्रवा चरितार्थ हो रहा था । वह सजा सजाया अतिवेगवान् था ।

तत्पश्चात् जैसे–जैसे देवों और दानवों ने पुनः समुद्र मन्थन किया वैसे–वैसे समुद्र ने एक–एक रत्न उन्हें अर्पित किया । फिर भी समुद्र को देव और दानव मथते रहे ।

इसके पश्चात् सुरभि–कामधेनु समुद्र से स्वयं पैदा हुई । उसने सोचा कि यदि में किसी गाय से पैदा होऊँगी, तो इतनी भली नहीं हो सकूँगी, क्योंकि स्वयं शंकर जी भी मेरे दूध से स्नान करने की इच्छा रखते हैं । जब देवगण कामधेनु की प्रशंसा कर ही कर ही रहे थी, उसी बीच दानियों में अग्रगण्य पांच कल्पतरु समुद्र से प्रकट हुए । उन कल्पवृक्षों को यथा स्थान स्थापित कर फिर देवों और दानवों ने समुद्र–मन्थन प्रारम्भ किया । तत्पश्चात् समुद्र से निकलने वाली चन्द्रलेखा को देखकर महादेव के शिरोभूषण की पुष्प कालिका है – ऐसा समझकर भगवान् अपने मन में अत्यधिक आनन्दित हुए । इसकी चिन्ता सभी कर ही रहे थे कि नन्दी सभी के समक्ष आकर उपस्थित हो गये, देवों और दानवों ने शिव की ही तरह उनकी अभ्यर्थना की । भगवान् ने समुद्र से निकली इन्दुलेखा नन्दी को सौंप दी । उसे ग्रहण करने के बाद नन्दी कुछ प्रशंसित वचन कहते हुए अन्तर्हित हो गए । इसके बाद समुद्रमन्थन फिर प्रारम्भ हुआ,

जिससे बहुत–सी नागलोक की ललनाओं की प्रतिच्छवियाँ स्वच्छ होने के कारण क्षीरसागर में प्रतिफलित हुई, वे प्रतिच्छवियाँ सुमित सागर के सुधारस में मिलकर जीवित हो उठीं, वही हैं ये अप्सरायें । ऐसी वे अप्सरायें क्षीरसागर से प्रकट हुईं जो कामदेव की सेना के आगे–आगे चलनेवाली नाना जय चिह्नों से भरी विजय पताकाओं के समान लग रहीं थी ।

देवों और दानवों के बीच उस समय तक बड़ी मैत्री थी किन्तु जब अप्सरायें प्रकट हुई तो वे अपना अपना अधिकार उन पर रखने हेतु आपस में झगड़ने लगे । जब भगवान् ने ऐसी स्थिति देखी तो वे कहने लगे – हे देवों और दानवों, आप लोग भी अन्जान की तरह आपस में क्या मतभेद कर रहे हैं ? आपने समान परिश्रम किया है, आप सभी समान हैं, फिर फल भी आपको समान रूप में मिलना चाहिए । अतः समुद्र से निकलने वाली युवती अप्सरायें भी आप लोगों को समानरूप से ही मिलेंगी भगवान्ने पुनः कहा कि यदि वस्तुतः आप लोगों के हृदय में प्रेम है, तो आप एक हाथी, एक घोड़ा, एक गाय तथा पाँच वृक्ष देकर आप सर्वस्व से वंचित इस विपन्न इन्द्र को सत्कृत करें । भगवान् के यह वचन सुनकर दानवों ने उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर कहा – आप के आदेश पर हम क्या उत्तर दें । परन्तु हमारे लिए यह उचित नहीं है कि स्वामी को बिना कुछ दिये हुए हम इतनी वस्तुएँ ले लें । अतः अब आगे जो निकलेगा, उसे आप स्वीकार करें । इसप्रकार मुस्कुराते हुए भगवान् ने अनुमति दे दी । तत्पश्चात् जब पुनः सागर–मन्थन हुआ तो लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई । जिसकी उत्पत्ति ने देवों और दानवों के हृदयों को शीतल बना दिया । अनन्तर उन लोगों ने फिर समुद्र मन्थन प्रारम्भ किया । इस बार संसार पर कृपा करने की इच्छा से स्वीकृत भगवान् के स्वरूप भेद से भगवान् ने धन्वन्तरि अमृत–कलश के साथ समुद्र से प्रकट हुए । धन्वन्तरि दिव्य औषधियों में पारंगत थे । उन्होंने भक्ति और श्रद्धा के साथ भगवान् को प्रणाम किया । तब समुद्र ने धन्वन्तरि के हाथ से अमृत कलश लेकर भगवान् को

अर्पित कर कहा – हे नाथ ! आप परब्रह्म सर्वान्तर्यामी हैं, जल–स्थल में वर्तमान कौन सी ऐसी वस्तु है, जो आपके वश में नहीं है । आप लक्ष्मीपति हैं और हम सब पर अनुग्रह किया करते हैं ।

समुद्र द्वारा यह कहने पर मैंने सर्वस्व आपको समर्पित कर दिया । यह सुनकर भगवान् प्रसन्न होकर बहुत सुन्दर वचनों से उसके मन को प्रसन्न कर दिया । इसके बाद समुद्र के वापस चले जाने पर ब्रह्मा इन्द्रादि देवगण भगवान् के आदेश की प्रतीक्षा में उन्हें घेर कर खड़े हो गये ! दैत्यों ने देखा कि जिस अमृत कलश को बीच में रखना चाहिए वह भगवान् के आगे रखा गया है । इसमें उन्हें कुछ गोलमाल मालूम पड़ा । उन्होंने सोचा कि भगवान् पक्षपात कर सकते हैं क्योंकि उन्होंने चिन्तामणि इन्द्र को दे दिया । ऐसा सोचकर उन लोगों ने आपस में एक दूसरे की ओर देखा । सभी को सान्त्वना प्रदान करने के लिए जरा समीप आ गये । अमृत कलश को घेर लिया, अस्त्र थाम लिये, अपने बान्धवों को एक साथ कर लिया और प्रारम्भ से विवाद की बात करने लगें । हे ब्रह्मा तथा भगवान् ! इस अमृत का बँटवारा किस प्रकार होना चाहिए अथवा हम आप दोनों को नहीं पूछते हैं ।

वृहस्पति ने प्रतिवाद को बढ़ाने के लिए वे सारी बातें दानवों के समक्ष कहीं, जो उनके गुरु शुक्राचार्य ने नहीं कही थीं । इससे दानवों का क्रोध और अधिक प्रज्वलित हो गया । इस परिस्थिति को देखकर भगवान् ने अपनी पराशक्ति को याद किया तथा ब्रह्मा के साथ स्वयं अन्तर्हित हो गए । तब परा शक्ति ने नारी का रूप धारण कर देव कलयण हेतु राक्षसों को ठगना प्रारम्भ किया । देव–दानव जब लड़कर पृथ्वी पर बैठ गये । तत्पश्चात् दोनों को एक अदृष्टपूर्व कन्या के दर्शन हुए । वह सुन्दरी सन्ध्या समय में विकसित कुवलय के सदृश अपने नयन जिधर फेरती थी, उधर परवश से होकर धनुष्र्धारी कन्दर्प प्रकट होते थे ।

महादेव की वह मोहिनी मायादिशाओं में विशाल नयनों का निक्षेप करती तथा करकमल के आघातों से कन्दुक को नचाते हुई मेघ से बिजली की तरह देवों के पास पहुँची फिर वह सुन्दरी दौड़ते हुए देवों और दानवों के मध्य आकर खड़ी हो गयी । वह सुन्दरी उस समय युद्ध में शस्त्र प्रहार से क्षत–विक्षत देवों तथा दानवों के अंगों को अमृत से सींचती–सी कहने लगी । आप लोग कौन हैं ? मनोरथों की पराकाष्ठा पर पहुँची तथा अमृत से हटा दिये गये हैं । हम दानव हैं, जिन्होंने अपने बाहुबल से इन्द्र के पद को प्राप्त कर लिया है । हम देव तथा दानवों का यह समुदाय इस समय आपके दास हो रहे हैं । यह हम सत्य कह रहे हैं । तुम ही हमारा राज्य बल, धन, प्राण तथा अन्तरात्मा हो । हम तुम्हारे कटाक्ष की प्रतीक्षा करने वाले तुम्हारे दास हैं । तुम जो कहोगी, हमारे लिए वही प्रमाण होगा ।

इसके अनन्तर महामाया ने मुस्कुराते हुए कहा–हाय, जैसे कुत्ते जूठन के लिए झगड़ते हैं – उस तरह आप लोग क्यों इस अमृत–कलश के लिए झगड़ रहे हैं, जबकि तत्त्व आपको ज्ञात है । अतः झगड़ना व्यर्थ है, आप लोग दो लाइनों में बैठ जाइये । मैं स्वयं आप लोगों के बीच इस कलशामृत का वितरण किये दे रही हूँ । पहले मैं इन पदभ्रष्ट तथा अन्नप्रार्थी देवों के बीच अग्रभिक्षा देती हूँ । देव और दानव उसके इस वचन को सुनकर सहमत हो गये ।

तत्पश्चात् वह सुन्दरी कहने लगी कि आप लोगों में से कोई भी यदि हाथ फैलायेगा, आपस में कानाफूसी करेगा, जोर से बोलेगा, जल्दी करेगा, या प्रत्युत्तर देगा तो मैं अन्तर्हित हो जाऊँगी । उसकी इस प्रतिज्ञा से ही सभी, भयभीत हो गये ।

उसने देवताओं की ओर से अमृत बाँटना प्रारम्भ किया किन्तु इसी बीच राहु और केतु नामक दो दैत्य–देव पंक्तियों में बैठ गये । सर्प का रूप धारण कर अमृत पी लिया, तब चन्द्रमा तथा सूर्य ने उनके दैत्य होने की सूचना उस सुन्दरी को दी, उसने तत्काल कलछी के दण्ड से उनका गला काट दिया । केतु

नामक जिस दैत्य ने अमृत उदरस्थ कर लिया था, उसका शरीर मात्र शेष रह गया (गला कट गया) । और जिस राहु नामक दैत्य ने अमृत मुख में ही रखा था, उसका मस्तक मात्र आज भी शेष रह गया है । इसके अनन्तर अमृतपान से देवों में अमरता के कारण स्फूर्ति, तेज और बल उत्पन्न हो गया, जिससे वे आद्याशक्ति की स्तुति करने लगे ।

जब असुरों ने देखा कि अमृत कलश रिक्त हो गया तो वे संघर्ष हेतु तत्पर हो गये । उनके क्रोध को देखकर वह नारायणी सुन्दरी शंख, चक्र, गदा, खडग, कमल आदि से युक्त भयंकर रूप धारण किया । हे इन्द्रादि देवगण ! इन दानवों को आप निष्कासित कर दें, मन्दराचल को पहले की तरह रख दें, वासुकि को विसर्जित कर दें, शिव को प्रसन्न करके उनके आवेश से पहले की तरह स्वर्ग का शासन करें । इसप्रकार देवों को अनुगृहीत करके भगवान् विष्णु ब्रह्मा के साथ अन्तर्हित हो गये । त्रिभुवन स्वामी भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर खिन्न हृदय दैत्यों ने देवगुरु के चरणों में शतशः प्रणाम करके शान्तभाव से पाताल में अपने रहने के लिए प्रार्थना की गुरुदेव के कहने पर देवों ने असुरों के पाताल में रहने की स्वीकृति दे दी । इसप्रकार मानसिक कालुष्य होने पर भी असुरों ने नम्रता धारण कर ली । देवों ने वासुकि की प्रशंसा की कि आपके कारण ही हम आज अमर हो सके हैं ।

इसप्रकार विनम्रभाव से देवगणों ने सभी अभीष्टों की स्तुति करते हुए इन्द्र को अमरावती का इन्द्रासन सौंप दिया ।

३.२.३.२ गंगावतरणम् महाकाव्य

गंगा को पृथ्वी पर अवतरण का जो कठोर तप महाराजा भगीरथ ने किया, उसका कुछ अंश उद्धृत करते हुए कथानक अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

भगीरथस्थु राजानिर्धार्मिकोरघुनन्दनः ।
अनपत्यो महाराजः प्रजाकामः स च प्रजाः ।।
ऊर्ध्वबाहुः पंचतपा मांसाहारो जितेन्द्रियः ।
तस्य वर्षसहस्राणि घोरे तपसि तिष्ठयः ।।
भागीरथ ! महाराजा प्रीतस्तेऽहं जनाधिप ।
तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुब्रत ।।

प्रथम सर्ग

सर्वप्रथम कविवर नीलकण्ठ दीक्षित शिव और पार्वती की वन्दना करते हैं । फिर व्यास जी को नमस्कार करते हैं, तत्पश्चात् वाल्मीकि, कालिदास और नारायणध्वरीन्द्र को भी नमस्कार करते हैं, जिनके कटाक्षों में सरस्वती निःशुल्क दासी के रूप में निवास करती है । तत्पश्चात् काव्य और कवि की सुकुमारता हो, वैसी ही उसमें काव्य तत्त्वविदों के संमर्दन की सहिष्णुता भी होनी चाहिए क्योंकि चमत्कार रहित काव्य का हम वैसे ही आदर नहीं करते जैसे अत्यन्त मुक्त शारीरिक वैभव का सम्मान नहीं होता । इसके बाद उत्कृष्ट काव्य कैसा होना चाहिए, इसका वर्णन लगभग १५ श्लोकों के माध्यम से करते हैं । फिर कवि कैसा हो, इसका वर्णन करते हैं । उसके बाद अपने वंश वर्णन के बाद उन्होंने जाह्नवी की प्रशस्ति का निश्चय किया । तत्पश्चात् गंगावतरण को भागीरथ से प्रारम्भ करते हुए वे कहते हैं कि दूसरे सूर्य के समान तेजस्वी ने ही गंगा का पृथ्वी पर अवतरण कराया ।

राजा भगीरथ प्राणियों में दयाभाव रखते थे । उन्होंने कभी दण्डनीय को नहीं छोड़ा और किसी अदण्ड्य को दण्ड नहीं दिया । इसप्रकार उचित दण्डनीति से वे राजा भगीरथ दयालु रूप में प्रसिद्ध हो गये । दुर्जनों का विनाश करने वाले राजा भगीरथ के समदृष्टि से निरीक्षित प्रजा में कोई न तो चोर था, न किसी में किसी के प्रति ईर्ष्या थी । इसप्रकार उन्होंने इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के

गुणों का अनुगमन किया । इस सर्ग में राजा भगीरथ की प्रशस्ति तथा उनके राज्योचित कार्य की प्रशंसा एक आदर्श राजा के रूप में की गई है ।

द्वितीय सर्ग

द्वितीय सर्ग में ग्रामवासियों द्वारा राजाओं के लिए प्रस्तुत की जाने वाली स्तुति–वाणी से मुखरित सभा में बैठकर राजा भगीरथ अपने सुहृदों के साथ वार्तालाप करते हुए समय यापन कर रहे थे । प्रसंगवश संगति को प्राप्त–कर वे राजा भगीरथ अपने बड़े भाइयों से प्रस्तुत सगरात्मजों से सम्बन्धित किसी भी चारित्रिक वक्तव्य को ध्यान से सुनते थे । राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया और वहाँ अपने पुत्रों को नियुक्त किया । घोड़ो का अनुगमन करने वाले पुत्रों के देखते–देखते इन्द्र ने उसे चुरा लिया, ऐसा राजा सगर ने सुना । तदनन्तर उन पुत्रों ने पर्वत, प्रान्त और वनान्त पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का विचरण किया । पश्चात् पिता की आज्ञा का अनुसरण करते हुए उन सगरात्मजों ने समुद्र को ही खोद डाला । उसके बाद वे समुद्र मार्ग से नागलोक मंदिर में उतर गये । वहाँ उनकी पादध्वनि से प्राचीन सर्पो ने आश्चर्य के साथ उन्हें देखा ।

तदनन्तर उस घोड़े को उन्होंने कपिलमुनि के समीप देखा और चोर कहकर उनके ऊपर आक्रमण कर दिया किन्तु मुनि की हुंकृति से ही वे भस्म हो गये । सूर्यवंशी राजा असमंजस के पुत्र और महाराजा सगर के पौत्र अंशुमान् ने घोड़ा लाकर सगर के यज्ञ को पूर्ण किया, ऐसा सुनकर वीर भगीरथ विस्मित हो गए । अब इनके उद्धार हेतु तिलाञ्जलि देने का क्या उपाय हो सकता है, इसप्रकार भगीरथ के पूछने पर वशिष्ठ जी समीप आकर विश्वकल्याण की भावना से कहने लगे । कुटिल गामिनी गंगा हिमालय की ज्येष्ठ कन्या है, जो स्मरणमात्र से भी पापों का विनाश करती है । उन्हें देवतागण शंकरजी के लिए सत्यलोक से ले आये । तदनन्तर कुछ कहने की उद्यत उस अहंकारिणी गंगा को प्राप्त कर ब्रह्माजी ने इसी समय आज जलस्वा हो जायें, ऐसा अभिशप्त किया । इसके

बाद हिमाद्रितनया गंगा ब्रह्मशाप को अनुग्रह के रूप में धारण करती हुई प्रलयकालिक सागर के समान भयंकर तरंगों से सभी को आत्मसात् करने के लिए प्रवाहित हो चली । जिस समय गंगा जी प्रवाहित हुईं, उससमय उनके वेग को देखकर ब्रह्मा जी की समझ में नहीं आया कि क्या करना चाहिए ?

वामन पुराणोक्त वर्णनों के अनुसार उस सुर नदी के विषय में आपको स्पष्ट रूप से विस्तृत जानकारी है, उसी जल से सागरात्मजों को जल देना चाहिए, ऐसा वशिष्ठ ने भगीरथ से कहा । उन्होंने आगे बताया कि शरीर के नाश पर्यन्त व्रतचर्या के आचरण का संकल्प करने वाले धीर अंशुमान् भी आकाश गंगा को पृथ्वी पर अवतरित करने में समर्थ नहीं हो सके । अंशुमान् के पुत्र दिलीप भी उन्हीं की भाँति गंगावतरण में परिणाम का अवलोकन नहीं कर सके । यदि तुम इस कार्य में दत्तचित्त हो सको तो नियम से यह प्रयोजन सिद्ध हो सकता है ।

वशिष्ठ मुनि के इसप्रकार कहने पर भगीरथ ने इस कार्य को करने का निश्चय किया । भगीरथ ने कहा – आपके कथनानुसार ही सफलता मिल सकती है । यह मुझे अभीष्ट है । इसप्रकार कहकर एवं सभा विसर्जित करके वे राजा भगीरथ अन्तःपुर चले गए । तत्पश्चात् किसी समय राजा भगीरथ सन्तुष्ट वशिष्ठ से आशीष (आशीर्वाद) प्राप्त कर एवं सम्पूर्ण राज्य को सचिवों के हाथ सौंप कर सुरनदी को लाने के लिए निकल पड़े । वे राजा भगीरथ समुद्र के किनारे कोई आश्रम बनाकर नियमपूर्वक ब्रह्मा की अत्यधिक आराधना करने लगे । इसप्रकार राजा भगीरथ के कठोर तप करने पर गंगा के अवतरण की आकांक्षा से निमिष के समान दिन हजारों दिनों की तरह लगने लगा । अर्थात् छोटे दिन बड़े लगने लगे । किसी समय उनके समीप जाकर प्रत्यक्ष रूप में ब्रह्माजी उपस्थित हुए और अमृतमयी वाणी से 'अभीष्ट मांग लो, प्रदान करूँगा' इसप्रकार भगीरथ से कहा । राजा भगीरथ ब्रह्मा के उस वचन को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करने लगे । तत्पश्चात् ब्रह्माजी से कहा – महर्षि कपिल मुनि की

हुँकृति से भस्मीभूत मेरे पितरगण इस गंगाजल से मेरे द्वारा निर्वापाञ्जलि प्राप्त करें । राजा भगीरथ के वचन को सुनकर 'तथावस्तु' के साथ गंगा को समीप में दिखाकर सभी वेदमन्त्रों की वक्त्रता के साथ देखते ही देखते ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये । भगीरथ ने भी फेनिलानुलेप की तरह शुभ्रता को धारण करती हुई शरीरिणी सुरनदी को अपने सामने देखते हुए अपने मनोरथ को सफल समझा ।

तृतीय सर्ग

इस तृतीय सर्ग में गंगाजी राजा भगीरथ से कह रही हैं कि मेरा प्रवाह इतना अधिक है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि उसी में लय हो जायेगी और मेरा जलप्रपात कोई देखने वाला रह ही नहीं जायेगा । गंगा की वाणी को सुनकर राजा भगीरथ ने कहा तीनों लोकों के नियामक चतुर्मुख ब्रह्मा ने तरंगों के साथ आपकी रचना की । वे भी उस समय सन्देह में पड़ गए तो जगत् के विनाश की बात ही क्या ? हे माँ ! आपका पृथ्वी पर स्वल्पावतरण हो, मैं यही चाहता हूँ । मेरे कथनानुसार यदि मेरे बिना आप प्रस्थान करना नहीं चाहते हो तो आपके लिए पृथ्वी पर मैं इसप्रकार उतरना चाहूँगी । गंगाने पुनः कहा – मेरे विचार से यदि आप अपने पूर्वजों का उद्धार चाहते हो, तो उस स्थल की मिट्टी लेकर मेरे पीछे – पीछे स्वर्ग में चले आओ और ब्रह्मलोक में अपना मनोरथ सिद्ध करो । राजा भगीरथ ने कहा – आपका कथन सत्य है किन्तु मैं अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता । गंगाने कहा यदि तुम गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते तो मुझे पृथ्वी पर लाने का प्रयास करो । मैं भी शास्त्रानुसार आचरण करती हूँ । ऐसा कहकर वह दिव्य नदी अन्तर्धान हो गयी ।

इधर राजा भगीरथ भी कुछ समय तक नेत्र बन्द करके ध्यान मग्न थे । उसी समय ब्रह्माजी उनके नेत्रों के समक्ष उपस्थित होकर इसप्रकार कहने लगे – कितनी ही आकाश गंगा और कितने ही विश्व का निर्माण हो जाता,

यदि प्राचीन पुण्ययोग से स्वयं राजा के द्वारा उसका शुभारम्भ हुआ होता । उन्हों ने भगीरथ को बताया कि देवाधिदेव चन्द्रशेखर थोड़ी ही तपस्या से लोगों पर दयालु हो जाते हैं, वह दयालुता भी ऐसी होती है, जिसमें दान पात्रता का कोई प्रश्न नहीं है । इसप्रकार राजा भगीरथ को प्रतिबद्ध करते हुए ब्रह्माजी ने पुनः शम्भु की दीक्षा से दीक्षित किया और उन्हें पंचाक्षर परिमार्जित मन्त्र प्रदान किया । तत्पश्चात् वह राजा भगीरथ कठोर तप हेतु कैलाश पर्वत पर गये ।वहाँ देवता और सिद्ध तपस्वियों के आने–जाने योग्य स्थान को प्राप्त करके तथा पर्वतस्थ तट प्रान्त भाग में भगीरथ भगवान् चन्द्रशेखर को हृदय में धारण करके पुनः साधना करने लगे ।

चतुर्थ सर्ग

इस चतुर्थ सर्ग में राजा भगीरथ ने वाह्येन्द्रियों को असंयमित करने वाली अपनी मनोवृत्ति को वशीभूत करके उसे भगवान् शंकर में संगृहीत कर दिया । मैं इसका अतिक्रमण नहीं करूँगा, इसप्रकार दिखाते हुए राजा भगीरथ पादांगुष्ठ रेखा से पृथ्वी की परिक्रमा करके बैठ गये और पाँच महीने तक कठोर तप ओर आराधना करने के पश्चात् शिव की पूजा का ऐसा कृत्य देखकर इन्द्र भी भयभीत होने लगे । इसीलिए इस लोक में दो को ही प्रसिद्धि प्राप्त हुई – भगीरथ और सूर्य को ।

इसप्रकार निरन्तर तपस्या करने से तेजस्वी और परिपक्व भगीरथ के मुख में धीरे–धीरे प्रसन्नता के लक्षण दिखाई देने लगे । एक दिन भगवान् शंकर भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न हो, पार्वती द्वारा अर्चना किये जाने के बाद नन्दी पर सवार हो, राजा भगीरथ के समीप गये । उनको वह तेज असाधारण प्रतीत हुआ । तदनन्तर वेदों से भी दुर्लभ दर्शनीय देवाधिदेव शिवजी को देखकर तज्जन्य घबराहट और आश्चर्य से चकित भगीरथ किंकर्तव्य विमूढ हो गये ।

इसके बादतन्मयता पूर्वक अनुचरों के साथ शिव जी की परिक्रमा करके राजा भगीरथ ने अपने भाग्यशाली मस्तक से उनके चरणों का वारंवार स्पर्श किया ।

शिवजी भगीरथ की तपस्या और आराधना से प्रसन्न होकर बोले – हे वत्स ! अपनी इच्छा से जो चाहते हो, माँग लो । तत्पश्चात् गद्‌गद हृदय और अवरुद्ध कण्ठ से भगीरथ नेशिव जी से कहा – मेरे प्रयोजन से ही आप यहाँ आये । ऐसी स्थिति में मेरी सम्पूर्ण तपस्या अपर्याप्त है । किससे वरदान की याचना करूँ तथापि मैं अपना अभीष्ट कहता हूँ । मैंने आराधना से प्रसन्न गंगा से अवतरण की प्रार्थना की थी, किन्तु उन्होंने अपने जल वेग को धारण करने में किसी सामर्थ्यवान् की प्रार्थना भी की है । किसी अन्य से असाध्य इस कार्य को आप ही कर सकते हैं क्योंकि कभी आपने अपने मुख में हलाहल धारण किया था । हे विश्वगुरो ! मेरा यहीप्रयास है । मैंने आपसे अपने अभीष्ट की याचना की है, इसलिए इस बालचापल्य को क्षमा करें, ऐसा कहकर राजा भगीरथ शिवजी के चरणों में गिर पड़े । अभिषेक प्रिय होने से हमारे लिए आपने यह उचित कार्य किया है । यह अपराध नहीं है, ऐसा शिवजी ने भगीरथ से कहा । तत्पश्चात् नन्दी से उतरकर शिला पर बैठ गए ।

फिर व्याघ्र चर्म पहनकर अहंकृति गर्जना के साथ शिवजी पृथ्वी पर खड़े हो गये । नन्दी ने भी शिवजी की जटाओं को खोलकर बिखेर दिया । भगीरथ सहित सभी देवगण आश्चर्य चकित हो देखने लगे ।

पंचम सर्ग

तदनन्तर चारों तरफ भ्रमित दृष्टि से शिवजी के देखने पर राजा भगीरथ ने ध्यान योग की विधि से गर्वित सुरनदी को स्मरण किया । ऐसा होते ही क्षण भर में ही सुरनदी मन में घबराहट के कारण अत्यधिक व्याकुल हो गयी । और चारों तरफ से निरुद्ध होने से लज्जित अपनी तरंगों को उतरने के लिए तैयार किया । तत्पश्चात् वह ब्रह्माजी के पास गयी और विनय रहित गरिमा गर्वित

वाणी में उनसे कहा – वनेचर शिव मेरे जलवेग को धारण करना चाहते हैं । यदि मेरा प्रयास बाधित न हुआ तो शिव और कैलाश दोनों का विनाश निश्चित है । मैं अवश्य ही उस शिव को रसातल में ढकेलकर आपको सन्तुष्ट करूँगी । आप कृपया मेरी लघु भगिनी पार्वती को सूचित कर दें ताकि वे बाद में दुःखी न हों । देवताओं ने भगवान् शिव को समझाया किन्तु वे नहीं माने और गंगाजी अपने पूर्व वेग से मार्ग के समस्त प्राणियों को डुबोती हुई पृथ्वी की ओर चल पड़ीं, तदनन्तर शिवजी के मस्तक पर गिरने के लिए वह सुरनदी मानों स्तुति करती हुई सिंह दन्त की तरह शुभ्र समुन्नत इन्द्र के राजभवन पर पूर्ण वेग के साथ अवतरित हुई जिनके वेग से अमरावती के सभी जीवजलमग्न होने लगे । इसके पश्चात् अप्रत्याशित एवं पतन की अवधि से अनभिज्ञ शिवशिरोमण्डल को देवताओं के देखते ही देखते सर्पिणी जैसे कलम में प्रवेश करती है, उसी प्रकार सुरनदी गंगा भी शिव की जटाओं में प्रवेश कर गयी । जिसे भगवान् शिव ने जटाओं को समेटकर सर्पों से बाँध दिया । इसके बाद आकाश गंगा का अहंकार शान्त हो गया ।

पष्ठ सर्ग

तदनन्तर शिवजी की जटाओं द्वारा सुरनदी के सम्पूर्ण जल को पान करने पर प्रमथगणों के साथ पहले तो राजा भगीरथ आश्चर्य में पड़ गये । पश्चात् दुःखी भी नहीं हुए । वह सोचने लगे कि ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये, गंगा भी मिल गयीं किन्तु इससे क्या परिणाम निकला ? जबकि स्वल्प मात्रा में भी आराधना के योग्य शिवजी की जटाओं का परिज्ञान न कर सका । अब गंगा का पृथ्वी पर अवतरण कैसे हो, यह सोचकर राजा भगीरथ कुछ उदासीन हो गये । फिर उन्होंने धैर्यधारण किया और पुनः सिद्धि प्राप्त कर गंगा को पृथ्वी पर अवतरित करने की ठान ली । वे पुनः शिव की उपासना में लग गये । इस बार वह शंकर की जटाओं की आराधना में लग गये ।

इसप्रकार राजा भगीरथ की चमत्कार पूर्ण स्तुतियों से महेश प्रसन्न हो गये और आश्चर्यशाली जल समूह के साथ दिशाओं में व्याप्त होने के लिए गंगा की लहरें चन्द्रशेखर की जटा से निकलने लगी । उनकी पूर्वोक्ति कहां चली गयी । हमें इसका परिज्ञान नहीं हो सका । बहती हुई सुरनदी ने स्वयं सात जलस्रोतों को धारण किया, जिनमें तीन स्रोत पश्चिम में और तीन स्रोत पूर्वदिशा में फैल गये । तदनन्तर नतमस्तक शम्भु को समरण कर रथारुढ़ होने वाले राजा भगीरथ की साक्षात् कीर्ति के समान गंगा के स्रोत ने उनका अनुसरण किया । वह सुरनदी जह्नु ऋषि के यज्ञ को विध्वंस करती हुई आगे बढी ही थी कि जह्नु ऋषि ने क्रोधित हो, उसे पी लिया । फिर राजा भगीरथ ने मुनि से याचनापूर्वक आग्रह करते हुए कहा – हे मुनि, यह सुरनदी आपकी पुत्री होगी । इसको मुक्ति हेतु हम आप से याचना करते हैं । इसप्रकार देवता और भगीरथ के कहने पर जह्नु ऋषि सुरनदी को मुक्त कर दिया । इसप्रकार जिस ओर राजा भगीरथ रथारुढ होकर चल रहे थे उसी ओर गंगा भी पीछे–पीछे चल रहीं थी । वह काशी में मणिकार्णिका से आगे चलने पर मन्दगति वाली हो गयीं । किन्तु गंगा के आगमन से काशी की महत्ता और भी बढ़ गई ।

सप्तम सर्ग

तदनन्तर अग्रगामी राजा भगीरथ और उसके रथ के पीछे–पीछे वाली उस सुरनदी को देखने की इच्छा रखने वाले लोगों में एक अलौकिक आश्चर्य हुआ । चंचल भौंहों से कामदेव के सदृश शरत्कालिक चन्द्रमा के समान सुन्दर युवा राजा भगीरथ में भी क्षण भर के लिए नारियों ने क्या–क्या कहना प्रारम्भ किया । इसप्रकार राजा भगीरथ कर्णपुट से पुरवासिनी वनिता की वाणी का श्रवण करते हुए और नागरिक सौन्दर्य का अवलोकन करते हुए धीरे–धीरे चलने लगे । वहीं पर भगवान् शिव के पास जाकर उनकी आराधना की । इसप्रकार मस्तकपर्यन्त हाथ जोड़े हुए राजा भगीरथ प्रणाम करने वालों का शुभ करने वाले शिव की

स्तुति करते हुए क्षणिक गमनावरोध से 'जाह्नवी' तट से कहाँ तक गयी, ऐसा सोचकर लौट आये और काशी से आगे बढ़ गये ।

अष्टम सर्ग

अनन्तर राजा भगीरथ काशी नगरी को अतिक्रमित कर सुरनदी के जल प्रपात से व्याप्त राजमार्ग से धीरे-धीरे चले । मार्ग में भगीरथ की सहायता करने वाली सरयूनदी में उस नदी को खींच लिया । तत्पश्चात् वह सुरनदी समुद्र के समीप पहुँच कर हजारों शाखाओं में विभक्त हो गयी । तदनन्तर राजा भगीरथ का अनुसरण करने वाली वह सुन्दरी शिवजटा के समान घनीभूत एवं ब्रह्मा के प्रथम विलास गृह रूपी पृथ्वी की कन्दरा को प्राप्त हुई । इसके बाद सगर पुत्रों के नख भाग से खोदने से गहरे इस समुद्र की पूर्णता के लिए कितना जल होना चाहिए ? मानो इस भावना से वह समुद्र आश्चर्यजनक रूप में सुरनदी की तरंगों से परिपूर्ण हो गया । फिर सगर पुत्रों द्वारा खोदे हुए समुद्र के अन्दर नागलोक के अन्धकार से आच्छादित कुहरे में समुद्र की नीलिमा के कारण सुरनदी का जल भी नीला हो गया । सुरनदी की तरंगें बड़वाग्नि संतप्त समुद्र में गिर कर विलीन हो गयी । वह राजा भगीरथ के साथ नागलोक में प्रवेश कर गई ।

वहीं पर राजा भगीरथ कपिल मुनि की क्रोधाग्नि से भस्मीभूत पितरों की राख को सामने देखकर अत्यधिक शोक से मूर्च्छित हो गये और उनकी आँखो में आँसू आ गये । इसके बाद रथ से उतर कर सगरात्मजों की राख देखने के लिए राजा भगीरथ के पहुँचने के पूर्व ही सुरनदी ने भस्म को अपने जल में तिरोहित कर दिया । सुरनदी में निमज्जित होने के पश्चात् भगीरथ के पूर्वज देवलोक चले गये ।

तदनन्तर परिपूर्ण मनोरथ वाले राजा भगीरथ नदी में स्नान कर बाहर निकल आये तथा ब्रह्मा के द्वारा की जाने वाली मृदु गम्भीर स्तुति को आकाश में श्रवण किया ।

ब्रह्मा ने राजा भगीरथ की प्रशंसा करते हुए कहा – हे भगीरथ ! पुत्र की इच्छा वाले आप से अन्तरहित यह सुरनदी अनादि हो । ब्रह्मा की वाणी को सुनकर राजा – भगीरथ तपोजन्य क्लेश से रहित हो गये । तत्पश्चात् सुरनदी को प्रसन्न करके उन्हीं के जल प्रपात मार्ग से सर्पिणी के पलक गिरते ही राजा भगीरथ बड़ी शीघ्रता से समुद्र के किनारे आ गये ।

राजा भगीरथ की प्रतीक्षा में खड़ी मन्त्रियों सहित उनकी सेना ने राजा को समुद्र मार्ग से आता हुआ देखकर अपार हर्षध्वनि की । फिर वह सेना राजा को पीछे कर आगे–आगे अयोध्या की ओर चल दी । जो राजा भगीरथ सुरनदी को मार्ग दिखाते हुए आगे आगे चल रहे थे, वही राजा भगीरथ सेना का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे । नगर में पहुँचकर उनका अपार स्वागत किया गया ।

अनन्तर अनुजीवियों का संरक्षण करते हुए याचकों को अभीष्ट प्रदान करने से प्रसन्न करते हुए पुरवासियों को निरन्तर दयादृष्टि से देखते हुए आकाश पर्यन्त अपने नाम का विस्तार करते हुए दोनों का परित्राण करने वाली भुजा से राजा भगीरथ ने सम्पूर्ण पृथ्वी का भोग किया ।

३.२.३.३ मुकुन्दविलास

कवि का यह महाकाव्य अपूर्ण एवं अप्रकाशित है । किन्तु आड्यार पुस्तकालय, मद्रास में इसकी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती है, जो वस्तुतः प्रस्तुत कवि के द्वारा रचित है, ऐसा सिद्ध होता है । इसमें कृष्ण के जन्म और रसिक पराक्रम का उल्लेख है, जो कवि की भागवत की विद्वता का प्रमाण है । इस कृति का उल्लेख किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता है तथापि एस. जगदीशन् ने इसका उल्लेख अपने शोध–ग्रन्थ में किया है और

'नल–चरित' के प्रथम अंक में इस कृति के नाम का उल्लेख है । इस काव्य की पुष्पिका इसका प्रमाण है ।[१६१]

३.२.३.४ उपदेशात्मक लघुकाव्य

कलिविडम्बनम्

यह १०२ श्लोकों का मुक्तक काव्य है । अपने काव्य 'कलिविडम्बन' में कलियुग की विडम्बना करते हुए श्री नीलकण्ठ दीक्षित जी कहते हैं कि बिना सोचे समझे ही लोग उत्तर देना प्रारम्भ कर देगें । यथा –

न भेतव्यं न बोधव्यं न श्राव्यं वादिनो वचः ।
झटिति प्रतिवक्तव्यं समाशुविजिगीषुभिः ।।[१६२]

कलियुग के शिष्यों के लिए भी उन्होंने कटाक्ष करते हुए लिखा है –

आगतित्त्वमतिश्रद्धा ज्ञानाभासेन तृप्तता ।
त्रयः शिष्यगुणा ह्येते मूर्खाचार्यस्य भाग्यजाः ।।[१६३]

इस युग में गर्भस्थ शिशु को लेकर माता–पिता में कन्या और पुत्र जैसे विषय पर शर्तें लगेंगी, किन्तु दैवज्ञ ही विजयी होगा ।

पुत्र इत्येव पितरि कन्यकेत्येव मातरि ।
गर्भप्रश्नेषु कथयन्दैवज्ञो विजयी भवेत् ।।[१६४]

कलि का प्रभाव ज्योतिषियों को भी प्रभावित करेगा कि उत्पन्न सन्तान को वे सदैव दीर्घायु बतायेंगें क्योंकि यदि बच्चा जीवित रहा तो उनकी सदैव मान्यता होगी और यदि मर गया तो दुबारा ज्योतिषी के पास कौन जाता है –

आयुः प्रश्ने दीर्घमायुर्वाच्यं मौहूर्तिकैर्जनैः ।
जीवन्तो बहुमन्यन्ते मृताः प्रक्ष्यन्ति कं पुनः ।।[१६५]

इस युग में निर्धन लोग धन की इच्छा करेंगे और धनीलोग अधिक धन प्राप्ति की लोलुपता करेंगे, वक्ता ही सर्वग्राही होगा और लोक में ज्योतिषियों की ही सामाजिक प्रतिष्ठा होगी –

निर्धनानां धनमवाप्तिः धनिनामधिकं धनम् ।
ब्रुवाणाः सर्वथा ग्राह्या लोकैर्ज्योतिषिका जनाः ।।[१६६]

श्री दीक्षित जी ने ४०० वर्ष पूर्व कलि विडम्बन के विषय में लिखा है –

शतस्य लाभे ताम्बूलं सहस्रस्य तु भोजनम् ।
दैवज्ञानमुपालम्भो नित्यः कार्यविपर्यये ।।[१६७]

श्री दीक्षित जी ने कलिविडम्बन में आगे को भाग्य का हेतु माना है –

स्वस्थैरसाध्यरोगैश्च जन्तुभिर्नास्ति किंचन ।
कातरा दीर्घरोगाश्च भिषजां भाग्यहेतवः ।।[१६८]

सभारंजनशतकम्[१६९]

इसमें १०५ श्लोक हैं । अन्तिम श्लोक में उद्धृत कवि का नाम[१७०] प्रस्तुत कृति का प्रमाण है । यह काव्य कवि की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित है ।

वैराग्यशतकम्[१७१]

इस कृति में १०१ श्लोक हैं । यह ग्रन्थ उस समय के सामाजिक वातावरण से प्रभावित कवि के शैवत्व का प्रदर्शक है । हम यहाँ से ब्रह्मा तक विश हैं ।[१७२]

अन्यापदेशशतकम्[१७३]

इस काव्य में १०१ श्लोक हैं । ग्रन्थपूर्ण है । इसमें राज्य–व्यवस्था का वर्णन है किन्तु वक्रोक्ति का प्रयोग अधिक है ।

शान्तिविलास

शान्तिविलास में निर्वेद का स्वर प्रधान है । कदाचित् यह, कवि ने वृद्धावस्था में लिखा था । लोष्टक कवि के दीनाक्रन्दनस्तोत्र के पश्चात् संसार की निस्सारता, कवि के दैन्य, राग तथा अहं के विगलन तथा मोहभंग की ऐसी

मार्मिक अभिव्यक्ति कम ही दिखायी देती है । इस काव्य के ५१ मन्दाक्रान्ता छन्दों में कवि के जीवन में अब किये गये सारे उद्यम की व्यर्थता और अनुताप के बोध के साथ ईश्वर के प्रति भावाकुल समर्पण की अभिव्यक्ति है । कवि संसार और परिवार से टूटते हुए अपने सम्बन्धों का अनुभव करता है । जागतिक सम्बन्धों में अभिव्याप्त स्वार्थ का भयावह स्वरूप वह प्रत्यक्ष देखता है । नीलकण्ठ ने यहाँ ईश्वरभक्ति के साथ–साथ वेदान्त निरूपित जगत् की परमार्थतया निस्सारता को कवि दृष्टि से उन्मीलित किया है । अपने स्वयं के घर के विषय में अब उसे बोध होता है –

आयान्त्यग्रे ननु तनुभवा उत्तमर्णा इवेमे ।
शय्यालग्नाः फणभृत इवाभान्तिदारा इदानीम् ।।
कारागेहप्रतिममधुना मन्दिरं दृश्यते मे ।
तत्र स्थातुं प्रसजति मनो न क्षणं न क्षणार्धम् ।।[१७४]

(मेरे बेटे कर्ज वसूलने वालों की तरह आज मेरे आगे खड़े हैं । पत्नियाँ सेज से लिपटी नागिनों–सी दिखती हैं । मेरा अपना घर कारागार जैसा मुझे लग रहा है, जिसमें एक क्षण भी रुकने का मन नहीं होता ।'

अन्त में कविशिव से अपना सच्चा रूप पाने की विनंती करता है । –

'मह्यं शम्भो दिशमसृणितं मामकानन्दमेव ।[१७५]

आनन्दसागरस्तव

आनन्दसागरस्तव में कवि नीलकण्ठ ने आनन्दलहरी और सौन्दर्यलहरी के काव्यप्रकर्ष को छू लिया है । इस काव्य में पांड्यकन्या के रूप में भवानी की गद्गद भाव से स्तुति की गयी है । अपने लिए शिशु तथा आराध्या देवी के लिये मातृत्व की व्यंजना गहरी अनुभूति के साथ की गई है ।

समर्पण का स्वर इस काव्य में सर्वातिशायी है । कवि अपने समस्त अज्ञान, विशाल ज्ञानराशि, पाण्डित्य, पुण्य–अपुण्य सभी को माता के चरणों में

अर्पित कर देना चाहता है । वह माता भवानी को उलाहना भी देता है कि जब मेरे पूर्वज अप्पय दीक्षित ने पहले ही अपने आप को, अपने सारे कुल को तुम्हें समर्पित कर दिया है, तो तुम मुझ कुलदास की उपेक्षा करनेवाली कौन होती हो, और मैं अपनी कुलदेवी की अनुपासना करने वाला भी कौन होता हूँ । इस भूमि पर पहुँच कर कवि को संसार के लोग मूर्ख प्रतीत होने लगते हैं –

आदाय मूर्धनि वृथैव भरं महान्तं
मूर्खा निमज्जय कथं भवसागरेऽस्मिन् ।
विन्यस्य भारमखिलं पदयोर्जनन्या
विस्रब्धमुत्तरतः पल्वलतुल्यमेनम् ।।[१७६]

(हे मूर्खो, अपने माथे पर महान् भार को ढोते इस भवसागर में क्यों डूबे जा रहे हो ? अपना सारा भार माँ के चरणों पर रख दो, फिर इससे निश्चिन्त होकर तालाब की तरह पार कर लोगे ।'

नीलकण्ठ शैवागम के निष्णात विद्वान् थे । पर भक्तिभाव में बहते हुए वे अपने सारे ज्ञान ओर विज्ञान को भी विसर्जित कर देना चाहते हैं –

एतज्जडाजडविवेचनमेतदेव
क्षित्त्यादितत्त्वपरिशोधनकौशलं च ।
ज्ञानं च शैवमिदमागमकोटिलभ्यं
मातर्यदंघ्रियुगले निहितो मयात्मा ।।[१७७]

शिवोत्कर्षमंजरी में ५२ शार्दूलविक्रीडित छन्द हैं । प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ पद में ५१ श्लोकों तक 'स स्वामी मम दैवतं तदितरो नाम्नापि नाम्नायते' की आवृत्ति है । अन्तिम पद्य में शिव की अष्टमूर्तियों में ही अपने पूर्वज अप्पयदीक्षित की भी गणना करता हुआ कवि कहता है –

भूमिर्भाम्यति बुद्ध एवमरुतः प्रत्यग्भ्रमोऽत्यद्भुतो
भ्राम्यन्त्येव सहाश्रयेण यदि वा ज्योतींषि सर्वाण्यपि ।

आवर्तोऽयमपां भ्रमः परिचिता मूर्तिर्हरस्याष्टमी
या सास्त्यप्पयदीक्षिता जयति सा मूर्तिर्निरस्तभ्रमा ।।[१७८]

नीलकण्ठदीक्षित कृत चण्डीरहस्यम् देवीस्तोत्रों में उल्लेख्य रचना है । इसमें ३४ पद्य हैं । देवी के विभिन्न नामों और रूपों का निरूपण करते हुए इसमें कवि ने अन्य समस्त देवों को उसका वशंवद बताया है –

यच्छक्तिलेशसकृदर्पणपात्रभाव –
मात्रादपि द्रुहिणशौरिमहेश्वराणाम् ।
प्राप्तोयदि श्रुतिशतैः परमात्मभाव –
स्ताम्ब देवि भवतीं किमिति स्तुवन्तु ।।
नन्दात्मजेति ननु वर्षसि हेमराशिं –
शाकम्भरीति शमयस्युदरोपसर्गान् ।
योगीश्वरीति परिहृत्य भयानि भक्तान् –
मातेव पाययसि कामदुधौ स्तनौ ते ।।[१७९]

नीलकण्ठ की भक्तिभावना, कवित्वप्रतिभा और सांस्कृतिक अवबोध का सुन्दर निदर्शन रामायणसार संग्रह रघुवीरस्तवः में मिलता है । इसमें कुल ३३ पद्यों में गागर में सागर भर दिया गया है । प्रत्येक पद में कविने भक्तिभाव में डूब कर भगवान् राम की स्तुति भी की है ओर उसी में साथ–साथ रामचरित का क्रमशः पूरा निरूपण भी कर दिया है । सारा स्तोत्र राम को ही सम्बोधित है । इतिवृत्त का समास शैली में सांगोपांग निर्वाह तथा स्तुति और समर्पण के भाव का उसीके साथ समवेत प्रकटीकरण इस काव्य का दुर्लभ गुण है । उदाहरण के लिए दो पद्य प्रस्तुत हैं –

यज्ञं ररक्षिथ मुनेर्यदि कौशिकस्य
यज्ञात्मनस्तव तु तां विदुरात्मरक्षाम् ।
कीर्तिं यदीच्छसि कृतार्थय मामनाथं
काकुत्स्थवीरकरुणामसृणैरपांगैः ।।[१८०]

इस पद में विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के प्रसंग का उल्लेख भी है, और राम को उलाहना भी है कि आप यज्ञस्वरूप हैं । यज्ञ रक्षा करके तो आपने आत्मरक्षा ही की । यदि कीर्ति चाहते हैं, तो मुझ अनाथ को अपनी करुणामसृण दृष्टि से निहारिये । इसीप्रकार हनुमान् जी और विभीषण पर राम की अनुकम्पा का उल्लेख करके कवि अपने ऊपर भी उनकी अनुकम्पा की भीख माँगता है –

दाता बभूविथ कपीन्द्रविभीषणाभ्यां

स्वं स्वं पदं स्वमनुमत्ययतस्ततोऽहम् ।

मह्यं मदीयमपि तात्त्विकमेव रूपं

किचिंत् प्रदर्शय भज कीर्तिमिति स्तुवे त्वाम् ।।[१८१]

नीलकण्ठ का एक अन्य स्तोत्र 'गुरुस्तवमालिका' है, जिसमें कवि ने शार्दूलविक्रीडित छन्द में अत्यन्त श्रद्धाभाव से अपने गुरु श्री गीर्वाणेन्द्र यति की स्तुति की है । प्रत्येक पद्य के अन्तिम पाद में 'गीर्वाणेन्द्र' नामांकित हैं ।

३.२.३.५ भाष्य ग्रन्थ

शिवतत्त्वरहस्य

यह भाष्य ग्रन्थ कवि के वैदिक और पौराणिक ज्ञान पर आधारित है । इस ग्रन्थ के आरम्भ में उद्धृत १८ पुराणों के नाम तथा शिव के १०८ नामों का उल्लेख[१८२] कवि के विविध क्षेत्रीय अध्ययन के विस्तृत ज्ञान का प्रकाशक है ।

अघ–विवेक

यह ज्योतिष अथवा संग्रह ग्रन्थ है, जो अप्रकाशित एवं अपूर्ण है । इसकी खंडित हस्तलिखित प्रति मद्रास ओरियन्टल म्युनुस्क्रिप्ट्स विभाग में रक्षित आर ३८६७ । १७६६४ संख्या पर प्राप्त होती है । यह कृति प्रस्तुत कवि नीलकण्ठ की है । इस ग्रन्थ की पुष्पि का इसका प्रमाण है ।[१८३]

३.२.३.६ व्याकरण–ग्रन्थ

कैयट व्याख्यान

यह अप्राप्य व्याकरण–ग्रन्थ है, किन्तु अनेक विद्वानों ने इसको कवि की कृति के रूप में स्वीकार किया है ।

३.२.३.६ तन्त्र–ग्रन्थ

सौभाग्य चन्द्रातप

यह अपूर्ण एवं अप्रकाशित ग्रन्थ है । डॉ. एस. जगदीशन् ने इसका उल्लेख कवि के तन्त्र–ग्रन्थ के रूप में अपने शोध–ग्रन्थ में किया है ।[१८४] उपर्युक्त शिवलीलार्णव, गंगावतरण, मुकुन्दविलास, कलिविडम्बनम्, सभारंजनशतकम्, वैराग्यशतकम्, शान्तिविलास, अन्यापदेशशतकम्, आनन्दसागरस्तव, शिवोत्कर्षमंजरी, शिवतत्त्वरहस्य, कैयट व्याख्यान आदि ग्रन्थों का नामोल्लेख कृष्णमाचारियर[१८५] दासगुप्त डे[१८६] और बालसुब्रह्मण्यम्[१८७] ने अपने ग्रन्थों में, Descriptive Catalogue Tanjore में तथा नीलकण्ठ विजयचम्पू काव्य की भूमिका में प्राप्त होता है । जो कवि की कृति होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

इसप्रकार कवि की समस्त कृतियों के अक्षय ज्योति–पुंज की उज्जवल रश्मियाँ आज भी संस्कृत विद्वानों में महाकवियों, नाटककारों, चम्पूकारों, दार्शनिकों, ज्योतिषियों तथा वैयाकरणों के प्रगति–पथ को आलोकित कर रही हैं । कुशल राजनीतिज्ञ, सहृदय साहित्यकार, संस्कृत–दर्शन के प्रकाण्ड विद्वान् कवि नीलकण्ठदीक्षित की समस्त रचनाएँ कथावस्तु की विचित्रता, पात्र चरित्रों की व्यापकता, वर्णन वैविध्य, कल्पना शक्ति की प्रगल्भता, भाषा–सारल्य, पदलालित्य, शैली की चारुता, अलंकारों की स्वाभाविकता, काव्यात्मक सरसता के अतिरिक्त धार्मिक भावनाओं एवं दार्शनिक सिद्धान्तों से ओतप्रोत है ।

प्रथम सर्ग में कवि ने काव्यमुख का वर्णन किया है । द्वितीय सर्ग में पाण्ड्य देश के सौन्दर्य का तथा सुन्दरनाघलिंग नामक शिवलिंग का रहस्योद्भव

का वर्णन है । तृतीय सर्ग में इन्द्र तप में लीन वृत्रासुर का वध करते हैं, जिससे ब्रह्महत्या उनका अनुसरण करती है और अन्त में शिवार्चन द्वारा उस ब्रह्महत्या का नाश होता है । चतुर्थ सर्ग में क्रुद्ध दुर्वासा द्वारा इन्द्र और ऐरावत को दिए गए शाप एवं उसके मोचन का वर्णन है और महादेव द्वारा आविष्ट किए गए राजा कुलशेखर द्वारा नगर निर्माण का विधान है । पंचम सर्ग में मलयध्वज का अभिषेक और अगस्त्य द्वारा अश्वमेध यज्ञाचरण के उपदेश का वर्णन है । षष्ठ सर्ग में तटातका का जन्म वर्णित है । सप्तम सर्ग में तटातका का अभिषेक विहित है । अष्टम सर्ग में तटातका–विजय–यात्रा हेतु माता और मैत्री से सम्मति प्राप्त करती है । नवम सर्ग में तटातका यात्रा भ्रमण करती हुई हिमालय पहुँचकर महादेव पर प्रेम–विजय प्राप्त करती है । एकादश सर्ग में महादेव विवाह के लिए मदुरा नगरी में प्रवेश करते हैं । बारहवें सर्ग में मीनाक्षी (तटातका) एवं महादेव (सुन्दरेश) के विवाह का प्रसंग वर्णित है । पतंजलि आदि ऋषियों के लिए सभा में महादेव नर्तन भी करते हैं । भोजन समाप्ति हेतु कुण्डोदर नामक गण में शिव का प्रवेश तथा कुण्डोदर की पिपासा–शमन हेतु शिव द्वारा वैगवती नदी के उत्पादन का उल्लेख है । त्रयोदश सर्ग में तटातका की माँ कांचन मालिका के स्नान हेतु सप्ततीर्थार्णव का प्रकटीकरण एवं मृत–पति के प्रदर्शन का वर्णन है । सुन्दरपाण्ड्य (महादेव) द्वारा अपने पुत्र उग्रपाण्ड्य को शक्ति आयुध द्वारा समुद्र–शोधन करता है । चक्रायुध द्वारा इन्द्र का मौलि–भेदन करता है । १४ वें सर्ग में शिवप्रदत्त दण्डायुध द्वारा सुमेरु हनन तथा सुन्दरेश (महादेव) द्वारा की गई आगमाशय की व्याख्या का प्रसंग उद्धृत है । इसी सर्ग में वणिक् रूपी महादेवप्रदत्त रत्न से अभिषेक पाण्ड्य के राज्याभिषेक का वर्णन है । १५ वें सर्ग में महादेव अपनी जटा के बाल से मेघों को रोककर अतिवृष्टि का निवारण करते हैं । सिद्धावेशधारी महादेव राजा के कौतुक से शिलागज को गन्ना खिलाते हैं । नरसिंहास्र के आभिचारिक हस्ति का हनन करते हैं । १६ वां सर्ग में शिवद्रोही श्वसुर से ब्राह्मण कन्या के रक्षार्थ शिव का

प्रादुर्भाव, पाण्ड्यराज की प्रार्थना पर शिवनर्तन मार्ग में बहेलिए द्वारा मारी गई ब्राह्मण पत्नी के वधपापपरिहार का वर्णन है और माता में आसक्त अधम ब्राह्मण का शोधन, शिवभक्त अंक की पत्नी के अपहरण की रक्षा, मायावी सर्प का शमन तथा मायावी गाय की हिंसा का वर्णन है । १७ वें सर्ग में पाण्ड्य सेनापति पर अनुग्रह हेतु शिव द्वारा राजा के सम्मुख अलौकिक सैन्य प्रदर्शन, कुलभूषणराजा को हेमदान, वैश्य स्त्रियों को शिव द्वारा कंगन प्रदान कर अष्टसिद्धि का प्रतिपादन करना, रात्रि में द्वार खोलकर चोल राजा का पाण्ड्य राज्य में प्रवेश कराना, युद्ध में थकी पाण्ड्य-सेना के लिए अलौकिक जल-प्रबन्ध आदि चमत्कारिक लीलाओं का वर्णन है । अष्टादशतम सर्ग में सिद्ध विग्रह-धारीशिव द्वारा वैश्य को हेमदान, पाण्ड्य राजा के सम्मुख प्रमुख दासी बनकर चोल राजा पर विजय प्राप्त करना, चावल का अक्षय भण्डार देकर भक्त की रक्षा करना तथा मातुल रूप में वैश्य - वटुक के धन की रक्षा आदि का वर्णन हैं । ब्रह्महत्या से भयभीत वरगुणपाण्ड्य शिवादिष्ट अर्जुनलिंग की अर्चना करता है । शिव अपने भक्त गायक भद्र को काष्ठभारवाहन द्वारा शिव-विजय प्राप्त कराते हैं । एक पत्र देकर गायक भद्र को चेदिराज के पास भेजते हैं । प्रलयकाल में भद्र को दिव्य फलक प्रदान करना तथा अन्य दीप से अधिक गायिका से प्रतियोगिता में भी पत्नी के विजय का प्रसंग वर्णित है । १९ वें सर्ग में सुअर के बच्चों को राज्य में मंत्रीपद पर स्थापित करना, स्वजन पक्षी पर अनुग्रह, वक पर अनुग्रह, अपने करमेखला सर्प से मदुरा नगरी की सीमा-माप का वर्णन तथा स्वनामलाञ्छित शस्त्र द्वारा चोलराजा के पराक्रम का हनन वर्णित है । २० वें सर्ग में सरस्वती के अवतार अभिमानी कवियों को फलकप्रदान का प्रसंग, वंशशेखर पाण्ड्य की चिन्ता के अनुरूप स्वभक्त को पथ-प्रदान का प्रसंग, विद्या-विवाद के पश्चात् कवि पर शिव का अनुग्रह, मूक कवि से द्रविण सूत्र रहस्य का विवेचन, क्रुद्ध शिव का पुनः नगरागमन और दाशकुल में उत्पन्न अम्बिका के पाणिग्रहण का प्रसंग वर्णित है । २१ वें सर्ग में वातपुरीश नामक

पाण्ड्य मंत्री पर अनुग्रह, उस मंत्री की प्रार्थना पर अरिमर्दन राजा के शासन में घोड़ों का सियार रूप में परिवर्तन, वेगवती के प्रवाह–प्रवर्तन में राजा द्वारा शिव को वेज हननत से विश्वात्मकता का संचार, शिव ने किया, ऐसा वर्णित है तथा २२ वें सर्ग में नाथ द्वारा राजा के ज्वरशमन का वर्णन है । विद्या–विवाद में पराजित जैनियों का शूलधारण–प्रदर्शन, वैश्य–विवाह में कूप, शमी तथा लिंग के साक्ष्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है और अन्त में सम्पूर्ण कथा का पुनरावर्तन किया गया है ।

नलचरित्रम् का परिचय :

नलचरित्रम् नीलकंठ दीक्षित का परम् प्रतिष्ठित नाटक है । जिसमें कुल छः अंक हैं प्रत्येक अंक विषय निरूपण की दृष्टि से तथा संस्कृत नाट्य शैली की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं । मंगलाचरण के समय ही दीक्षित जी कहते हैं –

अद्भुतं किमपि द्वंद्वमस्तु तन्मम शर्मणे ।
स्वस्तिकस्तनुते यस्य सुदृगाश्लेषनिर्वृतिम् ।। १ ।।

अर्थ –

जिनका कल्याण सूचक चिन्ह नेत्र दर्शन के सुख की वृद्धि करता है ऐसे अनिर्वचनीय अद्भूत युगल आदि दंपति पार्वती – परमेश्वर (युगल) मेरा कल्याण करें ।। १ ।।

इसके अतिरिक्त द्वितीय और तृतीय क्रम के श्लोकों में भी मंगल पाठ देखा जा सकता है जिसमें क्रमशः भगवती पार्वती और आदि कवि लव–कुश व जगन्नियन्ता से कृपा के लिए प्रार्थना की गई है । नलचरित्रम् के हिन्दी व्याख्याकार डो. रमापति मिश्र ने ग्रंथ की भूमिका में नलचरित्रम् का परिचय निम्नलिखित प्रकार से दिया है –

नलचरित्रम् :

सामान्य रूप से काव्य के दो भेद हैं श्रव्य और दृश्य ।[१८८] श्रव्य के अंतर्गत काव्य महाकाव्य, गीतकाव्य, खंडकाव्य आदि हैं । दृश्य काव्य में नाटक, भाण, प्रहसन, रूपक आदि का समावेश किया जाता है ।[१८९] संस्कृत साहित्य में नाटकों की एक विशिष्ट परंपरा का संकेत मिलता है । विशेष लोकप्रिय होने से भारत में नाटकों का निर्माण प्राचीन काल से ही होता रहा है । ऋग्वेद के सूक्तों में सोमविक्रय के समय मनोरंजन के उदेश्य से अभिनय का संकेत किया गया है । यजुर्वेद में शैलूष शब्द का प्रयोग भी मिलता है, जो नट अथवा अभिनेता का समानार्थक है । वाल्मीकि रामायण में भी नट नर्तक तथा शैलूष शब्दों का उल्लेख है । इस प्रकार तत्कालीन जनजीवन में नृत्योत्सवों के अवसर पर नाटकों का मंचन किया जाता था ।

नटनर्तकसंधानां गायकानां च गायताम् ।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः ।।

नाटक से पंचम वेद के रूप में स्वीकार किया गया है ।[१९०] भरत मुनि के विचार से नाटक तीन लोकों के भावों का अनुकरण है –

त्रैलोक्यस्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।

उपर्युक्त मत का समर्थन महाभाष्य के कंस वध और बलि वध के अभिनयात्मक वर्णन से किया गया है –

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
*न स योगो न तत्कर्म नाट्ये*स्मिन् यन्न दृश्यते ।। १/१०*

वस्तुतः संस्कृत नाटक भारतीय प्रतिभा का स्वतंत्र सिद्धांत है और अभिनय की कला में भी नाटक स्वतंत्र उदभावना के आश्रित रहा है ।

कविवर नीलकंठ दीक्षित उन समग्र प्रतिभावान् कवियों में से हैं, जिन्होंने श्रव्य और दृश्य रचना में विशिष्ट गौरव प्राप्त किया है । इस परंपरा में कालिदास जैसे कालजयी कवियों के साथ उनकी रचना का तुलनात्मक अध्ययन

किया जा सकता है । 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' की सूक्ति को चरितार्थ करने वाले उनके प्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् में जिस प्रारंभिक मंगलाचरण के अंतर्गत दृश्य की वस्तुनिष्ठता के लिये शिव जी की अष्टमूर्तियों का प्रत्यक्षीकरण किया गया है ।[१६१] उसके अनुसार ही नल चरित्र में सुदृगाश्लेष जन्य सुख की परिकल्पना की गयी है ।[१६२] शिव जी के त्रिनेत्र की सफलता और दीपक के निर्वापित होने पर भी जटांतरित चंद्रकिरणों के प्रकाश की यथार्थ परिकल्पना दृश्य वस्तु की उपयोगिता का प्रतीक (चिन्ह) है । नाटक की रचना के लिये नीलकंठ दीक्षित ने खुद कवि की व्युत्पन्नता को मुख्य रूप में स्वीकार किया है ।[१६३] इसी प्रसंग की अभिपुष्टि के लिये उत्कृष्ट नाटकों के अभाव का संकेत करने वाले पारिपार्श्विक से सूत्रधार कहता है –

सूत्रधार : सत्यम् । तथापि खल्वस्ति तादृशमेव नवनिर्मितं नलचरित्र नाम नाटकम् । कविरपि तस्य जगद्विदित एव ।

प्रस्तुत नाट्य कृति में कविवर दीक्षित ने प्रायः सभी रसों का अभिनिवेश किया है ।

नलचरित्र के अंतर्गत स्वप्न में देखी गयी नायिका के विषय में जानकारी के लिये आमंत्रित सत्याचार्य जब राजा से अपने आमंत्रण का कारण, जानना चाहते है, तो उसी समय उनके ज्योतिष का मजाक बड़े ही कटु शब्दों में विदूषक करता है –

ननु दैवज्ञस्त्वं तत्किमिति करतले दर्पणं गृहीत्वा कीदृशं मे मुखमिति पृच्छसि । कथय देवस्य चिन्तितम् ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के अनेक स्थानों का भावात्मक चित्रण नलचरित्र में मिलता है । इससे आभास होता है कि कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों के सम्मानार्थ तुलनात्मक चित्रण किया है । कालिदास ने जिस प्रकार दुष्यंत के रथ की तीव्र गतिशीलता का वर्णन किया है ठीक उसी प्रकार कवि दीक्षित ने भी नलचरित्र में इन्द्र के रथ की गतिशीलता का वर्णन किया है –

यद्दृष्टं पुरतस्तदेति जधनं भूयस्समालोकने
यैरुत्तानितमक्षि वीक्षितुमिंद तैरेव तन्नम्रितम् ।
यत्राख्यातुमुपक्रमे विनिपतन्त्यत्रेति तत्रैव मे
संवृत्ता भवतश्शतांगरभसात् भूतार्थगर्भा गिरः ।। (नलचरित्रम् २/१६)

अर्थात् जो आगे दूर दिखाई पड़ता है, वह रथ वेग से सहसा सामने आ जाता है । जिसे देखने के लिए आँखों को ऊपर उठाना पड़ता था वह स्वयं वहाँ स्थिर सा दिखाई पडँने लगता है । जैसे ही मैं किसी वस्तु को आप से बताना चाहता हूँ तत्काल ही रथ वेग से दूसरा आ जाने के कारण कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिलता ।

कविवर दीक्षित प्रणीत इस नलचरित्र नामक नाटक में ऐसे प्रसंगों का अवतरण नहीं किया गया है, जिसका अभिनय किया न जा सके । नाटक के लक्षण के अनुसार उनकी यह रचना उत्कृष्ट प्रयास की संपूर्ण सफलता है । कालिदास की तरह नीलकंठ जी ने प्रकृति चित्रण न संभोग श्रृंगार वगैरह का वर्णन नलचरित्र में बड़ी दक्षता से की है । जिसके कारण कवि की बहुमुखी प्रतिभा का संकेत मिलता है ।

कवि निलकंठ दीक्षित के रचनागत वैशिष्ट्य :

अतुलनीय प्रतिभा के धनी कविप्रवर दीक्षितजी के जीवन और उनकी कृतियों में कुछ ऐसी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं जो अन्यो से सर्वथा भिन्न हैं । क्योंकि काव्य के संदर्भ में उनकी मात्यताएँ और आदर्श, उनका जीवन दर्शन, राजा के आदर्श सिद्धांत, उनकी दृष्टि में मानवजीवन के आदर्श गुण और नैतिक मान्यताएँ, दाम्पत्य जीवन और सौंदर्य बोध के प्रति उनकी दृष्टि अलग है । जिसका प्रतिपादन प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी नामक प्रतिभा सम्पन्न विद्वान ने अपनी कृति ‘‘संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास’’ के अंतर्गत बहुत ही

कुशलता के साथ करते हुए दीक्षित जी की कारयित्री का परिचय दिया है । ध्यातव्य है एवं भावपित्री प्रो. त्रिपाठी ने यह प्रतिपादन कवि नीलकंठ की प्रतिभा के ग्रंथों के आधार पर ही किया है । जिसे हम यहाँ अविकल रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं । क्योंकि श्री दीक्षित के और उनकी कृतियों के संदर्भ में संस्कृत साहित्य के अंतर्गत सामग्री अति स्वल्प मात्रा में प्राप्त होती है ।

(१) मान्यताएँ और आदर्श काव्य के संबंध में :

नीलकंठ दीक्षित ने यश को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है ।[१६४] परन्तु काव्य का मूल प्रयोजन वे मम्मट की ही भाँति विशुद्ध आनंद को ही मानते हैं । उनके मत में काव्येतर कलाओं से यह आनंद प्राप्त नहीं हो सकता –

कर्णं गतं शुष्यति कर्ण एव संगीतकं सैकतवारिरीत्या ।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविश्य सूक्तिः कवेरेव सुधा सगन्धा ।।

शिवलीलार्णव, १/१७

इस विशुद्ध, निर्दोष आनन्द के साथ मनोरंजन और कालयापन भी काव्य के प्रयोजन हैं –

व्यामोहयन्ती विविधैर्वचोभिर्व्यावर्त्तयन्त्यन्यकलासु दृष्टिम् ।
कालं महान्तं क्षणवन्नयन्ती कान्तेव दक्षा कविता धिनाति ।। शिवलीलार्णव १/२४

नीलकंठ के मत में काव्य लोगों को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करता है । वह महेश में चित्त को रमा ने का या समाधि की स्थिति तक पहुँचने का एक साधन है –

अनायतप्राणमसंयताक्षमब्रह्मचर्यानशनादिखेदम् ।
चित्तं महेशे निभृतं निधातुं सिद्धः कवीनां कवितैव योगः ।। शिवलीला १/२६

काव्य के अवान्तरप्रयोजनों को भी नीलकंठ दीक्षित ने स्वीकार किया है । वे काव्य से व्यवहारज्ञान, बुद्धि का आर्जव तथा शास्त्रीय पाण्डित्य की भी संभावना करते हैं –

आंजस्यं व्यवहाराणामार्जवं परमं धियाम् ।
स्वातन्त्र्यमपि तन्त्रेषु सूते काव्यपरिश्रमः ।। समारंजनशतक, १५

कवि दीक्षित के अनुसार कवि के भीतर एक अचिन्त्य शक्ति होती है, जिससे वह सर्व संवेद्य भावों का प्रत्यक्षीकरण करता है । यही उसकी दिव्य दृष्टि है ।[१६५] इसके कारण वह मौलिक और अपुर्व वस्तु के निर्माण में सक्षम बनता है । नीलकंठ उन्हीं को वास्तविक कवि मानते हैं, जिन्होंने दूसरों का अनुकरण न करते हुए स्वयं काव्यजगत् में अपनी राह बनायी –

अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णः परैर्भवेत् ।
परेषां तु यदाक्रान्तः पन्थास्ते कविकुंजराः ।। गंगावतरणम् १७७

कवि की इस दिव्य शक्ति को नीलकंठ ने अन्यत्र सारस्वतचक्षु कहा है ।[१६६]

अस्ति सारस्वतं चक्षुरज्ञातस्वापजागरम् ।
गोचरो यस्य सर्वोऽपि यः स्वयं कर्णगोचरः ।। वही, १/७

कवि अपनी प्रतिभा से त्रिकालदर्शी बन जाता है – ऐसा दीक्षित मानते थे । जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि के अनुकूल हो उन्होंने यह कहा है –
सदर्थमात्रग्रहणात्प्रतीता सर्वज्ञता सापि शशांकमौलेः
प्राप्ता विकास प्रतिभा कवीनां व्याप्नोति तद् वेत्ति न यच्छिवोपि ।। शिवलीला, १/२०

एक स्थान पर नीलकंठ ने शक्ति का भी उल्लेख किया है, जिसके बिना काव्य रचना संभव नहीं है ।[१६७]

प्रतिभा के साथ–साथ वे व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी कवि के लिए आवश्यक मानते हैं । व्युत्पत्ति के बिना काव्याभ्यास निरर्थक है ।[१६८] काव्य को उन्होंने 'व्युत्पन्नस्य कवेः कर्म'[१६९] कहा है, कालिदास की भाँति नीलकंठ दीक्षित भी वाणी और अर्थ के काव्य में अभिनिवेश को पार्वती और शिव की सम्पृक्ति से

उपमित करते हैं । वाणी और अर्थ का यह साहचर्य जगत् के मंगल के लिये है –

स्वयं वपुः शब्दमयं पुरारेरर्थात्मकं दक्षिणमामनन्ति ।

अंग जगन्मंगलमेश्वर तद्... । शिवलीलार्णव १/१५

काव्य में रसाभिव्यक्ति को नीलकंठ आवश्यक मानते हैं । परन्तु केवल रसाभिनिवेश ही पर्याप्त नहीं कवि को शब्द, अर्थ, रस भाव, व्यंग्य आदि अनेक वस्तुओं पर आपनी दृष्टि रखनी पड़ती है ।

क्वार्थाः क्व शब्दाः क्व रसाः क्व भावाः क्व व्यंग्यभेदाः क्व च वाक्यरीतिः ।

कियत्सु दृष्टिः कविना न देया किमस्ति राज्ञामियतीह चिन्ता ।। वही, १/३०

शब्द को कविवर दीक्षित ब्रह्म स्वरूप मानते हैं । शब्दों में जो अद्भूत सामर्थ्य निहित है, उसका परिज्ञान सभी कविगण नहीं कर पाते । शब्द रत्नों की भाँति हैं, जिन्हें वाणी के देवों ने राजमार्ग पर बिखेर दिया है, परन्तु वे उन्हीं के दृष्टिपथ में आते हैं, जो उनके संबंध में आदरपूर्वक विमर्श करते हैं । काव्य में शब्दचयन पर नीलकंठ बहुत जोर देते हैं और उनकी मान्यता है कि उपयुक्त शब्दचयन बहुत थोड़े ही कवि कर पाते हैं । उपयुक्त शब्द अपनी जोड़ी के शब्दों के बीच उसी प्रकार छिपकर रहता है, जैसे पाषाणखंडों के बीच चन्द्रकान्त मणि । उस समय उसमें चमक नहीं रहती । परन्तु जब कवि रूपी पारखी उसे उठाकर उचित स्थान पर प्रयुक्त कर देता है, तो वह चमक उठता है ।

सत्यर्थे सत्सु शब्देषु सति चाक्षरडम्बरे ।

शोभते य बिना नोक्तिः स पन्था इति धुष्यते ।। गंगावतरणम् १/१०

इस विशिष्ट शैली के कारण ही काव्य में चमत्कार उत्पन्न होता है । इस शैली की विशेषता है – सर्वसामान्य अथवा सामान्यतया प्रचलित शब्दों का एक विशेष संदर्भ में विशेष विन्यास के साथ प्रयोग । इसी विशेष विन्यास से काव्य में अलौकिक चारुता आती है –

तान्येव शास्त्राणि त एव शब्दास्त एव चार्था गुरवस्त एव ।

इयान् विशेषः कवितापथेस्मिन् देव्या गिरां दृक्परिवर्त्तभेदः ।।

यानेव शब्दान् वयमालपामो यानेव चार्थान् वयमुल्लिखामः ।

तैरेव विन्यासविशेषभव्यैः सम्मोहयन्ते कवयो जगन्ति ।। शिवलीला १/३३, १३

काव्य में अलंकारों का प्रयोग करने के भी वे पक्ष में हैं, परन्तु रमणीय व्यंग्यार्थ रहित काव्य में अलंकारों का सन्निवेश निष्प्राण शरीर पर अलंकरण के समान अशोभनीय है । चित्र काव्यों को तो निलकंठ सर्वथा हेय मानते हैं । उनका कहना है –

विद्वत्प्रियं व्यंग्यपथं व्यतीत्य शब्दार्थचित्रेषु कवेर्विलासान् ।

प्राप्तोनुरागो निगमानुपेक्ष्य भाषाप्रबन्धेष्विव पामराणाम् ।

कृते युगे व्यंजनयावतीर्णा त्रेतायुगे सैव गुणी बभूव ।

आसीत् तृतीये तु युगेर्थचित्रं युगे तुरीये यमकप्रपंचः ।। दिष्ट्याधिरुढाः

रससिद्धांत नीलकंठ को स्वीकार्य था । काव्य में विभावादि के संयोग से नीरस लगने वाले वृतांत भी सरस हो उठते हैं, ऐसा वे मानते थे । अभिधा में कथ्य को सीधे–सादे ढंग से प्रस्तुत करने के पक्ष में वे नहीं हैं । वे वक्रोक्तिमय भणिति, वाक्यार्थबोध और अभिधेयार्थ के त्याग के पक्ष में है ।[२००] व्यंग्यपथ को उन्होंने विद्वत्प्रिय माना है ।[२०१] व्यंग्यार्थ या ध्वनि ही उनके मत में काव्य का प्राण है ।[२०२]

शब्दों के समुचित प्रयोग पर नीलकंठ पर्याप्त बल देते हैं । 'अस्थान में प्रयुक्त पद काव्य में उसी प्रकार शोभित नहीं होते, जिस प्रकार सुन्दर स्त्री के किसी अंग विशेष में धारणीय आभूषण अन्य अंग में धारण किये जाने पर शोभित नहीं होते । अस्थान में प्रयुक्त एक ही शब्द काव्य को उसी प्रकार मटियामेट कर देता है, जिस प्रकार मुख से बाहर निकली हुई एक ही दाढ़ मौक्तिक पंक्ति के समान रमणीय दन्तावलि को ।[२०३]

काव्य में गुणों का सन्निवेश भी वे अनिवार्य मानते हैं । निर्गुण उक्तिगुम्फ उनके अनुसार स्त्रियों के लटकते स्तनों के समान अरुचिकर होता है । काव्य में उन्हें कौन–कौन से गुण अभिप्रेत हैं, इसका स्पष्ट उल्लेख उन्होंने नहीं किया, परन्तु एक स्थान पर वे सुकुमार का अवश्य उल्लेख करते हैं ।

काव्य में कवि एक विशिष्ट शैली अपनाता है, जो उसकी निजी होती है, इस बात को नीलकंठ दीक्षित मानते थे । शब्दालंकारो के होते हुए भी कवि अपनी निजी शैली का आविष्कार नहीं कर सका, तो उसके काव्य में मौलिकता का आकर्षण नहीं हो सकता ।

सन्दर्भ–सूची :

१. शिवलीलार्णव ग्रन्थान्त पुष्पिका पृ. ४८७ ।

२. शिवलीलार्णव का इंगलिश प्रिफेस पृ. २ ।

३. नलचरितनाटक भूमिका भाग का संस्कृत भाग, पृष्ठ ५–६

४. शिवलीलार्णव की भूमिका भाग में उद्धृत गंगावतरण का १–४८,५०

५. कालेनशंभुः किलतावतापि कलाश्चतुःषष्टिमिता प्रणिन्ये ।
द्वासप्ततिप्राप्य समाः प्रबन्धान्शतं व्यधादप्पयदीक्षितेन्द्रः ।
– शिवलीलार्णव १/६

६. गंगावतरण महाकाव्य १/३६, पृष्ठ २२ और शिवलीलार्णव महाकाव्य भू. भाग पृ. १८

७. वही, पृ. १

८. हिन्दी चित्रमीमांसा (१६७१) भू.भा.पृ.१५

६. "His reputation was so great that Panditas began to consider it a m atter of Pride and self-esteem to claimhim either as their acquaintance or their teacher or guru" Unpublished Thesis of S. Jagadeesan, Page 37.

१०. शिवलीलार्णव भूमिका भाग पृ. ३

११. वही, पृ. ४

१२. गंगावतरण महाकाव्य १/३६, ४७ और शिवलीलार्णव महाकाव्य भू. भा. पृ. १८

१३. नीलकण्ठदीक्षितरचित वैराग्यशतकम्, श्लोक संख्या २५

१४. Unpublished Thesis of S. Jagdeesan – Nilakantha Dikshit and His works-Pages 36-37 (1976).

१५. अप्पयदीक्षितेन्द्रविजय पुस्तक की पुस्तक सूची संख्या ८४६–२, १८७ प्राच्य सूची विभाग में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राप्त हुई थी, किन्तु पुस्तक जीर्ण अवस्था में है ।

१६. शिवतत्त्वरहस्य नीलकण्ठदीक्षित (१६१५) वाणीविलास

१७. नलचरितनाटक नीलकण्ठदीक्षित, पृ. ३४ प्रथम अंक
१८. Introduction to Yadavabhyudaya Part II page (iii) (1909)
१६. Introduction to Yadavabhyudaya, Part II, Page iii, (1909)
२०. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी.बी. काणे, अनुवादक डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पृ.सं. ३६५, प्रथम संस्करण (१६६६)
२१. Introduction Yadavabhyudaya, Part II Page II (1909)
२२. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे., अनुवादक डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पृ. ३६५ प्रथम संस्करण (१६६६)
२३. वही, पृ. ३६५ (१६६६)
२४. History of Sanskirt paltics P.V. Kane, Page 309
२५. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, अनुवादक डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, पृ. ३६६
२६. Introduction to yadavabhyudya, Part III, Page 3, 1909.
२७. व्याख्येऽब्दे मानो गतवति धनुर्जीवदिवसे ......
नाटकं लिखितंरम्यं वीरराघवसूरिणा ।।
– नलचरितनाटकम् (१६२५) पृ. सं. १२०
२८. शिवलीलार्णव महाकाव्य की भूमिका भाग पृ. २४ (१६११)
२६. In the colophon of on e of the manuscripts of Nilakantha vijayachmpu of Nilakantha Dikshita it is stated that the work was written by ayya Dikshita.
३०. शिवलीलार्णव महाकाव्य का (१६११) भूमिका भाग, पृ.सं.२४
३१. वही, पृ. २४, १६११
३२. नलचरितनाटक प्रथम अंक, श्लोक ८
३३. वही, पृ. ५
३४. गंगावतरणम् प्रथम सर्ग श्लोक संख्या ४८–५० (१६१६) तथा शिवलीलार्णव भूमिका भाग पृ. १६–२० (१६११)
३५. Nilakantha Dikshita and his work S. Jagadeesan unpulished Thesis 1976, Page 31

३६. नलचरितनाटकम्, भूमिका भाग, पृ.५

३७. History of Classical Sanskrit literature M.Krishnamachariya, P. 868 पर उद्धृत अप्पदीक्षितेन्द्रविजय, के.एस. सुब्रह्मणयम्, पृ. १२१

३८. शिवलीलार्णव भूमिका भाग पृ. २३

३९. History of Classical Sanskrit literature – M. Krishnamachariya, Page 236

४०. नीलकण्ठविजयचम्पू, भूमिका भाग, पृष्ठ ६ (१६६४)

४१. यद्यपि नाटकस्यास्य रचनाकानिश्चितरूपेण न ज्ञायते तथापि नीलकण्ठदीक्षितस्य समयस्य निश्चितत्त्वादस्य निर्माणकालः खिस्ताब्दस्य सप्तवंशशतक इति वक्तुं युज्यते । यतः नीलकण्ठदीक्षितेन नीलकंठविजय चम्पू १६१७ मिते खिस्त-संवत्सरे निरमायीति तद्वतग्रन्थादेव ज्ञातम् । अतो नीलकण्ठदीक्षितस्य सप्तदशशतकं समयोऽवसीयते (सागरिका त्रैमासिक-पत्रिका)

४२. नीलकण्ठदीक्षितकृत नीलकण्ठविजयचम्पू १६६४ श्लोक संख्या १० पृष्ठ ४. शिवलीलार्णवमहाकाव्य (१६११) भूमिका भाग पृष्ठ २१

४३. (a) Preface to shivalilavnava – Balasubrahmanyam. Page-2

(b) शिवलीलार्णव महाकाव्य की भूमिका भाग टी.एस. कुप्पुस्वामी, पृ.२३

(c) History of Sanskrit Literature Vardacharia, P. 87

४४. The Indian Antiquary Journal Vol. 45, Page 149

(Chapter VI Tirumala Nayak The builder 1623-1659

४५. History of Naiks of Madura – S.N. Ayyar, P. 110

४६. नीलकण्ठदीक्षितकृत नलचरितनाटकम् भूमिका भाग पृ. ६

४७. वही, पृ. ६

४८. Oriental Historical Mans – Transalted by W. Taylor Vol. II Page 153

यह सन्दर्भ प्रस्तुत कवि द्वारा रचित गंगावतरण महाकाव्य की भूमिका भाग पृष्ठ १२ पर उद्धृत है ।

४९. Oriental Historical Mans. Vo. 11 P. 149

५०. अमुं कुवलयानन्दमकरोदयप्पदीक्षितः ।
नियोगाद्वेंकटपतेर्निरूपाधिकृपानिधेः ।।
शिवलीलार्णव महाकाव्य भूमिका भाग पृ. ५ पर उद्धृत अप्पयदीक्षित रचित 'कुवलयानन्दम्' की श्लोक संख्या १७१

५१. "Although Appa Dikshita was the Original name Jaganatha Panditraya in their verses about him. Introduction to yadavabhyuday – A.V. Gopalachari, P-4

५२. 'नलचरितनाटकम्' भूमिका भाग पृ. ५ (१६०५)

५३. श्रीमद् राजकुलाजलधिविलसदप्पयदीक्षितविधेश्वर वीक्षादीक्षाक्षपिताखिलमलः श्री नीलकण्ठाभिधो वटुद्वाविंशवार्षिकः त्रयी समग्रामभाधीत्य गुरुमुखावभासितरुद्राक्ष महालिंगादिमाहेश्वरसम्पदमुपलभ्य तस्मिन्नपि चिदम्बरसदसि महामहसिसर्वेषां पश्यतां विलीने सितभासितांगरागः शिवनिवेशितचेताः शिवनियोगेन भूमिसमाधातुमोषधिप्रस्थानं प्रस्थितोऽगस्त्यमुनिरिवभूमिदेव्याम्बया दक्षिणाशामुखः प्रतस्थे ।। – नलचरितनाटकम् भूमिका भाग पृ. ५–६

५४. संस्कृत साहित्य का इतिहास–वाचस्पति गैरोला, पृ. ८७१ (बृहद् सं.)

५५. नलचरितनाटक भूमिका भाग पृ. ७ (१६२५)

५६. अनन्तरं च दीक्षितेन्द्रा अतीतेषु १५४८ शालिवाहनशकाब्देषु यातेषु च १६.२६ रिव्रस्ताब्देषु , अक्षयनाम्नि संवत्सरे शैववैष्णवानां विवादंकमपि निर्णेतुं पाण्ड्यदेशाधिपतिना तिरुमलैनायकमहाराजेन बहुप्रार्थितास्तत्रागमनम् शिवलीलार्णव भू.भा.पृ.५

५७. Oriental Historical Mans Vo. II, page 149

५८. शिवलीलार्णव भू.भा.पृ. ५

५९. शिवलीलार्णव भू.भा.पृ.१ और ५

६०. दीक्षितचरितम्

६१. Introduction to ADAVABHYUDAYA(1990) Part II Page 17

६२. Ibid page 18

६३. Nilakantha Dikshita And His works-S.Jagdeesan, unpublished Thesis, Page 35 (1976)

६४. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, हिन्दी अनुवादक डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री (१६६) पृ. ३६३, ३६४

६५. Unpulished Thesis of S. Jagdasan "Nilkantha Dikshita and Mis works. Page 41-42 (1976)

६६. नलचरितनाटक भू.भाग पृष्ठ ५६ पर उद्धृत शिवानन्दयोगीन्द्र द्वारा लिखी शिवोत्कर्षमञ्जरी की भूमिका ।

६७. अप्पयदीक्षितेन्द्रविजय शिवानन्दयोगीन्द्र पृष्ठ ११६

६८. Unpublished Thesis of S. Jagdeesan Nilkantha Dikshita and His works, Page 43.

६९. नलचरितनाटकम् प्रथमोंऽकः पृ. ५ (१६२५)

७०. विद्वद्वादविवादकाल.... अतिरात्रयाजी ।।

७१. वही

७२. अस्त्यस्तोकगुणो हिमाद्रिशिखरोत्संगायतज्जाह्नवी

....

श्रृंगारकोशो नाम भाणः । इति वर्तते ।।

शिवलीलार्णव भूमिका भाग पृ. ३८ ।

७३. शिवलीलार्णव भूमिका भाग पृ. २४ ।

७४. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी. वी. काणे, हिन्दी अनुवादक, डॉ. इन्द्रचन्द्रशास्त्री पृ. ३६६ । (१६६६) ।

७५. Unpublised thesies of S. Jagdeesan – Nilakantha Dikashita And his works, Page 43

७६. संस्कृत काव्य शास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, अनुवादक डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, प्रथम संस्करण पृ. ३६३–३६४

७७. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, अनुवादक डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री, प्रथम संस्करण पृ. ३६४ (१६६६)

७८. History of Sanskrit Poectics P.V. Kane, Page 308
७९. नलचरितनाटकम् भू.भा. पृष्ठ ७ ।
८०. Unpublished English Thesis (1976) Page 41
८१. गंगावतरणम् प्रथमसर्ग श्लोक ५१ (१९१६) और शिवलीलार्णव महाकाव्य भू.भा. पृष्ठ २० (१९११)
८२. नलचरितनाटकम् प्रथमोऽङ्कः पृष्ठ संख्या ४
८३. शिवलीलार्णव भू.भा. पृष्ठ १६ और गंगावतरणम् प्रथम सर्ग पृष्ठ २२ श्लोक ४२ (१९१६)
८४. शिवलीला. भू.भा. पृष्ठ १६ और गंगावतरणम् पृ. २२ श्लोक ४१ ।
८५. Introduction of Yadavabhyudaya, Part II Page 12
८६. Lbid, Part II page 14 (1909)
८७. शिवलीलार्णव महाकाव्य भू.भा. पृष्ठ ५ (१९११)
८८. वही, पृ. १६ (१९११)
८९. Unpublished English Thesis पृष्ठ ४३ पर उद्धृत अप्पयदीक्षितेन्द्रविजय K.S. Subrahmanyam Shastri, 121
९०. History of Classical Sanakrit LITERATURE M. Krishnamcharya, Page 868
९१. शिवलीलार्णव महाकाव्य प्रथम सर्ग श्लोक ५
९२. Unpublished English Thesis (1976) P. 45
९३. नलचरितनाटकम्, प्रथम अंक, पृ. ५
९४. सर्वाःस्मृतिसमालोच्य संग्रहांश्च तथाऽखिलान् विवेकक्रियते नीलकण्ठायंयज्वना ।। अघविवेक पृ. सं. ३ हस्तलिखित प्रति
९५. कैय्यटव्याख्यानशिवतत्त्वरहस्याद्यनेकप्रबन्धनिर्मातुः पवित्रकीर्तेनीलकण्ठमखिनः । (शिव.महाकाव्य भू.भा. पृष्ठ २३)
९६. संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास पृ. २९१
९७. शिवलीलार्णव १३/८०-८९
९८. वही १६/५२,७१

९९. संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास पृ. २९१
१००. शिवलीलार्णव महाकाव्य, भू.भा. पृ. ३८
१०१. वही, पृ. ३७
१०२. शिवलीलार्णव महाकाव्य भू.भा. पृ. ३५
१०३. वही, पृ. ३८
१०४. वही, पृ. ३८
१०५. दक्षिण भारत में परामर्शदाता के लिए 'डलवाय' शब्द का प्रयोग किया जाता है ।
१०६. क्व नु नाम सभा राज्ञां दुराक्षेपैकशिक्षिता ।
क्व नु वाचः सुधीलोकलालनैकरसाः कवेः ।।
– गंगावतरणम् प्रथमसर्ग श्लोक २३
१०७. अघविवेक पृ. २–३
१०८. शिवलीलार्णव महाकाव्य १४/१
१०९. वही, ८६/९
११०. नीलकण्ठचम्पू, १/४ और शिवलीलार्णव भू.भा.पृ.२५
१११. अयं किल भरद्वाजकुलपाशवारपारिजातः सकलसाम्राज्य सिंहासनाधिपतिस्तत्र–भवतः श्रीमतो नारायणाध्वरिणस्तपः परिपाकः कर्ता काव्यानां व्याकर्ता तन्त्राणामाहर्ता क्रतूनां ब्याहर्ता सकलनृपसमेषु दिगंतविश्रान्त कीर्तिरपारमहिमामानवाकृतिः साक्षादेव दाक्षायणीवल्लभः श्रीकठमतसर्वस्ववेदी श्री नीलकण्ठाध्वरी ।
शिवलीलार्णवमहाकाव्य भू.भा. पृ. ३५
११२. आश्रमं नगरमासनदर्भान्भद्रपीठमुटजमणिवेश्म ।
संभ्रमाद्व्यवहरन्क्षितिपाऽलज्जत त्रि चतुराणि दिनानि ।।
स क्षणादजयदासनभेदान्शिक्षणाच्चिरतरं सुरलीषु ।
जानता निखिलमभ्यसितव्यं कस्य कुत्र न भवेदुपयोगः ।।
– गंगावतरणम् द्वितीयसर्ग श्लोक २३–२४
११३. शिवलीलार्णव, १/४७

११४. संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. २८६

उद्धृत शान्तिविलास १–४, वैराग्यशतकम् २/३/६/२०–५३

११५. शान्तो वह्निजठरपिठरे संस्थिता कामवार्ता
द्रावं द्रावं दिशि दिशि शनैरिन्द्रियाश्वानिपेतुः ।
एवं दैवादुपरममगादेष मे वैरिवेग –
श्चेतस्त्वेकं न वशमयते किं करोमिक्वयामि ।।
– शान्तिविलास पृ. १२, १४ काव्यमाला

११६. स्वादूनेव रसान् कटून् विदधतां कर्षन्तु मा मेति च
क्रन्दन्त्यैव पदानि वा कवयतो कुर्वन्तु लज्जा च वा ।
कुत्रैको मधुरो रसः क्व मधुरा वाणीति नो जीवता
कर्णौ निष्करुणं दहन्ति कवयः कस्मादिदानीन्तनाः ।।–न.च.ना.१/१

११७. संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास, पृ. २८६

११८. सा निवेदयितुमात्मनिर्गमं सन्निकर्षमुपजग्मुषीविधेः ।
व्याजहार विनयावधीरण व्यक्तगर्वगरिमोष्मला गिरः ।।

....

यात यूयमपयात च क्षणं देवता निर्जनजालयास्ततः ।
कौतुकं तु यदि वोऽस्ति वीक्षितुं कोणमावसतनिर्भयादिशाम् ।।
गंगावतरण ५/३–१२ और नीलकण्ठविजयचम्पू, १/४

११९. संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास पृ. २८६

१२०. वही, पृ. २९०

१२१. भक्त्या कृतेति जाह्नव्याः प्रभावं वदतीति वा ।
सन्तः समनुगृह्णन्तु निर्गुणामपि मदगिरम् ।। गंगावतरण १/५६

१२२. राज्ञो भृत्या यदि परिचिता दैशिकस्त्वैष लाभो
राजद्वारे यदि खलु गतं नैमिषे तत्प्रविष्टम् ।

....

.......शान्तिवलास ६

१२३. सन्ति नः शतमजा दशगावः पंचषाश्च महिषा दययाते ।
शीतमुष्णमपि वा पिबकामं गच्छ पुत्रि नपुनः क्षुधिता त्वम् ।।
– शिवलीलार्णव ८/४६–४७

१२४. शिवलीलार्णव, ६/७७,७८,७९

१२५. वही, ६/३

१२६. शिवलीलार्णव, भूमिका भाग, पृ. ३७

१२७. वही, पृ. ३८

१२८. वही, पृ. १/३०

१२९. शिवलीलार्णव, पृ. ३१

१३०. रत्नानि यत्र वणिजो भिषजोऽग्रहीषु
दिव्यौषधीर्गजवरानपि राजकीयाः ।
अस्मादृशाः क्षितिसुराः पुनराहरन्त
भागीरथीतटरुहाणि कुशांकराणि ।। शिवलीलार्णव ६/५७

१३१. प्रसंजयन्ति प्रथमविभार्गगा –
स्ततः क्रमेणस्तुवते च तान्युनः ।
प्रवर्तयन्त्यप्यपथे शनैः प्रभुं
खलाः स्वकार्यैकपराः समीपगाः ।। वही ५/१५

१३२. स्तुवन्त्यमित्रान्सुहृदयं प्रतिक्षिप –
न्त्यवैक्षितुं भर्तुरगाधमाशयम् ।
बहून्विवादानिव कुर्वते मिथौ
न जातु भिन्दन्ति रहः स्थितिं खलाः ।। वही ५/१८

१३३. बहुश्रुतौ न त्वमिवापरोऽधुना
न दीर्घदर्शी न च मन्त्रयोगवित् ।
प्रशासनीयस्तदपि स्वयं भवा –
न्प्रज्ञासितारस्तव सन्तु मन्त्रिणः ।। शिवलीलार्णव ५/२३

१३४. शिवलीलार्णव १/७९

१३५. ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैषयत्नः ।।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा ।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी ।।
– मालतीमाधवम् १/८

१३६. शिवलीलार्णव महाकाव्य ग्रन्थान्त पुष्पिका पृ. ४८०

१३७. शिवलीलार्णव महाकाव्य, ग्रन्थान्त पुष्पिका पृ. ४८०

१३८. नीलकण्ठविजय चम्पू काव्य, भूमिका भाग पृ. १०

१३९. A.D.C. of the S. Mans in the T.M.S.S.M.L. Tanjore 16. Vol. 21

१४०. History of —lassical Sanskrit Literature, Page 236

१४१. संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ. ८७१

१४२. History of Sanskrit Literature, Page 764

१४३. Sivalilarnava English Preface, Page 2

१४४. शिवलीलार्णव, २२/६६

१४५. गंगावतरणम् – १–१४

१४६. वही, १–१५

१४७. गङ्गावतरणम् १–१७

१४८. वही, १–२२

१४९. गंगतावतरणम्–१–२६

१५०. वही, २–४१

१५१. वही, २–४२

१५२. वही, ३–१०

१५३. गङ्गावतरणम् ३–४५

१५४. गंगावतरणम् –३–५७

१५५. वही, ४–१३

१५६. वही, ४–५४

१५७. गङ्गावतरणम् ५–५

१५८. गंगावतरणम् – ६–२०

१५९. वही, ८–२४

१६०. नीलकण्ठविजय : नीलकण्ठदीक्षित, १–६

१६१. मुकुन्दविलास महाकाव्यकी ग्रन्थान्त पुष्पिका ।

१६२. काव्य माला पंचमोगुच्छकः पृ. १३२ कलिविडम्बनम् श्लोक ।

१६३. वही, श्लोक ६ ।

१६४. वही, १५

१६५. काव्यमाला पंचमोगुच्छकः, पृ. १६

१६६. वही, १८

१६७. वही, १९

१६८. वही, २०

१६९. D.C. of the S.M. in the T.M.S.S.M.L.T. Page 16 Vol 21

१७०. निर्मितं शतकं साग्रं नीलकण्ठेन यज्वना ।
समारंजनमेतेन साधयन्तु मनीषिणः ।।

१७१. Des. Cap. of the S.M. in the T.M.S.S.M.L.T. Page 16.

१७२. शैवा वयमाचतुर्वदनात्–शिवलीलार्णव भू.भा.पृ.२१

१७३. D.C. of the S.M. in the T.M.S.S.M.L.T. Page 16, Vol. 21

१७४. शान्तिविलासः, श्लोक सं. २१

१७५. शान्तिविलासः, श्लोक संख्या ४६

१७६. आनन्दसागरस्तव – ४५

१७७. आनन्दसागरस्तव–श्लोक सं. ४८

१७८. शिवोत्कर्षमञ्जरी, श्लोक सं. १०

१७९. चण्डीरहस्य, श्लोक सं. ५

१८०. रामायणसारसंग्रह (रघुवीरस्तवः) श्लोक सं. २

१८१. वही, श्लोक सं. २६

१८२. शिवतत्त्वरहस्य भूमिका भाग

१८३. 'अघविवेक' हस्तलिति ग्रन्थ के अन्त की पष्पिका ।

१८४. N.D.A.H.W. – S. Jagadeesan, Unpublished Thesis Page-64 (1976)

१८५. History of —lassical Sanskrit Literature – Krishnam acharya, Page-236

१८६. History of Sanskrit Literature - Das Gupta and Day Page-764

१८७. Shivalilarnava English Preface, Page 2 and Introduction of Shivalilarnava, Page-22

१८८. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्य द्विधा मतम् (साहित्यदर्पण ६/१)

१८९. दृश्यं तत्राभिनयं तद्रुपारोपात्तु रूपकम (साहित्यदर्पण ६/१)

१९०. वेदोपवेदात्मा सार्ववर्णिकः पञ्चमो गेयवेदः इति द्रौहिणः (राजशेखर – काव्यमीमांसा द्वितीयोऽध्यायः)

१९१. प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः (कालिदास – अभिज्ञानशाकुन्तलम्)

१९२. अद्भुतं किमपि द्वन्द्वमस्तु तन्मम शर्मणे । स्वस्तिकस्तनुते यस्य सुदगाश्लेषनिर्वृतिम् ।।१।। (नीलकण्ठदीक्षित – नलचरित्रम् । आगे भी २,३ श्लोक)

१९३. यत्र चित्राः कथोद्धाता यत्र च स्यन्दते रसः ।
व्युत्पन्नस्य कवेः कर्म तत्किञ्चिदभिनीयताम् ।। (नलचरित्रम् १/५ श्लोक)

१९४. साहित्यविद्याजयघण्टयैव संवेदयन्तु कवयो यशासि । शिवलीलार्णव, १/८

१९५. शिवलीलार्णव – १/५

१९६. राजशेखर ने भी कहा है – ''सारस्वतचक्षुरवाङ्मनसगोचरेण प्राणिधानेन सर्वपश्यति ।''

१९७. सन्दर्भशक्तिहीनानां वृथाभ्यासो वृथाश्रमः ।
मुग्धानि लब्धवा पुष्पाणि मुण्डितः किं करिष्यति ।। गङ्गावतरण १/१०

१९८. अशिक्षितानांकाव्येषु वृथाभ्यासो वृथाश्रमः ।
किमस्त्यनुपनीतस्य वाजपेयादिमिर्मखैः ।। वही, १/१०

१९९. नलचरित्र, १/५

२००. तन्त्रान्तरेषु प्रतिपद्यमानास्त ते पदार्था ननु ते त एव ।
निर्वेदभीशोकजुगुप्सितान्यप्यायान्ति साहित्यपथे रसत्वम् ।। शिवलीलार्णव १/२२
वक्रोस्तयो यत्र विभूषणानि वाक्यार्थबोधः परमप्रकर्षः ।
अर्थेषु सत्स्वप्यभिधैर्व दोषः सा काचिदन्या सरणि, कवीनाम् ।। वही, १/१६

२०१. वही, १/३७

२०२. वही, १/३६

२०३. वही, १/३५–३६

❀❀❀

चतुर्थ अध्याय
गंगावतरण की कथावस्तु

४.१ गङ्गावतरण सम्बन्धी प्राचीन-चिन्तन
४.१.१ वाल्मीकीय रामायण में गङ्गा जी की उत्पत्ति एवं उनके अवतरण की कथा
४.१.२ गङ्गा से कार्तिकेय की उत्पत्तिका प्रसङ्ग
४.१.३ राजा सगर के पुत्रों की उत्पत्ति तथा यज्ञ की तैयारी
४.१.४ इन्द्र के द्वारा राजा सागर के यज्ञसंबंधी अश्व का अपहरण, सगरपुत्रों द्वारा सारी पृथ्वी का भेदन तथा देवताओं का ब्रह्मा जी को यह सब समाचार पहुँचाना
४.१.५ सगर पुत्रों के भावी विनाश की सूचना देकर ब्रह्मा जी का देवताओं को शान्त करना, सगर के पुत्रों का महर्षि कपिल जी के पास पहुँचना और उनके रोषजन्य शाप से भस्म होना
४.१.६ राजा अंशुमान् और भगीरथ की तपस्या, भगीरथ को ब्रह्मा जी की वर-प्राप्ति तथा गङ्गा जी को धारण करने हेतु भगवान् शश्चरको प्रसन्न करने के लिए ब्रह्मा जी का सलाह देना
४.१.७ ब्रह्मा जी का राजा भगीरथ को गङ्गा जल से उनके पितरों को तर्पण की आज्ञा देना और राजा का वह सब करके गङ्गावतरण के उपाख्यानकी महिमा का वर्णन
४.१.८ गंगावतरणम् एक विवेचन
४.२ गंगा-संबंधी भौगोलिक चिन्तन
४.२.१ गंगा प्रणाली
४.२.२ ऊपरी गंगा मैदान
४.२.३ मध्य-गंगा-मैदान
४.२.४ गंगा का निचला-मैदान
४.२.५ उत्तर प्रदेश हिमालय (उत्तराखण्ड)
४.३ गङ्गावतरणम् सम्बन्धी द्वितीय भौगोलिक मत
४.३.१ गंगा-प्रवाह-प्रणाली
४.३.२ ऊपरी गंगा नहर
४.३.४ ऊपरी गंगा मैदान
४.३.५ मध्य गंगा मैदान
४.३.६ निचला-गंगा-मैदान

चतुर्थ अध्याय
गंगावतरण की कथावस्तु

४.१ गङ्गावतरण सम्बन्धी प्राचीन–चिन्तन

प्रस्तावना :

अयोध्या से भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण को राक्षसों के वध के लिए जब महर्षि विश्वामित्र अपने साथ ले जा रहे थे, शोणभद्रनाम्नी नदी को पार कर सभी ने गङ्गा तट पर रात्रि विश्राम किया और उससमय देवपूजन व पितृतर्पण के पश्चात् बैठकर परस्पर बात–चीत करने लगे । भगवान् श्रीराम ने महर्षि विश्वामित्र से पूछा कि हे भगवन् ! तीन मार्गों से प्रवाहित होने वाली यह गङ्गा अपनी सुदीर्घ यात्रा को पूर्ण कर समुद्र में कहाँ और किस प्रकार जा मिली है । भगवान् श्रीराम की इस जिज्ञासा की शांति के लिए महामुनि विश्वामित्र ने गङ्गा की उत्पत्ति एवं वृद्धि की कथा कहनी आरंभ की, जिसकी महर्षि वाल्मीकिसम्मत उपस्थापना और उसका वर्गीकरण इसप्रकार है –

४.१.१ वाल्मीकीय रामायण में गङ्गा जी की उत्पत्ति एवं उनके अवतरण की कथा :

विष्ठिताश्च यथान्यायं राघवौ च यथार्हतः ।
सम्प्रहृष्टमना रामो विश्वामित्रमथाब्रवीत् ।।[१]

जब सब मुनि स्थिर भाव से विराजमान हो गये और श्रीराम तथा लक्ष्मण भी यथायोग्य स्थान पर बैठ गये, तब श्रीराम ने प्रसन्नचित्त होकर विश्वामित्र जी से पूछा –

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि गङ्गां त्रिपथगां नदीम् ।
त्रैलोक्यं कथमाक्रम्य गता नदनदीपतिम् ।।[२]

'भगवन् ! तीन मार्गों से प्रवाहित होनेवाली नदी यह गङ्गा जी किस प्रकार तीनों लोकों में घूमकर नदों और नदियों के स्वामी समुद्र में जा मिली हैं ?'

श्रीराम के इस प्रश्न द्वारा प्रेरित हो महामुनि विश्वामित्र ने गङ्गा जी की उत्पत्ति और वृद्धि की कथा कहनी आरंभ की –

'त्रिपथगा' नाम से प्रसिद्धि होने के कारण को बताते हुए कहा कि –

त्रिषु लोकेषु धर्मज्ञ कर्मभिः कैः समन्विता ।
तथा ब्रुवति काकुत्स्थे विश्वामित्रस्तपोधनः ।।[३]
निखिलेन कथां सर्वामृषिमध्ये न्यवेदयत् ।

तीनों लोकों में वे अपनी तीन धाराओं के द्वारा कौन–कौन से कार्य करती है ? श्रीरामचन्द्र जी के इसप्रकार पूछने पर तपोधन विश्वामित्र ने मुनिमण्डली के बीच गङ्गा जी से संबंध रखनेवाली सारी बातें पूर्ण रूप से कह सुनायीं । यथा–

पुरा राम कृतोद्वाहः शितिकण्ठो महातपाः ।।[४]
दृष्टा च भगवान् देवीं मैथुनायोपचक्रमे ।

'श्रीराम ! पूर्वकाल में महातपस्वी भगवान् नीलकण्ठ ने उमादेवी के साथ विवाह करके उनको नववधू के रूप में अपने निकट आयी देख उनके साथ रति–क्रीडा आरंभ की । किन्तु 'परम बुद्धिमान् महान् देवता भगवान् नीलकण्ठ के उमादेवी के साथ क्रीडा–विहार करते सौ दिव्य वर्ष बीत गये । और इतने वर्षों तक विहार के बाद भी महादेव जी के उमा देवी के गर्भ से कोई पुत्र नहीं हुआ । यह देख ब्रह्मा आदि सभी देवता उन्हें रोकने का उद्योग करने लगे ।

'उन्होंने सोचा कि इतने दीर्घकाल के पश्चात् यदि रुद्र के तेज से उमादेवी के गर्भ से कोई महान् प्राणी प्रकट हो भी जाय तो कौन उसके तेज को सहन करेगा ? यह विचारकर सब देवता भगवान् शिव के पास जा उन्हें प्रणाम करके बोले ।

हे सुरश्रेष्ठ ! ये लोक आपके तेज को नहीं धारण कर सकेंगे; अतः आप क्रीडा से निवृत्त हो वेदबोधित तपस्या से युक्त होकर उमादेवी के साथ तप कीजिये ।

तीनों लोकों के हित की कामना से अपने तेज (वीर्य) को तेजःस्वरूप अपने–आप में ही धारण कीजिये । इन सब लोकों की रक्षा कीजिये । यह सुनकर शिवजी ने कहा कि – हे देवताओं ! उमा सहित मैं अर्थात् हम दोनों अपने तेज से ही तेज को धारण कर लेंगे । पृथ्वी आदि सभी लोकों के निवासी शान्ति लाभ करें ।

यदिदं क्षुभितं स्थानान्मम तेजो ह्यनुत्तमम् ।
धारयिष्यति कस्तन्मे ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः ।।[६]

हे सुरश्रेष्ठगण ! यदि मेरा यह सर्वोत्तम तेज (वीर्य) क्षुब्ध होकर अपने स्थान से स्खलित हो जाय तो उसे कौन धारण करेगा ? यह मुझे बताओ ।

उनके ऐसा कहने पर देवताओं ने वृषभध्वज भगवान् शिव से कहा – 'भगवन् ! आज आपका जो तेज क्षुब्ध होकर गिरेगा, उसे यह पृथ्वी देवी धारण करेगी ।

'देवताओं का यह कथन सुनकर महाबली देवेश्वर शिव ने अपना तेज छोड़ा, जिससे पर्वत और वनोंसहित यह सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी ।

तब देवताओं ने अग्निदेव से कहा – 'अग्ने ! तुम वायु के सहयोग से भगवान् शिव के इस महान् तेज को अपने भीतर रख लो ।

अग्नि से व्याप्त होने पर वह तेज श्वेत पर्वत के रूप में परिणत हो गया । साथ ही वहाँ दिव्य सरकंडों का वन भी प्रकट हुआ, जो अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी प्रतीत होता था ।

उसी वन में अग्निजनित महातेजस्वी कार्तिकेय का प्रादुर्भाव हुआ । तदनन्तर ऋषियों सहित देवताओं ने अत्यंत प्रसन्नचित होकर देवी उमा और भगवान् शिव का बड़े भक्ति भाव से पूजन किया ।

इसके बाद गिरिराजनन्दिनी उमा के नेत्र क्रोध से लाल हो गये । उन्होंने समस्त दवेवताओं को रोषपूर्वक शाप दे दिया । वे बोलीं –

हे देवताओं ! मैंने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से पति के साथ समागम किया था, परंतु तुमने मुझे रोक दिया । अतः अब तुम लोग भी अपनी पत्नियों से संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं रह जाओगे । आज से तुम्हारी पत्नियाँ संतानोत्पादन नहीं कर सकेंगी – संतानहीन हो जायँगी ।

सभी देवताओं से ऐसा कहकर उमादेवी ने पृथिवी को भी शाप दिया – 'भूमे ! तेरा एक रूप नहीं रह जायगा । तू बहुतों की भार्या होगी ।

हे पृथ्वी ! तू चाहती थी कि मेरे पुत्र न हो । अतः मेरे क्रोध से कलुषित होकर तू भी पुत्रजनित सुख या प्रसन्नता का अनुभव न कर सकोगी ।

परिणामतः उन सब देवताओं को उमादेवी के शाप से पीड़ित देख देवेश्वर भगवान् शिव ने उस समय पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया ।

और वहाँ जाकर हिमालय पर्वत के उत्तर भाग में उसीके एक शिखर पर उमादेवी के साथ भगवान् महेश्वर तप करने लगे ।

४.१.२ गङ्गा से कार्तिकेय की उत्पत्तिका प्रसङ्ग :

जब महादेव जी तपस्या कर रहे थे, उस समय इन्द्र और अग्नि आदि संपूर्ण देवता अपने लिये सेनापति की इच्छा लेकर ब्रह्मा जी के पास आये ।

तथा इन्द्र और अग्नि सहित समस्त देवताओं ने भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा कि –

हे 'प्रभो ! पूर्वकाल में जिन भगवान् महेश्वर ने हमें (बीज रूप से) सेनापति प्रदान किया था, वे उमादेवी के साथ उत्तम तप का आश्रय लेकर तपस्या करते हैं ।

अब लोक हित के लिये जो कर्तव्य प्राप्त हो, उसको पूर्ण कीजिये; क्योंकि आप ही हमारे परम् आश्रय हैं ।

देवताओं की यह बात सुनकर संपूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्मा जी ने मधुर वचनों द्वारा उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि –

हे देवताओं ! गिरिराजकुमारी पार्वती ने जो शाप दिया है, उसके अनुसार तुम्हें अपनी पत्नियों के गर्भ से अब कोई संतान नहीं होगी । उमादेवी की वाणी अमोघ है; अतः वह सत्य होकर ही रहेगी ।

उमा की बड़ी बहिन आकाशगङ्गा, जिनके गर्भ में शङ्कर जी के उस तेज को स्थापित करके अग्नि देव एक ऐसे पुत्र को जन्म देंगे, जो देवताओं के शत्रुओं का दमन करने में समर्थ सेनापति होगा ।

यह गङ्गा गिरिराज की ज्येष्ठ पुत्री हैं, अतः अपनी छोटी बहिन के उस पुत्र को अपने ही पुत्र के समान मानेंगी । उमा को भी यह बहुत प्रिय लगेगा ।

ब्रह्मा जी का यह वचन सुनकर सब देवता कृतकृत्य हो गये । उन्होंने ब्रह्मा जी को प्रणाम करके उनका पूजन किया ।

तथा विविध धातुओं से अलंकृत उत्तम कैलास पर्वत पर जाकर उन संपूर्ण देवताओं ने अग्नि देव को पुत्र उत्पन्न करने के कार्य में नियुक्त किया ।

वे बोले है देव ! भगवान् रुद्र के उस महान् तेज को अब आप गङ्गा जी में स्थापित कर दीजिये ।

तब अग्नि देव गङ्गा जी के निकट आये और बोले 'देवि ! आप इस गर्भ को धारण करें । यह देवताओं का प्रिय कार्य है ।

अग्नि देव की यह बात सुनकर गङ्गा देवी ने दिव्यरूप धारण कर लिया । उनकी यह महिमा – यह रूप वैभव देखकर अग्नि देव ने जब गङ्गा देवी को सब ओर से उस रुद्र–तेज द्वारा अभिषिक्त कर दिया, तब गङ्गा जी के सारे स्त्रोत उससे परिपूर्ण हो गये ।

तब गङ्गा ने समस्त देवताओं के अग्रगामी अग्नि देव से कहा कि 'देव ! आपके द्वारा स्थापित किये गये इस बढ़े हुए तेज को धारण करने में मैं असमर्थ हूँ । इसकी आँच से जल रही हूँ और मेरी चेतना व्यथित हो गयी है ।

तब अग्नि देव ने गङ्गा देवी से कहा – 'देवि ! हिमालय पर्वत के पार्श्व भाग में इस गर्भ को स्थापित कर दीजिये ।

अग्नि की यह बात सुनकर महातेजस्विनी गङ्गा ने उस अत्यंत प्रकाशमान गर्भ को अपने स्रोतों से निकालकर यथोचित स्थान में रख दिया ।

गङ्गा के गर्भ से जो तेज निकला, वह तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्ण के समान कान्तिमान् दिखायी देने लगा । पृथ्वी पर जहाँ वह तेजस्वी गर्भ स्थापित हुआ, वहाँ की भूमि तथा प्रत्येक वस्तु सुवर्णमयी हो गयी । उसके आसपास का स्थान अनुपम प्रभा से प्रकाशित हो गया । उस तेज की तीक्ष्णता से ही दूरवर्ती भूभाग की वस्तुएँ ताँबे और लोहे के रूप में परिणत हो गयीं ।

उस तेजस्वी गर्भ का जो मल था, वही वहाँ राँगा और सीसा हुआ । इसप्रकार पृथ्वी पर पड़कर वह तेज नाना प्रकार के धातुओं के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ ।

पृथ्वी पर गर्भ के रखे जाते ही उसके तेज से व्याप्त होकर पूर्वोक्त श्वेतपर्वत और उससे संबंध रखनेवाला सारा वन सुवर्णमय होकर जगमगाने लगा । यथा –

जातरूपमिति ख्यातं तदाप्रभृति राघव ।
सुवर्णं पुरुषव्याघ्र हुताशनसमप्रभम् ।
तृणवृक्षलतागुल्मं सर्वं भवति काञ्चनम् ।।[६]

तभी से अग्नि के समान प्रकाशित होनेवाले सुवर्ण का नाम जातरूप हो गया; क्योंकि उसी समय सुवर्ण का तेजस्वी रूप प्रकट हुआ था । उस गर्भ के संपर्क से वहाँ का तृण, वृक्ष, लता और गुल्म–सब कुछ सोने का हो गया ।

तदनन्तर इन्द्र और मरुद्गणोंसहित संपूर्ण देवताओं ने वहां उत्पन्न हुए कुमार को दूध पिलाने के लिये छहों कृतिकाओं को नियुक्त किया ।

तब उन कृतिकाओं ने यह हम सबका पुत्र हो, ऐसी उत्तम शर्त रखकर और इस बात का निश्चित विश्वास लेकर उस नवजात बालक को अपना दूध प्रदान किया ।

ततस्तु देवताः सर्वाः कार्तिकेय इति ब्रुवन् ।
पुत्रस्त्रैलोक्यविख्यातो भविष्यति न संशयः ।।[७]

उस समय सब देवता बोले 'यह बालक कार्तिकेय कहलायेगा और तुम लोगों का त्रिभुवनविख्यात पुत्र होगा ।

देवताओं का यह अनुकूल वचन सुनकर शिव और पार्वती से स्कन्दित (स्खलित) तथा गङ्गा द्वारा गर्भस्राव होने पर प्रकट हुए, अग्नि के समान उत्तम प्रभा से प्रकाशित होनेवाले उस बालक को कृत्तिकाओं ने नहलाया ।

स्कन्द इत्यब्रुवन् देवाः स्कन्नं गर्भपरिस्रवे ।
कार्तिकेयं महाबाहुं काकुत्स्थ ज्वलनोपमम् ।।[८]

तथा अग्नितुल्य तेजस्वी महाबाहु कार्तिकेय गर्भस्राव काल में स्कन्दित हुए थे; इसलिए देवताओं ने उन्हें स्कन्द कहकर पुकारा ।

प्रादुर्भूतं ततः क्षीरं कृत्तिकानामनुत्तमम् ।
षण्णां षडाननो भूत्वा जग्राह स्तनजं पयः ।।[९]

तदनन्तर कृत्तिकाओं के स्तनों में परम उत्तम दूध प्रकट हुआ । उस समय स्कन्द ने अपने छः मुख प्रकट करके उन छहों का एक साथ ही स्तनपान किया ।

तथा एक ही दिन दूध पीकर उस सुकुमार शरीरवाले शक्तिशाली कुमार ने अपने पराक्रम से दैत्यों की सारी सेनाओं पर विजय प्राप्त की ।

तत्पश्चात् अग्नि आदि सब देवताओं ने मिलकर उन महातेजस्वी स्कन्द का देव सेनापति के पद पर अभिषेक किया ।

४.१.३ राजा सगर के पुत्रों की उत्पत्ति तथा यज्ञ की तैयारीः

विश्वामित्र जी ने मधुर अक्षरों से युक्त वह कथा श्रीराम को सुनाकर फिर उनसे दूसरा प्रसंग इसप्रकार कहा कि –

हे वीर ! पहले की बात है, अयोध्या में सगर नाम से प्रसिद्ध एक धर्मात्मा राजा राज्य करते थे । उन्हें कोई पुत्र नहीं था; अतः वे पुत्र प्राप्ति के लिये सदा उत्सुक रहा करते थे ।

विदर्भराजकुमारी केशिनी राजा सगर की ज्येष्ठ पत्नी थी । वह बड़ी धर्मात्मा और सत्यवादिनी थी ।

सगर की दूसरी पत्नी का नाम सुमति था । वह अरिष्टनेमि कश्यप की पुत्री तथा गरुड की बहिन थी ।

महाराज सगर अपनी उन दोनों पत्नियों के साथ हिमालय पर्वत पर जाकर भृगुप्रस्रवण नामक शिखर पर तपस्या करने लगे ।

सौ वर्ष पूर्ण होने पर उनकी तपस्या द्वारा प्रसन्न हुए सत्यवादियों में श्रेष्ठ महर्षि भृगु ने राजा सगर को वर दिया कि तुम्हें बहुत से पुत्रों की प्राप्ति होगी । तुम इस संसार में अनुपम कीर्ति प्राप्त करोगे ।

तुम्हारी एक पत्नी तो एक ही पुत्र को जन्म देगी, जो अपनी वंशपरंपरा का विस्तार करनेवाला होगा तथा दूसरी पत्नी साठ हजार पुत्रों की जननी होगी ।

महात्मा भृगु जब इसप्रकार कह रहे थे, उस समय उन दोनों राजकुमारियों (रानियों) ने उन्हें प्रसन्न करके स्वयं भी अत्यंत आनन्दित हो, हाथ जोड़कर पूछा ।

ब्रह्मन् ! किस रानी के एक पुत्र होगा और कौन बहुत से पुत्रों की जननी होगी ? हम दोनों यह सुनना चाहती हैं । आपकी वाणी सत्य हो ।

उन दोनों की यह बात सुनकर परम धर्मात्मा भृगु ने उत्तम वाणी में कहा – 'देवियों ! तुम लोग यहाँ अपनी इच्छा प्रकट करो । तुम्हें वश

चलानेवाला एक ही पुत्र प्राप्त हो अथवा महान् बलवान्, यशस्वी एवं अत्यंत उत्साही बहुत से पुत्र ? इन दो वरों में से किस वर को कौन-सी रानी ग्रहण करना चाहती है ? ।

मुनि का यह वचन सुनकर केशिनी ने राजा सगर के समीप वंश चलानेवाले एक ही पुत्र का वर ग्रहण किया ।

तब गरुड़ की बहिन सुमति ने महान् उत्साही और यशस्वी साठ हजार पुत्रों को जन्म देने का वर प्राप्त किया ।

तदनन्तर रानियों सहित रजा सगर ने महर्षि की परिक्रमा करके उनके चरणों में मस्तक झुकाया और अपने नगर को प्रस्थान किया ।

कुछ काल व्यतीत होने पर बड़ी रानी केशिनी ने सगर के औरस पुत्र असमञ्ज को जन्म दिया ।

तथा (छोटी रानी) समति ने तूँबी के आकार का एक गर्भ पिण्ड उत्नन्न किया । उसको फोड़ने से साठ हजार बालक निकले ।

उन्हें घी से भरे हुए घड़ों में रखकर धाइयाँ उनका पालन-पोषण करने लगीं । धीरे-धीरे जब बहुत दिन बीत गये, तब वे सभी बालक युवावस्था को प्राप्त हुए ।

इस तरह दीर्घकाल के पश्चात् राजा सगर के रूप और युवावस्था से सुशोभित होनेवाले साठ हजार पुत्र तैयार हो गये ।

सगर का ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज नगर के बालकों को पकड़कर सरयू के जल में फेंक देता और जब वे डूबने लगते, तब उनकी ओर देखकर हँसा करता ।

इसप्रकार पापाचार में प्रवृत्त होकर जब वह सत्पुरुषों को पीड़ा देने और नगर निवासियों का अहित करने लगा, तब पिता ने उसे नगर से बाहर निकाल दिया ।

असमञ्ज के पुत्र का नाम अंशुमान् था । वह बड़ा ही पराक्रमी, सबसे मधुर वचन बोलनेवाला तथा सब लोगों को प्रिय था ।

कुछ काल के अनन्तर महाराज सगर के मन में यह निश्चित विचार हुआ कि 'मैं यज्ञ करुँ' ।

यह दृढ़ निश्चय करके वे वेदवेत्ता नरेश अपने उपाध्यायों के साथ यज्ञ करने की तैयारी में लग गये ।

४.१.४ इन्द्र के द्वारा राजा सागर के यज्ञसंबंधी अश्व का अपहरण, सगरपुत्रों द्वारा सारी पृथ्वी का भेदन तथा देवताओं का ब्रह्मा जी को यह सब समाचार पहुँचाना :

विश्वामित्र जी की कही हुई कथा सुनकर श्री रामचन्द्र जी बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने कथा के अंत में अग्नि तुल्य तेजस्वी विश्वामित्र मुनिसे कहा –

हे ब्रह्मन् ! आपका कल्याण हो । मैं इस कथा को विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ । मेरे पूर्वज महाराज सगर ने किस प्रकार यज्ञ किया था ?

उनकी वह बात सुनकर विश्वामित्र जी को बड़ा कौतूहल हुआ । वे यह सोचकर कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, उसी के लिये ये प्रश्न कर रहे हैं । उन्होंने कहा कि –

हे राम ! तुम महात्मा सगर के यज्ञ का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो । शङ्कर जी के श्वसुर हिमवान् नाम से विख्यात पर्वत विन्ध्याचल तक पहुँचकर तथा विन्ध्यपर्वत हिमवान्‌तक पहुँचकर दोनों एक–दूसरे को देखते हैं (इन दोनों के बीच में दूसरा कोई ऐसा ऊँचा पर्वत नहीं है, जो दोनों के पारस्परिक दर्शन में बाधा उपस्थित कर सके) । इन्हीं दोनों पर्वतों के बीच आर्यावर्त की पुण्यभूमि में उस यज्ञ का अनुष्ठान हुआ था । शास्त्रों में कहा गया है कि –

स हि देशो नरव्याघ्र प्रशस्तो यज्ञकर्मणि ।

तस्याश्वचर्यां काकुत्स्थ दृढधन्वा महारथः ।।[१०]

अंशुमानकरोत् तात सगरस्य मते स्थितः ।

वही देश यज्ञ करने के लिये उत्तम माना गया है । राजा सगर की आज्ञा से यज्ञिय अश्व की रक्षा का भार सुदुढ़ धनुर्धर महारथी अंशुमान् ने स्वीकार किया था ।

तस्य पर्वणि तं यज्ञं यजमानस्य वासवः ।।[११]

राक्षसीं तनुमास्थायं यज्ञियाश्वमपाहरत् ।[१२]

परंतु पर्व के दिन यज्ञ में लगे हुए राजा सगर के यज्ञ संबंधी घोड़े को इन्द्र ने राक्षस का रूप धारण करके चुरा लिया ।

महामना सगर के उस अश्व का अपहरण होते समय समस्त ऋत्विजों ने यजमान सगर से कहा कि – हे ककुत्स्थनन्दन ! आज पर्व के दिन कोई इस यज्ञ संबंधी अश्व को चुराकर बड़े वेग से लिये जा रहा है । आप चोर को मारिये और घोड़ा वापस लाइये, नहीं तो यज्ञ में विघ्न पड़ जायगा और वह हम सब लोगों के लिये अमंगलप्रद होगा । राजन् ! आप ऐसा प्रयत्न कीजिये, जिससे यह यज्ञ बिना किसी विघ्न के परिपूर्ण हो ।

उस यज्ञ सभा में बैठे हुए राजा सगर ने उपाध्यायों की बात सुनकर अपने साठ हजार पुत्रों से कहा कि यह महान् यज्ञ वेदमन्त्रों से पवित्र अन्तःकरण वाले महाभाग महात्माओं द्वारा सम्पादित हो रहा है; अतः यहाँ राक्षसों की पहुँच हो, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता ।

अतः पुत्रों ! तुम लोग जाओ, घोड़े की खोज करो । तुम्हारा कल्याण हो । समुद्र से घिरी हुई इस सारी पृथ्वी को छान डालो । एक एक योजन विस्तृत भूमि को बाँटकर उसका चप्पा–चप्पा देख डालो । जब तक घोड़े का पता न लग जाय, तब तक मेरी आज्ञा से इस पृथ्वी को खोदते रहो । इस खोदने का एक ही लक्ष्य है – उस अश्व के चोर को ढूँढ़ निकालना ।

मैं यज्ञ की दीक्षा ले चुका हूँ, अतः स्वयं उसे ढूँढ़ने के लिये नहीं जा सकता; इसलिए जब तक उस अश्व का दर्शन न हो, तब तक मैं उपाध्यायों और पौत्र अंशुमान् के साथ यहीं रहूँगा ।

अब पिता के आदेशरूपी बन्धन से बँधकर वे सभी महाबली राजकुमार मन ही मन हर्ष का अनुभव करते हुए भूतल पर विचरने लगे ।

सारी पृथ्वी का चक्कर लगाने के बाद भी उस अश्व को न देखकर उन महाबली पुरुषसिंह राजपुत्रों ने प्रत्येक के हिस्से में एक–एक योजन भूमि का बँटवारा करके अपनी भुजाओं द्वारा उसे खोदना आरंभ किया । उनकी उन भुजाओं का स्पर्श वज्र के स्पर्श की भाँति दुस्सह था ।

उस समय वज्रतुल्य शूलों और अन्यंत दारुण हलों द्वारा सब ओर से विदीर्ण की जाती हुई वसुधा आर्तनाद करने लगी ।

उन राजकमारों द्वारा मारे जाते हुए नागों, असुरों, राक्षसों तथा दूसरे–दूसरे प्राणियों का भयंकर आर्तनाद गूँजने लगा ।

उन्होंने साठ हजार योजन की भूमि खोद डाली । मानों वे सर्वोत्तम रसातलका अनुसंधान कर रहे हों ।

यह देखकर गन्धर्वों, असुरों और नागोंसहित संपूर्ण देवता मन ही मन घबरा उठे और ब्रह्मा जी के पास जाकर कहा कि –

हे भगवन् ! सगर के पुत्र इस सारी पृथ्वी को खोदे डालते हैं और बहुत से महात्माओं तथा जलचारी जीवों का वध कर रहे हैं ।

यह हमारे यज्ञ में विघ्न डालनेवाला है । यह हमारा अश्व चुराकर ले जाता है ऐसा कहकर वे सगर के पुत्र समस्त प्राणियों की हिंसा कर रहे हैं ।

४.१.५ सगर पुत्रों के भावी विनाश की सूचना देकर ब्रह्मा जी का देवताओं को शान्त करना, सगर के पुत्रों का महर्षि कपिल जी के पास पहुँचना और उनके रोषजन्य शाप से भस्म होना :

यह सारी पृथ्वी जिन भगवान् वासुदेव की वस्तु है तथा जिन भगवान्लक्ष्मीपति की यह रानी है, वे ही सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि कपिल मुनि का रूप धारण करके निरन्तर इस पृथ्वी को धारण करते हैं । उनकी कोपाग्नि से ये सारे राजकुमार जलकर भस्म हो जायँगे ।

पृथ्वी का यह भेदन सनातन है – प्रत्येक कल्प में अवश्यम्भावी है । इसीप्रकार दूरदर्शी पुरुषों ने सगर के पुत्रों का भावी विनाश भी देखा ही है; अतः इस विषय में शोक करना अनुचित है ।

ब्रह्मा जी का यह कथन सुनकर शत्रुओं का दमन करनेवाले तैंतीस कोटि देवता बड़े हर्ष में भरकर जैसे आये थे, उसी तरह पुनः लौट गये ।

इधर सारी पृथ्वी खोदकर तथा उसकी परिक्रमा करके वे सभी सगर पुत्र पिता के पास खाली हाथ लौट आये और बोले कि –

हे पिता जी ! हमने सारी पृथ्वी छान डाली । देवता, दानव, राक्षस, पिशाच और नाग आदि बड़े–बड़े बलवान् प्राणियों को मार डाला । फिर भी हमें न तो कहीं घोड़ा दिखायी दिया और न घोड़े का चुरानेवाला ही ।

पुत्रों का यह वचन सुनकर राजाओं में श्रेष्ठ सगर ने उनसे कुपित होकर कहा कि –

भूयः खनत भद्रं वो विभेद्य वसुधातलम् ।
अश्वहर्तारमासाद्य कृतार्थाश्च निवर्तत ।।[93]

जाओ, फिर से सारी पृथ्वी खोदो और इसे विदीर्ण करके घोड़े के चोर का पता लगाओ । चोर तक पहुँचकर काम पूरा होने पर ही लौटना ।

अपने महात्मा पिता सगर की यह आज्ञा शिरोधार्य करके वे साठ हजार राजकुमार रसातल की ओर बढ़े ।

उस खुदाई के समय ही उन्हें एक पर्वताकार दिग्गज दिखायी दिया, जिसका नाम विरूपाक्ष है । वह इस भूतल को धारण किये हुए था । यथा –

सपर्वतवनां कृत्स्नां पृथिवीं रघुनन्दन ।

धारयामास शिरसा विरूपाक्षो महागजः ।।[१४]

महान् गजराज विरूपाक्ष ने पर्वत और वनोंसहित इस संपूर्ण पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण कर रखा था ।

पूर्व दिशा की रक्षा करनेवाले विशाल गजराज विरूपाक्ष की परिक्रमा करके उसका सम्मान करते हए वे सगरपुत्र रसातल का भेदन करके आगे बढ़ गये ।

इसके बाद पूर्व दिशा का भेदन करने के पश्चात् वे पुनः दक्षिण दिशा की भूमि को खोदने लगे । दक्षिण दिशा में भी उन्हें एक महान् दिग्गज दिखायी दिया ।

जिसका नाम था महापद्म । महान् पर्वत के समान ऊँचा वह विशालकाय गजराज अपने मस्तकपर पृथ्वी को धारण करता था । उसे देखकर उन राजकुमारों को बड़ा विस्मय हुआ ।

महात्मा सगर के वे साठ हजार पुत्र उस दिग्गज की परिक्रमा करके पश्चिम दिशा की भूमिका भेदन करने लगे ।

इसीप्रकार पश्चिम दिशा में भी उन महाबली सगरपुत्रों ने महान् पर्वताकार दिग्गज सौमनस का दर्शन किया ।

उसकी भी परिक्रमा करके उसका कुशल–समाचार पूछकर वे सभी राजकुमार भूमि खोदते हुए उत्तर दिशा में जा पहुँचे ।

उत्तर दिशा में उन्हें हिम के समान श्वेतभद्र नामक दिग्गज दिखायी दिया, जो अपने कल्याणमय शरीर से इस पृथ्वी को धारण किये हुए था ।

उसका कुशल समाचार पूछकर राजा सगर के वे सभी साठ हजार पुत्र उसकी परिक्रमा करने के पश्चात् भूमि खोदने के काम में जुट गये । कवि कहते हैं कि –

ततः प्रागुत्तरां गत्वा सागराः प्रथितां दिशम् ।
रोषादभ्यखनन् सर्वे पृथिवीं सगरात्मजाः ।।[१५]

अर्थात् तदनन्तर सुविख्यात पूर्वोत्तर दिशा में जाकर उन सगर कुमारों ने एक साथ होकर रोषपूर्वक पृथ्वी को खोदना आरंभ किया ।

इस बार उन सभी महामना, महाबली एवं भयानक वेगशाली राजकुमारों ने वहाँ सनातन वासुदेव स्वरूप भगवान् कपिल को देखा ।

राजा सगर के यज्ञ का वह घोड़ा भी भगवान् कपिल के पास ही चर रहा था । रघुनन्दन ! उसे देखकर उस सबको अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । किन्तु उन्होंने भगवान् कपिल को अपने यज्ञ में विघ्न डालने वाला समझा जिससे उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं ।

वे अत्यंत रोष में भरकर उनकी ओर दौड़े और बोले अरे ! तू ही हमारे यज्ञ के घोड़े को यहाँ चुरा लाया है । अब हम आ गये । तू समझ ले, हम महाराज सगर के पुत्र हैं ।

उनकी बात सुनकर भगवान् कपिल को बड़ा रोष हुआ और उस रोष के आवेश में ही उनके मुँह से एक हुंकार निकल पड़ा ।

उस हुंकार के साथ ही उन अनन्त प्रभावशाली महात्मा कपिल ने उन सभी सगर पुत्रों को जलाकर राख का ढेर कर दिया ।

आगे चलकर पुत्रों को गये बहुत दिन हो गये – ऐसा जानकर राजा सागर ने अपने पौत्र अंशुमान् से जो अपने तेज से देदीप्यमान हो रहा था, इसप्रकार कहा कि –

हे वत्स ! तुम शूरवीर, विद्वान् तथा अपने पूर्वजों के तुल्य तेजस्वी हो । तुम भी अपने चाचाओं के पथ का अनुसरण करो और उस चोर का पता लगाओ, जिसने मेरे यज्ञ–संबंधी अश्व का अपहरण कर लिया है ।

देखो, पृथ्वी के भीतर बड़े–बड़े बलवान् जीव रहते हैं; अतः उनसे टक्कर लेने के लिये तुम तलवार और धनुष भी लेते जाओ ।

जो वन्दनीय पुरुष हों, उन्हें प्रणाम करना और जो तुम्हारे मार्ग में विघ्न डालनेवाले हों, उनको मार डालना । ऐसा करते हुए सफल मनोरथ होकर लौटो और मेरे इस यज्ञ को पूर्ण कराओ ।

महात्मा सगर के ऐसा कहने पर शीघ्रतापूर्वक पराक्रमकर दिखानेवाला वीरवर अंशुमान् धनुष और तलवार लेकर चल दिया ।

उसके महामनस्वी चाचाओं ने पृथ्वी के भीतर जो मार्ग बना दिया था, उसी पर वह राजा सगर से प्रेरित होकर गया ।

वहाँ उस महातेजस्वी वीर ने एक दिग्गज को देखा, जिसकी देवता, दानव, राक्षस, पिशाच, पक्षी और नाग–सभी पूजा कर रहे थे ।

उसकी परिक्रमा करके कुशल–मङ्गल पूछकर अंशुमान् ने उस दिग्गज से अपने चाचाओं का समाचार तथा अश्व चुरानेवाले का पता पूछा ।

उसका प्रश्न सुनकर परम बुद्धिमान् दिग्गज ने इसप्रकार उत्तर दिया कि – हे असमंजकुमार ! तुम अपना कार्य सिद्ध करके घोड़े सहित शीघ्र लौट आओगे ।

वाक्य के मर्म को समझने तथा बोलने में कुशल उन समस्त दिग्गजों ने अंशुमान् का सत्कार किया और यह शुभ कामना प्रकट की कि तुम घोड़े सहित लौट आओगे ।

उनका यह आशीर्वाद सुनकर अंशुमान् शीघ्रतापूर्वक उस स्थान पर जा पहुँचा, जहाँ उसके चाचा सगरपुत्र राख के ढेर हुए पड़े थे ।

उनके वध से असमंज पुत्र अंशुमान् को बड़ा दुःख हुआ । वह शोक के वशीभूत हो अत्यंत आर्तभाव से फूट–फूटकर रोने लगा ।

दुःख शोक में डूबे हुए पुरुषसिंह अंशुमान् ने अपने यज्ञ–संबंधी अश्व को भी वहाँ पास ही चरते देखा ।

महातेजस्वी अंशुमान् ने उन राजकुमारों को जलाञ्जलि देने के लिये जल की इच्छा की; किन्तु वहाँ कहीं भी कोई जलाशय नहीं दिखायी दिया ।

तब उसने दूर तक की वस्तुओं को देखने में समर्थ अपनी दृष्टि को फैलाकर देखा । उस समय उसे वायु के समान वेगशाली पक्षिराज गरुड़ दिखायी दिये, जो उसके चाचाओं (सगरपुत्रों) के मामा थे ।

महाबली विनतानन्दन गरुड़ ने अंशुमान् से कहा – तुम शोक न करो । इन राजकुमारों का वध संपूर्ण जगत् के मङ्गल के लिये हुआ है ।

अनन्त प्रभावशाली महात्मा कपिल ने इन महाबली राजकुमारों को दग्ध किया है । इनके लिये तुम्हें लौकिक जल की अंजलि देना उचित नहीं है ।

हे नरश्रेष्ठ ! हिमवान् की जो ज्येष्ठ पुत्री गङ्गा जी हैं, उन्हीं के जल से अपने इन चाचाओं का तर्पण करो ।

जिस समय लोकपावनी गङ्गा राख के ढेर होकर गिरे हुए उन साठ हजार राजकुमारों को अपने जल से आप्लावित करेंगी, उसी समय उन सबको स्वर्ग लोक में पहुँचा देंगी । लोककमनीया गङ्गा के जल से भीगी हुई यह भस्मराशि इन सबको स्वर्ग लोक में भेज देगी ।

अब तुम घोड़ा लेकर जाओ और अपने पितामह का यज्ञ पूर्ण करो ।

गरुड़ की यह बात सुनकर अत्यंत पराक्रमी महातपस्वी अंशुमान् घोड़ा लेकर तुरंत लौट आया तथा यज्ञ में दीक्षित हुए राजा के पास आकर उसने सारे समाचार का निवेदन किया और गरुड़ की बतायी हुई बात भी कह सुनायी ।

अंशुमान् के मुख से यह भयंकर समाचार सुनकर राजा सगर ने कल्पोक्त नियम के अनुसार अपना यज्ञ विधिवत् पूर्ण किया ।

यज्ञ समाप्त करके पृथ्वीपति महाराज सगर अपनी राजधानी को लौट आये । वहाँ आने पर उन्होंने गङ्गा जी को ले आने के विषय में बहुत विचार किया; किन्तु वे किसी निश्चय पर न पहुँच सके और तीस हजार वर्षों तक राज्य करके वे स्वर्ग लोकको चले गये ।

४.१.६ राजा अंशुमान् और भगीरथ की तपस्या, भगीरथ को ब्रह्मा जी की वर–प्राप्ति तथा गङ्गा जी को धारण करने हेतु भगवान् शङ्करको प्रसन्न करने के लिए ब्रह्मा जी का सलाह देना :

महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि हे श्रीराम ! सगर की मृत्यु हो जाने पर प्रजाजनों ने परम धर्मात्मा अंशुमान् को राजा बनाने की रुचि प्रकट की ।

अंशुमान् बड़े प्रतापी राजा हुए । उनके पुत्र का नाम दिलीप था । वे भी एक महान् पुरुष थे ।

रघुकुल को आनन्दित करनेवाले अंशुमान् दिलीप को राज्य देकर हिमालय के रमणीय शिखर पर चले गये और वहाँ अत्यंत कठोर तपस्या करने लगे ।

तथा महान् यशस्वी राजा अंशुमान् ने उस तपोवन में जाकर बत्तीस हजार वर्षों तक तप किया । तपस्या के धन से सम्पन्न हुए उस नरेश ने वहीं शरीर त्यागकर स्वर्गलोक प्राप्त किया ।

अपने पितामहों के वध का वृत्तान्त सुनकर महातेजस्वी दिलीप भी बहुत दुःखी रहते थे । अपनी बुद्धि से बहुत सोचने विचारने के बाद भी वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके ।

महातेजस्वी दिलीप ने बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान तथा तीस हजार वर्षों तक राज्य किया ।

किन्तु उन पितरों के उद्धार के विषय में किसी निश्चय पर न पहुँचकर राजा दिलीप रोग से पीड़ित हो, मृत्यु को प्राप्त हो गये और पुत्र भगीरथ को राज्य पर अभिषिक्त करके नरश्रेष्ठ राजा दिलीप अपने किये हुए पुण्यकर्म के प्रभाव से इन्द्र लोक में गये ।

धर्मात्मा राजर्षि महाराज भगीरथ के कोई संतान नहीं थी । वे संतान प्राप्ति की इच्छा रखते थे तो भी प्रजा और राज्य की रक्षा का भार मंत्रियों पर रखकर गङ्गा जी को पृथ्वीपर उतारने के प्रयत्न में लग गये और गोकर्णतीर्थ में तपस्या करने लगे ।

वे अपनी दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर पञ्चाग्नि का सेवन करते और इन्द्रियों को काबू में रखकर एक–एक महीने पर आहार ग्रहण करते थे । इसप्रकार घोर तपस्या में लगे हुए महात्मा राजा भगीरथ के एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये ।

इससे प्रजाओं के स्वामी भगवान् ब्रह्मा जी उन पर बहुत प्रसन्न हुए । पितामह ब्रह्मा ने देवताओं के साथ वहाँ आकर तपस्या में लगे हुए महात्मा भगीरथ से इसप्रकार कहा कि –

भगीरथ महाराज प्रीतस्तेऽहं जनाधिप ।
तपसा च सुतप्तेन वरं वरय सुव्रत ।।[९६]

अर्थात् हे महाराज भगीरथ ! तुम्हारी इस उत्तम तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूँ । श्रेष्ठ व्रत का पालन करनेवाले नरेश्वर ! तुम कोई वर माँगो ।

तब महातेजस्वी महाबाहु भगीरथ हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गये और उन सर्वलोकपितामह ब्रह्मा से बोले –

भगवन् ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि इस तपस्या का कोई उत्तम फल है तो सगर के सभी पुत्रों को मेरे हाथ से गङ्गा जी का जल प्राप्त हो ।

इन महात्माओं की भस्मराशि के गङ्गा जी के जल से भीग जाने पर मेरे उन सभी प्रपितामहों को अक्षय स्वर्गलोक मिले ।

देव याचे ह संतत्यै नावसीदेत् कुलं च नः ।
इक्ष्वाकूणां कुले देव एष मेऽस्तु वरः परः ।।[१७]

हे देव ! मैं संतति के लिये भी आपसे प्रार्थना करता हूँ । हमारे कुल की परंपरा कभी नष्ट न हो । भगवन् ! मेरे द्वारा माँगा हुआ उत्तम वर संपूर्ण इश्वाकुवंश के लिये होना चाहिये ।

राजा भगीरथ के ऐसा कहने पर सर्वलोक पितामह ब्रह्मा जी ने मधुर अक्षरोंवाली परम कल्याणमयी मीठी वाणी में कहा –

हे इक्ष्वाकुवंश की वृद्धि करनेवाले महारथी भगीरथ ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हारा यह महान् मनोरथ इसी रूप में पूर्ण हो तथा –

इयं हैमवती ज्येष्ठा गङ्गा हिमवतः सुता ।
तां वै धारयितुं राजन् हरस्तत्र नियुज्यताम् ।।[१८]

हे राजन् ! हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री हैमवती गङ्गा जी को धारण करने के लिये भगवान् शङ्कर को तैयार करो ।

गङ्गा जी के गिरने का वेग यह पृथ्वी नहीं सह सकेगी । मैं त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर के सिवा और किसी को ऐसा नहीं देखता, जो इन्हें धारण कर सके ।

राजा से ऐसा कहकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा जी ने भगवती गङ्गा से भी भगीरथ पर अनुग्रह करने के लिये कहा । इसके बाद वे संपूर्ण देवताओं तथा मरुद्गणों के साथ स्वर्ग लोक को चले गये ।

देवाधिदेव ब्रह्मा जी के चले जाने पर राजा भगीरथ पृथ्वी पर केवल अँगूठे के अग्रभाग को टिकाये हुए खड़े हो एक वर्ष तक भगवान् शङ्कर की उपासना में लगे रहे ।

वर्ष पूरा होने पर सर्वलोकवन्दित उमावल्लभ भगवान् पशुपति ने प्रकट होकर राजा से कहा –

प्रीतस्तेऽहं नरश्रेष्ठ करिष्यामि तव प्रियम् ।

शिरसा धारयिष्यामि शैलराजसुतामहम् ।।[१९]

हे 'नरश्रेष्ठ !' मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा । मैं गिरिराजकुमारी गङ्गा देवी को अपने मस्तक पर धारण करूँगा ।

ततो हैमवती ज्येष्ठा सर्वलोकनमस्कृता ।

तदा सातिमहद्रूपं कृत्वा वेगं च दुःसहम् ।।[२०]

आकाशादपतद् राम शिवे शिवशिरस्युत ।

अब शङ्कर जी की स्वीकृति मिल जाने पर हिमालय की ज्येष्ठ पुत्री गङ्गा जी, जिनके चरणों में सारा संसार मस्तक झुकाता है, बहुत बड़ा रूप धारण करके अपने वेग को दुस्सह बनाकर आकाश से भगवान् शङ्कर के शोभायमान मस्तक पर गिरीं ।

उस समय परम दुर्धर गङ्गा देवी ने यह सोचा था कि मैं अपने प्रखर प्रवाह के साथ शङ्कर जी को लेकर पाताल चली जाऊँगी किन्तु उनके इस अहंकार को जानकर त्रिनेत्रधारी भगवान् हर कुपित हो उठे और उन्होंने उस समय गङ्गा को अदृश्य कर देने का विचार कर लिया ।

पुण्यस्वरूपा गङ्गा भगवान् रुद्र के पवित्र मस्तक पर गिरी । उनका वह मस्तक जटामण्डल रूपी गुफा से सुशोभित हिमालय के समान जान पड़ता था । उस पर गिर कर विशेष प्रयत्न करने पर भी किसी तरह वे पृथ्वी पर न जा सकीं और न ही वे भगवान् शिव के जटा-जाल में उलझकर किनारे आकर वहाँ से निकलने का मार्ग ही पा सकीं और बहुत वर्षों तक उस जटाजूट में ही भटकती रहीं ।

भगीरथ ने देखा, गङ्गा जी भगवान् शङ्कर के जटामण्डल में अदृश्य हो गयीं हैं; तब वे पुनः वहाँ भारी तपस्या में लग गये । उस तपस्या द्वारा उन्होंने भगवान् शिव को बहुत संतुष्ट कर लिया ।

तत्पश्चात् महादेव जी ने गङ्गा जी को बिन्दु सरोवर से ले जाकर छोड़ दिया । वहाँ छूटते ही उनकी सात धाराएँ हो गयीं । यथा –

ह्लादिनी पावनी चैव नलिनी च तथैव च ।
तिस्त्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्गाः शिवजलाः शुभाः ।।[२१]

ह्लादिनी, पावनी और नलिनी – ये कल्याणमय जल से सुशोभित गङ्गा की तीन मङ्गलमयी धाराएँ पूर्व दिशा की ओर चली गयीं ।

सुचक्षुश्चैव सीता च सिन्धुश्चैव महानदी ।
तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभाः ।।[२२]

अर्थात् सुचक्षु, सीता और महानदी सिन्धु – ये तीन शुभ धाराएँ पश्चिम दिशा की ओर प्रवाहित हुई ।

सप्तमी चान्वगात् तासां भगीरथरथं तदा ।
भगीरथोऽपि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः ।।[२३]
प्रायादग्रे महातेजा गङ्गा तं चाप्यनुव्रजत् ।
गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिमागता ।।[२४]

उनकी अपेक्षा जो सातवीं धारा थी, वह महाराज भगीरथ के रथ के पीछे–पीछे चलने लगी । महातेजस्वी राजर्षि भगीरथ भी दिव्य रथ पर आरुढ़ हो आगे–आगे चले और गङ्गा उन्हीं के पथ का अनुसरण करने लगी । इसप्रकार वे आकाश से भगवान् शश्कर के मस्तक पर और वहाँ से इस पृथ्वी पर आयी थीं ।

गङ्गा जी की वह जलराशि महान् कलकल नाद के साथ तीव्र गति से प्रवाहित हुई ।

तदनन्तर देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष और सिद्धगण नगर के समान आकारवाले विमानों, घोड़ों तथा गजराजों पर बैठकर आकाश से पृथ्वी पर गयी हुई गङ्गा जी की शोभा निहारने लगे ।

पारिप्लवगताश्चापि देवतास्तत्र विष्ठिताः ।
तदद्भुतमिमं लोके गङ्गावतरमुत्तमम् ।।[२५]
दिदृक्षवो देवगणाः समीयुरमितौजसः ।[२६]

देवतालोग आश्चर्यचकित होकर वहाँ खड़े थे । जगत् में गङ्गावतरण के इस अद्भुत एवं उत्तम दृश्य को देखने की इच्छा से अमित तेजस्वी देवताओं का समूह वहां जुटा हुआ था ।

गङ्गा जी की वह धारा कहीं तेज, कहीं टेढ़ी और कहीं चौड़ी होकर बहती थी । कहीं बिल्कुल नीचे की ओर गिरती और कहीं ऊँचे की ओर उठी हुई थी । कहीं समतल भूमि पर वह धीरे-धीरे बहती थी और कहीं-कहीं अपने ही जल से उसके जल में बारम्बार टक्करें लगती रहती थीं । महर्षि वाल्मीकि जी कहते हैं कि -

मुहुरूर्ध्वपथं गत्वा पपात वसुधां पुनः ।
तच्छंकरशिरोभ्रष्टं भ्रष्टं भूमितले पुनः ।।[२७]
व्यरोचत तदा तोयं निर्मलं गतकल्मषम् ।[२८]

गङ्गा का वह जल बार-बार ऊँचे मार्ग पर उठता और पुनः नीची भूमि पर गिरता था । आकाश से भगवान् शङ्कर के मस्तक पर तथा वहाँ से फिर पृथ्वी पर गिरा हुआ वह निर्मल एवं पवित्र गङ्गा जल उस समय बड़ी शोभा पा रहा था ।

उस समय भूतल निवासी ऋषि और गन्धर्व यह सोचकर कि भगवान् शङ्कर के मस्तक से गिरा हुआ यह जल बहुत पवित्र है, उसमें आचमन करने लगे । रामायणकार कहते हैं कि -

जो शापभ्रष्ट होकर आकाश से पृथ्वी पर आ गये थे, वे गङ्गा के जल में स्नान करके निष्पाप हो गये तथा उस जल से पाप धुल जाने के कारण पुनः पुण्य से संयुक्त हो आकाश में पहुँचकर अपने लोकों को पा गये ।

यतो भगीरथो राजा ततो गङ्गा यशस्विनी ।।
जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी ।[२६]

अर्थात् इस समय जिस ओर राजा भगीरथ जाते, उसी ओर समस्त पापों का नाश करनेवाली सरिताओं में श्रेष्ठ यशस्विनी गङ्गा भी जाती थीं ।

ततो हि यजमानस्य जह्नोरद्भुतकमर्णः ।।
गङ्गा सम्प्लावयामास यज्ञवाटं महात्मनः ।[३०]

उस समय मार्ग में अद्भुत पराक्रमी महामना राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे । गङ्गा जी अपने जल–प्रवाह से उनके यज्ञमण्डप को बहा ले गयी ।

राजा जह्नु इसे गङ्गा जी का गर्व समझकर कुपित हो उठे और उन्होंने गङ्गा जी के उस समस्त जल को पी लिया ।

तब देवता, गन्धर्व तथा ऋषि अत्यंत विस्मित होकर पुरुष प्रवर महात्मा जह्नु की स्तुति करने लगे ।

गङ्गां चापि नयन्ति स्म दुहितृत्वे महात्मनः ।।
ततस्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत् प्रभुः ।
तस्माज्जह्नुसुता गङ्गा प्रोच्यते जाह्नवीति च ।।[३१]

उन्होंने गङ्गा जी को उन महात्मा नरेश की कन्या बना दिया । (अर्थात् उन्हें यह विश्वास दिलाया कि गङ्गा जी को प्रकट करके आप इनके पिता कहलायेंगे ।) इससे सामर्थ्यशाली महातेजस्वी जह्नु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने कानों के छिद्रों द्वारा गङ्गा जी को पुनः प्रकट कर दिया, इसलिये गङ्गा जह्नु की पुत्री एवं जाह्नवी कहलाती हैं ।

वहाँ से गङ्गा फिर भगीरथ के रथ का अनुसरण करती हुई चलीं । उस समय सरिताओं में श्रेष्ठ जाह्नवी समुद्र तक जा पहुँची और राजा भगीरथ के पितरों के उद्धार रूपी कार्य की सिद्धि के लिये रसातल में गयीं ।

भगीरथोऽपि राजर्षिर्गङ्गामादाय यत्नतः ।।
पितामहान् भस्मकृतानपश्यद् गतचेतनः ।[३२]

राजर्षि भगीरथ यत्नपूर्वक गङ्गा जी को साथ ले वहाँ गये । उन्होंने शाप से भस्म हुए अपने पितामहों को अचेत-सा होकर देखा ।

अथ तद्भस्मनां राशिं गङ्गासलिलमुत्तमम् ।
प्लावयत पूतपाप्मानः स्वर्गं प्राप्ता रघूत्तम ।।[३३]

तदनन्तर गङ्गा के उस उत्तम जल ने सगर पुत्रों की उस भस्मराशि को आप्लावित कर दिया और वे सभी राजकुमार निष्पाप होकर स्वर्ग में पहुँच गये ।

४.१.७ ब्रह्मा जी का राजा भगीरथ को गङ्गा जल से उनके पितरों को तर्पण की आज्ञा देना और राजा का वह सब करके गङ्गावतरण के उपाख्यानकी महिमा का वर्णन

स गत्वा सागरं राजा गङ्गयानुगतस्तदा ।
प्रविवेश तलं भूमेर्यत्र ते भस्मसात्कृताः ।।[३४]
भस्मन्यथाप्लुते राम गङ्गायाः सलिलेन वै ।
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा राजानमिदमब्रवीत् ।।[३५]

हे श्रीराम ! इसप्रकार गङ्गा जी को साथ लिये राजा भगीरथ ने समुद्र तक जाकर रसातल में, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, प्रवेश किया । वह भस्मराशि जब गङ्गा जी के जल से आप्लावित हो गयी, तब संपूर्ण लोकों के स्वामी भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ पधारकर राजा से कहा कि –

महात्मा राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का तुमने उद्धार कर दिया । अब वे देवताओं की भाँति स्वर्ग लोक में जा पहुँचे ।

इस संसार में जब तक सागर का जल मौजूद रहेगा; तब तक सगर के सभी पुत्र देवताओं की भाँति स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित रहेंगे तथा ।

इयं च दुहिता ज्येष्ठा तव गङ्गा भविष्यति ।
त्वत्कृतेन च नाम्नाथ लोके स्थास्यति विश्रुता ।।[३६]

ये गङ्गा तुम्हारी भी ज्येष्ठ पुत्री होकर रहेंगी और तुम्हारे नाम पर रखे हुए भागीरथी नाम से इस जगत् में विख्यात होंगी ।

गङ्गा त्रिपथगा नाम दिव्या भागीरथीति च ।
त्रीन् पथो भावयन्तीति तस्मात् त्रिपथगा स्मृता ।।[३७]

'त्रिपथगा' दिव्या और भागीरथी – इन तीनों नामों से गङ्गा की प्रसिद्धि होगी । ये आकाश, पृथ्वी और पाताल तीनों पथों को पवित्र करती हुई गमन करती हैं, इसलिये त्रिपथगा मानी गयी हैं ।

अब तुम गङ्गा जी के जल से यहाँ अपने सभी पितामहों का तर्पण करो और इसप्रकार अपनी तथा अपने पूर्वजों द्वारा की हुई प्रतिज्ञा को पूर्ण कर लो ।

हे राजन् ! तुम्हारे पूर्वज धर्मात्माओं में श्रेष्ठ महायशस्वी राजा सगर भी गङ्गा को यहाँ लाना चाहते थे; किन्तु उनका यह मनोरथ नहीं पूर्ण हुआ ।

इसीप्रकार लोक में अप्रतिम प्रभावशाली, उत्तम गुणविशिष्ट, महर्षितुल्य तेजस्वी, मेरे समान तपस्वी तथा क्षत्रिय–धर्मपरायण राजर्षि अंशुमान् ने भी गङ्गा को यहाँ लाने की इच्छा की; परंतु वे इस पृथ्वी पर उन्हें लाने की प्रतिज्ञा पूरी न कर सके ।

तथा तुम्हारे अत्यंत तेजस्वी पिता दिलीप भी गङ्गा को यहाँ लाने की इच्छा करके भी इस कार्य में सफल न हो सके ।

किन्तु पुरुषप्रवर ! तुमने गङ्गा को भूतल पर लाने की वह प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली । इससे संसार में तुम्हें परम उत्तम एवं महान् यश की प्राप्ति हुई है ।

तुमने जो गङ्गा जी को पृथ्वी पर उतार ने का कार्य पूरा किया है, इससे उस महान् ब्रह्मलोक पर अधिकार प्राप्त कर लिया है, जो धर्म का आश्रय है ।

गङ्गा जी का जल सदा ही स्नान के योग्य है । तुम स्वयं भी इसमें स्नान करो और पवित्र होकर पुण्य का फल प्राप्त करो ।

हे नरेश्वर ! तुम अपने सभी पितामहों का तर्पण करो । तुम्हारा कल्याण हो ।

ऐसा कहकर सर्वलोक पितामह महायशस्वी देवेश्वर ब्रह्मा जी देवलोक को लौट गये ।

महायशस्वी राजर्षि राजा भगीरथ भी गङ्गा जी के उत्तम जल से क्रमशः सभी सगर–पुत्रों का विधिवत् तर्पण करके पवित्र हो अपने नगर को चले गये । इसप्रकार सफलमनोरथ होकर वे अपने राज्य का शासन करने लगे ।

हे रघुनन्दन ! अपने राजा को पुनः सामने पाकर प्रजा वर्ग को बड़ी प्रसन्नता हुई । सबका शोक जाता रहा । सबके मनोरथ पूर्ण हुए और चिन्ता दूर हो गयी ।

आगे विश्वमित्र जी कहते हैं कि –

हे राम ! यह गङ्गा जी की कथा मैंने तुम्हें विस्तार के साथ सुनायी । तुम्हारा कल्याण हो ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुत्र्यं स्वर्ग्यमथापि च ।
यः श्रावयति विप्रेषु क्षत्रियेष्वितरेषु च ।।[३८]
प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रीयन्ते दैवतानि च ।
इदमाख्यानमायुष्यं गङ्गावतरणं शुभम् ।।[३९]

अर्थात् यह गङ्गावतरण का मङ्गलमय उपाख्यान आयु बढ़ानेवाला है । धन, यश, आयु, पुत्र और स्वर्ग की प्राप्ति करानेवाला है । जो सभी वर्ण के लोगों को यह कथा सुनाता है, उसके ऊपर देवता और पितर प्रसन्न होते हैं ।

यः शृणोति च काकुत्स्थ सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।
सर्वे पापाः प्रणश्यन्ति आयुः कीर्तिश्च वर्धते ।।[४०]

जो इसका श्रवण करता है, वह संपूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और आयु की वृध्दि एवं कार्ति का विस्तार होता है ।

गंगावतरण की विवेचना करते हुए किसी विद्वान् ने इसी पूर्वोक्त आशय को संस्कृत भाषा में निम्नप्रकार से कहा है –

४.१.८ गंगावतरणम् एक विवेचन :

गङ्गावतरणं प्रतीकेनापि किमपि अपूर्वमुपदिष्टं किल प्राच्यप्रकृतिवैज्ञानिकैः । एकस्यैव राज्ञः सगरस्य जनप्रतिनिधिभूतस्य षष्टिसहस्त्रसंख्याका आत्मजा जनसंख्यायाः सीमानमुल्लङ्घयन्ति । तेन जनसंख्याविस्फोटरुपिणी समस्या उत्पद्यते । विकृतजीवनपद्धत्या आचरणे व्यतिक्रमो भवत्येव । फलतः ते विकारप्रेरिताः राजपुत्राः प्रथमं तावल्लतागुल्मपादपादीन् छिन्दन्तः तपोवनस्य बाह्यं पर्यावरणं विक्षोभयन्ति । विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि[४१] इति कालिदासोक्तदिशा आश्रमप्रवेशकाले विनयशीलेन भाव्यम् । अहङ्कारमूर्तयः तेऽविनयिनः परुषवचनेन असद्व्यवहारेण च मुनेरन्तः प्रकृतिमपि उद्वेजयन्ति ।[४२] परिणामतः कपिलान्तःप्रकृतौ प्रादुर्भूता प्रतिक्रिया शापरूपेण परिणमते ।[४३] एतस्यां विषमस्थितौ आधिभौतिकाधिदैविकाध्यात्मिकैतत्–त्रितयवैभवशालिनी सकलप्रदूषणनिवारिणी पर्यावरणचेतनायाः संवाहिका महानदी गङ्गा कथमवतरेदस्यां भारतभुवि–इति बहुविचारितं भगीरथेन तत्पूर्ववर्तिभिश्च भूपतिभिः । सा गङ्गा एव सर्वतो विशद्धम् आंतरिकं बाह्यं च पर्यावरणं संस्थाप्य आविद्यकान् कल्पमषरूपान् विनाशबीजान् सगरात्मजान् समुद्धर्तुम् उन्मूलयितुं क्षमते ।

ननु, कथं सामान्यरूपेण जलवाहिका नदी अन्तःप्रकृतिपरिशोधनपुरस्सरं बाह्यप्रकृतिं परिशोधयितुमर्हति इति चेत्

न, श्रीगङ्गा न केवलं जलसंवाहिका अपितु त्रिविधाकारा शक्तिः । तथाहिस्वकीयेन आध्यात्मिकवैभवेन सकलाज्ञाननिवारिणी अघौघसंहारिणी चिदानन्दासंविद्रूपिणी निराकारा स्वयंप्रकाशिनी । आधिदैविके नराकारा सती अवनितलेऽवतीर्य 'दैत्यतेजांसि हिनस्ति' ।[४४] एषैव आधिभौतिके नीराकारा भवति । अतएव श्रीगङ्गा नामोच्चारणमात्रेण पवित्रीकृतहृदया, दर्शनेन पापापहारिणी, स्नानेन तापापहा, पानेन पुष्टितुष्टिदा, समाराधनेन च चतुवर्गफलप्रदा । अस्या इदं वैशिष्ट्यं सर्वविधां प्रकृतिं पर्यावरणञ्चं शोधने समर्थम् ।

अत्रेदमवधेयम् – गमयति प्रापयति ज्ञापयति वा भगवत्पदं या शक्तिः सा गङ्गा ।[४५]

आधिभौतिके इयमापोमयी शक्तिः तोयामृतेन तर्पयन्ती लोकम् आहिमालयात् सागरान्तं प्रवहन्ती जलधारारूपेण दृग्गोचरीभूता । हिमालयान्तर्गतस्य बदरिकाश्रमस्य उत्तरस्यां नारायणपर्वतस्य प्रान्तप्रदेशादुद्गता धारा विष्णुपदी अलकनन्देति स्मृता । एतस्या अपरा धारा गङ्गोत्तरी–हिमप्रवाहे नन्दन–मेरु–भृगुपथ–शिवलिङ्ग्यादि–शिखरेषु अन्तः सलिला सती आविर्भवति गोमुखात् । सा च भागीरथीति कथ्यते । अपरा मन्दाकिनी केदारक्षेत्रे विद्यमानाद् हैमप्रवाहाद्उद्गता सती पर्वतीयान् प्रदेशानभिषिञ्चती रुद्रप्रयागे भागीरथीं मिलति । कूर्माञ्चलसीमातः समुद्भूता पिण्डारका कर्णप्रयागे अनयोः सम्मिलति । एवं हिमाद्रेः भिन्न–भिन्न देशादुद्गत्य कलकलध्वनि – ध्वनितदिगन्तराः नैका निर्झरिण्यः परस्परं सम्भिदन्त्यः सन्देशमेकताया अखण्डतायाः समाहरन्त्य इव प्रतीयन्ते । भागीरथी अलकनन्दया सह सुप्रसिद्धे रमणीये देवप्रयागे मिलित्वा प्रसीदतितमाम् । ततः सर्वाः सम्मिश्रिताः सरितो गङ्गा भवति । सर्वासां नदीनां संघभूता गङ्गा भगवन्तं समुद्रशायिनं नारायणं, नाराणाम् अपामयनं नारायणं समुद्रं वा सङ्गन्तुं भगवन्तं समुद्रशायिनं नारायणं, नाराणाम् अपामयनं नारायणं समुद्र

वा सङ्गन्तुं सततं गतिशीला । एतासां सर्वासां नदीनां गतिशीलता गङ्गा पद वाच्या शक्तिः ।

आधिदैविके तु विष्णोः चरणारविन्दसमुद्भूता चरणाऽमृतरूपा तावद् विष्णुपदी गङ्गा । अस्याः प्राकट्यमधिकृत्य विविधाः किल कथाः श्रूयन्ते पुराणेषु । तथाहि अनुपमसौन्दर्यशाली वनमाली रासेश्वरः शरच्चद्रज्योत्सनाच्छुरितायां राकायां यदा गोपिकाभिः सह रममाणः आसीत्, निरतिशयप्रेममयत्वात् तदा द्रवरूपेण परिणतः, एष ब्रह्मद्रवः श्रीकृष्णस्य परंब्रह्मस्वरूपत्वात् । निराकारसत्तायां सच्चिदानन्दात्मकोऽसौ साकारसत्तायां प्रेमरूपेण स्फुरितः सन् गङ्गारूपेण प्रवाहितः ।[४६] भगवतः इयं प्रेमाशक्तिः तं गमयति, प्रापयति ज्ञापयति वा; अतएव गङ्गेति अभिधीयते । किञ्च वामनावतारे हरिणा पादत्रयेण त्रिलोकी मिता । अन्तरिक्षे पादप्रक्षेपणे सति अङ्गुष्ठनखेन विवरोऽभूत्; ततः समुज्ज्वला गाङ्गधारा समुद्गता ।[४७] सैषा तमसः परस्ताद् आदित्यज्योतिः प्रस्फुरिता सती आकाशगङ्गेति विज्ञायते । अपि च महर्षेः कपिलस्य शापेन भस्मीभूताः खलु सगरात्मजाः । तेषां तर्पणाय गङ्गाया भूलोकेऽवतरणं परवर्तिभिः वंशजैराकाङ्क्षितम् । कृतभूरिपरिश्रमो भगीरथः सफलो बभूव किल स्वपूर्वजानां सगरात्मजानां तर्पणव्याजेन वसुधातले आनेतुमिमां प्राणधारां प्राणिजातस्य ।[४८] जीवनस्य आधारभूता एषा सुधामयी तोयतरङ्गिणी पुरुषार्थत्रयं सम्पादयन्ती अन्ते स्वर्गं मुक्तिञ्च प्रददातीति सार्थक्यनामा गङ्गेति ।

आध्यात्मिके च परं ब्रह्म गमयतीति योगात् चिदानन्दा संविद् गङ्गा–पदवाच्या । इदमत्र ध्येयम् – अध्यात्मयोगे ध्यानप्रक्रियायां विषयीभूतं तत्त्वं यदा शब्दार्थौ अतिक्रम्य बिम्बग्राहकं भवति तदाऽतिनिगूढं तत्त्वं प्रतीकेषु बीजाक्षरेषु च निगूहन्ति तत्त्ववेत्तारः । गङ्गावतरणमपि आख्यानच्छलेन कमपि अपूर्वं दिव्यं लोकोत्तरं च तत्त्वं विष्णुः – विशुद्धं व्यापनशीलं निरवच्छिन्नं च ब्रह्म । तदेव यदा द्रवरूपेण परिणमते तदा गङ्गेति उच्यते ।[४९] एष एव विष्णुः सावच्छिन्नः सन् ज्ञानेच्छा क्रियात्मकाभिः तिसृभिर् गतिभिः त्रैलोक्यं व्याप्नोति ।[५०] तस्य चिन्मयचरणेषु सञ्चरिता ऋतम्भरा पीयूषधारा चितिर्गङ्गेति गीयते ।[५१]

एषा चिन्मयी आलोकधारा पृथ्व्यन्तरिक्षपातालेषु, दैहिक–दैविक भौतिकाऽवस्थासु, जाग्रत–स्वप्न – सुषुप्तिषु, मनोबुद्ध्यहंकारेषु, सत्य–शिव–सुन्दरेषु, इडा–पिङ्गला – सुषुम्णासु, सत्त्व–रजः – तमस्सु, पश्यन्ती – मध्यमा वैखरीषु, सर्वेषु त्रियोगेषु ओता च प्रोता च; अतएव त्रिपथगेति उच्यते ।[५२]

एषा विष्णुपादोदका विष्णुपदी, धातुः कमण्डलौ स्थिता ब्रह्मद्रवी, शिवजटासु च अवतरिता जटाशङ्करीति ज्ञायते । अयमभिप्रायः दिक्कालाद्यनवच्छिन्नस्य व्यापनशीलस्य ब्रह्मणः – विष्णोः सोपाधित्वं नाम ब्रह्मकमण्डलुत्वम् । उपाधिपरिच्छेदेन सङ्कोलितं चैतन्यम् अण्डाकृतिं भजते । प्रकाशमयत्वात् स्वर्णाभोऽसौ हिरण्यगर्भपदेन प्रसिद्धः । तत्र परमविन्दुस्वरूपिणी गङ्गा विराजतेतमाम् । तां ब्रह्मकमण्डलुवर्तिनीं चैतन्यवारिधारां भुवस्तलेऽवतारयितुं महत्तप आवश्यकम् । तपोविग्रहो भगीरथः विश्वासे शिवेऽवतारयति इमाम् ऋतम्भराम् । विश्वासेऽवतरिता चैतन्यसलिला गङ्गा अहङ्कारविग्रहान् अविद्याग्रस्तान् जीवान् सगरात्मजान् उद्धर्तुं क्षमते ।[५३]

यद्वा, 'नारा – आपोऽयनमस्य'[५४] इति व्युत्पत्या सूर्य मण्डले देदीप्यमानो देवो नारायणः । तस्य गगनव्यापिनी प्रभा गङ्गेति गीयते, गं – गच्छतीति निर्वचनात् ।[५५] सूर्यस्य भगं – तेजः ईरयति योऽसौ भगीरथः प्रेरकः तस्य आन्तरिकीं शक्तिं त्रिलोक्यां प्रसारयति ।

यद्वा, सूर्यमण्डलमध्यवर्ती नारायणः[५६] – व्यापनशीलं ब्रह्म तस्य ब्राह्मी चितिः सूर्यप्रभा आकाशगङ्गेति ज्ञायते ।

अपि च – पश्यन्ती – मध्यमा – वैखरीषु सञ्चरणशीला परा वाग् गङ्गा पदवाच्या । ऋग्यजुः सामसु अविच्छिन्नप्रवाहा एषा छन्दस्वती अनाद्यनन्ता शब्दब्रह्मस्वरूपा ।[५७]

हा हन्त ! अस्मिन्नघौघसङ्कुले कलौ ईदृशी विलक्षणा जीवनदायिनी प्राणधारा, भारतीय–संस्कृति–संवाहिका साम्प्रतं सर्वतोभावेन प्रकृष्टं दूष्यते । अमृततोय संवाहिनीं लोकमानसपावनीं स्वकीयां मातरं मलेन तिरस्कुर्वन्ति, दोषसमूहेन जर्जरीकुर्वन्ति तस्या एव पुत्राः । आधुनिक–जडवादिसभ्यतायां पुनः – पुनः आसुरी प्रवृत्तयः

वरीवृध्यन्ते । दुष्परिणामोऽयं भगीरथरथखातावच्छिन्नप्रवाहा गङ्गा बन्धेषु प्रणालिकासु आबध्यते । व्यापारपोतानां रसायनिकद्रवैः तस्याः तोयाऽमृतं विषं विधीयते । उद्योगप्रधाननागरीसभ्यतायाश्च सकलं प्रदूषणजातं तत्तटेषु प्रक्षिप्यते । तस्या परात्वं देवत्वं अमृतत्त्वञ्च विस्मृत्य तामुपभोग्यात्वेन अभिमन्यन्ते आधुनिकाः साक्षराः राक्षसा मानवाः । एतस्या आसुरीप्रवृत्तेः कुफलं मानवेनैव उपभोक्ष्यते । प्रदूषितेष्वपि पञ्चभूतेषु परासंविद्रूपिणी भगवती गङ्गा कदापि न विनङ्क्ष्यति । किन्तु मानवस्तु स्वकृतस्य पापपुञ्जस्य फलभोक्ता नूनं भविष्यति । पर्यावरणसन्तुलनस्य केन्द्ररूपो धवलगिरिमालाभिः समाच्छादितः शैलाधिराज उत्तरस्यां दिशि राष्ट्रप्रहरीरूपेण सुशोभते, किन्तु आधुनिकविकासवादिभिर् हिमालयं प्रति यद् वैनाशिकमाचरणं विधीयते, तस्य निदर्शनं पर्यावरणविदः श्रीसुन्दरलालबहुगुणामहोदयस्य वचनेषु द्रष्टुं शक्यते – The Himalaya is bleeding today on account of the onslaught of agressive development. --------- The Tehari dam is being constructed inspite of the scientist's warnings about the danger inherent in its construction.[५८]

हिमालयोद्गता निर्मलापगा वन्यसम्पत्तयश्च राष्ट्रं सञ्जीवयन्ति । किन्तु साम्प्रतं क्रियमाणेन भोगलिप्सामयेन विकासेन हिमवाहा यथा विनश्यन्ते, तेन सर्वासां नदीनां शुष्कता समापद्येत – One more threat to the Himalayan rivers is from the continuous recession of glaciers which has accelerated during recent years. ------- with recession of this glacier, a disert is spreading north wards.[५९]

श्री गङ्गायाः सङ्कटः सभ्यतायाः सङ्कटोऽस्ति । यतो हि एषा भारतीयसभ्यतायाः संस्कृतेश्च सन्देशामृतं सततं प्रवाहयति अस्माकं हृदयेषु । गङ्गा सङ्कटापन्ना भवेच्चेत् जीवनं सुखमयं कथं भवेत् । अतएव समुपागतोऽयं कालो भारतीयानां पुनर्जागरणस्य । अधिकाधिकानि धनानि अर्जयितुं नैव विस्मरणीयोऽयं सिद्धान्तः Ecology is permanent economy. इति । स्मरणीयं तावद् भगीरथतपः,

स्मरणीयं च महामनसां मालवीयमहाभागानां मतम् भगीरथरथखातावच्छिन्नः प्रवाहो बन्धरहितो भवेदिति ।

ज्ञान–विज्ञान–प्रज्ञानानां मणिकाञ्चन संयोगेन एव मानवकल्याणं भवितुमर्हति, प्रकृतिं जडत्वेन अभिमन्यमानं भौतिकं विज्ञानं स्वीयैः सहोत्पादविभूतिभिः विमोहितं सत् परमं सत्यं विस्मरति । एतद् विज्ञानं प्रज्ञानेन सह संवालितो भवेत् चेत् चतुर्वर्गफलावाप्तिर्भवेत् ।

शंकराचार्यस्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज का कथन है कि –

इसप्रकार गङ्गावतरण भारत की प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं में से एक है । इस महानदी के आविर्भाव ने भारत के मानचित्र को ही बदलकर रख दिया है । गङ्गा की महिमा का वर्णन वेदों से लेकर संपूर्ण अवान्तर साहित्य में भरा पड़ा है । हमारी संस्कृति व सभ्यता का विकास इसी के तट पर हुआ, हमारे पूर्वज ऋषि–महर्षियों ने इसी के पावन तट पर समाधिस्थ होकर वेदों का साक्षात्कार किया, दर्शन शास्त्रों के अज्ञेय रहस्यों को खोला और उपनिषदों में निगूढ़ अनुभूति की अभिव्यंजना की ।

वर्षों तक संग्रह कर रखने पर भी विकृत न होना, कीड़े आदि उत्पन्न न होना – गङ्गाजल की वह विलक्षण विशेषता है, जो संसार की किसी अन्य नदी के जल में नहीं मिलेगी । पाश्चात्य एवं पौरस्त्य सभी गङ्गाजल के इस महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसे आन्त्रिक रोगों की दिव्यौषधि मानते हैं ।[६०]

४.२ गंगा–संबंधी भौगोलिक चिन्तन :

४.२.१ गंगा प्रणाली :

गंगा नदी की स्रोत से मुहाने तक की लंबाई २०७१ किमी. है तथा इसका जलग्रहण क्षेत्र ६५१,००० वर्ग किमी. है । इसकी अनेक सहायक नदियाँ हैं, जिनमें यमुना, रामगंगा, घाघरा, गण्डक, बूढ़ी गंडक, कोशी, महानन्दा, सोन

तथा दामोदर महत्त्वपूर्ण है । इन नदियों की लंबाई तथा जल–ग्रहण क्षेत्र निम्नवत् है ।[६१]

सहायक नदी	*लंबाई (किमी.)*	*जल–ग्रहण–क्षेत्र (वर्ग किमी.)*
यमुना	१३००	३५६०००
रामगंगा	६९०	३२८००
घाघरा	१०८०	१२७५००
गंडक	४२५	४५८००
बूढ़ी गंडक	६१०	१२२००
कोशी	७३०	८६९००
महानन्दा	२९०	२५१००
सोन	७८०	७१९००
दामोदर	५४१	२२०००

गंगा के जल–ग्रहण–क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा पश्चिम में १५० सेमी. तथा पूर्वी क्षेत्र में ७५ से २१२ सेमी. तक होती है । फरक्का में इसका प्रवाह अधिकतम १२,५०० घन मी. / सेकेण्ड तथा न्यूनतम १,५६८ घन मी. / सेकेण्ड रहता है । स्पष्ट है कि गंगा प्रणाली के जल–प्रवाह में ऋतु के अनुसार अत्यधिक घट–बढ़ होती है । इसमें वर्षा ऋतु में भयंकर बाढ़ आती है जिससे कुछ स्थानों पर २६ किमी. तक की चौड़ाई में पानी फैल जाता है ।

४.२.२ ऊपरी गंगा मैदान :

(क) स्थिति एवं विस्तार :

ऊपरी गंगा मैदान का अक्षाँशीय विस्तार २५°१५' से ३०°२१' उत्तरी एवं देशान्तरीय विस्तार ७३°३' पूर्वी से ३२°२१ पूर्वी तक है । इसका संपूर्ण क्षेत्रफल १,४६,०२६ वर्ग किमी. है, जो संपूर्ण उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल का लगभग १५

प्रतिशत है । इसकी पश्चिमी सीमा यमुना नदी एवं पूर्वी सीमा १०० मीटर की समोच्च रेखा से निर्धारित होती है । उत्तर पश्चिम में गढवाल–कुमायूँ हिमालय एवं क्रमशः पूर्व में भारत–नेपाल अंतर्राष्ट्रीय सीमा द्वारा तथा दक्षिणी सीमा को यमुना नदी बुन्देलखण्ड प्रदेश से अलग करती है । पूर्व–पश्चिम इसकी अधिकतम लम्बाई ५५० किमी. है, जबकि उत्तर–दक्षिण अधिकतम चौड़ाई ८८० किमी. है । प्रशासनिक इकाईयों के अनुसार इस मैदान के अंतर्गत मेरठ (देहरादून जिले को छोड़कर), आगरा, रुहेलखण्ड, लखनऊ, इलाहाबाद, (हंडिया, फूलपुर, करछना एवं मेजा तहसीलों को छोड़कर), फैजाबाद (उतरौला, बलरामपुर, फैजाबाद, टांडा, अकबरपुर, सुलतानपुर, कादीपुर एवं पट्टी तहसीलों को छोड़कर) कमिश्नरियाँ एवं कुमायूँ कमिश्नरी की हल्द्वानी तहसील आती है ।

(ख) संरचना एवं उच्चावच :

जलोढ़ मिट्टी द्वारा निर्मित इस मैदान की रचना हिमालय के बाद हुई । जलोढ़ की गहराई में क्षेत्रीय असमानता है । औसत गहराई १३००–१४०० मीटर है । सामान्यतया दक्षिण की ओर जलोढ़ की गहराई कम हो जाती है । उत्तरी भाग में हिमालय से सटे एक पतली पट्टी में इसकी गहराई ८००० मीटर पाई जाती है । काठगोदाम–लखीमपुर बेसिन तथा बहराइच बेसिन इसमें प्रमुख हैं । उ.प्र. से द. पूर्व की ओर इस अत्यंत समतल मैदान में गंगा तथा उसकी सहायक नदियों (उत्तर से यमुना, रामगंगा, गोमती, शारदा तथा घाघरा एवं दक्षिण से चम्बल, बेतवा, केन आदि) को जलोढ़ उनके बाढ़ क्षेत्र में खादर तथा उपरी भागों में बाँगर के रूप में मिलती है । बांगर जलोढ़ में कुछ फुट नीचे कंकड़ मिलते है । पश्चिम में रुहेलखण्ड मैदान में कहीं–कहीं अधिक रेतीली भूरी मिट्टी मिलती है । बांगर भू–भाग में ऊसर भी काफी बढ़े क्षेत्र में फैला है । क्षेत्रीय तथा स्थानीय रूप में कई तरह के ढाल मिलते हैं । यही कारण है कि काली, हिण्डन, पांडू आदि नदियाँ बहुत दूर तक प्रमुख नदियों के समानान्तर बहती

हैं । इस क्षेत्रीय विभिन्नता के कारण इस प्रदेश को चार प्रमुख भौतिक क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है –

(१) उत्तर में शिवालिक पर्वतीय प्रदेश – इस क्षेत्र को भाबर भी कहते हैं, जबकि गंगा–यमुना दोआब में स्थानीय रूप में इसे 'धार' कहते हैं ।

(२) गंगा–घाघरा दोआब

(३) गंगा–यमुना दोआब तथा

(४) यमुनापार मैदान–जो बहुत कटा–फटा और विदीर्ण क्षेत्र है ।

(ग) जलवायु :

यह उपार्द्र प्रदेश है, जो पँजाब मैदान की अपेक्षा अधिक आर्द्र है । वर्षा की मात्रा दक्षिण पश्चिम में ६० सेमी. से बढ़ती हुई, पूर्व तथा पूर्वोतर में १००–१२० सेमी. हो जाती है । इसी दिशा में ही वर्षा की अनिश्चितता का सूचकांक भी कम हो जाता है । लखनऊ में यह अनिश्चितता सूचकांक ३०.३ प्रतिशत है, जो घटकर इलाहाबाद में २८ प्रतिशत हो जाती है । लगभग ६५ प्रतिशत वर्षा बंगाल की खाड़ी से चलने वाले मानसूनी हवाओं द्वारा जून से अक्टूबर के मध्य होती है, जबकि मात्र ५ प्रतिशत वर्षा शीतकाल में पश्चिमी चक्रवातों से होती है । यह शीतकालीन वर्षा रबी की फसलों के लिए महत्त्वपूर्ण है । पंजाब के मैदान की अपेक्षा यहाँ की जलवायु कम तथामध्य गंगा–मैदान की अपेक्षा अधिक विषम है । हिमालय के समीपस्थ क्षेत्रों में मई–जून का अधिकतम तापमान ४०° से. से कम (गोण्डा, वरेलो, मेरठ) किन्तु दक्षिण (इलाहाबाद, कानपुर, आगरा) में इससे अधिक रहता है । इस समय यहाँ 'लू' का जोर होता है । मानसून के आगमन से पूर्व मार्च से मई के बीच थोड़ी वर्षा (सेमी.) हो जाती है । ग्रीष्मकाल की उष्णता दुःखदाई होती है, तथा 'लू' लहर के कारण अधिकतम तापमान उसी प्रकार असहनीय (लगभग ५०°c) हो जाता है,

जिस प्रकार जाड़े की शीतलहरी (लगभग ०°c) । शीतलहरी में तापमान कभी-कभी हिमांक से भी नीचे गिर जाता है ।

वर्षा के क्षेत्रीय वितरण में यहाँ काफी असमानता मिलती है । पश्चिमी भाग में वर्षा ६० सेमी. से भी कम होती है, जबकि हिमालय से सटी पट्टी में वर्षा १२० सेमी. से भी अधिक होती है । वर्षा की मात्रा दक्षिण से उत्तर की ओर एवं पश्चिम से पूरब की ओर क्रमशः बढ़ती जाती है । वर्षाकाल में सापेक्षिक आर्द्रता ६०% से अधिक रहती है जबकि जून में ५०% से कम रहती है ।

(घ) वनस्पति :

एक लम्बे समय से बसाव की प्रक्रिया एवं जनसंख्या दबाव बढ़ने के कारण कृषिगत भूमि की माँग-वृद्धि से इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पतियाँ समाप्त प्रायः है । यत्र-यत्र मानव रोपित एवं प्राकृतिक वन पाये जाते हैं । इस भूखण्ड के मात्र ६ प्रतिशत भू-भाग पर वन हैं, जबकि परिस्थिति की संतुलन के दृष्टिकोण से लगभग ३३ प्रतिशत भू-भाग पर वन होना चाहिए । अधिकांश वन तराई एवं भावर प्रदेश में हैं, जहाँ लखीमपुर (२७.५ प्रतिशत), पीलीभीत (३० प्रतिशत) एवं सहारनपुर, बिजनौर तथा बहराइच में (१३ प्रतिशत) अधिक भूमि पर वन हैं । अधिकांश वन उष्ण कटिबन्धीय आर्द्र, उपार्द्र तथा शुष्क प्रकार के मिलते हैं । साल सेमल, शीशम, बबूल, खैर, घासें, कांश आदि वनस्पतियाँ हैं । संप्रति सामाजिक-वानिकी-योजना के अंतर्गत सड़कों के किनारे एवं परती भूमि पर वृक्षारोपण द्वारा वनों का विस्तार किया जा रहा है ।

(ङ) जल-संसाधन :

यह भारत के घने बसे क्षेत्रों में से एक है, जहाँ जनसंख्या घनत्व प्रदेश (४७१ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) एवं राष्ट्र (२६७ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) दोनों के औसत से अधिक है, फिर भी घनत्व में कृषि, औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा

जलवायु के अनुसार क्षेत्रीय विषमता मिलती है । अधिकतम जनसंख्या कानपुर (६१५), आगरा (५६४), मेरठ (७०७) में है, जबकि न्यूनतम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्र तराई के जिले हैं । न्यूनतम जनसंख्या खीरी जिले की (२५४ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) है । यह जनसंख्या घनत्व पंजाब–मैदान की अपेक्षा अधिक एवं मध्य–गंगा–मैदान की अपेक्षा कम है । जनसंख्या वृद्धि दर भी यहाँ (२.७ प्रतिशत) राष्ट्र एवं प्रदेश के औसत क्रमशः २.७ एवं २.६ प्रतिशत वार्षिक से अधिक है । सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि दर गाजियावाद (३.८ प्रतिशत वार्षिक) की है, जबकि न्यूनतम जनसंख्या वृद्धिदर एटा (१.७ प्रतिशत) की । अपेक्षाकृत अधिक औद्योगीकरण के कारण नगरीकरण का स्तर भी (८ प्रतिशत) यहाँ मध्य–गंगा–मैदान की अपेक्षा अधिक है । सर्वाधिक नगरीकरण लखनऊ जनपद (५२ प्रतिशत) में हुआ है, जबकि न्यूनतम नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत सुल्तानपुर (मात्र ३ प्रतिशत) में है । उ. प्रदेश के पाँच विशाल नगरों में से चार–कानपुर (२१ लाख), लखनऊ (१७ लाख), आगरा (८ लाख) एवं इलाहाबाद (८.४ लाख) इसी प्रदेश में हैं । दिल्ली एवं कलकत्ता के मध्य गंगा के संपूर्ण मैदान में कानपुर (भारत में आठवाँ) सबसे बड़ा नगर एवं औद्योगिक (चमड़ा, सूती वस्त्र, चीनी रसायन, वनस्पति, वायुयान) एवं व्यापारिक केन्द्र है । गोमती तट पर स्थित लखनऊ उ. प्रदेश की राजधानी है एवं अपने शैक्षणिक सांस्कृतिक तथा फैलते उद्योगों एवं संस्थानों के लिए प्रसिद्ध है । लखनऊ एवं कानपुर एक औद्योगिक अक्ष के रूप में विकसित हुआ है । आगरा विभिन्न हस्तकलाओं, दरी, चमड़े एवं पत्थर के सामानों एवं पर्यटक केन्द्र (ताजमहल) के रूप में प्रसिद्ध है । इलाहाबाद गंगा–यमुना एवं भूमिगत सरस्वती के संगम पर बसा तीर्थ स्थान एवं शैक्षणिक केन्द्र है । इससे संलग्न नैनी औद्योगिक केन्द्र है ।

(च) कृषि :

उपजाऊ मिट्टी अपेक्षाकृत अधिक परिश्रमी किसान तथा मध्य–गंगा–मैदान की अपेक्षा सुविकसित नहर–जाल एवं परिवहन सुविधा तथा विपणन सुविधा के चलते इस प्रदेश का भारत के कृषि प्रदेशों में विशिष्ट स्थान रखता है । संपूर्ण क्षेत्रफल के लगभग ६८% पर यहाँ कृषि की जाती है, परंतु इसमें क्षेत्रीय विभिन्नता मिलती है । मथुरा एवं मुरादाबाद में यह प्रतिशत क्रमशः ८१.३ तथा ८०.३% है, जबकि खीरी में मात्र ५५.७% भू–भाग पर कृषि की जाती है । उल्लेखनीय है कि इस प्रदेश के प्रत्येक जिले में कृषिगत भूमि का प्रतिशत राष्ट्र (४३.५%) एवं उ. प्रदेश (५८.४%) के औसत से अधिक है । मात्र खीरी इसका अपवाद है । सिंचित क्षेत्रफल का प्रतिशत (लगभग ३५ प्रतिशत) यहाँ उ. प्रदेश तथा भारत के औसत क्रमशः २८.८ तथा २३.७ प्रतिशत से अधिक है, परंतु इसमें भी स्थानीय विभिन्नता मिलती है । मेरठ में सिंचित क्षेत्रफल का प्रतिशत ८७.१ है, जबकि खीरी एवं हमीरपुर में क्रमशः ६ ६ एवं १०.३ प्रतिशत भूमि सिंचित है । इस प्रदेश में विशेषकर दोआब में नहरों का जाल बिछा हुआ है एवं पाँच प्रमुख नहरी–तंत्र हैं –

(अ) पूर्वी यमुना नहर – यमुना से ताजेपुर से (सहारनपुर)

(ब) आगरा नहर – यमुना से ओखला से (दिल्ली)

(स) ऊपरी गंगा नहर – हरिद्वार के समीप से ।

(द) निचली गंगा नहर – नरोरा से (बुलन्द शहर)

(य) शारदा नहर – नैनीताल में बनवसा के समीप से निकलती है ।

पूर्वी यमुना तथा गंगा की दोनों नहरों से गंगा–यमुना दोआब, आगरा नहर से दिल्ली–आगरा की मध्य भूमि तथा शारदा नहर से दक्षिण पूर्व में लखनऊ की ओर शारदा एवं गंगा के दोआब तथा अवध–खण्ड में सिंचाई होती है । इसके अतिरिक्त शारदा–सागर–योजना (पीलीभीत) तथा रामगंगा बहुउद्देशीय

योजना से काफी सिंचाई होने लगी है । गंगा के मध्य मैदान की अपेक्षा यहाँ अधिक फसलें उगाई जाती हैं ।

कृषि उपजों में यहाँ खाद्यान्न फसलों की प्रधानता है (८५ प्रतिशत) एवं गंगा, तेलहन, नकदी फसलें हैं । इसी भौगोलिक प्रदेश के चलते उत्तर प्रदेश का गेहूं, दाल, तेलहन एवं गन्ना के उत्पादन में भारत का वृहत्तम स्थान है । व्यापारिक फसन्नों के क्षेत्रफल में विभिन्नता होने के कारण प्रति हेक्टेयर उत्पादन मूल्य में भी यहाँ विभिन्नता मिलती है । फिर भी यहाँ प्रति हेक्टेयर उत्पादकता मध्य–गंगा–मैदान की अपेक्षा अधिक है, परंतु पंजाब मैदान की अपेक्षा कम है । सर्वाधिक प्रति हेक्टेयर उत्पादन मूल्य मुजफ्फरपुर (४३०४ रूपए) जिले में जबकि न्यूनतम हमीरपुर जिले में (मात्र १०८२ रूपए) है । इस भौगोलिक प्रदेश के २२ जिलों में उत्पादकता का स्तर उत्तर प्रदेश के औसत उत्पादन मूल्य (२०५४ रु. प्रति हेक्टेयर) से अधिक है ।

(छ) औद्योगीकरण :

इस प्रदेश में धात्त्विक खनिजों का अभाव है एवं जो भी बड़े उद्योग यहाँ स्थित हैं, वे कृषि उत्पादों पर आधारित एवं उपभोक्ता वस्तु निर्मित करने वाले हैं । इनमें ऊनी एवं सूती वस्त्र (लखनऊ, सहारनपुर, कानपुर), प्लाइवुड (कानपुर, आगरा) तथा कृषि यन्त्र प्रमुख हैं । कानपुर, लखनऊ, आगरा, रामपुर तथा बरेली एवं गाजियाबाद जिलों को छोड़कर अन्य जिलों में फैक्टरी उद्योग की अपेक्षा घरेलू उद्योगों का अधिक महत्त्व है । कानपुर के अतिरिक्त हाथरस, मोदीनगर, रामपुर, सहारनपुर, आगरा एवं इलाहाबाद सूती वस्त्र के केन्द्र हैं । इसके अतिरिक्त छोटे पैमाने के उद्योग, जैसे धातु, विभिन्न इन्जीनियरिंग, फर्नीचर, प्लाईवुड, साइकिल, शीशा, रसायन, दियासलाई, उर्वरक, रबर, वैज्ञानिक यन्त्र, दवा आदि उद्योगों का भी विकास हुआ है । प्रतापगढ़ में ट्रैक्टर फैक्टरी एवं हरिद्वार में भारत हैबी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, भी कार्यरत है । घरेलू उद्योगों का विस्तार

तो प्रत्येक नगर एवं बड़े गाँवों में है जैसे हैंडलूम; धातु इन्जीनियरिंग, ताला (अलीगढ़) खेलकूद के सामान, शीशा (फिरोजाबाद में चूड़ियाँ), चीनी मिट्टी के बर्तन आदि अनेक उद्योग भी यहाँ विकसित हैं ।

गाजियाबाद, कानपुर, मेरठ, लखनऊ एवं आगरा में सर्वाधिक औद्योगीकरण हुआ है । जहाँ प्रति लाख जनसंख्या पर कारखानों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या क्रमशः १३६३ से अधिक है । उल्लेखनीय है कि. उ. प्रदेश का एवं राष्ट्र का यह औसत क्रमशः ४६६ तथा १०२५ है ।

गाजियाबाद जनपद में स्थित नोयेडा औद्योगिक विकास की धुरी बन रहा है । घरेलू उद्योग का सर्वाधिक विकास इस प्रदेश में आगरा, बिजनौर एवं लखनऊ में हुआ है, जहाँ प्रति लाख जनसंख्या पर घरेलू उद्योगों में लगे लोगों की संख्या क्रमशः २४८६, २२८४ एवं २११८ है, जबकि राष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश यहाँ तराई क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र रेल एवं सड़कों का घनत्व अधिक है ।

(ज) प्रादेशीकरण :

गंगा मैदान के अन्य भू-भागों की तरह इस प्रदेश के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विकास में गंगा नदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । अतः गंगा के सहारे ही इसे दो प्रमुख तथा अन्य तत्त्वों के आधार पर पाँच उप विभागों में बाँटते हैं ।

(१) गंगा के उत्तर का मैदान –

(अ) रुहेलखंड–मैदान, (ब) अवध–मैदान ।

(२) गंगा के दक्षिण का मैदान –

(स) गंगा–यमुना का ऊपरी दोआब

(द) गंगा–यमुना का निचला दोआब

(य) यमुना–पार का मैदान

गंगा के उत्तरी मैदानी भाग पर हिमालय की निकटता का प्रचुर प्रभाव है एवं यहाँ भाबर–तराई क्षेत्र है एवं वर्षा उत्तर से दक्षिण घटती जाती है । यहाँ वर्षा की मात्रा भी अधिक है एवं वनाच्छादन भी अधिक है तथा धान (चावल) की खेती अधिक महत्त्वपूर्ण है । गंगा के दक्षिण स्थित मैदानी भाग में उत्तर पट्टी को छोड़कर वर्षा पूर्व से पश्चिम एवं दक्षिण पश्चिम घटती जाती है । यहाँ दोआब प्रदेश में आर्यों का पहले एवं घना बसाव हुआ । बांगर भूमि अधिक होने से सिंचाई एवं फसलों में विविधता अधिक पायी जाती है एवं नगरीकरण तथा औद्योगीकरण भी उत्तर मैदान की अपेक्षा अधिक हुआ है ।[६२]

४.२.३ मध्य–गंगा–मैदान :

(क) स्थिति तथा विस्तार :

२४°.३०’ से २७°.५०’ उत्तरी अक्षाशों एवं ८१° ४७’ पूर्वी से ८७°५०’ पूर्वी देशान्तरों के बीच स्थित मध्य–गंगा–मैदान अपने सांस्कृतिक एवं आर्थिक महत्त्व के कारण भारत का हृदय स्थल कहा जाता है । लगभग १४४,४०६ वर्ग किमी. क्षेत्र पर फैला हुआ यह प्रदेश ऊपरी–गंगा–मैदान एवं निचले गंगा–मैदान के मध्य एक संक्रमण प्रदेश है । इसमें बिहार का संपूर्ण मैदानी भाग तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश सम्मिलित है । पश्चिम की ओर उपार्द्र मैदान एवं पूर्व की ओर अन्यार्द्र निचली घाटी तथा डेल्टाई प्रदेश के मध्य स्थित इस प्रदेश की संक्रमणशीलता यहाँ भौतिक संरचना, जलवायु, कृषिव्यवस्था, फसलों के प्रकार, जनसंख्या–घनत्व, रहन–सहन, लोकाचार, खान–पान, अर्थव्यवस्था, ग्राम–संरचना, आवास प्रतिरूप आदि में झलकती है । इस प्रदेश की पूर्वी सीमा पूर्णिया जिले की किशनगंज तहसील को छोड़कर बिहार, बंगाल की राज्य सीमा द्वारा तथा उत्तरी सीमा बिहार के चम्पारन जिले में शिवालिक के छोटे हिस्से को छोड़कर तराई तथा भाबर मैदान के बीच से गुजरती भारत–नेपाल सीमा द्वारा निर्धारित होती है । दक्षिण में १५० मी. समोच्च रेखा इसे विन्ध्य, रोहतासगढ़, छोटा–

नागपुर, पठार से अलग करती है, जिसके कारण मिर्जापुर जिले का अधिकांश तथा चकिया तहसील एवं रोहतास, गया, मुंगेर एवं भागलपुर जिले के दक्षिणी भाग तथा गोड्डा को छोड़कर संपूर्ण संथाल परगना इसमें सम्मिलित नहीं हैं । पूरब से पश्चिम इसकी अधिकतम लम्बाई ६०० किमी. है जबकि उत्तर दक्षिण चौड़ाई लगभग ३३६ किमी. है ।

(ख) भौतिक स्वरूप :

संरचना एवं उच्चावच :

उत्तर के शिवालिक खंड (३६४ वर्ग किमी.) तथा दक्षिणी पठारी भाग से निकली कुछ विलग एकांकी पहाड़ियों एवं ऊँचाईयों को छोड़कर संपूर्ण प्रदेश गंगा तथा उसकी सहायक नदी प्रणालियों (उत्तर से घाघरा, गंडक, कोसी तथा दक्षिण से आने वाली सोन, पुनपुन आदि प्रणालियों) द्वारा लाये गये पदार्थों से यह मैदान निर्मित है । सामान्यतया अधिकांश मैदान समुद्र तल से १०० मी. से कम ऊँचा है । पश्चिमी छोर पर इसकी ऊँचाई ३०५ से ११० मी., पूर्व में कोसी मैदान ३० मीटर से उत्तर में ७५ मीटर तक ऊँचा है । अवसादों की अधिकता के कारण नदियों का तल छिछला है एवं साधारण ढाल के कारण बाढ़ का पानी फैलना यहां सामान्य बात है । अतः प्रतिवर्ष इस भूभाग को बाढ़ की विभीषिका झेलनी पड़ती है । नदियाँ अपना मार्ग परिवर्तित करती रहती हैं, जिसमें कोसी एवं गण्डक उल्लेखनीय हैं । सम्प्रति इन पर बाँध बनाकर बाढ़ से मुक्ति पा ली गई है, फिर भी यह पर्याप्त नहीं है । पुरानी छाड़न झीलें एवं बड़े ताल (सरयू पार क्षेत्र में रामगढ़, चान्दी, बखिरा, चिल्लुआ लिखिया, बलिया में सुरहा ताल) आदि पाये जाते हैं ।

नदियों के प्राकृतिक तटबन्ध भाग जो कहीं–कहीं कंकड़ निर्मित या कठोर मिट्टी के कारण ऊँचे कगार के रूप में हैं, पर वाराणसी, मिर्जापुर, पटना जैसे बड़े नगर एवं अनेक बस्तियाँ बसी हुई है । ऊँचाई पर स्थिति के कारण ये

बाढ़ से सुरक्षित हैं । जल–प्रवाह–प्रणाली वृक्षाकार है एवं सहायक नदियाँ गंगा से न्यून कोण पर मिलती हैं एवं अपनी मैदानी–प्रवाह–क्षेत्र में अपनी सहायक नदियों के साथ जलोढ़ शंकु का निर्माण करती हैं, जिनके बीच में ऊँचे अन्तर्शंकु हैं । पर्वतों से निकटता, उच्चावच, ढाल, वर्षा की मात्रा या भूमि जल स्तर की असमानता, ताल, तलैया, झीलें आदि तत्त्वों के आधार पर इन प्रदेशों को दो मुख्य भौतिक प्रदेशों में बाँटते हैं एवं पुनःसूक्ष्म विशेषताओं के आधार पर उपविभागों में बाँटते हैं जो निम्नलिखित है –

(१) गंगा का उत्तरी मैदान – (अ) गंगा–घाघरा–द्वैपायन (ब) गंगा–गण्डक द्वैपायन (Intefluve) (स) गण्डक–कोसी–द्वैपायन (द) कोसी–महानदी द्वैपायन ।

(२) गंगा का दक्षिणी मैदान (य) कर्मनाशा के पश्चिम का भाग (र) कर्मनाशा सोन–द्वैपायन (ल) सोन की निचली घाटी (व) मगध–अंग मैदान ।

मध्य गंगा मैदान में जलोढ़ की औसत गहराई १३००–१४०० मीटर है, किन्तु इसमें प्रचुर क्षेत्रीय असमानता है । हिमालय के पास यह गहराई ८ से १० हजार मीटर है (गोरखपुर तथा रक्सौल–मोतीहारी क्षेत्र), परन्तु दक्षिण पठार के पास १५००–३००० मीटर से भी कम हो जाती है । नदियों के अपेक्षाकृत घने जाल–मार्ग अनिश्चित होने तथा ताल, तलैया एवं झीलों की अधिकता के कारण ऊपरी घाटी की अपेक्षा यहाँ खादर भूमि अधिक है एवं कंकड़ कम है, यद्यपि पश्चिमी भाग में गाजीपुर, बल्यिा, आजमगढ़ से होता हुआ फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़ जिलों के बांगर क्षेत्र (वार्षिक बाढ़ से ऊपर का पुराना जलोढ़ भाग) में ऊसर भूमि का एक सिलसिला मिलता है । शिवालिक से नीचे पर्वत पदीय भाग है, जिसे भावर कहते हैं उसके बाद १०–३० किमी. चौड़ी पूर्व पश्चिम पट्टी में तराई है, जो अधिक आर्द्र है एवं नदी नालों का घना जाल बिछा है ।

(ग) जलवायु एवं वनस्पति :

उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में प्रायद्वीप अग्रभूमि के मध्य स्थिति तथा प्राकृतिक अवरोधों के अभाव के कारण पूर्व से पश्चिम एवं पश्चिम से पूर्व पवन प्रवाह की निर्बाधता के कारण यह प्रदेश संक्रमण जलवायु वाला है, जिसके पश्चिम में अपेक्षाकृत शुष्क ऊपरी गंगा मैदान एवं पूर्व में अति आर्द्र निचला गंगा मैदान है । सामान्यतया वर्षा पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ती जाती है । यहाँ पश्चिम में १०० एवं पूर्व तथा उत्तर पूर्व में १५०–१६० सेमी. वर्षा होती है । वर्षा का लगभग ९० प्रतिशत जून से सितम्बर के मध्य वर्षा–काल में होती है । यही वर्षा धान की कृषि का आधार है, परन्तु शीतकाल में चक्रवाती वर्षा भी रबी की फसलों के लिए अति महत्त्वपूर्ण है । यहाँ वर्षा की अनिश्चितता एवं अनियमितता २३% है । अतः बाढ़ एवं सूखे का भय रहता है । वर्ष पर्यन्त कृषि के लिए पर्याप्त तापमान (पटना में जून का औसत ३२.९° से., जुलाई २९.७°, जनवरी १७.३° से. तथा गोरखपुर ३१.५°, २९.६° एवं १६.४°) मिलता है, परंतु सिंचाई की व्यवस्था आवश्यक है । पाले से नुकसान पहुँचना एक सामान्य बात है । यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति साल–वन थी, लेकिन हजारों वर्षों की कृषि प्रधान सभ्यता से यह समाप्त प्राय है एवं मानव द्वारा अध्यारोपित घासें तथा पीपल, बरगद, जामुन, महुआ, नीम, शीशम, वाँस, बबुल, आम तथा अन्य फलदार पौधे विशेषतया बस्तियों के पास पाये जाते हैं । दियारा भूमि में मूंज, कांस, झाऊ आदि तथा दलदलों में नरकट आदि पाये जाते हैं । चम्पारन एवं सरयूपार मैदान में कुछ वन पाये जाते हैं । पश्चिम चम्पारन में १५.७ तथा गोरखपुर में ७.७% भू भाग पर वन है ।

(घ) जनसंसाधन :

यह विश्व के घने बसे भूभागों में से एक है जहाँ जनसंख्या घनत्व ५०० व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से अधिक है । अपेक्षाकृत कुछ छोटे क्षेत्रों में तो

जनसंख्या घनत्व १००० व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. से भी अधिक है । कोसी घाटी के पश्चिम स्थित उत्तर बिहार मैदान तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग एवं सरयूपार मैदान, गंगा–घाघरा दोआब का पूर्वी भाग एवं गंगा सोन द्वैपायन क्षेत्र अपेक्षाकृत घने आबाद क्षेत्र हैं । जिलों के अनुसार सर्वाधिक घनत्व (प्रति वर्ग किमी.) पटना (६५१), दरभंगा (८८०), वैशाली (८१६), सिवान (८०१) एवं सारन (७८३) है, जबकि न्यून जनसंख्या घनत्व वाले जिले रोहतास (३२८) एवं औरंगाबाद (३७४) है । उल्लेखनीय है कि बिहार एवं उत्तर प्रदेश का जनसंख्या घनत्व क्रमशः ४६७ तथा ४७१ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. है । नगरीकरण का स्तर भी औद्योगीकरण के अभाव में बहुत ही कम (मात्र ८%) है परंतु इसमें भी क्षेत्रीय विषमता मिलती है । अधिकतम नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत पटना (३७%) एवं वाराणसी (२७%) में है जबकि न्यूनतम नगरीयकरण सीवान (४%), मधुबनी (३%) एवं समस्तीपुर (३%) में है । विश्व का प्राचीनतम नगर वाराणसी इसी प्रदेश में स्थित है । वाराणसी, गोरखपुर, फैजाबाद, जौनपुर, पटना, भागलपुर, दरभंगा, मुंगेर, कटिहार, छपरा एवं पूर्निया एक लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगर हैं । जनसंख्या वृद्धि दर भी सामान्यतया उच्च (२.५% वार्षिक) है । सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि दर पटना (३.५%), वाराणसी (३.३%) जिलो में है, जबकि न्यूनतम जनसंख्या वृद्धिदर भोजपुर मात्र (२.०%) में है ।

आर्थिक तंत्र :

(ङ) कृषि :

निर्वाहक स्तरीय कृषि तंत्र होने से यहाँ का अर्थतंत्र अल्पविकसित व असंतुलित है एवं अतिवर्षण तथा अवर्षण कृषि को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख कारक है । यहाँ लगभग ७०% भूमि पर कृषि की जाती है, परंतु स्थानीय विभिन्नताओं के चलते यहाँ क्षेत्रीय विषमता मिलती है । गाजीपुर में ७८.५%, गोरखपुर में ७७.६%, बस्ती में ७६.८% पूर्वी चम्पारन में ८७.७%

वैशाली में ८३.६%, भूभाग पर कृषि की जाती है, जबकि गया एवं कटिहार में मात्र ३८.१ तथा ३४.०% भूभाग पर कृषि की जाती है । ६० प्रतिशत भूभाग पर खाद्यान्नों की कृषि की जाती है, जो अधिक ग्रामीण जनसंख्या पर भार एवं पिछड़ेपन का सूचक है । औद्योगिक फसलों में गन्ना (५%), तेलहन (१.५%) पाट, तम्बाकू, लालमिर्च प्रमुख है । हरित क्रान्ति के चलते अधिक उत्पादक बीज, उर्वरक, सिंचाई, क्रय–विक्रय, परिवहन आदि की बढ़ती सुविधाओं के कारण चावल, गेहूं, मक्का आदि भी यहाँ व्यापारिक फसलें हो गई है । फिर भी, प्रति हैक्टेयर उत्पादन में यह क्षेत्र, पंजाब अथवा ऊपरी गंगा मैदान की अपेक्षा पीछे है । पंजाब में चावल, गेहूं का प्रति हेक्टेयर उत्पादन में यह क्षेत्र, पंजाब अथवा ऊपरी गंगा मैदान की अपेक्षा पीछे है । पंजाब में चावल, गेहूं का प्रति हैक्टेयर उत्पादन क्रमशः २८.५, २७.४ क्विंटल/हैक्टेयर है जबकि बिहार में मात्र ६.० एवं १३.० क्विटंल । नगरों के चर्तुदिक् माँग बढ़ने के कारण कृषि के अनुषंगी व्यवसाय (दुग्ध पशुपालन, मुर्गी पालन) यहाँ विकसित हो रहे हैं एवं कृषि में व्यापारीकरण तथा विविधता बढ़ रही है । पश्चिम से पूर्व की ओर वर्षा की मात्रा बढ़ने के साथ–साथ धान की कृषि की प्रमुखता बढ़ती जाती है । गेहूं, मक्का तथा दलहन अन्य फसलें हैं । सिंचाई के साधनों नहरों एवं नलकूपों का तेजी से विस्तार हुआ है, फिर भी ५०% से अधिक कृषि वर्षा पर निर्भर है । दक्षिणी बिहार के मैदान में सोन की नहर (गया, पटना, रोहतास एवं भोजपुर जिले) उत्तरी बिहार में त्रिवेणी की नहरें, पूर्व उत्तरी प्रदेश में शारदा की शाखा नहरें, गण्डक नहरें दोहरीघाट तथा अन्य पम्प नहरें प्रमुख हैं ।

(च) औद्योगीकरण :

इस प्रदेश में आधारभूत खनिजों के अभाव के कारण भारी उद्योगों का सर्वथा अभाव है । उद्योगों के नाम पर कृषि आधारित उद्योग ही अत्र–तत्र बिखरे हैं । यह क्षेत्र राष्ट्रीय औसत से औद्योगीकरण में काफी पीछे है । चीनी

उद्योग के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्योग का सिलसिला यहाँ नहीं मिलता है । चीनी उद्योग भी रुग्णावस्था में है क्योंकि यहाँ चीनी मिलें अनार्थिक हैं । वे आकार में अति लघु तथा जर्जर मशीनों से युक्त हैं । अधिकांश चीनी मिलें बन्दी के कगार पर हैं । वाराणसी (रसायन एवं डीजल इन्जन), गोरखपुर (रेल्वे वर्कशाप), बरौनी (पेट्रोलियम शोधन), जमालपुर (रेल्वे वर्कशाप) प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है । चीनी बनाने के कारखाने गोरखपुर, देवरिया, बस्ती, सारन, सीतापुर, गोण्डा, फैजाबाद, भागलपुर, आजमगढ़, बलिया एवं गाजीपुर में हैं । सूती वस्त्र की मिलें वाराणसी, मिर्जापुर, पटना, मऊनाथभंजन, रसड़ा, बक्सर, अकबरपुर, टांडा, बिहार, शरीफ, मधुबनी एवं खलीलाबाद में हैं । जूट की मिलें कटिहार, समस्तीपुर एवं सहजनवाँ (गोरखपुर) में स्थापित हैं । कृषि पर आधारित अन्य उद्योगों में चावल, आटा, तेल, दाल आदि है । विभिन्न घरेलू उद्योग (सूती–ऊनी–रेशमी वस्त्र, धातु, बर्तन, गुड़–खाड़सारी, बीड़ी, फर्नीचर) विभिन्न नगरों तथा कस्बों में पाया जाते हैं । यातायात की सुविधाओं तथा विद्युत आपूर्ति (मिर्जापुर में रिहन्द बाँध, उत्तरी बिहार में कोसी एवं गण्डक बाँध तथा छोटा नागपुर से दामोदर घाटी, परियोजना के चलते जल विद्युत तथा ओवरा से तापीय विद्युत) और प्रत्येक जिले में औद्योगिक विकास केन्द्रों के खुलने एवं सरकारी प्रोत्साहन से इस क्षेत्र में औद्योगीकरण की संभावनाएँ बढ़ी हैं ।

(छ) परिवहन :

परिवहन के दृष्टिकोण से यह विकसित नहीं है । यद्यपि बाहरी क्षेत्रों से यह राज्यमार्गों तथा रेलमार्ग द्वारा जुड़ा है, परन्तु गाँवों की सेवा केन्द्रों से अभिगम्यता स्तर बहुत ही कम है, जो विकास में मुख्य बाधक तत्त्व है । रेलों का जाल काफी घना है, परन्तु सड़कों तथा पुलों के निर्माण की आवश्यकता है । वाराणसी तथा पटना वायुमार्गों के केन्द्र हैं जो दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई, काठमाण्डू से संबंधित हैं ।[६३]

(ज) प्रादेशीकरण :

भौतिक विभागों एवं विविधताओं तथा सांस्कृतिक एवं आर्थिक पहलुओं, जैसे कृषि–विकास–स्तर, फसल साहचर्य, नगरीकरण आदि को ध्यान में रखते हुए निम्न मुख्य एवं उप विभागों में इस प्रदेश को विभक्त किया जा सकता है ।

(१) गंगा का उत्तरी–मध्य–मैदान :

(अ) गंगा–घाघरा–दोआब, (ब) सरयूपार–मैदान, (स) मिथिला–मैदान, (द) कोसी–मैदान

(२) गंगा का दक्षिणी–मध्य–मैदान :

(य) गंगा–सोन–द्वैपायन (र) मगध–अङ्ग–मैदान

४.२.४ गंगा का निचला–मैदान :

(क) स्थिति एवं विस्तार :

भारत पाकिस्तान विभाजन के पूर्व गंगा के निचले मैदान के अंतर्गत गंगा के पूरे डेल्टाई क्षेत्र को शामिल किया जाता था । परन्तु विभाजन के बाद इसकी सीमा सिकुड़ कर पश्चिमी बंगाल तक रह गई । संप्रति इसका अक्षांशीय विस्तार २१°, २५' से २६° ५०' उ. तक एवं देशान्तरीय विस्तार ८६° ३०' से ८९° ५८' पूर्वी देशान्तर तक है, जिसका संपूर्ण क्षेत्रफल ४६, ५८० वर्ग किमी. है । प्रशासनिक दृष्टिकोण से इसके अंतर्गत संपूर्ण पश्चिमी बंगाल तथा बिहार के पूर्णिया जिले की किसनगंज तहसील शामिल है । यद्यपि संपूर्ण क्षेत्र डेल्टाई है, फिर भी वास्तविक डेल्टा प्रदेश गारो–राजमहल गैप से दक्षिण लगभग दो तिहाई क्षेत्र में फैला माना जाता है । गंगा की दो प्रमुख शाखाओं (भागीरथी एवं पद्मा) की शाखाओं–प्रशाखाओं से यह क्षेत्र पूरा अच्छादित है । ये नदियाँ अपने मार्ग में अक्सर परिवर्तन करती रही हैं । तिस्ता १७८७ से गंगा के बदले अब ब्रह्मपुत्र में गिरती है । डेल्टा का अधिकांश भाग अब बंगला देश में पड़ता है ।

यह मैदान दक्षिण में छोटा नागपुर–पठार एवं उत्तर में दार्जिलिंग हिमालय से १५० मीटर की समोच्च रेखा द्वारा अलग किया जाता है ।

(ख) भौतिक स्वरूप :

दार्जिलिंग के पर्वतीय क्षेत्र से सटे भूभाग एवं दक्षिण में छोटा नागपुर पठार के सटे कुछ भागों को छोड़कर लगभग संपूर्ण भाग मैदानी है, जिसकी सामान्यतः औसत समुद्र तल से ऊँचाई ५० मीटर है । विसंगतियों को छोड़कर मैदान का ढाल उत्तर से दक्षिण को है । यह संपूर्ण प्रदेश अत्यंत उपजाऊ घनी–गहरी बिछी प्राचीन एवं नई गंगोढ़ मिट्टी से अच्छादित है, किन्तु निचला भाग अभी भी दलदली है, जिसे सुन्दर वन डेल्टा कहा जाता है । उत्तर से दक्षिण, पश्चिम से पूर्व एवं दक्षिण पूर्व ढालू इस प्रदेश जैसा धीमा ढाल अन्यत्र कम मिलता है । मैदान में केवल बिल (Bils) अर्थात् दलदलों, नदियों के छाड़नों, झीलों एवं ऊँचे कगारों का जाल बिछा मिलता है । लघु स्तर पर इस मैदान में निम्न प्राकृतिक उप–विभाग मिलते हैं ।

(१) उत्तरी मैदान :

इस मैदान का विस्तार उत्तर में दार्जिलिंग हिमालय के दक्षिणी भाग से लेकर दक्षिण में गंगा नदी तक है । इसमें कूच बिहार, दार्जिलिंग एवं जलपाईगुड़ी जिले एवं तराई क्षेत्र आते हैं । इस भाग को 'द्वार' (Duar) कहा जाता है । इसके दक्षिण कोसी–महानन्दा एवं संकोश नदियों के मध्य स्थित पुराने जलोढ़ क्षेत्र को वारिन्द क्षेत्र कहते हैं ।

(२) वास्तविक डेल्टाई प्रदेश :

इसके डेल्टाई भाग को विभिन्न भागों में कई नामों से अभिहित किया जाता है । वस्तुतः इसके अंतर्गत उत्तरी भाग में (नादिया तथा मुर्शिदाबाद जिलों) मोरिबन्द डेल्टा (Moribund Delta), दक्षिण में सुन्दर वन का कार्यशील डेल्टा

(Active Delta) एवं पश्चिम में वीरभूमि, बर्दवान, मिदनापुर जिलों के पूर्वी भागों तथा हुगली एवं हावड़ा जिलों में परिपक्व डेल्टा (Maturc Delta) है । मोरीबन्द डेल्टा ऐसा क्षेत्र है, जिसकी नदियाँ या तो समाप्त हो गई हैं या समाप्त होती जा रही हैं । पहले से नदियाँ गंगा के जल को विभाजित करके समुद्र तक बहती थी, किन्तु उनमें बहुत कम जल प्रवाहित होता है । इन नदियों की धारा तलहटी में पानी के रुकने से दलबल बन गये हैं, जिनमें बहुतों को सूखाकर धान की खेती की जाती है । इसका कारण यह है कि कई कारणों से गंगा के पूर्व में खिसक जाने से (१७८७) गंगा ब्रह्मपुत्र का बड़ा कार्यशील डेल्टा पूर्व की ओर खिसक गया है । यहीं कारण है कि भागीरथी में, जो नीचे हुगली कहलाती है, जल कम हो जाने से कलकत्ता नगर एवं बन्दरगाह को खतरा उत्पन्न हो गया है एवं गंगा पर फरक्का बाँध बनाकर इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया गया । कार्यशील डेल्टा क्षेत्र में अधिकांश भूमि २० मीटर से नीची है एवं ७ मीटर ऊँचा समुद्री ज्वार भी कलकत्ते तक के क्षेत्र को जल प्लावित कर सकता है ।

(३) राढ़ मैदान (**Rarh Plain**)

डेल्टा के पश्चिम में अपेक्षाकृत उच्च क्षेत्र को राढ़ मैदान कहा जाता है । राढ़ मैदान में मयूराक्षी, दामोदर, द्वारकेश्वर, कसई एवं सुवर्णरेखा आदि प्रमुख नदियाँ प्रवाहित होती हैं ।

(ग) जलवायु :

समद्र तटवर्ती स्थिति के कारण यह सम जलवायु वाला प्रदेश है एवं ऊपरी तथा मध्य मैदान की अपेक्षा अधिक आर्द्र एवं अधिक वर्षा (औसत १५० सेमी. से अधिक एवं अधिकतम ४०० सेमी.) वाला है । जून के प्रथम सप्ताह से यहाँ मानसूनी वर्षा प्रारंभ हो जाती है एवं अक्टूबर तक रहती है । वर्षा उत्तर तथा पूर्व–दक्षिण पूर्व की ओर बढ़ती जाती है । कूच बिहार के

उत्तर ३०० सेमी. से अधिक वर्षा होती है, जबकि बर्दवान के दक्षिण वर्षा की औसत मात्रा १५० सेमी. होती है । मानसून से पहले नार्वेस्टर (काल वैशाखी) से मार्च मई के बीच प्रचुर वर्षा हो जाती है, जो धान एवं जूट की फसल के लिए लाभप्रद होती है । इस प्रदेश में वर्षा की अनिश्चितता तथा अनियमितता कम है, अतः सर्वत्र घनी वनस्पति एवं वर्ष भर में धान की तीन तीन फसलों के लिए पर्याप्त वर्षा हो जाती है । फिर भी बाढ़ की विभीषिका से प्रायः यहाँ फसलें मारी जाती है । सम जलवायु के कारण यहाँ तापान्तर अपेक्षाकृत कम है एवं अप्रैल से अक्टूबर तक ५° से. से भी कम तापान्तर मिलता है । शीतकाल में औसत तापमान १६° से. से २१° से. तक रहता है, जो सामान्यतः उत्तर से दक्षिण की ओर बढ़ता है । आसनसोल एवं सागर द्वीप में मई का औसत तापमान (जो सर्वाधिक गर्म माह है) क्रमशः ३२° तथा २६.७° है ।

(घ) वनस्पति :

अति गहन कृषि एवं अत्यधिक जनसंख्या भार के कारण इस प्रदेश की प्राकृतिक वनस्पति समाप्त प्राय है । वन के दृष्टिकोण से उत्तर का पर्वतीय प्रदेश ही महत्त्वपूर्ण हैं, जहाँ लगभग २०% भूभाग पर वन का विस्तार है । वनस्पतियों के स्वरूप में यहाँ स्थानीय विभिन्नता मिलती है । दक्षिणी भाग में समुद्रतटीय सुन्दरी तथा ज्वारीय वन, उत्तर में आर्द्र उष्ण कटिबन्धीय वन एवं पश्चिमी भाग में उष्ण कटिबन्धीय पतझड़ी वन पाये जाते हैं । बाँस, नारियल, केले, आम आदि वृक्षों के झुरमुट बस्तियों के समीप सर्वत्र मिलते हैं । जलपाईगुड़ी में २७.६, बाँकुडा में २०.४, पुरुलिया में १४.०% भूभाग पर वन पाये जाते हैं, जिनका औसत पश्चिमी बंगाल के औसत (१८.५%) से अधिक है । शेष जिलों में वनों का प्रतिशत औसत से कम है ।

(ङ) मिट्टी :

संरचना, उच्चावच, डेल्टाई जमाव की नवीनता एवं प्राचीनता के आधार पर इस क्षेत्र की मिट्टियों का चार प्रकारों में विभाजन किया जा सकता है । प्रथम लेटराइट मिट्टी – इसका प्रसार पश्चिमी पठारी भाग से सटे पाया जाता है । द्वितीय लाल मिट्टी–वस्तुतः यह लेटराइटी जलोढ़ है एवं राढ़ मैदान तथा वारिन्द क्षेत्र में इसका विस्तार है । तृतीय तराई मिट्टी–उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र से सटे यह पाई जाती है, जिसमें रवे बड़े होते हैं । चतुर्थ समुद्र तटीय–मिट्टी – कार्यशील डेल्टाई एवं इससे सटे क्षेत्र में यह मिट्टी पाई जाती है, जिसे काँप मिट्टी भी कहा जाता है ।

(च) खनिज संसाधन :

इस प्रदेश के औद्योगिक विकास के लिए समीपस्थ पर्याप्त खनिज संसाधन आधार है । खनिजों में यहाँ कोयला (रानीगंज) प्रमुख है, किन्तु 'द्वार' क्षेत्र में हेमेटाइट लौह अयस्क, ताँबा, डोलोमाइट आदि एवं अन्यत्र चूना पत्थर (पुरुलिया, माल्दा), चीनी मिट्टी (वीरभूमि एवं बाँकुडा, आदि) प्राप्त होती है ।

(छ) अर्थतंत्र कृषि :

इस प्रदेश का अर्थतंत्र ऊपरी एवं मध्य गंगा मैदान की अपेक्षा अधिक विकसित एवं संतुलित है । लगभग ६२% भूमि पर कृषि होती है, एवं ५७% कार्यशील जनसंख्या कृषि में संलग्न है । कृषिगत भूमि के प्रतिशत में स्थानीय अर्थतंत्र के अनुरूप विभिन्नता मिलती है । पश्चिमी दिनाजपुर में ६४.६, कुच बिहार ८१.५, नादिया ७५.२, माल्दा में ७५.६ प्रतिशत भूभाग पर कृषि होती है, जबकि पुरुलिया में मात्र ४३ प्रतिशत भाग पर कृषि होती है ।

चावल :

यहाँ प्रमुख फसल चावल है, जो कुल फसली भूमि के ८५ प्रतिशत तथा वास्तविक बोई गई भूमि के ७५% पर उगाई जाती है । आमन एवं आँस सर्वप्रमुख चावल है, तथा बोरो मात्र एक प्रतिशत भूमि पर उगाया जाता है ।

जूट :

जूट यहाँ दूसरी प्रमुख फसल है । जूट उद्योग के लिये आधार है, जिसका उत्पादन कुल फसलगत भूमि के ४.३% भाग पर होता है । जूट के प्रधान उत्पादक क्षेत्र निचले डेल्टा तथा द्वार क्षेत्र है । दालें, तिलहन, तम्बाकू (कुच–बिहार) गन्ना प्रमुख फसलें हैं ।

फसल उत्पादन के अतिरिक्त मछली पालन यहाँ कृषि का महत्त्वपूर्ण अनुषङ्गी व्यवसाय है । जलप्लावित भूमि होने के कारण पोखरों, तालाबों, झीलों, धान के खेतों, नदियों तथा समुद्र में सर्वत्र काफी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं । परिणामतः चावल एवं मछली यहाँ के लोगों का प्रमुख भोजन है ।

(ज) औद्योगीकरण :

शक्ति के साधन (कोयला), स्वच्छ जल, श्रम की प्रचुरता, छोटा नागपुर पठार से समीपता (खनिज भण्डार), समुद्र से निकटता एवं रेल मार्गों एवं सड़क मार्गो द्वारा देश के विभिन्न भागों से सुसम्बद्धता के कारण तथा औद्योगिक पूर्वारंभ के कारण कलकत्ता महानगर भारत का बृहत्तम औद्योगिक व्यापारिक नगर है । यहाँ जूट, सूती, रेशमी वस्त्र, लौह इस्पात, अन्य धातु इन्जीनियरिंग, मोटर, रेल के डिब्बे, कृषि यंत्र, रसायन, कागज, काँच, चमड़ा एवं रबर, खाद्य तम्बाकू आदि विविध उद्योग विकसित हैं । कलकत्ता, दावड़ा, रिसड़ा, टाटा नगर श्रीरामपुर, टीटागढ़, हुगली आदि कई प्रमुखतया औद्योगिक नगर हैं । नीचे हुगली तट पर हल्दिया बन्दरगाह को विकसित किया गया है, जहाँ पेट्रोलियम शोधन तथा अन्य उद्योग विकसित हो रहे हैं । दूसरे बड़े औद्योगिक क्षेत्र

(दुर्गापुर–आसनसोल इस्पात–बर्दवान) में धातु तथा रसायनिक उद्योगों की प्रधानता है । आसनसोल में पहले से ही कुल्टी बर्नपुर में लौह इस्पात का कारखाना था । चितरंजन में रेल के इंजन बनते हैं । उत्तरी बंगाल मैदान में लकड़ी, तम्बाकू, चाय आदि प्रमुख उद्योग हैं तथा मुर्शिदाबाद रेशम उद्योग के लिए प्रसिद्ध है ।

इस क्षेत्र में प्रतिलाख जनसंख्या पर कारखानों में कार्यशील लोगों की संख्या १६२० है जो देश के औसत (१०२५) से काफी अधिक है । हावड़ा एवं चौबीस परगना सर्वाधिक औद्योगिक जिले हैं, जहाँ यह संख्या क्रमशः ६५२६ एवं ५०२३ है ।

(झ) जनसंसाधन :

संप्रति जनसंख्या का औसत घनत्व ७६६ व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. है, उल्लेखनीय है कि यह राष्ट्र में सर्वोच्च तथा औसत (२६७) से लगभग तीन गुना है, जो भारी जनसंख्या भार का द्योतक है । यहाँ ५ जनपदों का घनत्व ८०० प्रति व्यक्ति से अधिक है जबकि अन्य ६ जनपदों में ४०० से ८०० के मध्य है । स्पष्टतः यहाँ जनसंख्या का केन्द्रीयकरण अधिक हुआ है । आगामी वर्षों में यहाँ जनसंख्या दबाव बढ़ने की और संभावनाएँ हैं, क्योंकि जनसंख्या वृद्धि दर तीव्र है (२.४% वार्षिक) जो राष्ट्र के औसत वृद्धि दर से अधिक है । कलकत्ता की जनसंख्या वृद्धि दर तो ५% वार्षिक है इसी तरह नादिया में ३.४%, पश्चिमी दिनाजपुर में २.९% एवं चौबीस परगना में २.४% जनसंख्या वृद्धि दर है । अपेक्षाकृत कम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में वार्षिक जनसंख्या वृद्धि दर न्यून है, जैसे पुरुलिया १.६% एवं बांकुडा १.७%, वीरभूमि १.८ ।

इस भौगोलिक प्रदेश में नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत (२६%) राष्ट्र के औसत नगरीय जनसंख्या के प्रतिशत (२४%) से अधिक है, जो उच्च नगरीकरण

का द्योतक है । न्यूनतम नगरीकरण कूचबिहार (७%), माल्दा (५%), बांकुडा (८%), वीरभूमि (८%) में हुआ है । हुगली नदी के डेल्टा में स्थित कलकत्ता देश का सबसे बड़ा नगर (११८ लाख) है ।

(ञ) प्रादेशीकरण :

प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक तथा आर्थिक भूदृश्यों की स्थानीय विभिन्नता को दृष्टिगत रखते हुए इस मैदान को तीन प्रमुख एवं आठ उप विभागों में बाँट सकते है –

(१) उत्तरी बंगाल मैदान (क) द्वार क्षेत्र (ख) वारिन्द क्षेत्र

(२) वास्तविक डेल्टा मैदान (ग) मोरीवन्द डेल्टा प्रदेश (घ) पुराना डेल्टा प्रदेश (ड) सक्रिय डेल्टा प्रदेश

(३) राढ़ मैदान (च) वीरभूमि आसनसोल राढ़, (छ) बांकुड़ा राढ़ (ज) मिदनापुर राढ़ ।[६४]

४.२.५ उत्तर प्रदेश हिमालय (उत्तराखण्ड)

(क) स्थिति एवं विस्तार :

उत्तर प्रदेश हिमालय का अक्षांशीय विस्तार २८°५ से ३१°२५ उत्तर तक एवं देशान्तरीय विस्तार ७७°.४५' से ८१° पूर्वी देशान्तर तक है, जिसका संपूर्ण क्षेत्रफल लगभग ४६४८५ वर्ग किमी. है । उत्तर प्रदेश के शीर्ष पर स्थित तिब्बत तक विस्तृत इस हिमालय प्रदेश को गढ़वाल कुमायूँ हिमालय प्रदेश नाम से भी अभिहित किया जाता है । प्रशासनिक दृष्टिकोण से इसके अंतर्गत पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, गढ़वाल, चमोली, टेहरी–गढ़वाल, उत्तर काशी, देहरादून, नैनीताल (किच्छा एवं हल्दानी तहसीलों को छोड़कर) जिले आते हैं । अब इसे एक राज्य, उत्तराखण्ड के रूप में मान्यता मिल गयी है ।

(ख) भौतिक स्वरूप :

इस प्रदेश में हिमालय पर्वत अत्यधिक विषम धरातल वाला है, जिसमें अनेक ऊँची चोटियाँ, गहरे खड्डे, लटकती घाटियाँ, अनगिनत नदियाँ, विषम ढाल आदि द्रष्टव्य होते हैं । प्रदेश का हृदय क्षेत्र ऊँची चोटियों, बर्फाच्छादित पहाड़ियों, हिमनदों, हिमगह्वरों, गहरे खड्डों वाला है । इस उबड–खाबड़ पर्वतीय क्षेत्र की औसत ऊँचाई ७५० से ७००० मीटर तक है एवं दक्षिण की ओर तीव्र ढाल है, जबकि उत्तरी भाग में अपेक्षाकृत सामान्य ढाल है । गंगा, यमुना, रामगंगा तथा काली प्रमुख नदी प्रणालियाँ हैं । उच्चावच, ढाल एवं अन्य भौतिक स्वरूपों के आधार पर इसे तीन मुख्य भौतिक प्रदेशों में बाँटा जा सकता है तथा सूक्ष्म भिन्नताओं के आधार पर उपविभाजन किये जा सकते हैं ।

(१) हिमाद्रि या उच्च हिमालयी श्रेणियाँ

(२) मध्य हिमालय

(३) शिवालिक या बाह्य हिमालय

(१) हिमाद्रि या उच्च हिमालयी श्रेणियाँ :

इसे सामान्यतया दो वर्गों में क्रमशः पर्वतीय सिलसिले एवं हिमाद्रि घाटियों में विभक्त किया जा सकता है । हिमाद्रि पर्वत श्रेणियाँ लगभग ५० किमी. चौड़ी हैं, जिनकी ऊँचाई ४८०० से ६००० मी. के बीच है । इनमें से बन्दर पूंछ (६३१५ मी.), गंगोत्तरी (६६१४ मी.), केदारनाथ (६६४० मी.), चौखम्भा (७१६८ मी.), दुनागिरी (७७६६ मी.), नन्दा देवी (७८१७ मी.), दुनागिरी (७०६६ मी.), त्रिशुल (७१२० मी.), नन्दकोट (६८६७ मी.) आदि बर्फाच्छादित ऊँचे शिखर हैं । इन शिखरों को भागीरथी, अलकनन्दा एवं धवली गंगा की खड्डनुमा नदी घाटियाँ अलग करती हैं । यह भाग रवेदार चट्टानों से निर्मित है तथा पर्वत शृंखला गारनेट, क्वार्टजाइट तथा नीस से निर्मित है ।

(२) मध्य हिमालय :

इसे दो उपवर्गों में रखा जा सकता है, प्रथम हिमांचल पर्वत क्रम एवं द्वितीय हिमांचल घाटियाँ । मध्य हिमालय श्रेणियाँ १५०० से २७०० मी. की ऊँचाई में एवं लगभग ७५ किमी. चौड़ाई में विस्तृत हैं एवं दून घाटी तथा शिवालिक श्रेणियों से सीमान्त भ्रंश (Boundry tghrust) द्वारा अलग होती हैं । इन पर्वतों में अनेक खड़े ढालवाली नदी घाटियाँ (५०० से १२०० मी.) हैं । इन्हीं में कुमायू क्षेत्र में नैनीताल जिले में कई झीलों की एक पट्टी मिलती है – नैनीताल तथा उसके पूर्व भीम ताल, नौकुचिया ताल, सात ताल, आदि झीलों का एक समूह है । हिमालय तथा शिवालिक के मध्य संरचनात्मक दून घाटियाँ हैं ।

(३) शिवालिक या बाह्य हिमालय :

शिवालिक की औसत ऊँचाई ७५० से १२०० मीटर के मध्य है । इसकी चट्टानी संरचना अन्य भागों से भिन्न है । इसके ढाल दक्षिण में खड़े तथा उत्तर में दून घाटी की ओर साधारण हैं । दून घाटियाँ औसत मैदानों की अपेक्षा ३५० मीटर ऊँची है । देहरादून, कोष्डीदून, चौखम्भा पट्टी, कोटा आदि घाटियों में देहरादून (३५ x २५ मीटर) वृहत्तम एवं सर्वाधिक घनी जनसंख्या से आबाद है । इस प्रदेश में गंगा, यमुना एवं काली की प्रमुख नदी प्रणालिया हैं । हिमोढ़ अभाव, अनेक झीलें, तटीय चबूतरे, अधः कर्तित विसर्प आदि इस प्रदेश की विशेषताएँ हैं ।

(ग) जलवायु :

धरातलीय विभिन्नता, सूर्यमुखी दिशा, ढालों का स्वरूप आदि के कारण इस प्रदेश की जलवायु में स्थानीय विभिन्नता अधिक है । घाटियों, ढालों तथा पर्वतीय भागों की जलवायु में पर्याप्त विभिन्नता है । ३०० से ६०० मी. की ऊँचाई तक यहाँ ऊष्ण उपोष्ण कटिबन्धीय जलवायु पाई जाती है, जहाँ औसत तापमान १६° से. रहता है । ६०० से १८०० मी. ऊँचाई वाले क्षेत्रों में

शीतोष्ण जलवायु पाई जाती है, जहाँ औसत तापमान १४° से. रहता है । इसी तरह १८०० से २४०० मी. के बीच शीत शीतोष्ण जलवायु पाई जाती है, जहाँ औसत तापमान १०.५° से. रहता है । पुनः २४०० से ३००० मी. के बीच शीत जलवायु पाई जाती है, जहाँ औसत तापमान ३.५° से. रहता है । ३००० से ४००० मी. के बीच अत्युच्च पर्वतीय जलवायु (अल्पाइन) पाई जाती है, जबकि ४०० से ४८०० मी. के बीच हिमानी जलवायु पाई जाती है, जहाँ १० महीने तापमान शून्य से कम रहता है । इसके ऊपरी प्रदेश में वर्ष पर्यन्त हिमाच्छादन रहता है एवं किसी भी प्रकार की वनस्पति नहीं मिलती । ऊँचाई के साथ वर्षा की मात्रा भी घटती जाती है । वर्षा का अधिकांश जून–सितम्बर के बीच मानसून से होती है एवं पश्चिमी चक्रवातों से नवम्बर से मई तक मध्य एवं ऊपरी ऊँचे भागों में ३ से ५ मी. तक बर्फ पड़ती है । हिमाद्रि पार ढालों पर कम वर्षा (नीति में मानसूनी काल में मात्र १४ सेमी.) होती है ।

(घ) वनस्पति :

जलवायु के अनुरूप यहाँ वनस्पतियों के वितरण में भी विभिन्नता मिलती है । उष्ण एवं उपोष्ण क्षेत्रों में पतझड़ी वन पाये जाते हैं, जिसमें साखू, सेमल, खैर, शीशम तथा बाँस उल्लेखनीय हैं । शीतोष्ण ढालों एवं घाटियों में चीड़ आदि और ऊपरी भागों में फर, स्प्रुस, साइप्रस, देवदार, बर्च आदि कोणधारी वन मिलते हैं । अल्पाइन क्षेत्र में घासें, झाड़–झंखाड़ आदि मिलते हैं । यहाँ उत्तरकाशी, गढ़वाल एवं अल्मोड़ा जिलों में क्रमशः ८७.६, ८२.५, ७३.३ तथा ६४.१% भाग पर वन पाये जाते हैं । सबसे कम पिथौरागढ़ जिले में (मात्र ३८%) वन पाया जाता है ।

(ङ) मिट्टी :

उच्चावच एवं जलवायु की स्थानीय विभिन्नता के अनुरूप मिट्टियों के प्रकार में विभिन्नता स्वाभाविक है । भागीरथी तथा अलकनन्दा की ऊपरी घाटियों में

हिमोढ़, जलोढ़ मिश्रित मिट्टियाँ मिलती हैं, जबकि निचली घाटियों एवं ढालों पर सिल्ट या चीका एवं ढाल उपजाऊ प्रधान दोमट मिट्टियाँ भी फलदार पौधों तथा आलू की खेती के लिए अनुकूल है । जहाँ हिमोढ़ जमाव मिलते हैं, वहाँ उपजाऊ मिट्टी पर सघन वन है ।

(च) कृषि :

इस प्रदेश की बहुसंख्यक जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है, परन्तु विषम उच्चावच के कारण कृषि योग्य भूमि का प्रतिशत कम है एवं उत्पदकता का स्तर भी न्यून है । अधिकतम कृषिगत भूमि का प्रतिशत (२३.८) नैनीताल में है, जबकि उत्तर काशी जिले में मात्र ३.२% भूमि कृषि योग्य है । इसी तरह अल्मोड़ा में २१.६, टेहरीगढ़वाल में १७.८, गढ़वाल में १८.१, पिथौरागढ़ में ६.२ एवं चमोली में ५.६% भूमि कृषि योग्य है । सीढ़ीनुमा खेत एवं गुल पद्धति द्वारा सिंचाई यहाँ की प्रमुख कृषि विशेषताएँ हैं । ऊपर से नीचे घाटियों में तीन तरह की फसलें दृष्टिगत होती है ।

प्रथम ऊपरी कातिल या खील भूमि में मडुआ, कोदो, झनझोरा, चुआ आदि की कृषि होती है ।

द्वितीय सबसे नीचे तलाव क्षेत्र में दो फसलें उगती है एवं धान प्रमुख फसल हैं तथा टांड़ भूमि में छिटवाँ धान होता है । गेहूं सामान्यतया २४०० से ३६०० मी. क्षेत्र में उगता है तथा उसके नीचे धान प्रमुख फसल है । जौ, जई, गन्ना, आलू तथा फल अन्य महत्त्वपूर्ण फसलें हैं । दून घाटी में चाय की भी कृषि की जाती है । मंसूरी–चम्बल, गाजा पहाड़ी क्षेत्र में एक पट्टीनुमा क्षेत्र में सरकारी प्रयास से फल कृषि में विशेषीकरण हो गया है । घाटियों में एवं अन्य ऊपरी भागों में, जहाँ कृषि द्वारा जीविकोपार्जन नहीं संभव है, भेड़–बकरी पालन प्रमुख है एवं इससे संबंधित दूध, ऊन एवं अन्य सम्बद्ध उद्योगों में लोग

लगे हैं । भोटिया, गदी एवं गुजर जनजातियों के आर्थिक जीवन का यही आधार है ।

(छ) खनिज एवं औद्योगीकरण :

यह क्षेत्र खनिज पदार्थो के संदर्भ में गंगा मैदान एवं पंजाब मैदान की अपेक्षा सम्पन्न है । चूने पत्थर (देहरादून, गढ़वाल, अलमोड़ा, टेहरी गढ़वाल, चमोली, नैनीताल) गन्धक (देहरादून तथा गढ़वाल) फासफेट (गढ़वाल एवं देहरादून) मेग्नेसाइट (देवलधर–अलमोड़ा), खडिया मिट्टी तथा ताँबा का यहां भण्डार है । शक्ति के साधन (जल विद्युत) की संभावना की प्रचुरता को देखते हुए यहाँ औद्योगिक विकास की पर्याप्त संभावनाएँ हैं । इसके अतिरिक्त वन एवं कृषि (फल) आधारित उद्योगों के विकास की पर्याप्त संभावनाएँ भी हैं । सम्प्रति यहाँ टोकरी बनाना, लकड़ी चीरना, वार्निस, प्लाईवुड, तारपीन तेल से संबंधित उद्योग प्रचलित हैं । देहरादून में स्थानीय भेड़ उत्पादित ऊन पर एक ऊनी वस्त्र निर्माण का कारखाना स्थापित है एवं सूती वस्त्र का कारखाना भी स्थापित है । भीमताल में HMT का एक कारखाना है ।

औद्योगिक विकास के लिये पर्याप्त संसाधन आधार होते हुए भी यह क्षेत्र राष्ट्र एवं प्रदेश के औसत से भी औद्योगीकरण में काफी पीछे है । प्रति लाख जनसंख्या पर कारखानों में लगे कुल लोगों की संख्या इस प्रदेश में लगभग १०० है, जबकि उ. प्रदेश तथा राष्ट्र का यह औसत क्रमशः ४०६ एवं १०२५ है । प्रति लाख जन–संख्या पर कारखानों में लगे हुये व्यक्तियों की सर्वाधिक संख्या नैनीताल में (५८६) है, जबकि न्यूनतम संख्या पिथौरागढ़ (८) में है । इसी तरह प्रतिलाख जनसंख्या पर घरेलू उद्योगों में लगे लोगों की औसत संख्या यहाँ ७७० है, जबकि उ. प्रदेश का एवं राष्ट्र का यह औसत क्रमशः १२७७ एवं १३३६ है । इसतरह आर्थिक विकास के दृष्टिकोण से यह काफी पीछे है । औद्योगीकरण में सबसे बड़ा अवरोध बीहड़ उच्चावच एवं अवस्थापना का अभाव

है । जल ऊर्जा का दोहन नहीं हो सका है । मनेरी–भाफीं वही एकमात्र उल्लेखनीय जल विद्युत् उत्पादन परियोजना है । अलकनन्दा पर श्रीनगर में एक ३०० मेगावाट की परियोजना निर्माणाधीन है । सबसे महत्त्व की टिहरी–योजना के पूर्ण होने पर यह क्षेत्र ऊर्जा सम्पन्न हो जायेगा परन्तु परिवहन की कठिनाई बनी रहेगी । अस्तु, औद्योगिक विकास की संभावनायें भी अति सीमित हैं ।

(ज) परिवहन एवं पर्यटन :

विषम पर्वतीय उच्चावच के कारण परिवहन के साधनों का विस्तार यहाँ सीमित है । रेल–मार्ग का विस्तार मात्र पर्वतपदीय भागों में है । हरिद्वार से ऋषिकेश एवं ऋषिकेश से देहरादून तक ही रेलमार्ग है । संप्रति सड़कों का तीव्र विस्तार हो रहा है, जिसे स्थानीय लोग एवं पर्यावरणविद् पारिस्थितिकीय संतुलन के लिए खतरे के रूप में देख रहे हैं । तिब्बत से सटी सीमा होने के कारण सड़कों का निर्माण यहाँ बड़े पैमाने पर हो रहा है तथा लगभग सभी तीर्थ एवं पर्यटन स्थल सड़क मार्ग द्वारा सम्बद्ध हो गये हैं । बद्रीनाथ, केदारनाथ, यमुनोत्री, गंगोत्री, श्रीनगर, पिथौरागढ़, नैनीताल, अल्मोड़ा यहाँ प्रमुख पर्यटन स्थल हैं । वस्तुतः पर्यटन में इस क्षेत्र को बढ़ावा देकर प्रादेशिक नियोजन करना समीचीन है ।

(झ) जन–संसाधन :

विषम उच्चावच एवं जीवनोपयोगी सुविधाओं के निम्न स्तर के कारण यहाँ जनसंख्या का घनत्व (९० व्यक्ति प्र. वर्ग किमी.) राष्ट्र एवं प्रदेश की उपेक्षा (क्रमशः २२० एवं ३७७ व्यक्ति प्र. वर्ग किमी.) बहुत ही कम है । परन्तु यह जनसंख्या घनत्व यहाँ के भूमिवहन क्षमता के अनुपात में अधिक है । इस जनसंख्या घनत्व के स्थानीय वितरण में भी काफी विषमता है । पर्वतपदीय भागों एवं परिवहन गम्य क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व अधिक है, जबकि बीहड़ पर्वतीय एवं अगम्य क्षेत्रों में जनसंख्या घनत्व कम है । जिलों के अनुसार सर्वाधिक घनत्व

नैनीताल में (६७) है, जबकि न्यूनतम जनसंख्या घनत्व उत्तर काशी (मात्र २४ व्यक्ति प्रति वर्ग किमी.) में है ।

यद्यपि जनसंख्या घनत्व के दृष्टिकोण से यह क्षेत्र कम घना आबाद है, परन्तु जनसंख्या की औसत वार्षिक वृद्धि दर (२.७% वार्षिक) उ. प्रदेश एवं राष्ट्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर में भी काफी भिन्नता है । नैनीताल में जनसंख्या वृद्धि दर सर्वाधिक (४.३%) वार्षिक जो उ. प्रदेश में सर्वाधिक है) जबकि गढ़वाल जिले में जनसंख्या वृद्धि दर इस भौगोलिक प्रदेश के जिले में ही नहीं वरन् उ. प्र. में न्यूनतम (१.३% वार्षिक) है । इस प्रदेश में नगरीकरण का स्तर (मात्र १५% नगरीय जनसंख्या) राष्ट्र एवं उत्तर प्रदेश के औसतनगरीय जनसंख्या (क्रमशः २४ एवं १८%) से कम है, परंतु विभिन्न जिलों में नगरीकरण के स्तर में काफी अन्तर मिलता है । देहरादून की ४६ प्रतिशत जनसंख्या नगरीय है, जबकि टेहरी गढ़वाल में यह प्रतिशत मात्र ४ है ।

(ञ) प्रादेशिक विभाजन :

उपर्युक्त भौतिक एवं सांस्कृतिक तत्त्वों की क्षेत्रीय विषमता को ध्यान में रखते हुये इस प्रदेश को २ मुख्य एवं ६ उप भागों में विभाजित किया जा सकता है । (ए) गढ़वाल, (बी) कूमायूँ । प्रत्येक में -

(१) हिमाद्रि – (अ) हिमाद्रि श्रेणियाँ, (ब) हिमाद्रि घाटियाँ

(२) हिमांचल – (स) टोंस–यमुना बेसिन (द) भागीरथी अलकनन्दा (ग) रामगंगा–कोशी बेसिन (र) सरयू–काली बेसिन

(३) शिवालिक – (ल) यमुना–गंगा क्षेत्र (व) गंगा–रामगंगा क्षेत्र (श) रामगंगा काली क्षेत्र ।[६५]

४.३ गङ्गावतरणम् सम्बन्धी द्वितीय भौगोलिक मत :

४.३.१ गंगा–प्रवाह–प्रणाली :

गंगा प्रवाह प्रणाली का विस्तार हिमालय के पर्वतीय भाग से लेकर मैदान और दक्षिण के पठारी भाग तक है । यह भारत के सबसे बड़े भाग को अपवाहित करने वाली नदी–प्रणाली है । जैसा कि पहले बताया जा चुका है इस प्रणाली का विकास हिमालय के उत्थान के बाद हुआ । इस प्रणाली में हिमालय पूर्व की अनेक नदियों की सहभागिता विशेष उल्लेखनीय है । प्रायद्वीप भाग से आने वाली चम्बल, केन, बेतवा, सिन्ध, सोन आदि नदियाँ पठारी भाग को पारकर गंगा प्रणाली में समाहित होती हैं ।

इस प्रणाली में गंगा प्रमुख नदी है जो मध्य हिमालय के गंगोत्री से निकलकर हरिद्वार के पास मैदान में प्रवेश करती है और अपनी लम्बी मैदानी यात्रा के बाद बंगाल की खाड़ी में मिलती है । इस प्रणाली की हिमालय से आने वाली नदियों में यमुना, रामगंगा, गोमती, घाघरा, गण्डक और कोसी प्रमुख हैं । पठार से आने वाली सहायक नदियों में चम्बल, बेतवा, केन, सिन्ध और सोन प्रमुख हैं । इस प्रणाली का अपवाह–क्षेत्र लगभग १८ लाख वर्ग किमी. भू–भाग पर फैला है । अपनी लगभग २०७१ किमी. लम्बी यात्रा में गंगा अनेक विशाल नदियों का जल अपवाहित करती है । गंगोत्री से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैला इसका अपवाह क्षेत्र भारत की सबसे बड़ी जल–प्रवाह–प्रणाली है जिसमें यमुना, घाघरा, बड़ी गण्डक, कोसी, सोन एवं चम्बल जैसी बड़ी सहायक नदियाँ सम्मिलित हैं । इस जल–प्रवाह–प्रणाली का विस्तार उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल और मध्य प्रदेश में है । भारत का यह सबसे बड़ा घना बसा भाग है क्योंकि मिट्टी और जल की सुलभता के कारण कई हजार वर्षों से यह सबसे आकर्षक क्षेत्र रहा है । इस विशाल मैदान के अभ्युदय में गंगा–प्रणाली का सबसे बड़ा हाथ रहा है । आज भी इसके कारण भूमि की उर्वरता बनी रहती है ।

इस क्षेत्र को इसकी गरिमा के अनुकूल भारत का हृदयस्थल कहा जाता है । वहीं भारत की संस्कृति का सर्वाधिक विकास और लालन–पालन हुआ । गंगा की प्रवाह–प्रणाली इसलिए भी अनूठी है कि केवल इसी प्रणाली में हिमालय की नई नदियाँ और पठार की पुरानी नदियाँ एक साथ प्रवाहित होती है । इलाहाबाद में यमुना के संगम के बाद इसमें घाघरा, गण्डक, कोसी और सोन का संगम होता है । हरिद्वार से ऊपर गंगा का रूप मैदानी भाग से सर्वथा भिन्न है । हिमनद से निकलने वाली अलकनन्दा और भागीरथी गंगा को जन्म देती हैं । अपने विशाल जल–ग्रहण–क्षेत्र के कारण गंगा में बाढ़ का प्रकोप बना रहता है । गंगा और उसकी सहायक नदियों से निकलने वाली नहरों के (१) गंगा–अपवाह–क्षेत्र, (२) ब्रह्मपुत्र–अपवाह–क्षेत्र, (३) दामोदर–अपवाह–क्षेत्र, (४) सिन्धु–अपवाह–क्षेत्र, (५) आन्तरिक–अपवाह एवं साबरमती अपवाह–क्षेत्र, (६) नर्मदा–ताप्ती–अपवाह–क्षेत्र, (७) महानदी–अपवाह–क्षेत्र, (८) गोदावरी–अपवाह –क्षेत्र, (९) कृष्णा–अपवाह–क्षेत्र, (१०) पेन्नार–अपवाह–क्षेत्र, (११) कावेरी–अपवाह –क्षेत्र, (१२) पश्चिमी–अपवाह–क्षेत्र, (१३) बेंगाई–अपवाह–क्षेत्र ।

कारण इनमें शुष्क–काल में जल का अभाव हो जाता है, लेकिन एक विशाल क्षेत्र में सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है । यही कारण है कि आन्तरिक जल यातायात विकसित नहीं हो पाया है । अब इस ओर सरकार का ध्यान गया है । कलकत्ता से इलाहाबाद तक और कुछ सहायक नदियों पर जल यातायात विकसित किया जा रहा है । गंगा के जल की पवित्रता इसके रासायनिक गुण के कारण युगों से सर्वज्ञात है । लेकिन अब नगरों के गन्दे जल के कारण इसका जल प्रदूषित हो गया है जिसे स्वच्छ रखने का अभियान शुरू किया गया है ।[६६]

४.३.२ ऊपरी गंगा नहर :

ऊपरी गंगा नहर हरिद्वार के पास गंगा नदी से निकाली गई है । यह १८५६ में बनकर तैयार हुई । इस नहर के मार्ग में ऊबड़–खाबड़ भूमि और अनेक नालों की उपस्थिति के कारण इसे विशेष योजना के तहत बनाया गया है । कहीं–कहीं यह नालों के नीचे और सिंचाई की व्यवस्था बनाकर बिजली भी उत्पन्न की जाती है । इससे गंगा–यमुना दोआब की ७ लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है । इसकी शाखाओं सहित लम्बाई ५६४० किमी. है जिससे सहारनपुर, मुजफ्फर नगर, बुलन्दशहर, मेरठ, अलीगढ़, मथुरा, एटा, इटावा, कानपुर, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और फतेहपुर जनपदों में सिंचाई की जाती है । इस प्रणाली की प्रमुख नहर ३४० किमी. लम्बी है । इस नहर से आगरा–नहर और निचली–गंगा–नहर को भी अतिरिक्त जल प्रदान किया जाता है । इसकी प्रमुख शाखाओं में अनूप शहर शाखा, इटावा शाखा और माठा शाखा विशेष उल्लेखनीय हैं ।

४.३.३ निचली–गंगा–नहर :

यह नहर गंगा नदी के दायें किनारे से नरौरा नामक स्थान से निकाली गई है । इसकी दो प्रधान शाखायें हैं । पहली शाखा को कानपुर शाखा और दूसरी शाखा को इटावा शाखा के रूप में जाना जाता है । शाखाओं सहित इस प्रणाली की कुल लम्बाई ८८०० किमी. है । यह १८७८ में बनकर तैयार हुई । इससे दोआब के निचले भाग की लगभग ५ लाख हैक्टेयर भूमि की सिंचाई की जाती है । प्रमुख सिंचित जनपदों में मैनपुरी, अलीगढ़, बुलन्दशहर, एटा, फर्रुखाबाद, कानपुर, फतेहपुर और इलाहाबाद के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

गंगा का मैदान :

भारत के प्राकृतिक प्रखण्डों में गंगा का मैदान अनेक दृष्टिकोण से अति विशिष्ट प्रखण्ड है । भारत के संपूर्ण ऐतिहासिक जीवन में यह सांस्कृतिक क्रिया–कलाप का केन्द्र रहा है, जिसके कारण इसे भारत का हृदयस्थल या मध्य देश कहा जाता है । लगभग ३,७५,००० वर्ग किलोमीटर पर विस्तृत इसका विस्तार २१°२५' से ३०° १७' उत्तरी अक्षांश और ७७° ३०' से ६०° ००' पूर्वी देशान्तर के मध्य है । यह प्रखण्ड उत्तर प्रदेश, बिहार और दक्षिण पठार के मध्य स्थित गंगा का मैदान यमुना से लेकर बंगला देश तक फैला है । गंगा और उसकी सहायक नदियों के जलोढ़ से रचित इस विशाल मैदान का धरातल समतल और कम ढालू, कहीं उत्तर–पश्चिम से निकलने वाली नदियाँ–यमुना, गंगा, गोमती, घाघरा, गण्डक, कोसी आदि एवं पठार से आने वाली चम्बल, बेतवा, सोन आदि के जलोढ़ का निक्षेपण इसे निरन्तर उर्वर बनाये रखता है, जिसके कारण भारत का यह सबसे घनाबसा भू–क्षेत्र है । ग्रामीण और नगरीय अधिवासों का सबसे बड़ा जमघट यहाँ देखने को मिलता है क्योंकि कृषि और उद्योग के साथ यहां व्यापारिक क्रियाकलाप भी अति विकसित अवस्था में हैं । इस प्रखण्ड को प्रकृति का सबसे अधिक वरदान प्राप्त है । यहाँ कई हजार वर्ष से मानव क्रियाकलाप का सिलसिला बना हुआ है । आवागमन की सर्वाधिक सुविधा के कारण संपूर्ण मैदान एक सांस्कृतिक इकाई बन गया है ।

गंगा मैदान को इसकी भौतिक–सांस्कृतिक विशिष्टता के आधार पर तीन उप विभागों में बाँटा गया है यथा (१) ऊपरी गंगा मैदान, (२) मध्यवर्ती गंगा और (३) निचला गंगा मैदान । इन तीनों उप विभागों के बँटवारे में भौतिक पक्ष की तुलना में सांस्कृतिक पक्ष अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि संपूर्ण मैदान का धरातल, जलवायु, मिट्टी और प्राकृतिक वनस्पति में कोई खास अन्तर नहीं है । केवल वर्षा का वितरण पूरब से पश्चिम बढ़ने पर क्रमशः घटता जाता है ।

४.३.४ ऊपरी गंगा मैदान :

(क) स्थिति और विस्तार :

गंगा–मैदान का यह पश्चिमी भाग है जो उत्तर में हिमालय, दक्षिण में पठार, पश्चिम में यमुना नदी और पूरब में १०० मीटर की सम्मोच्च रेखा से आबद्ध है । यह २५° १५' से ३०° १७' उत्तर–आक्षांश एवं ७३° ३' से ८२° २१' पूर्व देशान्तर के मध्य फैला है । इसप्रकार ऊपरी गंगा मैदान लगभग – १४६००० वर्ग किमी. क्षेत्र पर विस्तृत है जिसके अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ३३ जनपदों–सहारनपुर, मुजफ्फरपुर, बिजनौर, मुरादाबाद, नैनीताल, गाजियाबाद, बुलंदशहर, अलीगढ़, बदायूं, बरेली, पीलीभीत, लखीमपुर, शाहजहाँपुर, एटा, मथुरा, मैनपुरी, फतेहगढ़, हरदोई, सीतापुर, बहराइच, गोण्डा, बाराबंकी, लखनऊ, इलाहाबाद, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर और फैजाबाद के पूर्ण या अधिकांश भाग समाहित हैं । इसकी पूरब–पश्चिम अधिकतम लम्बाई ५५० किमी. और उत्तर–दक्षिण चौड़ाई लगभग ३८० किमी. है ।[६७]

(ख) भौतिक परिवेश :

इसका धरातल समतल मैदान है, जिसकी औसत प्रवणता प्रति किमी. २४ सेमी. है । मैदान का ढाल उत्तर–प. से दक्षिण–पूर्व की ओर है । इस मैदान का निर्माण गंगा और उसकी सहायक नदियों ने अपने जलोढ़ से किया है जो दक्षिणी भाग में १५०० मीटर से उत्तर में ८००० मीटर मोटी परत में निक्षेपित हैं । निक्षेपण के स्वभाग के अनुसार इसे भाँवर, तराई, बाँगर तथा खादर में विभक्त किया जाता है । हिमालय के पादप भाग में भाँवर, उसके दक्षिण में तराई और विस्तृत भाग में बाँगर का विस्तार है । खादर, नदियों के बाढ़ क्षेत्र में प्रतिवर्ष निक्षेपित होने वाले जलोढ़ को कहते हैं । इसप्रकार धरातलीय विशेषता के दृष्टिकोण से ऊपरीगंगा मैदान को पर्वतपदीय भाग, गंगा–घाघरा दोआब, गंगा–यमुना । दोआब और यमुनापार आदि लघु खण्डों में विभक्त किया

जाता है । इसमें बाँगर क्षेत्र सबसे महत्त्वपूर्ण है जहाँ सघन जनसंख्या पायी जाती है ।

इस प्रखण्ड में गंगा, यमुना, गोमती और घाघरा तथा इनकी शाखाएँ प्रवाहित होती हैं । नदियों के तल पर अधिक निक्षेप और ऊपरी भाग में अधिक वर्षा के कारण इनमें प्रतिवर्ष बाढ़ जल के फैलाव के कारण धन–जन की बहुत हानि होती है । इन नदियों के धारा में परिवर्तन भी होता रहा है जिसके कारण गोखुर झील या ताल तथापरित्यक्त धारा यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं जो वर्षाकाल में जलप्लावन करते हैं । इस प्रखण्ड की जलवायु की विशेषता में वर्षा का असमान और अनिश्चित वितरण विशेष उल्लेखनीय हैं । ग्रीष्मकाल में उष्णता और लू, वर्षाकाल में बाढ़ और सूखा तथा शरद काल में शीतलहरी के कारण यह प्रखण्ड मानसूनी जलवायु की विशेषताओं को प्रकट करता है । पूर्वी भाग की तुलना में पश्चिमी भाग उष्ण और शुष्क रहता है । कभी–कभी तापमान ४०° सेण्टीग्रेड से ऊपर चला जाता है जबकि औसत वर्षा ७५ सेमी. से आगे नहीं पढ़ पाती । इसके विपरीत पूर्वी भाग में वर्षा १२० सेमी. प्राप्त होती है । यहाँ कृषि का आधार वर्षा है, लेकिन अब सिंचाई की सुविधा से सूखा का प्रभाव कम किया जा रहा है ।

यह प्रखंड उपजाऊ दोमट मिट्टी के लिए प्रसिद्ध है लेकिन जगह–जगह बलुई, क्षारीय और काँप मिट्टियाँ पाई जाती हैं । मिट्टी की पर्याप्त मोटाई और उसमें जैव खनिज अंश की उपस्थिति के कारण इतने लम्बे अर्से के प्रयोग के बावजूद यह उपजाऊ है । मिट्टी की नमी लम्बे अर्से तक बनी रहती है जिसके कारण साधारण सिंचाई के द्वारा शुष्क काल में रबी की गहन कृषि की जाती है । इस प्रखण्ड में धरातलीय जल के साथ अपार भूमिगत जल की उपलब्ध है जिसका विविध प्रयोग मानव समाज ﹡ता है । यहाँ वानस्पतिक वातावरण अब कुछ ही क्षेत्रों पर विद्यमान है क्योंकि कृषि के लिए उसका बड़े पैमाने पर

विनाश कर दिया गया है । जंगल की कमी से पर्यावरण के असंतुलन की समस्या इस प्रखण्ड की प्रमुख विशेषता है ।

(ग) आर्थिक सांस्कृतिक स्वरूप :

उर्वर भूमि, पर्याप्त जल और लम्बी अवधि से मानव सम्पर्क के कारण यह प्रखण्ड अति सघन बसा भाग है । यहाँ प्रमुख आर्थिक कर्म कृषि है जिसमें तीन चौथाई जनसंख्या संलग्न है । कुल भूमि का ६५% भाग कृषिरत है और कहीं–कहीं ७०% से अधिक भूमि कृषि के अंतर्गत है । कृषि की गहनता सिंचाई सुविधा से निर्धारित होती है । पश्चिमी भाग में नहर और नलकूपों से सिंचाई की जाती है जिसका प्रचलन बहुत पुराना है । जबकि पूर्वी भाग में कुआँ और नकलूपों की प्रधानता है । यहाँ गंगा यमुना और गोमती से निकाली गई नहरों का जल विस्तृत भाग को घेरे हुए हैं । औसतन कुल बोई गई भूमि की आधा से अधिक सिंचित है । यहाँ खरीफ और रबी की दो फसलें उगाई जाती हैं जिनमें धान, मक्का, गन्ना, गेहूँ, चना, तिलहन और दालों की प्रधानता है । खाद्यान्नों की प्रधानता वाले इस क्षेत्र में गन्ना, कपास और पटसन प्रमुख मुद्रादायिनी फसलें हैं । गन्ने की कृषि धान गेहूँ की तरह महत्त्वपूर्ण है । कृषि की गहनता का कारण पूरब से सिंचाई सुविधा अधिक है । आर्थिक क्रिया–कलाप का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष औद्योगिक विकास है । गंगा के ऊपरी भाग में मध्यवर्ती भाग की तुलना में अधिक औद्योगिक विकास हुआ है । यहाँ गृह उद्योग के अतिरिक्त बृहद् पैमाने के उद्योगों में चीनी उद्योग सबसे अधिक विस्तृत है । यहाँ ५० से अधिक चीनी मिलें हैं । इसके अतिरिक्त वस्त्र, मशीनरी, कागज़, अल्कोहल, शीशा, चमड़ा, तम्बाकू, दियासलाई, इलेक्ट्रानिक आदि उद्योग विशेष महत्त्वपूर्ण हैं । छोटे स्थानों पर अनेक कृषि आधारित उद्योग भी पाये जाते हैं । जैसे चावल, आटा, दाल, तेल, वनस्पति घी, बेकरी, बिस्कुट आदि । बड़े उद्योगों का सबसे अधिक केन्द्रीकरण कानपुर, लखनऊ, आगरा,

अलीगढ़, बरेली, मुरादाबाद, गाजियाबाद, मेरठ, रुड़की, इलाहाबाद और सहारनपुर में पाया जाता है । कानपुर और गाजियाबाद न केवल इस प्रखण्ड के महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र हैं अपितु इनका महत्त्वपूर्ण स्थान राष्ट्रीय स्तर पर भी है । इनमें से सबसे अधिक औद्योगिक विविधता पाई जाती है । औद्योगिक और कृषिगत कार्यों के सम्पादन में आवागमन की भूमिका भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । इस प्रखण्ड में रेल और सड़कों का गहन जाल पाया जाता है, लेकिन सघन जनसंख्या के कारण यहाँ सवारी और माल का दबाव रेल पर बहुत अधिक है ।

कृषि, यातायात, उद्योग, समतल धरातल, भूमिगत जल और ऐतिहासिक विरासत के कारण यहाँ ग्रामीण जनसंख्या का वितरण बहुत सघन है । यहाँ का औसत जन घनत्व ४८० व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है और कहीं–कहीं यह एक हजार से अधिक है । इस प्रखण्ड में सात करोड़ से अधिक लोग निवास करते हैं, जो उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या की आधी से अधिक है । यहाँ की ग्रामीण जनसंख्या बड़े–बड़े गाँवों में रहती है । जिसका वितरण लगभग समान है । इस प्रखण्ड की एक चौथाई जनसंख्या नगरों में निवास करती है । यहाँ २०० से अधिक नगर हैं जिसमें १५ प्रथम वर्ग के हैं । स्पष्ट है कि ऊपरी गंगा का मैदान का सांस्कृतिक विकास पर्याप्त हुआ है । फिर भी सघन जनसंख्या के कारण एक बड़ी जनसंख्या का जीवन स्तर सामान्य है ।

४.३.५ मध्य गंगा मैदान :

(क) स्थिति एवं विस्तार :

मध्य गंगा का मैदान ऊपरी गंगा मैदान से लेकर बिहार की पूर्वी सीमा तक (२४° ३०’ से २७° ५०’ उत्तरी आक्षांश एवं ८१°.४७’ से ८७°.५’ से ८७°.५’ पू. देशान्तर) लगभग १५,००० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है । यहाँ भी उत्तरी सीमा पर दक्षिणी पठार विस्तृत है । इस प्रखण्ड में पूर्वी उत्तर

प्रदेश के १० जिलों के पूर्ण और प. जिलों की कुछ तहसीलें तथा उत्तरी बिहार का क्षेत्र समाहित है । मध्य गंगा मैदान का भौगोलिक व्यक्तित्व इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के कारण अधिक गौरवशाली है, क्योंकि ईसा पूर्व से यह भारत के सांस्कृतिक क्रियाकलाप का केन्द्र रहा है । अयोध्या के सूर्यवंशी, पाटलीपुत्र के गुप्त एवं मौर्यवंशी राजा तथा बुद्ध और महाबीर जैसे आध्यात्मिक महापुरुष इसी भूमि की देन हैं, जिन्होंने पूरे देश को प्रभावित किया । उर्वराभूमि, जलस्रोत और पर्याप्त वर्षा के कारण यहाँ जनसंख्या का घनत्व बहुत अधिक है ।[६८]

(ख) भौतिक–परिवेश :

नदियों के जलोढ़ से निर्मित मध्यवर्ती मैदान एक समतल मैदान है जिसका ढाल पश्चिम से पूरब है । सामान्य ऊँचाई समुद्र सतह से १०० मीटर है लेकिन कुछ भागों, विशेषकर उत्तरी एवं दक्षिणी छोर पर यह बढ़कर १५० मीटर हो जाती है । ढाल की प्रवणता बहुत कम है जिसके कारण वर्षा जल धीरे–धीरे प्रवाहित होता है । यहाँ भी भावर और तराई का प्रसार उत्तरी छोर पर है । आन्तरिक भाग में बाँगर या उच्च भाग और खादर का विस्तार है । नदियों द्वारा परित्यक्त मार्ग एवं ताल तथा यत्र–तत्र फैले बालू के धूस यहाँ के धरातल में स्थानीय परिवर्तन ला देते हैं । बिहार का उत्तरी भाग जो कोसी का बाढ़ क्षेत्र है, अपेक्षाकृत अधिक सपाट है । गंगा के उत्तर में सरयूपार मैदान, मिथिला मैदान और कोसी मैदान का विस्तार है, जबकि दक्षिण में गंगा–घाघरा दोआब, गंगा, सोन दोआब और मगध मैदान का विस्तार है ।

इस प्रखण्ड में गंगा की धारा अधिक वक्राकार है क्योंकि धरातल का ढाल कम है । गंगा और उसकी सहायक नदियों ने यहाँ सबसे अधिक धारा परिवर्तन किया है । गंडक और कोसी की अनेक धारायें विद्यमान हैं, जो उत्तर से

आकर गंगा में मिलती है । दक्षिण से आने वाली नदियो में सोन सबसे प्रमुख है । सब मिलाकर यहाँ अपवाह तंत्र सघन है ।

इस प्रखण्ड की जलवायु ऊपरी गंगा मैदान की तुलना में अधिक आर्द्र हैं । यहाँ औसत वर्षा १३० सेमी. है लेकिन वर्षा के वितरण में दक्षिण से उत्तर और पश्चिम से पूरब बढ़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है । यहाँ तापमान का वितरण भी ऊपरी मैदान की तुलना में सम है । लेकिन यह भाग भी मानसूनी वर्षा की अनिश्चितता से आक्रान्त रहता है क्योंकि यहाँ खरीफ की फसल वर्षा पर निर्भर है । अतः अतिवृष्टि और सूखा जनित अकाल के कारण यह भूखण्ड सदियों से उबर नहीं पाया है ।

यहाँ की जलोढ़ उपजाऊ मिट्टी सबसे महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जिसका उपयोग मानव समाज हजारों वर्षों से करता आ रहा है । मिट्टी से जन्मी यहाँ की संस्कृति अधिक ग्रामीण है । धरातलीय और भूमिगत जल यहाँ का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक साधन है । यहाँ सर्वत्र बहुत कम गहराई पर भूमिगत जल उपलब्ध है, जिसके कारण यहां गांवों का बसाव अति सघन हैं । कृषि के लिए इस प्रखण्ड से प्राकृतिक वनस्पति का सफाया किया जा चुका है । केवल तराई क्षेत्र और कृषि के लिए अनुपयुक्त भूमि पर ही जंगलों का विस्तार है, जो कुल क्षेत्रफल के ८% से भी कम है । इसप्रकार इस प्रखण्ड का भौतिक परिवेश मानव के लिये अधिक आकर्षक है ।

(ग) आर्थिक और सांस्कृतिक स्वरूप :

मिट्टी और जल पर आधारित यहाँ का अर्थतंत्र कृषि प्रधान है, जिसमें तीन चौथाई से अधिक जनसंख्या संलग्न है । कम भूमि और अधिक जनसंख्या के कारण यहाँ कृषिगत भूमि पर जनसंख्या बहुत अधिक है । यहाँ की प्रमुख फसलों में धान, गेहूँ, गन्ना, दलहन, मक्का और चना की प्रधानता है । खाद्यान्नों में धान, गेहूँ तथा दलहन और नकदी फसल में गन्ना प्रमुख हैं ।

लम्बी अवधि से सामन्ती प्रभाव का यह क्षेत्र जमींदारों और कृषि मज़दूरों का संघर्ष क्षेत्र रहा है । यहाँ सबसे अधिक कृषि मजदूरों और लघु किसानों का जमाव है । दैवी विपत्तियों के प्रभाव से कृषि आधारित अर्थतंत्र कमजोर है जिसके कारण यहाँ के श्रमिक रोजी–रोटी की तलाश में अन्य क्षेत्रों में जाते रहते हैं । यहाँ रोजगार के अवसर बहुत कम हैं क्योंकि उद्योगों का विकास कम हुआ है । चीनी उद्योग सबसे महत्त्वपूर्ण है । इसके अतिरिक्त तेल शोधन, उर्वरक, शीशा, कागज, जूट आदि के उद्योग भी हैं, लेकिन इनकी संख्या बहुत कम हैं । पूरे प्रखण्ड में कोई भी महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र नहीं है जैसा कि ऊपरी गंगा मैदान में है । अतः यहाँ का आर्थिक तंत्र जीवनयापन की न्यूनतम आवश्यकता जुटाने के स्तर पर रुका हुआ है । यहाँ अनेक गृह और लघु उद्योगों का अच्छा विकास हुआ है लेकिन उनके सामने विकट समस्यायें हैं जैसे शक्ति का अभाव, बाजार की असुविधा और पूँजी का कुप्रबन्ध । फलतः इन उद्योगों का समुचित विकास नहीं हो सका है । हैण्डलूम, खाण्डसारी, रेशमी वस्त्र, जूट के सामान, कागज़, अल्कोहल इन्जीनियरिंग जैसे उद्योगों के लिए यहाँ सबसे अधिक विकास की संभावनाएँ हैं, लेकिन ये किसी प्रकार से चल रहे हैं । यहाँ यातायात के साधनों में रेल और सड़क का विकास नगर पर आधारित हुआ है । अधिक जनसंख्या के कारण दोनों साधनों पर सवारी और माल का विकास नगर पर आधारित हुआ है । अधिक जनसंख्या के कारण दोनों साधनों पर सवारी और माल का अधिक दबाव है । यहाँ के गाँवों में अब भी आवागमन की न्यूनतम सुविधाएँ उपलब्ध हैं ।

यहाँ आबादी सात करोड़ से अधिक है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या तीन चौथाई से अधिक है । यहाँ का औसत घनत्व ६०० व्यक्ति प्रति वर्ष किमी. से अधिक है । पूर्वी उत्तर प्रदेश के कुछ जनपदों में औसत घनत्व ८०० व्यक्ति प्रति वर्ग किमी. तक पहुँच गया है । यहाँ के गाँव बड़े और पास–पास बसे हुए हैं । मध्यवर्ती गंगा के मैदान में अधिकांश बड़े नगर नदियों के किनारे बसे

हुए हैं । वाराणसी और पटना सबसे बड़े नगर हैं । यहाँ छोटे बड़े १५० से अधिक नगर हैं जिसमें छोटे नगरों की प्रधानता हैं ।

४.३.६ निचला–गंगा–मैदान :

(क) स्थिति एवं विस्तार :

बिहार की सीमा से लेकर गंगा डेल्टा के समुद्री तट तक का भूखण्ड निचला मैदान कहलाता है । इस प्रखण्ड का एक बड़ा भाग अब बंगला देश में चला गया है । अतः पश्चिम बंगाल का संपूर्ण मैदानी भाग निचला गंगा मैदान के रूप में जाना जाता है । इसका विस्तार लगभग ८६००० वर्ग किमी. पर है । २१°.२५′ से २६°.५५′ उत्तरी अक्षांस एवं ८६°.३०′ से ७६°.५८′ पूर्वी देशान्तर के मध्य फैला यह प्रखण्ड उत्तर में पतली और दक्षिण में चौड़ी पट्टी की आकृति में है । इसमें गंगा का डेल्टाई भाग सर्वाधिक विस्तृत है । गंगा मैदान के अन्य दो प्रखण्डों की तुलना में यह प्रखण्ड भौतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक अति विशिष्ट क्षेत्र है जहां आदि काल से गंगा और ब्रह्मपुत्र नई भूमि की रचनाकार नवीनजलोढ से मैदान को सृजित करती रही हैं । इस भूमि का आकर्षण अति प्राचीन काल से मानव समाज में रहा है, जहाँ सबसे आसानी से अन्न–जल की प्राप्ति होती रही है ।[६६]

(ख) भौतिक–परिवेश :

गंगा का निचला मैदान वास्तव में गंगा का डेल्टाई भाग है, जो सामान्य ऊँचाई का समतल मैदान है । इसका ढाल उत्तर से दक्षिण है । इस प्रखण्ड में पुराने जलोढ़ की तुलना में नवीन जलोढ़ का क्षेत्र है, जिसे सुन्दर वन के नाम से जाना जाता है यह नीची भूमि का दलदली क्षेत्र है । हिमालय की पहाड़ियों के पादप मैदान को द्वार के नाम से जाना जाता है । इस मैदान का मध्यवर्ती भाग वरिन्द मैदान कहलाता है, जो प्राचीन जलोढ़ से रचित है । इस प्रखण्ड में गंगा और उसकी सहायक नदियों द्वारा वर्षा जल का निकास होता

है । कम ढाल के कारण यहाँ छोटी नदियों का घना जाल पाया जाता है । स्वयं गंगा अनेक धाराओं में विभक्त हैं ।

यहाँ की जलवायु उष्ण आर्द्र है । वर्षा का औसत १८० सेमी. से अधिक है । कम से कम ६ माह तक वर्षा–काल चलता है और कुछ क्षेत्र ४०० सेमी. तक वर्षा प्राप्त करते हैं । नीची जमीन, दोमट मिट्टी और अधिक वर्षा के कारण यहाँ की मिट्टी में हंमेशा नमी बनी रहती है, जिससे बिना सिंचाई कृषि की जाती है । खरीफ की फसल वर्षा आधारित है ।

(ग) आर्थिक और सांस्कृतिक स्वरूप :

अति प्राचीन काल से यह कृषि प्रधान क्षेत्र रहा है । यहाँ धान की तीन फसलें एक साल में उगाई जाती हैं । रबी की फसल में भी धान की कृषि होती है क्योंकि यहाँ शरद् काल में भी पर्याप्त तापमान बना रहता है । अकेले यह प्रखण्ड भारत का आधा से अधिक पटसन पैदा करता है । अन्य प्रमुख फसलों में मक्का, चना, दलहन और साग सब्जी प्रमुख हैं । मछली पालन में यह अग्रणी प्रखण्ड है क्योंकि भात के साथ मछली खाने का आम रिवाज है । कृषि के साथ औद्योगिक विकास इस क्षेत्र में खूब हुआ है । ब्रिटिश काल से लेकर स्वतंत्रता के बाद भी यहाँ निरन्तर नये औद्योगिक विकास के लिए सभी सुविधायें उपलब्ध हैं । यहाँ के प्रमुख उद्योगों में वस्त्र, रसायन, धातु आधारित उद्योग, कागज, यातायत–उपकरण, इन्जीनियरिंग, तम्बाकू, पेय और ऐसे ही उद्योगों का जमघट है । कलकत्ता, हावड़ा और बर्दवान का भूखण्ड न केवल निचला गंगा मैदान में अपितु भारत का एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र है । कहा जाता है कि कलकत्ता का समीपवर्ती क्षेत्र भारत में आधारभूत उद्योगों का सबसे बड़ा समूह है । इस प्रखण्ड को छोटा नागपुर के आधारभूत उद्योगों के सहयोग के साथ तकनीकी ज्ञान, पूँजी, कुशल श्रमिक, शक्ति, यातायत, बाजार जैसी सुविधाएँ प्राप्त हैं । कलकत्ता सन्नगर भारत का सबसे बड़ा नगरीय विस्तार है । इस

प्रखण्ड में छोटे–बड़े उद्योगों में १५ लाख से अधिक श्रमिक लगे हुए हैं । यहाँ ३५०० से अधिक कारखानें हैं । यहाँ के प्रमुख नगरों में कलकत्ता, हाबड़ा, बर्दवान, मुर्शिदाबाद, आसनसोल, मुजफ्फरपुर विशेष उल्लेखनीय हैं । कलकत्ता का बन्दरगाह अंतराष्ट्रीय व्यापार का प्रमुख केन्द्र है । डेल्टा के निचले भाग में नव निर्मित हल्दिया का वृहद् बन्दरगाह और तेल शोधक कारखाना आर्थिक विस्तार के नये आयाम हैं । कलकत्ता स्वयं भारत का एक वृहद् नगर है ।

भारत में अपार आन्तरिक जल परिवहन क्षमता को देखते हुए १९८७ में केन्द्रीय अर्न्तदेशीय जल परिवहन निगम की स्थापना की गई ताकि इस प्राकृतिक संसाधन का समुचित विकास किया जा सके । यह निगम लगभग सभी बड़ी नदियों के द्वारा मालढुलाई की व्यवस्था करने में जुटा हुआ है । निगम द्वारा कलकत्ता–पांडु, कलकत्ता–करीमगंज, कलकत्ता–बंगलादेश, हल्दिया–बंगला देश और कलकत्ता–पटना के बीच नियमित मालवाही सेवा चल रही है । गंगा में यह सेवा इलाहाबाद तक विस्तारित की जा रही है । विकास कार्यक्रम के अनुसार १० जल मार्गों को राष्ट्रीय जल मार्ग घोषित किया गया है – गंगा हल्दिया से इलाहाबाद (१६२० किमी.) और ब्रह्मपुत्र से ध्रुवी तक (८९१ किमी.) पर कार्य चल रहा है । इन कार्यों के लिये भारतीय अन्तर्देशीय जलमार्ग प्राधिकरण का गठन किया गया है, जो सर्वेक्षण और विकास का कार्य कर रहा है ।[७०]

सन्दर्भ–सूची :

१.	वाल्मीकीयरामायणम्, बालकाण्ड, सर्ग ३५ श्लोक ११
२.	वही, १/३५/१२
३.	वही, १/३६/४
४.	वही, १/३६/५
५.	वही, १/३६/१४
६.	वही, १/३७/२२
७.	वही, १/३७/२५
८.	वही, १/३७/२७
९.	वही, १/३७/२८
१०.	वही, १/३९/६
११.	वही, १/३९/७
१२.	वही, १/३९/८
१३.	वही, १/४०/११
१४.	वही, १/४०/१४
१५.	वही, १/४०/२४
१६.	वही, १/४२/१६
१७.	वही, १/४२/२०
१८.	वही, १/४२/२३
१९.	वही, १/४३/३
२०.	वही, १/४३/४
२१.	वही, १/४३/१२
२२.	वही, १/४३/१३
२३.	वही, १/४३/१४

२४.	वही, १/४३/१५
२५.	वही, १/४३/१६
२६.	वही, १/४३/२०
२७.	वही, १/४३/२५
२८.	वही, १/४३/२६
२९.	वही, १/४३/३३
३०.	वही, १/४३/३४
३१.	वही, १/४३/३८
३२.	वही, १/४३/४०
३३.	वही, १/४३/४१
३४.	वही, १/४४/१
३५.	वही, १/४४/२
३६.	वही, १/४४/५
३७.	वही, १/४४/६
३८.	वही, १/४४/२१
३९.	वही, १/४४/२२
४०.	वही, १/४४/२३
४१.	अभि. शा. सर्ग–१
४२.	वृ. ना. पु. आ. ८१/६
४३.	इत्युक्तः कपिलो क्रुद्धो नेत्राभ्यां ससृजेऽनलम्। स वह्निः सागरान् सर्वान् भस्मस्तदकरोत् क्षणात् । वृ. ना. पु. ८/७
४४.	दु. सं ११/२७
४५.	शब्दकल्पद्रुमे गङ्गापदस्य व्युत्पत्ति

४६.	ब्र. वै. पु. प्रकृतिखण्डः
४७.	श्रीमद्भागवत म.पु. ५/अध्याय/७
४८.	वाल्मीकीय रामायणम् अयोध्याकाण्ड सर्ग ४३
४९.	वृ. ना. पु. ४/२२
५०.	ऋ. वे. १/१५४/१,२
५१.	ऋग्वेद – १/१५४/५
५२.	गङ्गा – चिन्मय आलोक की नदी – डॉ. रमाकान्त पाण्डेय सन्मार्गगङ्गा विशेषाश्च
५३.	वही
५४.	अमरकोश – १/१/१८
५५.	देवीभागवतपुराण – अध्याय ४५
५६.	ध्येयः सदासवितृमण्डलमध्यवर्ती – नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः ।
५७.	गङ्गावतरण की दार्शनिक व्याख्या – डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी – सन्मार्ग – गङ्गाविशेषाश्च
५८.	The Himalayan Threat - Sundarlal Bahuguna
५९.	Ibid
६०.	रक्षतगङ्गाम् की पूर्वपीठिका – जगद्गुरु श्रीमद्शश्चराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्दजी महाराज
६१.	भारत – चयनित भौगोलिक प्रदेश, पृष्ठ २९६
६२.	वही – भारत के भौगोलिक प्रदेश, पृष्ठ ३०५
६३.	वही – चयनित भौगोलिक प्रदेश, पृष्ठ ३०८
६४.	वही – वही पृष्ठ ३१२
६५.	वही – वही पृष्ठ ३१७
६६.	भारत – अपवाहतन्त्र, पृष्ठ १४१

६७.	भारत – सिंचाई व्यवस्था, पृष्ठ – ३३२
६८.	भारत के भौगोलिक प्रदेश, पृष्ठ – ३३४
६९.	वही – पृष्ठ ३३७
७०.	वही – परिवहन के साधन, पृष्ठ ३०७

❀❀❀

पञ्चम अध्याय
गङ्गावतरणम् महाकाव्य एवं उसमें सभिरुपित काव्यशास्त्रीय तत्त्व

५.१ पृष्ठभूमि

५.१.१ रस शब्द का अर्थ एवं उसका प्रतिपादन

५.१.२ काव्यस्यात्मा ध्वनि (रसः)

५.१.३ रस का अर्थ (प्रयोजन)

५.१.४ रस का स्वरूप–निरूपण

५.१.५ रसभेद–विवेचन

५.२ गङ्गावतरणम महाकाव्य में सौन्दर्यविधान

५.२.१ रस–निरूपण

५.२.२ अलङ्कार–योजना

५.२.३ छन्द–योजना

५.२.४ रीति–निरूपण

५.२.५ गुणविवेचन

५.२.६ ध्वनियोजना

पञ्चम अध्याय
गङ्गावतरणम् महाकाव्य एवं उसमें सन्निरूपित काव्यशास्त्रीय तत्त्व

५.१ पृष्ठभूमि :

प्रस्तुत अध्याय में रस, छन्द, अलङ्कार, रीति, ध्वनि एवं औचित्य प्रभृति काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का सामान्य परिचय देते हुए गङ्गावतरणम् महाकाव्य में उनकी गतार्थता दिखाने का भरपूर प्रयत्न किया गया है । अतः स्वाभाविक रूप से इस अध्याय का कलेवर अन्यों की अपेक्षा विस्तृत है । फलतः इसे अनेक उपखण्डों में विभाजित कर दिया गया है, यथा –

५.१.१ रसप्रतिपादन
५.१.२ अलंकार–योजना
५.१.३ छन्द–योजना
५.१.४ रीति–निरूपण
५.१.५ गुण विवेचन
५.१.६ ध्वनि–योजना

५.१.१ रस शब्द का अर्थ एवं उसका प्रतिपादन

'रस' संसार की विभीषिकाओं से त्रस्त मानव जाति के लिए जीवन–मञ्जूषा है । संस्कृत व्याकरण के अनुसार रस्, धातु से अच् अथवा घ प्रत्ययपूर्वक निष्पन्न होने वाले इस शब्द की निम्नलिखित व्युत्पत्तियाँ देखने को मिलती हैं । यथा –

(क) रसयतीति रसः

(ख) रस्यते इति रसः

(ग) रस्यतेऽनेनेति रसः

हलायुधकोश में इसके अनेक अर्थ किये गये हैं । जैसे–मधु, गोक्षीर एवं सोमरस इत्यादि ।

किन्तु साहित्य में रस का अर्थ इन उपर्युक्त अर्थों से सर्वथा भिन्न है, जो काव्य या कविता से सहृदय जन को प्राप्त होता है । विद्वानों का मत है कि – कीवता मनुष्य को प्राकृत से संस्कृत बनाती है । वह मानव मन में मानवता को जागृतकर उसे स्वार्थ से परार्थ की दिशा में अग्रसर किंवा प्रवृत्त करती हुई ''अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम् । उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'' का बोध कराती है और उसका संसार के साथ तादात्म्य स्थापित करती है । यह मात्र वाह्यान्तरिक सौन्दर्य की छटा ही नहीं बताती प्रत्युत् हृदयावर्जक दृश्यों की रूपविभूति से हमें सौन्दर्यमग्न भी कर देती है तथा आन्तरिक वृत्ति 'दयादि' से सहृदय को स्निग्ध सौन्दर्य का रसपान कराती है । इसीलिए आचार्य मम्मट इसके लिए निम्नांकित पंक्तियाँ लिखते हैं –

सकलप्रयोजन मौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन–
समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्.... इत्यादि ।[९]

अनेक मनीषियों का मत है कि रस के सहयोग से ज्ञान और सभ्यता के साथ–साथ भावप्रसार की वृद्धि होती है क्योंकि कवि अपनी आम्लान प्रतिभा से अपने हृदय की भावनाओं को भावक के हृदय तक संक्रमित करने के लिए शब्दार्थगत प्रसंग की रचना करके भाव को दृढ करता है । कुछ विद्वानों का तो मत है कि –

काव्यस्यात्म रसः ।

५.१.२ काव्यस्यात्मा ध्वनि : (रसः)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ला का मानना है कि जब मनुष्य अपनी पृथक् सत्ता को भूलकर मात्र विशुद्ध अनुभूति के रूप में रह जाय, तब वह मुक्त हृदयी बनता है । जिस तरह आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है उसी तरह हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कही जाती है । इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए मनुष्य वाणी जो शब्दविधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं ।[२] वह भावयोग व कर्मयोग के समकक्ष है । रस के लिए उपनिषदकार कहते हैं –

रसो वै रसः, रस होवाच लब्ध्वा आनन्दी भवति ।[३]

कवियों ने इसे ब्रह्मानन्दसहोदर स्वीकार किया है ।

५.१.३ रस का अर्थ (प्रयोजन) :

अनुभूति मनुष्य की साधना चरम लक्ष्य है, चाहे वह ज्ञान रूपी गङ्गा, प्रेमाभक्ति की यमुना अथवा कर्मरूपी सरस्वती के स्वरूप में क्यों न हो । यह त्रिवेणी स्वगत सिन्ध में ही विलीन होती है । यथा –

रुचीनां वैचित्र्याद्ऋजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्तमसि पथसामर्णवीव ।[४]

भक्तों एवं कलाकारों को दार्शनिकों की अपेक्षा अखण्ड रूप में सहजगत्या परम सत्य की प्रतीति होती है । पञ्चकोशों में कवि आदि के सम्बन्ध की यदि कल्पना की जाय, तो आनन्दमय कोश के साथ की जा सकती है; जिसमें से सम्पूर्ण मानवीय प्रवृत्तियों का उद्‌गम होता है । 'रस विमर्श' नामक ग्रन्थ में डॉ. वाटवे ने प्रसिद्ध विद्वान् रिबो के मन्तव्य को उद्‌धृत करते हुए कहा है कि मनुष्य की बुद्धि में नहीं, भावनाओं में ही प्रवृत्तियों का निगूढ, उद्‌गम है । कवि भाषाश्रयण द्वारा तथा यादृच्छिक ध्वनि सङ्केतों द्वारा सामाजिकों का परस्पर सम्पर्क स्थापित करते हैं । यह कल्पना के माध्यम से भाषा के द्वारा लोगों को भौतिक जगत् से पार कराकर विलक्षण जगत् में पहुँचा देता है तथा सहृदय को उसकी भावना की अनुभूति होने लगती है ।

५.१.४ रस का स्वरूप–निरूपण

आचार्य भरत से ‘रस’ के वर्तमान स्वरूपगत इतिहास का श्रीगणेश होता है जबकि अभिनव गुप्तपादाचार्य ने इनसे भी पूर्व ‘रस’ का सुस्पष्टतः उल्लेख किया है । यों तो काव्यशास्त्र के इतिहास में रस विचारकों की सूची सुदीर्घ है, जिसमें भगवान् सदाशिव, ब्रह्म, तण्डु, वासुकी (वासुकि), नारद, भरतवृद्ध, आदि भरत, शौद्धोदनि, शिलाजीत (शिलाजित्), कृशाश्व, नन्दि, नन्दिकेश्वर, द्रुहिण तथा कोहल आदि आचार्यों के नाम मुख्य रूप से लिये जाते हैं, किन्तु आचार्य भरत के रससम्बन्धी निम्नांकित सूत्र का भारतीय काव्य शास्त्र में बहुत सम्मान है –

“तत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः –

अर्थात् विभाव, अनुभाव और संचारी, (व्यभिचारी) भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है । ना. शा. ७/७ वृत्तिभाग, पृ. ८१ में नाट्यशास्त्रकार स्थायीभाव के कथ्य को समझाते हुए लिखते हैं कि –

विभावानुभाव्याभिचारिपरिवृत्तः स्थायीभावो रसनाम लभते ।”

प्रकृत चर्चा को आगे बढ़ाते हुए आचार्य पुनः लिखते हैं कि –

यथानानाव्यञ्जनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिर्भवति यथा हि
गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरोषधिभिश्च... रसा निवर्तन्ते,
तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति ।

अभिनवगुप्त के मत से स्थायीभाव निर्विघ्न अनुभूति की विश्रान्ति दशा में ‘रस’ बन जाता है । ‘विभावादि’ परिभाषा को देखते ही कह सकते हैं –

विभाव :

मनोविकारों का कारण विभाव है । वह दो प्रकार का होता है । (१) आलम्बन विभाव (२) उद्दीपन विभाव । शिवराम त्रिपाठी के मत से निर्विकारचित्त में जो भाव प्रथम उत्पन्न हो, वह विभाव है ।[५]

अनुभाव :

'अनुभावो विकारस्तुभावसंसूचनात्मकः' वह चार प्रकार का होता हैं । (१) कायिक (२) मानसिक (३) आहार्य (४) सात्त्विक ।

व्यभिचारी :

'विविधाभिमुख्ये-न रसेषु चरन्तीति व्यभिचारिणः' सतत मुख्य प्रवाह में स्थायीभाव में तरंग के रूप में जो उन्मज्जित होता है, वह व्यभिचारी है । वह ३३ प्रकार का होता है । निर्वेद, ग्लानि, व्रीडा, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, चपलता, हर्ष, आवेग, जडता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुषुप्ति, जागृति, क्रोध, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क ।[६]

प्रो. काणे का मंतव्य है कि शरीर मनोव्यापार से संबंधित है ।[७] मनोवैज्ञानिक मेकडुगल ने 'द एनर्जीज ओफ मेन' नाम के पुस्तक में मनुष्य की स्वाभाविक (सहज) १८ प्रवृत्तियों को निर्दिष्ट किया है ।[८] पाठक के अन्दर जो भाव है, वही स्थायीभाव है । आचार्य मम्मट के मत से व्यवहारदशा में मनुष्य को जिस जिस प्रकार का अनुभव होता है, उसे ध्यान में रखकर प्रायः आठ प्रकार के स्थायीभावों को साहित्यशास्त्र में स्थान दिया गया है, जिसकी गणना करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं –

''रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावा प्रकीर्तिताः ।।[९]

रति, हास (हास्य), शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा और विस्मय स्थायी भाव हैं । भट्टलोल्लटादि, पूर्वाचार्यों ने विशद रीति से उसका विवेचन किया है । जैसे 'दधिन्यायभाव' से दूध ही अम्लसंयोग से जम जाने से 'दही' संज्ञक बन जाता है । उसी प्रकार रत्यादिभावादि संयोग से स्थायी क्रोध इत्यादि भावों से रौद्र इत्यादि रस बन जाते हैं ।[१०] 'हरिदास सिद्धांत वागीश' के अनुसार विभावादि

से आविर्भूत चमत्कार से पूत आनन्दमय सहृदयों की अनुभूति ही 'रस' है ।[११] 'नृसिंह कवि' के मतानुसार' 'भावस्थायिता अर्थात् सजातीय – विजातीय भावों से विछिन्न न होकर रसानुभावपर्यन्त हो, वह 'रस' है'' ।[१२] ''रतिलिंगादि परस्पराश्रित'' 'प्रेम' नामक चित्तवृत्ति विशेष रूप से 'शृंगारोपादान' है ।[१३] हास कौतूहलोत्पन्न विकास 'हास्योपादान' है ।[१४] शोक इष्टव्यक्तिवियोगोत्पन्न रति अनवच्छिन्न शोकोपादान' है ।[१५] 'क्रोध' इच्छित विनाशोत्पन्न 'रौद्रोपादान' है ।[१६] 'उत्साह' सामर्थ्योत्पन्न उन्नति 'वीरोपादान' है ।[१७] स्वप्रीतकलानुसंधानोत्पन्न चित्तवृत्ति विशिष्ट 'भयानकोपादान' भय है ।[१८] जुगुप्सा अनिच्छित वस्तु दर्शनादि से उत्पन्न 'वीभत्सोपादान' है ।[१९] विस्मय चमत्कारादि दर्शनों से उत्पन्न 'अद्भुतोपादान' है ।[२०]

इस तरह यहाँ विभाव ईषत्–स्फुट कारण रूप से, अनुभव स्फुटतर–कार्य रूप से और सहकारी भाव प्रकाशरूप से व्यभिचारी है ।

५.१.५ रसभेद–विवेचन

आचार्य विश्वनाथ रस के भेदों को निरुपित करते हुए लिखते हैं –

'शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः ।।[२१]

काव्यपरंपरा में 'रस सिद्धांत' मात्र आस्वाद के लिए नहीं, मूल्यांकन के साथ भी संबंधित हैं । आस्वादयिता अखण्ड आनंदोपलब्धि के बाद समीक्षक बुद्धि से जागृत होता है । इस प्रवृत्ति में परिवर्तन होने के कारण जब सहृदय भिन्न कोटि के आस्वादन की अनुभूति करने लगे, तब नवों नामों की अपेक्षा संभूत होते ही रससंख्या पर, नव साहित्य पर, प्राचीन सिद्धांत अमल (लागु) करने में कठिनता होने पर, साहित्य मूल्यांकन क्षमता कम होनी, अधिकता में दर्शन, संस्कृति और मनोवैज्ञानिक परिवेश तथा युगबोध इत्यादि के संदर्भ में नवीन उद्भावानाओं की जरूरत पड़ी । इसलिए रस भी परंपरागत ८ में से अनेक

बना । भारतेन्दु के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'रस' अनुभवसिद्ध है । उसकी मान्यता में प्राचीनों की आवश्यकता नहीं है । यदि अनुभव हो तो 'मनुष्य' अन्यथा मनुष्य नहीं' इस परंपरा में नवमोऽपि शान्तो रसो' कहकर आठ में से नव रस तक प्रगति हुई । आचार्य विश्वनाथ 'वात्सल्य रस[२२] और पं. जगन्नाथ 'भक्तिरस' को प्रकाशित करते हैं ।[२३] लोल्यरस,[२४] मृगया–अक्षरस,[२५] व्रीडनक और प्रशांत रस,[२६] उदात्त और उद्धत रस,[२७] व्यसन सुख–दुःख रस, कार्पण्य रस, माया रस, ब्रह्म संभोग–विप्रलंभ रस, चित्ररस, उद्वेग रस, विषाद क्रांति ओर बौद्धिक रस जैसे नूतन रसों की उद्‌भावना विविध आचार्यों ने की है । इसप्रकार रसकोटि, अवस्था, भेद, वर्गीकरण, संख्या और अधिष्ठान इत्यादि से उसकी संख्या निर्दिष्ट हुई है ।

५.२ गङ्गावतरणम महाकाव्य में सौन्दर्यविधान

५.२.१ रस–निरूपण :

काव्य प्रकाशकार मम्मट ने रस के आठ प्रकार बताये हैं और आगे 'शान्त' को भी नवम रस के रूप में स्वीकार किया है –

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्सादद्‌भुतसंज्ञौ चेत्‌य नाट्‌ये रसाः स्मृताः ।।[२७]
शान्तोऽपिनवमोरसः ।

भरतमुनि ने भी रसों की संख्या आठ मानते हुए अपने ग्रन्थ नाट्‌यशास्त्र में इसीप्रकार कारिका प्रस्तुत की है । यथा –

शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः ।
बीभत्सादद्‌भुतसंज्ञौश्चेत्यष्टौ नाट्‌ये रसाः स्मृताः ।।[२८]

यद्यपि विद्वानों ने अपने अनेकविध चिन्तनों के द्वारा रस को अनेक रूपों में व्याख्यायित किया है तथापि इस बात में किसी तरह का विवाद नहीं है कि रस अलौकिक आनन्द का व्याप्य पदार्थ है और वह संसार में एक सौन्दर्यमय

वस्तु है । रसगङ्गाधर में पण्डितराजजगन्नाथ ने रस को नौ प्रकार का माना है –

शृंगारः करुणः शान्तो रौद्रोवीरोऽद्भुतस्तथा ।
हास्यो भयानकश्चैव, बीभत्सश्चेति ते नव ।।[२९]

५.२.१.१ शृंगाररस :

शृङ्गार का स्थायीभाव 'रति' है जो आठ प्रकार का होता है – नैसर्गिकी, सांसर्गिकी, औपमानिकी और आध्यात्मिकी, अभियोगिकी, साम्प्रयोगिकी, अभिमान और वैषयिकी ।[३०]

यद्यपि भोज ने शृङ्गारस के भेद का स्पष्ट नामोल्लेख करते हुए कोई वर्णन नहीं किया है तथापि रस की विभूतियों के अन्तर्गत उन्होंने शृंगाररस के सम्भोग और विप्रलम्भ; इन दो प्रकारों का निरूपण किया है ।

सम्भोग शृंगार :

इष्ट की सम्प्राप्ति हो जाने पर पुष्ट हुई रति ही सम्भोग कही जाती है । सम्भोग शब्द की निरुक्ति भोज ने इसप्रकार की है – भुज् धातु पालन, कुटिलता, अव्यवहार और अनुभूति के अर्थ में प्रयुक्त होती हैं । उदाहरणार्थ मनोऽनुकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनरतिः, (सरस्वती कण्ठाभरणालंकार) । शृंगार का स्थायीभाव रति है, जो आठ प्रकार का होता है – नैसर्गिकी, सांसर्गिकी, औपमानिकी, आध्यात्मिकी, साम्प्रयोगिकी, अभिमान और वैषयिकी ।[३१] काव्य शास्त्र के अनेक समुदायों में रस की गरिमामयी व्यंजना हुई है । आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्य प्रयोजन' में प्रयुक्त 'सद्यः परनिर्वृतये' की व्याख्या में सकल–प्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम् कहकर रस की चरम महत्ता का प्रतिपादन किया है । अतः प्रस्तुत महाकाव्य की रस–योजना पर प्रकार डाले बिना ग्रन्थ की महत्ता का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता । प्रस्तुत महाकाव्य में व्याप्त रसाभिव्यंजना मानवीय चेतना को निर्मल

आनन्द प्रदान करती है । इस महाकाव्य में हास्यरस को छोड़कर प्रायः सभी रस तत्तत् प्रसंगों में अधिगत होते हैं, जिनका एक सूक्ष्म चित्रण ग्रन्थ के उत्कर्ष हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अभूद्वरः कण्टकितप्रकोष्ठः
स्विन्नांगुलिः संववृते कुमारी ।
तस्मिन् द्वये तत्क्षणमात्मवृत्तिः
समं विभक्तेव मनोभवेन ।।[३२]

यहाँ पर स्वेदादि सात्त्विक भावों की उत्पत्ति से रस का रतिरूप से आविर्भाव प्रकट होता है । इसीप्रकार संचारी की उत्पत्ति होने पर भी रतिरूप से रस का आविर्भाव हो सकता है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार :

जब रतिनामक भाव उत्कट हो किन्तु प्रिय की प्राप्ति न हो, तो वह विप्रलम्भ की श्रेणी में आता है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार उत्तम नायक–नायकादि में पूर्वानुराग, मान, प्रवास, और करुण इन चार विधियों से प्रकाशित होता है । यथा –

पीनश्रोणि गभीरनाभिनिभृतं मध्ये भृशोच्चस्तनं,
पायाद्वः परिरब्धमब्धदुहितुः कान्तेन कान्तं वपुः ।
स्वासानुपधावनिर्वृत्तमनास्तत्कालमीलद्दृशे,
यस्मै सोऽच्युतनाभिपद्मवसतिर्वेधाः शिवं ध्यायति ।।[३३]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग के उन्तालिसवें श्लोक में कविवर नीलकण्ठ दीक्षित ने शृङ्गाररस की अति सुन्दर छटा बिखेरी है, जो अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

उत्तरीयमहरत्कुचकुम्भादुन्ममार्जमुखधर्मपयांसि ।
अंगभंगमपि पान्थवधूनामालिलिंग सुकृती वनवातः ।।[३४]

अर्थात् जंगली होने पर भी भाग्यशाली वायु ने प्रेयसियों के स्तनों को आच्छादित करने वाले दुपट्टे को हटा दिया । मुख में घर्मजन्य बिन्दुओं को दूर किया । इसप्रकार पथिकों की बधुओं के अंग–प्रत्यंगों का भी उसने आलिङ्गन किया ।

इसी के बाद तृतीय सर्ग का एक उदाहरण इसप्रकार है –

हिमस्पृशां यन्मरुतां प्रसादतो
विलासितां मुग्धवधूरतेष्वपि ।
न शिक्षणीयाजनि जातुसीत्कृति
र्न चार्थनीया परिरम्भसान्द्रता ।।[३५]

अर्थात् बर्फीले वायु की कृपा से मुग्ध वधुओं केसाथ विलासियों के रतिकालमें सीत्कार की शिक्षा और गाढालिंगन की याचना नहीं करनी चाहिए ।

'गङ्गावतरणम्' के सप्तम सर्ग का अट्ठारहवाँ श्लोक विप्रलम्भ शृङ्गार का एक उत्तम उदाहरण है, जो अधोलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है । राजा भगीरथ को देखकर एक सखी दूसरी सखी से कह रही है –

अधिगोपय मैनमाशये
सहसैवोत्सृज यात्वयं क्वचित् ।
ननु चायतपातिभिः शरै –
र्मदनो मर्मसु ताडयिष्यति ।।[३६]

अर्थात् हे सखि, इस (राजा भगीरथ) को अपने हृदय में स्थान मत दो, वह कहीं भी जाय । यदि ऐसा नहीं करोगी तो कामदेव बाणों से तुम्हारे हृदय को फाड़ देगा ।

इसीप्रकार इस महाकाव्य में शृङ्गाररस के अन्य उदाहरण प्रथम सर्ग के २२, ५०, ५४; द्वितीय सर्ग के ४१, तृतीयसर्ग के ५३, ५५, ६८, चतुर्थ सर्ग के ११, १२, १३ वें सप्तम सर्ग के १७ वें और अष्टम सर्ग के ३५ वें श्लोकों में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं ।

५.२.१.२ हास्यरसः

इसका स्थायी भाव हास है ।

विरूपता, ब्रीडा इत्यादि से चित्त के विकास को 'हास'[३६] कहते हैं ।

'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य का नायक राजा भगीरथ है, जो धीरोदात्त नायक है । अतएव इस काव्य में हास्य का पुट सम्मिलित नहीं हो पाया, ऐसा कहा जा सकता है ।

५.२.१.३ करुण रसः

करुण का स्थायीभाव 'शोक' है । अभीष्ट के विरह इत्यादि से चित्त की विधुरता को शोक कहते हैं ।

शोक नामक स्थायीभाव विभावानुभाव व्यभिचारियों के संयोग से निष्पन्न होकर करुणरस की आख्या को प्राप्त करता है । उदाहरणार्थ –

यस्याःकुसुमशय्यापि कोमलांगया रुजा करो ।
साधि शेते कथं देवी हुताशनवतीं चिताम् ।।

यहाँ पर आलम्बन विभावभूत देवी के मरण से उत्पन्न शोक स्थायीभाव, चित्ताग्नि, ज्वालादि उददीपनविभावों से उद्दीप्त होकर वागारम्भानुभावों से अनुमित होने वाले निर्वेदग्लानि, वैवर्ण्य इत्यादि व्यभिचारियों से संयुक्त होकर करुण रस के रूप में निष्पन्न होता है ।[३८]

इसीप्रकार 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य के चतुर्थसर्ग के इक्यावनवें श्लोक में इस रस का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

आयतोद्ग्रीविकाखिन्नानमरान्वेत्रदूरितान् ।
कटाक्षैः सानुग्राह करुणासारसान्द्रितैः ।।[३६]

अर्थात् नन्दी के नेत्र से दूर किये गये ग्रीवा उठाये खिन्न देवताओं को पार्वती ने कारुणिक कटाक्ष से अनुगृहीत किया ।

इसी सर्ग के नवासीवें श्लोक में राजा भगीरथ भगवान् शंकर की आराधना करते हुए व्याकुल होकर कहते हैं –

आयासमीदृशं यत्त्वमर्थितोऽसि जगद्गुरो ।
तन्मम क्षम्यतां बाल्यचापल्यमिति चानमत् ।।[४०]

अर्थात् है विश्वगुरो ! मेरा यही प्रयास है, मैंने आप से अपने अभीष्ट की याचना की है, इसलिए इस बालचापल्य को क्षमा करें । ऐसा कहकर राजा भगीरथ शिव के चरणों में गिरकर शोकाकुल हो गए ।

इसीप्रकार इस महाकाव्य के पञ्चम सर्ग के २५, २६ और २७ वें षष्ठ सर्ग का चौथा और अष्टम सर्ग का ४८ वाँ श्लोक करुण रस के उदाहरण हैं ।

५.२.१.४ रौद्ररस :

रौद्र का स्थायीभाव 'क्रोध'[४१] है । प्रतिकूल के विषय में तीक्ष्णता का प्रबोध क्रोध कहा जाता है ।

क्रोध नामक स्थायी भाव विभावानुभाव व्यभिचारियों से संयुक्त होकर रौद्ररूप में निष्पन्न होता है ।

ठीक इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग के सैंतालिसवें श्लोक में नन्दी के क्रोध को प्रदीर्शत किया गया है –

क्रुध्यन्नन्दिकरोद्धूतवेत्रपातपलायिताः ।
विजहुः सरणिं गौर्या विनीतास्तत्र देवताः ।।[४२]

अर्थात् क्रोध करते हुए नन्दी से प्रकम्पित वेत्र पतन से भागे हुए विनीत देवताओं ने पार्वती के मार्ग को छोड़ दिया ।

इसी सर्ग के एक अन्य उदाहरण बान्नबवें श्लोक में भगवान् शिव के क्रोध का वर्णन द्रष्टव्य है –

आबद्ध्य चर्म वैयाघ्रमपसार्य च बालकौ ।
सावष्टम्भः क्षितावास्त सज्जीभूतो वृषध्वजः ।।[४३]

व्याघ्र चर्म पहनकर तथा दोनों बालकों (गणेश–सकन्द) को हटाकर अहंकृति गर्जना के साथ शिवजी पृथ्वी पर खड़े हो गए ।

इसप्रकार 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य के पञ्चम सर्ग के ५, ६, ७, ८, ६, १० ओर १५ वें श्लोक में भी रौद्ररस के उदाहरण दर्शनीय हैं ।

५.२.१.५ वीररस :

वीर रस का स्थायीभाव उत्साह है । कार्यारम्भ के विषय में स्थिर चित्तवृत्ति विशष को उत्साह[४४] कहते हैं ।

उत्साह नामक स्थायीभाव का समुचित विभावानुभाव व्यभिचारी भावों से संयोग होने से वीररस की निष्पत्ति होती है । उदाहरणार्थ –

अजित्वा सार्णवामुर्वीमनिष्ट्वा विविधैर्मखैः ।
अदत्वाचार्थमर्थिभ्यो भवेयं पार्थिवः कथम् ।।[४५]

यहाँ पर वसुधा विजयादि आलम्बन विभाव से उत्पन्न उत्साह नामक स्थायीभावस्थैर्य, धैर्य इत्यादि से उद्दीप्त होकर वागारम्भानुभाव से अनुमित होने वाले स्मृति, मति, वितर्क इत्यादि में निष्पन्न होकर वीररस के नाम से व्यवहृत होता है ।

इसीप्रकार 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग के चौहत्तरवें श्लोक में राजा भगीरथ और भगवान् शिव में यद्यपि आकाश–पाताल का अन्तर है, फिर भी भगीरथ का उत्साह अद्वितीय है –

क्वायं क्व शम्भुस्तदपि स्तोतुं समुपचक्रमे ।
न हि वस्तुकृता प्रीतिः स्वशक्तिमनुरुध्यते ।।[४६]

अर्थात् कहाँ भगीरथ, और कहाँ शम्भु ! फिर भी उन्होंने (भगीरथने) शिव की स्तुति करना प्रारम्भ किया, क्योंकि वस्तुनिष्ठ प्रसन्नता शक्ति को अवरुद्ध नहीं कर सकती ।

एक अन्य श्लोक में गङ्गा के उत्साह का वर्णन करते हुए कविवर नीलकण्ठ दीक्षित कहते हैं –

स्थापिताः कमलजन्मना पुरा सेतवः समन्ततः ।
संनिपत्य सकृदेव सप्लुतैरुर्भिस्त्वरितमुल्लङ्घिरे ।।[४७]

अर्थात् बहुत पहले चारों ओर से ब्रह्माजी के द्वारा निर्मित वैदिक सेतुओं को एकबार में ही गिराकर उछलती हुई तरङ्गों से शीघ्र ही उनका अतिक्रमण कर दिया ।

५.२.१.६ भयानकरस :

चित्त की रौद्रादिजनित विकलता को भय[४८] कहते हैं । जो भयानकरस का स्थायीभाव है ।

भय नामक स्थायीभाव विभावानुभाव व्यभिचारियों के संयोग से भयानक रूप से निष्पन्न होता है । उदाहरणार्थ –

इदं मघोनः कुलिशं धारासंनिहितानलम् ।
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय कल्पते ।।[४९]

यहाँ पर स्मर्यमाण इन्द्र के वज्र से उद्भूत अग्निरूप आलम्बन विभावसे उत्पन्न दैत्यस्त्रियों का भय स्थायीभाव वज्र से विदीर्ण दानवों के मरण के स्मरण आदि उद्दीपन विभावों से उद्दीप्त होकर अनुभावों से अनुमित स्वेद, स्तम्भ, वेपथु इत्यादि व्यभिचारियों से संसृष्ट होकर भयानक रस के रूप में निष्पन्न होता है ।

इसप्रकार 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य के तृतीय सर्ग के छठें श्लोक में भी सुरनदी गंगा राजा भगीरथ को भयभीत करते हुए कहती है –

ससर्ज कल्पादिषु विष्टपत्रयीं
स योगमास्थाय कियन्तमात्मभूः ।
कथावशेषीक्रियतां मया पुनः
कथं पतामीतिगिरैकयैव सा ।।[५०]

अर्थात् ब्रह्मा ने अनेक कल्पों में कितने योग ग्रहण से तीन लोकों का निर्माण किया यदि मेरे द्वारा उसका विनाश किया जाय तो यह सर्वथा अनुचित है । ऐसा गङ्गाजी ने राजा भगीरथ से कहा । इसी सर्ग के सप्तम श्लोक के माध्यम से वे पुनः कहती हैं –

अचिन्तयित्वा कृतिगौरवं विधे
रपि त्यजन्ती करुणां शरीरिषु ।
पताम्यहं यद्यपि कुत्र वा भवन्
भवान्निवापाञ्जलिमाचरिष्यति ।।[५१]

अर्थात् ब्रह्मा की सृष्टि–गुरुता को न सोचकर देहधारियों के प्रति करुणा को छोड़कर यदि मैं गिरती हूँ, तो किस स्थान में आप पितरों का श्राद्ध करेंगे ?

इसीप्रकार 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य के पञ्चम सर्ग के २, ४१ षष्ठ सर्ग के १, ४७, ५७ तथा अष्टम सर्ग के दूसरे श्लोक इसके उदाहरण है ।

५.२.१.७ बीभत्स रस :

दोष–दर्शन इत्यादि के द्वारा पदार्थो की गर्हा जुगुप्सा[५२] कही जाती है । जो बीभत्सरस के स्थायीभाव के रूप में लक्षणग्रन्थों में निरूपित है ।

जुगुप्सा नामक स्थायीभाव अपने विभावानुभाव व्यभिचारियों से संयुक्त होकर बीभत्सरस के रूप में निष्पन्न होता है । उदाहरणार्थ –

पायं पायं तवारीणां शोणितं पाणिसम्पुटैः ।
कोणपाः सह नृत्यन्ति कबन्धैरन्त्रभूषणाः ।।[५३]

यहाँ पर आलम्बन विभाव भूत पिशाचों से उत्पन्न किसी शत्रु विजयाशंसी पुरुष का जुगुप्सा स्थायीभाव सिर कटने से बहने वाले रुधिर की धारा से सने हुए, नाचते हुए कबन्ध और पिशाचों के अन्त्रभूषण तथा शोणित पानादि उद्दीपन विभावों से उद्दीप्त होकर वागारम्भानुभावों से अनुमित भय, आवेश, शंका, अवहित्थ इत्यादि व्यभिचारियों में निष्पन्न होकर बीभत्स की संज्ञा को प्राप्त करता है ।

इसीप्रकार 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य के तृतीयसर्ग का दूसरा श्लोक बीभत्स के उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है –

प्रविष्टमात्रास्वपि मे रसातलं
प्रवाहनासीरतरंगपंक्तिषु ।
पतेदलाबूफलकर्परोपमं
विभिद्य विध्यण्डकपालसंपुटः ।।[५४]

अर्थात् प्रवाहित ध्वनि तरंगों की पंक्तियों के साथ पृथ्वी पर मेरे अवतरण से अलग होकर पानी में तुम्बी की तरह तैरने वाली खोपडियों का समूह उपस्थित हो जायेगा ।

इसीप्रकार तृतीय सर्ग के १८ वाँ १६ वाँ तथा पञ्चम सर्ग का उन्तालिसवाँ श्लोक इसके अन्य उदाहरण हैं ।

५.२.१.८ अद्भुत रस :

काव्यप्रकाश की रस–सूची में इसका ८वाँ स्थान है, जिसका स्थायीभाव विस्मय है । वस्तुतः पदार्थ का अतिशय अर्थात् पदार्थों के महात्म्यदर्शन इत्यादि के द्वारा चित्त के विस्तार को विस्मय[५५] कहते हैं ।

विस्मय नामक स्थायीभाव ही विभावानुभाव व्यभिचारियों से संयुक्त होकर अद्भुत रस के रूप में निष्पन्न होता है । उदाहरणार्थ –

अंशुकानि प्रवालानि पुष्पं हारादिभूषणम् ।
फलं मधूनि हर्म्याणि शाखानन्दन शाखिनाम् ।।[५६]

वृक्षों का अपना रूप पत्तों, पुष्पों, फलों वाली शाखाओं से सम्पन्न होता है, किन्तु यहाँ नन्दन वृक्षों के पत्तों इत्यादि के स्थान पर अंकुश, हाथ और मधु मन्दिरों का निरूपण किया गया है, यह आश्चर्य है । ऐसे अलौकिक आलम्बन विभावों से उत्पन्न विस्मय नामक स्थायीभाव उनके अवयव दर्शन इत्यादि उद्दीपन विभावों से उद्दीप्त होकर वागारम्भानुभावों से अनुमित होनेवाले हर्ष, रोमांच, स्वेद, गद्‌गद आदि व्यभिचारियों में निष्पन्न होकर अद्‌भुत कहा जाता है ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के तृतीय सर्ग के तैंतीसवें श्लोक में अद्‌भुत का एक दृश्य द्रष्टव्य है –

अमुं पुमांसं परिहृत्य कोऽपरः
प्रवर्ततामर्णवशोषकर्मणि ।
अमुं विना केन पुनर्महोदधा
वबन्धि सेतुः शतयोजनायतः ।।[५७]

अर्थात् समुद्र–शोषण कर्म में अगस्त्य ऋषि के अतिरिक्त कौन प्रवृत्त हो सकता है और शत योजन विस्तृत समुद्र में सेतु का निर्माण राम के अतिरिक्त अन्य कौन कर सकता है ?

अद्‌भुत के अन्य उदाहरण के रूप में चतुर्थ सर्ग के ३१, ३७, ४१, ७१, ६ तथा षष्ठ सर्ग का ६, सप्तम का ४ ओर अष्टम सर्ग का १६ वाँ श्लोक है ।

५.२.१.६ शान्तरस :

इसका स्थायीभाव निर्वेद है ।

गंगावतरणम् महाकाव्य में भक्ति, आराधना एवं पूजा आदि के वर्णनावसरों पर सर्वत्र शान्त रस का चित्रण सरलतया देखा जा सकता है । इस ग्रन्थ में इस रस के असंख्य उदाहरण हैं । अतः इन्हें प्रस्तुतकर शोध–प्रबन्ध को विस्तृत करना मैं समुचित नहीं समझती ।

५.२.२ अलङ्कार–योजना

५.२.२.१ प्रस्तावना

कवि की भाषामयी सृष्टि की समीक्षा का प्रारंभ कब हुआ ? किसके द्वारा हुआ ? उसका अनुमान संभव है परन्तु निर्णय नहीं । सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में काव्यशास्त्रीय विवेचन प्राप्त होता है ।

काव्यरचना के सौन्दर्य विश्लेषक सौन्दर्य–विश्लेषण के लिए अनेक दृष्टिकोण अपनाते हैं, जिसमें एक 'अलंकार' है । अलंकार शब्द 'धञि च भावकरणयोः' सूत्र से संपन्न हुआ है, उसका अर्थ भाव या भूषण होता है । आचार्य वामन इस तथ्य को 'सौन्दर्यमलंकारः' कहकर बताते हैं । आचार्य भामह 'अलंकार' तत्त्व को काव्य के सौन्दर्य के रूप में स्थापित करते हैं । उनके मत से 'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्'[५८] कहा गया है । आचार्य दण्डी के मत से – 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते'[५९] कहा गया है । आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में कहें, तो कहा जा सकता है कि – 'शब्दार्थयोस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः'[६०] वह अलंकार है । आचार्य आनन्दवर्धन अलंकार का उद्धरण निम्नलिखित पद्य में बताते हैं –

रसक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियो भवेत् ।।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलंकारो ध्वनौ मतः ।।[६१]

आचार्य मम्मट के मतानुसार अलंकार 'रस का उपकारक है', रस का धर्म नहीं, ऐसा कहकर वे अलंकार का निरूपण करते हैं ।

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेणजातुचित् ।
हारादिवदलंङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ।।[६२]

आचार्य रुय्यक अलकंार को बाह्यशोभारूप मानते हैं । वे उसे सात विभागों में विभाजित करते हैं, यथा सादृश्य, विरोध, शृंखला, तर्क, वाक्यन्याय, लोकन्याय और गूढ़ार्थप्रतीति । नव्य काव्य शास्त्रियों में आचार्यवेणीदत्त का मन्तव्य है कि 'बिना आभूषण की नारी जैसे मनोहारी नहीं बनती, वैसे ही अलंकार के

विना काव्य रोचक नहीं बनता'[६३] काव्य की सरूपता और विरूपता की चर्चा करते हुए आचार्य रामदेव भट्टाचार्य का मत निम्नलिखित है –

भूष्यन्ते काव्यरूपाणि विना तैः स्याद् विरूपता ।
अलङ्कारा इति ख्यातास्तस्मात्ते योषितामिव ।।[६४]

श्रीकृष्ण कवि के मतानुसार अलंकार में शब्द और अर्थ का महत्त्व है ।[६५] 'शोभित अर्थ' अर्थात् अलंकार ऐसा विद्याराम का मंतव्य है ।[६६]

छज्जूराम शास्त्री अलंकार विषयक मत देते हुए लिखते हैं –

काव्यशोभाकराः प्रोक्ता अलंकारा मनीषिभिः ।[६७]

इस लक्षण में वृद्धि करते हुए विश्वनाथ देव 'गुण विशिष्ट शोभाकर धर्म' अर्थात् अलंकार, ऐसा मानते हैं ।[६८] नरसिंह कवि अलकंार को चारुत्व के अतिशय का हेतुरूप मानते हुए लिखते हैं कि –

अलंक्रियतेऽनेनेति चारुत्वातिशयहेतुरलंकाराः ।[६९]

आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी के मतानुसार 'सौंदर्य और सौंदर्य के हेतु दोनों रूप से जो व्याप्त रहता है, वह 'अलंकार' है ।[७०]

अलग अलग आलंकारिकों ने काव्य में अलंकार तत्त्व और उसकी परिभाषा देते हुए इतना तो स्वकीर किया कि अलंकार मात्र आभूषित या विभूषित करने की शक्ति नहीं है प्रत्युत् काव्य में वह आंतरधर्म के रूप में होता है । जब भावावेग होता है, तब अलंकार 'अहमेवपूर्विकया' आ जाता है । भाषा की अलंकृति के लिए भी अलंकार का उन्मेष जरुरी है । श्रीमती इन्दुचन्द्र त्रिपाठी ने अलंकारों को विचित्र अभिधा नाम से स्वीकारा है । उसके कारण कोई वाक्य काव्य बन जाता है, यदि उसमें लक्षणा या व्यञ्जना न हो ।[७१]

जो हृदयस्थभावों को प्रकट करता है । प्रतिभा संपन्न साहित्यकार जहाँ, जब और जिस प्रकार सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतमभावों को अभिव्यक्त करनेवाले हों वहाँ, तब और उसी प्रकार वे विचित्र अभिधारूप उपमा इत्यादि से उसे व्यक्त करते हैं ।

अलंकारो का वर्गीकरण :

अलंकारों को काव्यशास्त्रियों ने तीन प्रकार से विभाजित किया है । (१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार (३) उभयालंकार । आचार्य दण्डी और आचार्य उद्भट शब्दश्लेष ओर अर्थश्लेष के नाम से अलंकार को विभाजित करते हैं । जबकि आचार्य मम्मट दोनों आचार्यों के मत का विरोध करते हैं और शब्द, अर्थ तथा उभयगत तीन प्रकारों में विभाजित करते हैं ।

अलंकारों की संख्या :

कुछ समय बाद आचार्य भरत प्रदर्शित चार अलकांरों में से अय्यपीदक्षित के मतानुसार ११७ अलंकार हो गये । आचार्य वामन ३१ मानते है । जबकि आचार्य भामह और उद्भट के मतानुसार ३० से ४० तक की संख्या में अलकांरों की गणना की गयी । आचार्य मम्मट ६७, रुय्यक ८२, जयदेव १००, कुवलयानन्दकार ११५ रुद्रट ७३ एवं पण्डितराज जगन्नाथ ७०, अलंकारों का अपनी–अपनी कृतियों में विवचन करते हैं ।[७२]

ते चाद्यापि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्र्येन वक्ष्यति ।

अलंकारों के विकास की मूल प्रवृत्तियाँ

अलंकारों के व्यापकता ज्यों–ज्यों बढ़ती गयी, त्यों–त्यों प्रश्न उपस्थित हुए कि अलंकारों की व्यापकता के कारण क्या हैं ? प्रायः अलकांरों के विकास के निम्नलिखित कारण हैं –

(१) काव्य के वर्ण्यविषय की अनाकर्षकता दूर करना ।
(२) काव्य में चमत्कार उत्पन्न करना ।
(३) मानवीय परिस्थितियों का अनवरत विकसित होना ।
(४) प्रहेलिका आदि का विकास ।
(५) वर्ण्याविषय को पाठक के समक्ष ललित रूप में प्रस्तुत करना
(६) कथन पर बल देना और उसे विस्तार देना ।

(७) सामान्य की अपेक्षा काव्यगत सादृश्य का आहलादक होना ।

(८) चित्र, चक्र एवं पद्‌म का वर्णन ।

(९) सौन्दर्य के मूल में सादृश्य तत्त्वों का सम्मिश्रण ।

५.२.२.२ 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य में अलङ्कार विधान

यद्यपि अलङ्कारशास्त्र में अलङ्कारों की संख्या अनन्त है, तथा गंगावतरणम् में अधिकांश प्रतिष्ठित एवं सर्वमान्य अलंकारों का प्रयोग भी कवि ने किया है, किन्तु शोध–प्रबन्ध के विस्तार भय के कारण यहाँ कुछेक प्रमुख अलङ्कारों का विवेचन ही मुझे अभीष्ट है क्योंकि उनका वर्णन प्रकृत प्रसंग में आवश्यक है तथा साथ–२ उन अलंकारों के कारण काव्य के प्रतिपाद्य निरूपण में सहयोग भी प्राप्त होता है अर्थात् यहाँ अलंकारों से व्यञ्जित प्रासंगिक अर्थवत्ता का भी मैंने यथा सम्भव उल्लेख किया है । यथा –

अर्थालङ्कार

(अ) उपमालङ्कार

साम्य सौन्दर्य का मूल है । लोक में कभी–२ जैसे जुड़वाँ सन्तानों में साम्य होता है उसीप्रकार वाग्व्यवहार में समान पदों में भी सौन्दर्य की अनुभूति होती है । उस आधार पर स्वीकृत सादृश्यमूलक होने के कारण उपमालंकार का स्थान सर्वोपरि है, जिसे सभी आलङ्कारिकों ने मुख्य अलंकार के रूप में स्वीकार किया है । यहाँ तक कि वैयाकरण पाणिनि भी उपमा का विवेचन करते हुए कहते हैं कि – उपमानानि सामान्यवचनैः ।

(ब) उपमा के भेद

आचार्य दण्डी को ३२ प्रकार की भेदवाली उपमा स्वीकार है ।[७३] अग्निपुराणकार उपमा के समास और असमास नामक दो भेदों को स्वीकृति देते हैं ।[७४] आचार्य भामह तीन भेदों को स्वीकार करते हैं, जिसमें उपमा सादृश्यगत

इत्यादि का समावेश हुआ है ।[७५] आचार्य उद्भट इवादिवाच्या, सादृश्यादि वाचकलुप्ता, इसप्रकार विभक्त करते हैं; जिसका १७ भाग बनता है ।[७६] आचार्य भोज अभिधीयमाना और प्रतीयमाना रूप मानकर २५ भेद करते हैं ।[७७] आचार्य मम्मट पूर्णा और लुप्ता नामों से उपमा के भेदों को पृथक् करते हैं ।[७८] शोभाकर मिश्र उपमा के अंतर्गत भाव और अभाव रूपा दो शाखा बताते हैं ।[७९]

अलंकार के संदर्भ में तो विद्वानों का कहना है कि –

उन कटक कुण्डलादि आभूषणों को अलंकार कहते हैं, जो कामिनी की शोभा बढ़ाते हैं । इसीप्रकार काव्य के उन उपकरणों को भी जो कविता कामिनी की शोभा बढ़ाते हैं, 'अलंकार' कहते हैं ।

अलंकार काव्य का सौन्दर्याधायक तत्त्व है । अतएव 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में अलंकारों की मनोहारी व्यंजना हुई है । यद्यपि इस महाकाव्य में यत्र–तत्र सभी अलंकारों के शब्दालंकार, अर्थालंकार और कहीं–कहीं उभयालंकार का प्रयोग हुआ है । काव्य में अर्थो की चमत्कारी योजना का प्रभावी चित्रण पदे–पदे प्राप्त होता है । यद्यपि नीलकण्ठ दीक्षित के काव्यों में शब्दालंकारों का प्रयोग बहुत कम मिलता है क्योंकि शब्दालंकारों में बुद्धि विलास होने के कारण 'महाकवि की रुचि नहीं दिखाई देती । यही कारण है कि उनके काव्यों में यमक, श्लेष आदि के प्रयोग नगण्य जैसे हैं ।

कवि ने अर्थालंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया है । अर्थालंकारों में भी उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा आदि का इनकी कृतियों में बाहुल्य है ।

उपमा नामक अलंकार के प्रयोग गंगावतरणम् के निम्नांकित स्थलों में मुख्य रूप से सरलतया देखे जा सकते हैं – १–१४, २१, २२, ४०, २–५४, ३–५३, ४–१०, ५–३५, ३७, ४१, ५७, ६०, ६–१०, ७–१०, ८–६०, ७१ तथा ८६ में उपमा के विवेचन का सूक्ष्म विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है ।

'साधर्म्य' अथवा समानधर्मतारूप सम्बन्ध कार्य–कारण आदि में नहीं अपितु 'उपमान' ओर 'उपेमय' में ही हो सकता है और इसलिए उन्हीं दोनों अर्थात्

उपमान और उपमेय का ही जो समान धर्म से सम्बन्ध है उसे ही उपमा कहते हैं । काव्यप्रकाशकार मम्मट ने इसको दो प्रकार का माना है (१) पूर्णोपमा, (२) लुप्तोपमा ।

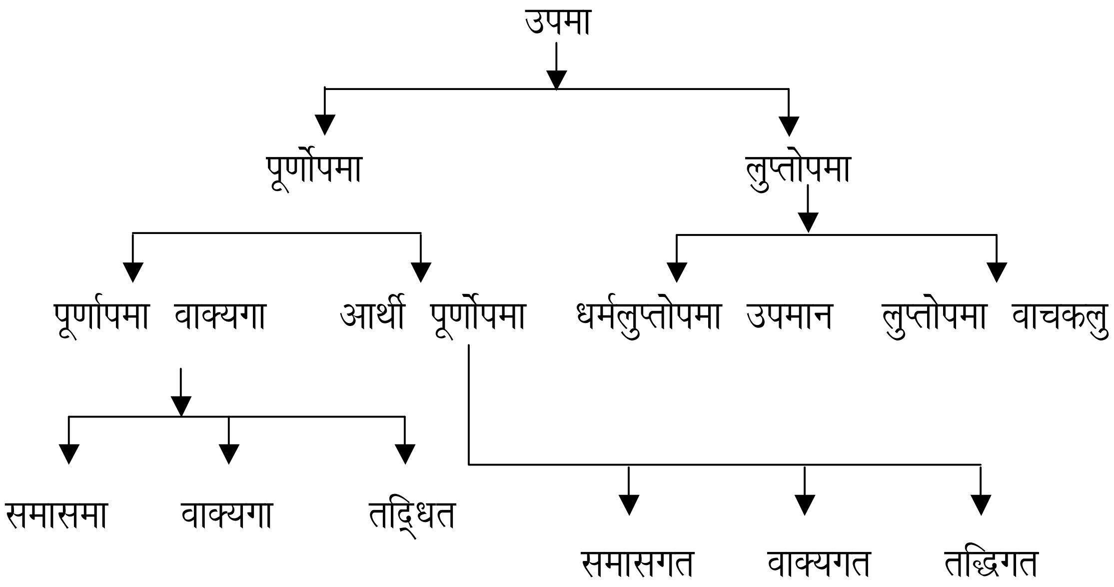

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में दीक्षितजी ने निम्नलिखित उक्ति के माध्यम ने उपमा का उदाहरण पहले से ही प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया है । यथा – प्रथम सर्ग के २१, २२ तथा ४०, द्वितीय सर्ग के ५४, तृतीय सर्ग में ५७, पञ्चम सर्ग में ३५, ३७, ४१, ५७, ५६, ६० तथा अष्टम के ६०, ७१ और ८६ श्लोक उपमा के उदाहरण हैं । इसके अतिरिक्त अधोलिखित श्लोक भी उदाहरणार्थ द्रष्टव्य हैं –

अचमत्कृतसन्दर्भमर्थं नैवाद्रियामहे ।
अत्यन्तभोगौपयिकमैश्वर्यमिव देहिनाम् ।।[८०]

चमत्कार रहित अर्थवाले काव्य का हम आदर नहीं करते । जैसे अत्यन्त मुक्त शारीरिक वैभव का सम्मान नहीं होता । इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य के अन्य सर्गों में भी रूपक के उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

(स) रूपक और उसके भेद

उपमेय और उपमान का जो अभेद, अभेदारोप अथवा काल्पनिक अभेद है, उसे रूपक अलंकार कहा जाता है । रूपक भेद और प्रभेद मिलाकर तेरह प्रकार का कहा गया है –

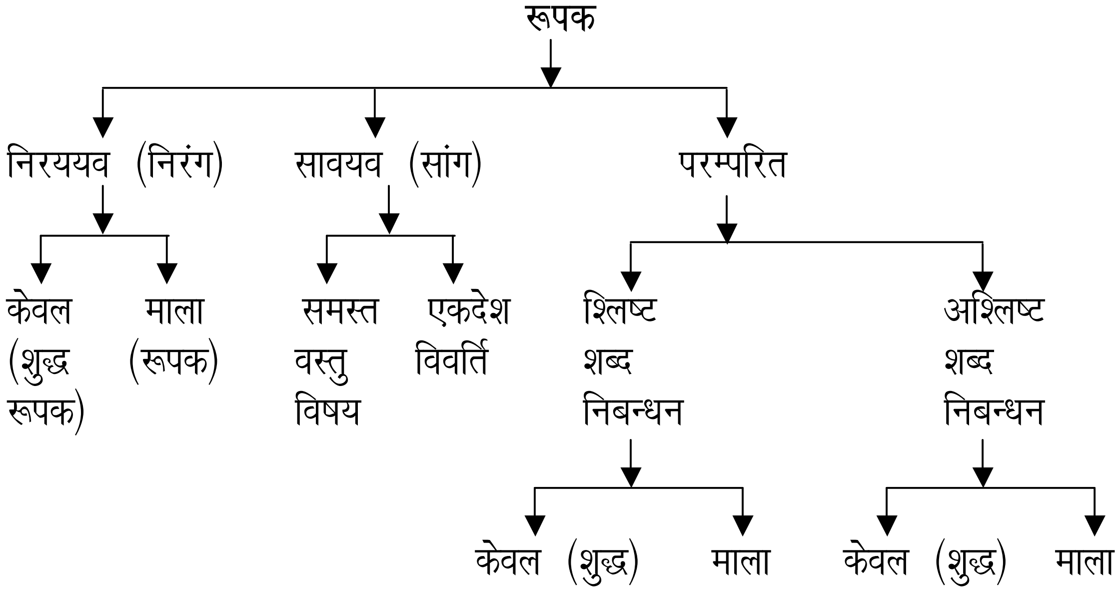

रूपकालश्चार की गतार्थता के लिए इस प्रसंगमें 'गंगावतरणम्' महाकाव्य का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है –

तां जह्नुकोपाद्व्यसनं प्रपन्नां
कालाद्वहोः श्रोणितलेऽवतीर्णम् ।
नद्योनुरक्ता इव तत्र तत्र
तरंगहस्तैर्दृढमालिलिंगुः ।।[८१]

इस के अतिरिक्त अन्य उदाहरण गंगावतरणम् महाकाव्य में १–५, ३–१६, ६–१७, ७–१७ व ४६, ८–५ व ६ के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं ।

अर्थात् अत्यधिक समय तक जह्नु ऋषि के कोप से विकृतिजन्य व्यसन को प्राप्त होकर पृथ्वी पर उतरने वाली सुर नदी का अनुरागिणी नदियों ने तरंगरूपी हाथों से आलिंगन किया ।

इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य के अन्य सर्गों यथा तृतीय सर्ग के श्लोक संख्या १६, षष्ठ सर्ग के श्लोक संख्या २७, ४३, सप्तम सर्ग के श्लोक संख्या १६, ४६ तथा अष्टम सर्ग के श्लोक संख्या ५/६ द्रष्टव्य हैं ।

(द) उत्प्रेक्षालंकार

उत्प्रेक्षा वह अलंकार है, जहाँ प्रकृत (उपमेय) का उसके समान (अप्रकृत) उपमान में तादात्म्य की सम्भावना किया करते हैं ।

गंगावतरणम् महाकाव्य में 'उत्प्रेक्षा' का बाहुल्य है । इसका एक उदाहरण ध्यातव्य है –

नान्नमाद्रियत नाम्बु न मूलं का भविष्यतिकथापि फलानाम् ।
मारुतं परमभुक्तं निदाघस्तं च हर्तुमिव तस्य तदाभूत् ।।[८२]

उन्होंने कन्दमूल अन्नादिकों का आदर नहीं किया यानी परित्याग कर दिया, तो फलों की बात ही क्या होगी ? वे केवल वायु का पान करते थे । तीव्र घर्म उस समय ऐसा लग रहा था, मानों वह उनका अपहरण कर रहा हो ।

इसीप्रकार गङ्गावतरणम् के अन्य स्थलों में यथा द्वितीय सर्ग के श्लोक संख्या, ३५, तृतीय सर्ग के श्लोक संख्या १, चतुर्थ सर्ग के श्लोक संख्या ३, १०, १८, ४८, पञ्चम सर्ग के श्लोक संख्या ३८, ४२, ४६, ४७, ४६, षष्ठ सर्ग के श्लोक संख्या ३०, ३३, ६२, और ६६ एवं अष्टम के श्लोक संख्या ३ में भी उत्प्रेक्षा अलंकार प्राप्त होता है ।

(य) अतिशयोक्ति अलंकार :

अतिशयोक्ति वह अलंकार हैं जिसमें कुल चार लक्षण पाये जायँ –

१. उपमेय का ऐसा अध्वसायकाल्पनिक अभेद निश्चय किया जाय कि वह उपमान को पृथक् निर्दिष्ट न दिखाई दे (अर्थात् उपमेय का उसके वाचक शब्द से ग्रहण न हो), (२) वर्ण्य विषय का उसे भिन्न प्रकार से वर्णन किया जाय,

(३) यदि शब्द के अभिप्राय में किसी असम्भाव्य अर्थ की कल्पना की जाय और (४) कार्य तथा कारण के पूर्वापरभाव का वैपरीत्य प्रदर्शित किया जाय ।

गङ्गावतरणम् महाकाव्य के निम्नलिखित श्लोक में अतिशयोक्ति का एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

प्रदर्श्यताम् कस्यपुरः पयोजवो निवेद्यतांवा नृप केवलंगिरा ।
न सन्निकर्षेवडवामुखानलो न वा स योगी चुलुकीकृतार्णवः ।।[८३]

अर्थात् हे राजन्, मेरा जल प्रपात किसी के समक्ष दिखाया नहीं जो सकता, मात्र वाणी से ही कहा जा सकता है । मेरे जल–प्रपात को वडवाग्नि और चुल्लू से समुद्र पान करने वाले योगी अगस्त्य भी नहीं धारण कर सकते ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' के अनेक स्थलों में – तृतीय सर्ग के श्लोक संख्या ६, ७, ८, १० एवं अष्टम सर्ग के ६ व ७३ में भी अतिशयोक्ति देखा जा सकता है ।

(र) सन्देहालङ्कार :

सन्देह वह अलंकार है जिसमें (उपेमय की उपमान के साथ एकरूपता में) एक (सादृश्यमूलक) संशय अथवा सन्देह रहा करता है जा कि भेद (उपमेय और उपमान में किसी वैधर्म्य के स्पष्ट कथन) और 'भेदानुबन्धित' (उपमेय और उपमान में किसी वैधर्म्य के अकथन) दोनों प्रकारों से सम्भव 'गंगावतरणम्' महाकाव्य का एकमात्र उदाहरण द्रष्टव्य है –

ससर्ज यस्त्वां त्रिजगन्नियामकश्चतुर्मुखः सोऽपि यदित्वमूर्मिभिः ।
अवापितस्तत्क्षणमात्मसंशय कथैव का स्याज्जगतो विनश्यतः ।।[८४]

अर्थात् तीन लोकों के नियामक चतुर्मुख ब्रह्मा ने तरंगों के साथ–साथ आप की रचना की । यदि वे भी उस समय सन्देह में पड़ गये होते तो जगत् के विनाश की बात ही क्या ?

यहाँ गङ्गावतरणम् महाकाव्य के तृतीय सर्ग का यह १४ वाँ श्लोक सन्देहालंकार का एकमात्र उदाहरण है ।

(ल) विरोधाभास अलकांर :

विरोधाभास वह अलंकार है, जहाँ दो वस्तुओं का, उनमें वस्तुतः किसी प्रकार के विरोध के न होने पर भी, ऐसा वर्णन किया जाय, जिससे इसमें विरोध की प्रतीति उत्पन्न हो जाय ।

किसी भी वस्तु में १० प्रकार के विरोध सम्भव हैं, जिसके कारण विरोधाभास १० प्रकार का होता है –

१. जाति का जाति से विरोध
२. जाति का गुण से विरोध
३. जाति का क्रिया से विरोध
४. जाति का द्रव्य से विरोध
५. गुण का गुण से विरोध
६. गुण का क्रिया से विरोध
७. गुण का द्रव्य से विरोध
८. क्रिया का क्रिया से विरोध
९. क्रिया का द्रव्य से विरोध
१०. द्रव्य का द्रव्य से विरोध

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

क्व नु नाम सभा राज्ञां दुराक्षेपैकशिक्षिता ।
क्व नु वाचः सुधीलोकलालनैकरसः कवेः ।।[९५]

अर्थात् कहाँ राजाओं की दूषितारोप प्रशिक्षित राजसभा ? कहाँ बुद्धिजीवियों के जीवनाधार रस को धारण करने वाली कवि–वाणी ? ये दोनों परस्पर विरोधी हैं ।

(क) सम्भव अलंकार :

सम्भव अलंकार सर्वप्रथम सरस्वती कण्ठाभरण में ही हमारे सम्मुख अवतरित होता है । भोज ने सम्भव अलंकार के लक्षण में कहा है कि प्रभूतकारणों को देखकर किसी विशिष्ट कार्य की सिद्धि के प्रति प्रबल सम्भावनाएँ स्वीकार कर लेना तथा कदाचित् ''ऐसा ही होगा'' यह मान लेना 'सम्भव' अलंकार है । यथा –

प्रभूतकारणालोकात् स्यादेवमितिसम्भवः ।
स विद्यो वा निषेधे वा द्वये वा न द्वयेऽपि वा ।।[८६]

सम्भव अलंकार के भोज ने निम्नलिखित ४ भेद किये हैं –

१. विधि विषयक
२. विधिनिषेध विषयक
३. निषेधविषयक
४. अनुभवविषयक

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के अधोलिखित श्लोक में 'सम्भव' अलंकार का प्रयोग मात्र एक स्थान पर ही किया गया है –

न यदाह मनु र्वध्यान्न च नासृजदब्जभूः ।
न वान्तकः कविंमन्यान्नयते तन्मदंहसा ।।[८७]

अर्थात् मनु ने कहा है कि अभिमानी कवियों का वध नहीं करना चाहिये, ब्रह्मा इनकी सृष्टि नहीं करते और यमराज भी इनका अन्त नहीं करते । अपने प्रबल अहंकार से ही इनका विनाश सम्भव है ।

(ख) अप्रस्तुत प्रशंसालंकार :

भोज के लक्षणानुसार जब निन्दनीय पदार्थ का किसी कारणवश स्तवन किया जाता है, वहाँ अप्रस्तुत प्रशंसालंकार होता है । यथा –

भेदश्छेदकृशोदरं लघुभवत्युत्थानयोग्यं वपुः ।

सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भवक्रोधयोः ।।

उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले ।

मिथ्यैव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कृतः ।।[८८]

– ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्''

यहाँ पर 'अहिंसा परमो धर्मः' इस धर्म से बाधित अतएव निन्दित 'मृगया' की प्रशंसा की गई है । इसलिए यहाँ 'अप्रस्तुत प्रशंसाअलंकार है ।

भोज के पूर्ववर्ती आलंकारिकों ने अप्रस्तुत प्रशंसा के विस्तार की अथवा विशिष्ट भेदों की चर्चा बहुत नहीं की है । भोज ने अप्रस्तुत प्रशंसा के दो भेद किये हैं –

१. वाच्या,

२. प्रतीयमाना

स्वाभिप्राय की प्रकृष्ट रूप से सिद्धि के लिए धर्म, अर्थ, काम में से अन्यतम अर्थात् किसी एक को बाधित करके अप्रस्तुत प्रशंसा उत्पन्न होती है, अतएव इसके कुल छः प्रभेद हो जाते हैं ।

१. धर्मबाधया अभिधीयमाना

२. धर्मबाधया प्रतीयमाना

३. अर्थबाधया अभिधीयमाना

४. अर्थबाधया प्रतीयमाना

५. कामबाधया अभिधीयमाना

६. कामबाधया प्रतीयमाना

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के निम्नलिखित सर्ग के प्रस्तुत श्लोक में 'अप्रस्तुत प्रशंसा' का उदाहरण उद्धृत किया गया है ।–

निःशंका न प्रवृत्तोऽस्मि निन्दितुं कविमानिनः ।

निन्दामपि विगायन्ति यतः श्लाघामिवात्मनः ।।

अर्थात् निःशंक होकर अभिमानी कवियों की निन्दा करने के लिए प्रवृत्त नहीं हो सकता क्योंकि ये उसे भी अपनी प्रशंसा मानकर गान करेंगें ।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक अलकांरों की छटा भी यथावसर देखी जा सकती है, किन्तु विस्तारभयात् अन्य अलंकारों के उदाहरण व लक्षण यहाँ मैं प्रस्तुत नहीं कर रही हूँ ।

५.२.३ छन्द–योजना

५.२.३.१ पृष्ठभूमि

आचार्य दण्डी के मत के अनुसार 'पद्य चतुष्पदी'[८६] कहा गया है । छन्दशास्त्रज्ञ क्षेमेन्द्र लिखते हैं –

प्रबंधः सुतरां भाति यथास्थानं निवेशितः ।
निर्दोषैर्गुणसंयुक्तैः सुवृत्तैर्मौक्तिकैरिव ।।
काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च ।
कुर्वीते सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागविद् ।।[६०]

अर्थात् निर्दोष, गुणयुक्त तथा सुन्दर वृत्तो में मोती की तरह निवेशित प्रबंध अति सुशोभित हो रहा है । इसलिए काव्य में रस तथा वर्णनीय वस्तु के अनुसार छन्दों को विभाजित करके उसका प्रयोग करना चाहिए । पद्यात्मक रचना के लिए छन्द और छन्दज्ञान दोनों आवश्यक हैं । छन्दों को दो प्रकार से जाना जाता है ।

छन्द–भेद–वर्णिक, मात्रिक

(१) *वर्णिक :* जिसमें एक वर्ण से छब्बीस वर्णो तक का प्रयोग होता है ।

(२) *मात्रिक :* जिसमें एक से बत्तीस मात्रा तक का सदुपयोग होता है ।

वर्णिक में समवृत्त, अर्धसमवृत्त और विषमवृत्त इस तरह तीन प्रकार हैं । छन्द वेदांग के अन्तर्गत भी समाविष्ट है । चौदह विद्याओं में से एक विद्या है ।[६१] ऐतरेय ब्राह्मण छन्द यज्ञ की बात करते हैं ।[६२] मन्त्र पठन में छन्द ज्ञान

आवश्यक है ।[६३] निर्वचन की दृष्टि से 'छन्दांसि छादनात्' कहा जाता है ।[६४] उपचारवशात् 'छन्दस्' शब्द वैदिक भाषा के लिए उपयोग किया गया है । जिसकी संख्या ७ है । जैमिनीय ब्राह्मण के अनुसार 'छन्द देवों के निवास स्थान का रूप है । शौनक ने 'ऋकप्रातिशाख्य' नाम से, पतंजलि ने 'निदानसूत्र', कात्यायन ने' सर्वानुक्रमणी, 'पिङ्गलाचार्यने 'छन्दशास्त्र', जयदेव ने जयदेव छन्दस्' केदारभट्टने वृतरत्नाकर', क्षेमेन्द्रने 'सुवृत्त तिलक, हेमचन्द्रने 'छन्दोनुशासन' और गङ्गादासने ' छन्दोमंजरी नाम से छन्द वृत्त ग्रन्थों की रचना करके छन्द् शास्त्र को विकसित किया है ।

'छन्द अर्थात् चेतना के संवादी स्पन्दन का घाट, उसका एक प्रकार । कविता में जो लय है, गति है, उसके सर्जन कर्ता छन्द के स्पन्दन की प्रतिकृति हैं । जिस तरह त्वचा के साथ शरीर का सम्बन्ध है, उसीतरह छन्द काव्य के साथ सम्बद्ध है ।[६५]

छन्द विवेचन :

यद्यपि वैदिक काव्य में विभिन्न छन्दो का प्रयोग हुआ था, परन्तु लौकिक छन्दों का सुस्पष्ट व्यवस्थित रूप महाभारत में ही सामने आया । इनमें से अनुष्टुप् का प्रयोग अथर्ववेद और उपनिषदों में हो चुका था, पर उसमें भी यति, वर्ण और लय की लौकिक छन्दों के अनुरूप व्यवस्था रामायण और महाभारत में इसके प्रयोग से आयी । अनुष्टुप् के अतिरिक्त अन्य छन्दों का भी प्रयोग इन दोनों काव्यों में प्रायः पहली बार हुआ, जो लौकिक काव्य में गृहीत हुए ।

'छन्द्' चुरादि गण का उभयपदी शब्द है । जिसके साथ धञ् प्रत्यय करने पर छन्द तथा नपुसक लिंग में असुन् प्रत्यय करने पर छन्दस् शब्द निष्पन्न होता है । शब्द कोश में छन्द के अनेक अर्थ किये गये हैं । कहीं पर छन्द का अर्थ वेद, इच्छा व प्रसन्न करना होता है तो कहीं कामाचार, नियंत्रण एवं कल्पना; किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में छन्द शब्द का अर्थ वेद के एक ऐसे अङ्ग से है, जो

वेद के मन्त्रो अथवा लौकिक श्लोकों या पद्यों को गेय बनाने का मार्ग प्रशस्त करता है । यह वह शास्त्र है, जिसमें वर्ण, मात्रा एवं उच्चारण आदि का अत्यन्त महत्त्व होता है । उसके अनेक नियम होते हैं । यही कारण है कि सामवेद के मन्त्र सस्वर गाये जाते हैं । छन्द का सस्वर पाठ करने वाला विद्वान् साम गायक कहा जाता है ।

छन्दोगः सामवेदाध्यायी (मनु. ३/१४५)

छन्द शास्त्रियों का मत है –

"अपि माषम् मषम् कुर्यात् छन्दोभङ्गम् न कारयेत्"

अर्थात् श्लोकों की रचना में माषम् के स्थान पर मषम् भले लिखना पडे किन्तु छन्द का भङ्ग नहीं होना चाहिए । पद्य रचना मे सम्बद्ध छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों की परम्परा में दण्डी द्वारा विरचित 'छन्दः परीक्षा' नाम के एक ग्रन्थ की भी चर्चा है । छन्दः शास्त्र की महत्ता इस बात से भी समझी जा सकती है कि भले 'छन्द' शब्द वेद के अर्थों में ही प्रयुक्त किया गया हो, किन्तु महर्षि पाणिनि ने 'बहुलम् छन्दसि' कालिदास ने 'प्रणवश्छन्दसामिव' (रघु. १/११) एवं श्रीमद् भगवत् गीता में भगवान् वेदव्यास ने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को छन्दों में गायत्री कहकर छन्द की महत्ता को पूर्णतया प्रमाणित अवश्य कर दिया है ।

'गायत्री छन्दसामहम्' (श्रीमद्भग्वद्गीता) पञ्चमस्तु छन्दोमात्रगोचरः (सिद्धान्तकौमुदी) ।

इसीप्रकार वेद के विद्वान् महा मनीषी निरुक्तकार यास्क ने अपनी कृति निरुक्त के अन्तर्गत छन्दः कस्मात् ? का उत्तर देते हुए इस शब्द का सविस्तार निर्वचन निम्नलिखित रूप से किया है –

'छादयन्ति ह वा एनं छन्दांसि पापात्कर्मणः'[६६]

अर्थात् छादकत्व ही छन्द का सामान्य लक्षण है । मन्त्र का तेज छन्दः स्वरूप कवच से आच्छादित होता है ।

पाणिनीय क्रम में छन्दयति आह्लादयति, इति छन्दः ।[६७] कहा गया है

उपर्युक्त दोनों प्रकार की व्युत्पत्तियाँ उपयुक्त ही हैं । पद्य शब्द की भी व्युत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार से की गयी है । यथा –

पदं – चरणमृतद् अर्हतीति पद्यम् ।[९८]

चरण का अर्थ है श्लोक का चतुर्थभाग । इसप्रकार सभी वृत्तों की रचना चार–चार चरणों से होती है । इसलिए वृत्तमात्र को पद्य कहा जाता है । पद्य के दो भेद हैं । वृत्त और जाति । वृत्त गणों से नियमित रहता है और जाति मात्राओं से नियमित होती है । तीन–तीन अक्षरों का एक एक गण होता है ।

इन तीन अक्षरों में लघु व गुरु को चाहे जैसे उलट–फेर से रखा जाय, उनके आठ ही प्रकार होते हैं, इसलिए 'मयरसतजमन' ये आठ ही गण माने गये हैं ।

जाति छन्द परिगणित भाषाओं में से ही बनता है । जिसमें लघु गुरुक्रम की अपेक्षा नहीं रहती । इसलिए जाति और मात्रावृत्त पर्याय शब्द माने जाते हैं । वृत्तछन्द गणों से निगमित रहता है । इसलिए उसे 'गण–वृत्त' भी कहते हैं । गणवृत्तों से मात्रावृत्त की रचना सरलता से होती है, क्योंकि उसमें गणों का तो नियमन है नहीं, केवल अभीष्ट भाषाओं का ही संग्रह करना होता है । वसन्ततिलका मालिनी, हिरणी, इत्यादि गणवृत्त हैं । आर्या गीति आदि मात्रावृत्त हैं ।

गणवृत्त एकाक्षर पाद से लेकर २६ अक्षर के पाद तक के होते हैं । मात्रवृत्तों में इस विषय में कोई नियम नहीं है तथापि उनमें १२ मात्राओं से २८ मात्राओं तक के पाद दिखायी पड़ते हैं । दोनों प्रकार के वृत्त और जाति छन्दों में चार चार चरण होते हैं । इन्हीं चरणों के प्रताप से सम, अर्धसम और विषम, इसप्रकार से पद्यों के तीन भेद होते हैं । जिस पद्यके चारों चरणों में गण समान ही रहें, वह समवृत्त पद्य है । जिसमें पहले और तीसरे, दूसरे और

चौथे चरणों में गण समान हों, वह अर्द्ध समवृत्त पद्य और जिसमें चारों चरणों के गण भिन्न रहें, वह विषमवृत्त पद्य है ।

जाति अर्थात् मायावृत्त प्रायः अर्द्धसम अथवा विषम रहते हैं । गणवृत्तों में वसन्ततिलका आदि वृत्त 'सम' होते हैं । पुष्पिताग्रा, वियोगिनी आदि 'अर्द्धसम' हैं । वक्त्र, पथ्यावक्त्र, आदि 'विषम' हैं ।

गण आठ प्रकार के होते हैं । गणों के स्वरूप को ध्यान में लाने के लिए एक सरल प्रकार यहाँ दिखाते हैं –

'यमाताराजभानसलगा' सूत्र के अनुसार जिस गण का स्वरूप जानने की इच्छा हो, उस गण का वाचक प्रथमाक्षर लेकर उसके आगे के दो अक्षर पढ़ने से उसका स्वरूप बन जाता है उदाहरणार्थ – यदि यगण का स्वरूप जानना हो तो सूत्र में पहला अक्षर 'य' से आगे दो अक्षर 'माता' मिलने से 'यमाता' हुआ । यही गण का आदि लघु मध्यान्त गुरु स्वरूप बन गया । इसीप्रकार 'मगण' का स्वरूप जानना हो तो 'मातारा' मिलाने से त्रिगुरु मगण बन गया । तगण का 'ताराज', 'रगण' का 'राजभा' इत्यादि बन जाता है ।

यति अथवा विराम :

किसी भी पद को कहते हुए जहाँ जिह्वा को विश्रान्ति देना आवश्यक होता है, उस स्थान को यति स्थान कहते हैं । 'यतिर्जिह्वेष्टविश्रान्तिः' यह यति का सामान्य लक्षण है । यति स्थान में पद भङ्ग होना दोष माना जाता है क्योंकि उससे अर्थानुसन्धान में प्रतिबन्ध होता है । इस दोष को यतिभंग कहते हैं । यति स्थान में पदैकदेश होने से वहाँ विश्रान्ति ले नहीं सकते, यदि विश्रान्ति लें, तो पद भंग होकर अर्थानुसन्धान बिगड़ जाता है । काव्यों में अर्थानुसन्धान ही प्रधान होने से पद भंग होना इष्ट नहीं है । अतः सम्पूर्ण पद का ही उच्चारण करना पड़ता है, वैसा उच्चारण करने से पद्यों के विश्रान्ति स्थान अर्थात् 'यति' का भंग होता है । यथा –

नमस्तस्मै महादेवाय शशाङ्कार्धचारिणे ।

स्थलविशेष में वृत्तविशेष की योजना :

किस वृत्त की कहाँ योजना करना कौन वृत्त किस रस के उपयुक्त है, इत्यादि विषयों का विचार मुख्यतः साहित्यशास्त्र में हैं । क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्त तिलक' नामक ग्रन्थ में इस विषय का विचार किया है । जैसे साहित्य शास्त्रीय प्रबन्ध व उपदेश प्रधान पौराणिक कथा आदि अनुष्टुप् छन्द में ही कहना चाहिए । श्रृंगाररस के लिए उपजाति तथा चन्द्रोदय वर्णन में रथोद्धता की योजना करनी चाहिए । वीर, रौद्र आदि रसों के लिए वसन्ततिलका, आक्षेप, एवं धिक्कार दिखाने के लिए पृथ्वी तथा राज पराक्रमादि के वर्णन के लिए शार्दूलविक्रीडित छन्द उपयुक्त है ।

इन्हीं लक्षणों के आधार पर नीलकण्ठ दीक्षित कृत महाकाव्य 'गंगावतरणम्' में आगत छन्दों का लक्षण देते हुए निम्नलिखित छन्दों को सूत्र सहित उद्धृत किया जा रहा है –

५.२.३.२ छन्द–प्रयोग

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरा वृत्तिः)

'चित्रपदा यदि भौगौ ।[९९] जिसके प्रत्येक चरण में आठ वर्णों की योजना हो और जिसमें ह्रस्व, दीर्घ का कोई अन्तर न हो, उसे 'अनुष्टुप्' कहते हैं । यथा –

पंचमं लघु सर्वेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः ।
गुरु षष्ठं च सर्वेषामेतच्छ्लोकस्य लक्षणम् ।।
असंख्यो भेदसंसर्गादनुष्टुप्छन्दसां गणः ।
तत्र लक्ष्यानुसारेण श्रव्यतायाः प्रधानता ।।[१००]

यद्यपि अनुष्टुप् के अनेक भेदबताये गए हैं किन्तु आठ (चित्रपदा, माणवक, विद्युन्माला, समानिका, प्रमाणिका, गजगति, हंसरुत, नाराचिका) प्रकार के अनुष्टुप् को ही प्रधानता दी गई है ।

इसी लक्षण के आधार पर 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में १ से ८१ और चतुर्थ सर्ग में १ से ६३ श्लोक अनुष्टुप् छन्द में ही लिखे गए हैं । यहाँ प्रथम सर्ग और चतुर्थ सर्ग का एक एक श्लोक क्रमशः द्रष्टव्य है –

सव्यङ्ग्यापि कवेर्वाणी सापभ्रंशा न शोभते ।
लम्बस्तनीं को विक्षेत रम्भामप्युर्वशीमपि ।।[१०१]

अर्थात् व्यंग्यपूर्ण अपभ्रंशित वाणी सुशोभित नहीं होती । जैसे लम्बे स्तनों वाली रम्भा और उर्वशी अप्सरा को भी कौन देखना चाहेगा ।

कंचुकाहरणातश्चातराणां मृगीदृशाम् ।
दयालुहेमनो वायुर्ददौ रोमांचकंचुकम् ।[१०२]

अर्थात् रतिकाल के समय वस्त्ररहित होने से सलज्ज मृगनयनियों को दयालु बर्फीले वायु ने रोमांचरूपी कंचुक (वस्त्र) प्रदान किया ।

वंशस्थबिल

वदन्ति वंशस्थबिले जरौ जतौ ।।[१०३]

जिस छन्द में जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं, उसे 'वंशस्थबिल' छन्द कहते हैं । यथा –

विलासवंशस्थविलं मुखानिलैः
प्रपूर्य यः पंचमरागमुद्गिरन् ।
व्रजांगनानामपि मानशालिनां
जहारमानं से हरिः पुनातु नः ।।[१०४]

अर्थात् जिस कृष्ण ने क्रीडा के समय वंशी के छिद्रों को मुख की वायु से भरकर पंचमराग से गाते हुए व्रजबंधुओं और नारदादि गायनाचार्यों के अभिमान को हर लिया, वे कृष्ण हमको पवित्र करें ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग के क्रमश ८२, ८३ तथा अष्टम सर्ग के ७१ से ८० तक सभी श्लोक 'वंशस्थबिल' छन्द में लिखे गए हैं, जिसका एक एक श्लोक क्रमशः द्रष्टव्य है –

पदं किमेतावदुदारतोचितं,
प्रयुज्य संशेयममुष्य दातृताम् ।
पदेषु यत् प्रत्यय एव नाशितः,
प्रयोगशूरैः कविभिः समन्ततः ।।[१०५]

अर्थात् 'इसकी दानशीलता प्रशंसनीय है । इसप्रकार चारों ओर प्रयोग निपुण कवियों के द्वारा राजा भगीरथ के लिए उदारता को पदभ्रयुक्त करके ' पदमर्हति इति पद्मम्' की यत्प्रत्ययजन्य निष्पन्नता व्यर्थ कर दी गई ।

पताकिनी मूलचरोभगीरथः
समन्त्रिवर्गैश्चतुरैरतर्क्यत ।
अनुद्रुतः प्राक्चिरमभ्रगंगया ।।
स्वयं च तां किञ्चिदनुद्रवन्निव ।।[१०६]

अर्थात् पहले सुरनदी ने राजा भगीरथ के पीछे–पीछे चलते हुए उनका अनुसरण किया था । इस समय वे राजा भगीरथ स्वयं चतुरंगिणी सेना के पीछे–पीछे चल रहे हैं । इसप्रकार राजा के चतुरमन्त्रियों ने विचार किया अर्थात् कभी उनका अनुसरण किया था । आज वे स्वयं नदी की तरह सेना का अनुगमन कर रहें हैं ।

शार्दूलविक्रीडित

'सूर्यास्वर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्'

जिसमें मगण, सगण, जगण, सगण और दो तगण तथा अन्त में एक गुरु हो और बारह तक सास पर यति हो, वह 'शार्दूलविक्रीडित' छन्द कहलाता है । यथा–

गोविन्दं प्रणमातमांग ! रसने ! तं घोषयाऽहर्निशं
पाणीः ! पूज्यतं, मनः ! स्मर, पदे ! तस्यालयं गच्छतम् ।
एवंचेत् कुरुथाखिलं मम हितं शीर्षादयस्तद्ध्रुवं
न प्रेक्षे भवतां कृते भवमहाशार्दूलविक्रीडितम् ।।[१०७]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ८४ वां, ९६ वाँ चतुर्थ सर्ग में ९५ वाँ और पञ्चम सर्ग में ६५ वाँ श्लोक 'शार्दूलविक्रीडित' है । इन सभी सर्गों में से एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

साम्राज्यं यदि सप्तमार्णवतटीविश्राम्यदाज्ञाक्षरं
सौन्दर्यं यदि मुद्रिताः स्मरगिरः साचेन्मतिः कोगुरुः ।
शौर्यं चेत्पुनरन्यदेव तदिति स्तोत्रं विचित्रं सतां
शृण्वन्नेव भगीरथक्षितिपतिर्निन्ये सहस्रं समाः ।।[१०८]

अर्थात् जिसका आज्ञासूचक साम्राज्य सप्त 'समुद्रपर्यन्त विस्तृत है, उसके शारीरिक सौन्दर्य में कामोक्तियाँ मुद्रित हैं । ऐसे विद्वान् का गुरु कौन हो सकता है ? उनकी शूरता ही कुछ और है । इसप्रकार सज्जनों के स्तोत्र का श्रवण करते हुए राजा भगीरथ ने हजारों वर्ष व्यतीत किये ।

शिखरिणी

'रसैः रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला यः शिखरिणी ।'

जिसमें यगण, भगण, सगण, भगण तथा अन्त में क्रमशः एक लघु और एक गुरु हो, उसको 'शिरवरिणी' छन्द कहते हैं । यथा –

करादस्य भ्रष्टे ननु शिखरिणी दृश्यति शिशो
विलीनाःस्म सत्यं नियतमवधेयं तदखिलैः ।

इति त्रस्यद्गोपाऽनुचितानिभृतालापजनितं
स्मितं बिभ्रद्देवो जगदवतु गोवर्धनधरः ।।[१०९]

इसीप्रकार 'गंगावतरण' महाकाव्य में प्रथम सर्ग का मात्र ८५ वाँ श्लोक ही 'शिखरिणी' छन्द में है, जो अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

परिज्ञातं तत्त्वं निखिलमपि विद्यासु विदुषां
परिज्ञातं भूयः परिषदि सतां श्लाघितमपि
फलैर्योक्तुं तत्तत्क्रमसमुचितैः श्लाघितमपि
प्रगल्भः कोऽन्यः स्यात्त्रिभुवनवदान्यो यदि न सः ।।[११०]

अर्थात् विद्वानों की विद्या का सम्पूर्ण तात्त्विक परिज्ञान तथा सज्जनों की सभा में प्रशंसित होने का भी परिज्ञान राजा भगीरथ को था । वे समुचित फलों को भी नियोजित करना जानते थे । उनके समान कौन है, उनमें यदि उनकी प्रगल्भता न होती, तो त्रिभुवन में उनके समान कौन है, जो अपनी वाणी से सबको सन्तुष्ट कर सके ।

मदिरा

'सप्तमकारयुतैकगुरुर्गदितेयमुदारतरा मदिरा ।'

जो छन्द सात मकार तथा एक गुरु से युक्त हो, उसे 'मदिरा' कहते हैं । यथा –

माधवमासि विकस्स्वरकेसरपुष्पलसन्मदिरा मुदितै –
भृंगकुलैरुपगीतवने वनमालिनमालि ! कलानिलयम् ।
कुंजगृहोदरपल्लवकल्पिततल्पमनल्पमनोजरसं
तं भज माधविकामृदुनर्तकयामुनवातकृतोपगमाम ।।[१११]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में नीलकण्ठ दीक्षित जी ने एक से ६४ श्लोक तक 'मदिरा' की छन्द में रचना की है । जिसका एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

उत्तरीयमहरत्कुचकुम्भादुन्ममार्ज मुखचर्मपयांसि ।
अंगमंगमपिपान्थवधूनामालिलिंग सुकृतीवनवातः ।।[११२]

अर्थात् जंगली होने पर भी भाग्यशाली वायु ने प्रेयसियों के स्तनों को आच्छादित करने वाले दुपटटे को हटा दिया । मुख के घर्मजन्य बिन्दुओ को दूर किया । इसप्रकार पथिकों की वधुओं के अंग प्रत्यंगों का भी उसने आलिंगन किया ।

वसन्ततिलका या वसन्ततिलकम्

ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजा जगौगः;[११३]

जिसमें तगण, भगण, जगण और पुनः जगण तथा अन्त में दो गुरु हों, उसको वसन्त तिलका या वसन्ततिलक छन्द कहते हैं । यथा –

फुल्लं वसन्ततिलकं तिलकं वनाल्या
लीलाधरं पिककुलं कलमत्र रौति ।
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलयाद्रिवातो
यातो हरिः स मथुरां, विधिना हताः स्मः ।[११४]

इसीप्रकार दीक्षितजी द्वारा वसन्ततिलका छन्द में 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में ही श्लोक की रचना की गयी है, जो यहाँ उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है –

संख्यानमूर्मिलतिकाव्यतिषंगलब्ध
फेनानुलेपमिव पाण्डरमावहन्तीम् ।
पश्यन्पुरस्तनुमतीं सुरलोकसिन्धुं
सिद्धमनोरथममंस्त दिलीपसूनुः ।।[११५]

अर्थात् तरंगलता के संगमजन्य संघर्ष से उत्पन्न फेनिलानुलेप की तरह शुभ्रता को धारण करती हुई शरीरधारिणी सुरनदी को अपने सामने देखते हुए दिलीप पुत्र भगीरथ ने अपना मनोरथ सफल माना ।

संस्कृतिः (तन्वी)

'चतुर्विंशत्याक्षरावृत्तिः'[११६]

'भूतमुनीनैर्यतिरिह मतनाः स्मो भयनाश्च यदि भवति तन्वी ।'

यदि क्रमशः भगण, तगण, नगण, सगण, भगण, भगण और यगण हों, तो उस छन्द का नाम 'संस्कृतिः या तन्वी' होता है । इसमें पाँच, सात और बारह पर यति होती है । यथा –

माधव ! मुग्धैर्मधुकरविरुतैः कोकिलकूजितमलयसमीरैः
कम्पमुपेता मलयसलिलैः प्लावनतोऽप्यविगततनुदाहा ।
पद्मपलाशैविरचितशयना देहजसंज्वरभस्परिदूनै –
र्निश्वसती सा मुहुरतिपरुषं ध्यानलये तव निवसति तन्वी ।।[११७]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के तृतीय सर्ग में कविवर नीलकण्ठ दीक्षित ने एक से लेकर इकहतर श्लोकों तक संस्कृतिः (तन्वी) छन्द का प्रयोग किया है, जिसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

कथं कथं धिग्धिगिदं स्मृतिंगता कथा ममेयं पुरशासनाश्रया ।
पुराणिनी नन्वयमीदृशोऽपि सन्लक्षणान्नृसिंहः शरभेणपातितः ।।[११८]

अर्थात् मेरे नगर शासनाश्रित होने से यह कथा क्यों मेरे स्मृति पथ को प्राप्त हुई[१] इसे बार–बार धिक्कार है । पुराण के वचनानुसार यह नृसिंह (शेर) भी शरभ के द्वारा नष्ट हो सकता है । (पुराणों में अष्टपद वाले शरभ का उल्लेख मिलता है । वह शेर की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होता है किन्तु इसकी उपलब्धि नहीं होती ।

प्रहर्षिणी

'त्र्याशाभिर्मन जरगाः प्रहर्षिणीयम् ।'[११९]

जिसके एक पाद में क्रम से मगण, नगण, जगण, रगण और एक गुरु वर्ण होते हैं, उसे 'प्रहर्षिणी' छन्द कहते हैं । यथा –

गोपीनामधरसुधारसस्य पानैरुस्तुंगस्तनकलशोपगूहनैश्च
आश्चर्यैरपिरतिविभ्रमैर्मुरारे संसारे मतिरभवत्प्रहर्षिणीह ।।[१२०]

इसीप्रकार 'गंगावतरण' महाकाव्य में मात्र एक स्थान पर चतुर्थ सर्ग की श्लोक संख्या चोरान्नबवे में प्रहर्षिणी छन्द है, जो यहाँ द्रष्टव्य है –

भगिनी समागमसमुत्सुका शिवा
प्रमथास्तदद्भुतदिदृक्षयाकुलाः ।
स्वमनोरथोपगमसान्द्रकौतुको
नृपतिश्च तं निभृतमक्षिभिः पपौ ।।[१२१]

अर्थात् पार्वती उस समय भगिनी के आगमनार्थ उत्कण्ठित थीं । प्रथमगण होने वाले आश्चर्यजनक दृश्य को देखने की इच्छा से व्याकुल हो रहे थे । राजा भगीरथ भी अभीष्टोपलब्धिजन्य कुतूहल से निमेषरहित होकर शिवजी को देखने लगे ।

उपेन्द्रवज्रा

'उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा ।'[१२२]

इन्द्रवज्रा के ही प्रथम अक्षर लघुकर देने पर उपेन्द्रवज्रा छन्द हो जाता है । यथा –

उपेन्द्र ! वज्रादिमणिच्छटाभिर्विभूषणानां छुरितं वपुस्ते ।
स्मरामि गोपीभिरुपास्यमानं सुरद्रुमूले मणिमण्डपस्थम् ।।[१२३]

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में चार से छः तक, दसवाँ सर्ग में श्लोक बीस से बाईस, बत्तीस, इकतालिस तथा अट्ठावन और सर्ग षष्ठ के एक से सरसठ श्लोक उपेन्द्रवज्रा छन्द में ही महाकवि दीक्षित जी ने लिखे हैं, जिसका एक श्लोक उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है –

स्वस्तिकस्थगितोरोजाः सीत्कारतरलाधराः ।
स्थानान्तेषु स्त्रियो मुग्धा यूनामाचकृषुर्मनः ।।[१२४]

अर्थात् स्तनों को पतले वस्त्र से आच्छादित करने वाली तथा सीत्कार करने में चञ्चल अधरों वाली मुग्धा स्त्रियों ने स्नानान्त में युवकों का मन को आकृष्ट कर लिया ।

इन्द्रवज्रा

'स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौगः ।'

जिस छन्द में क्रमशः दो तगण, जगण और दो गुरु होते हैं, वह इन्द्रवज्रा छन्द कहलाता है । यथा –

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा
रुष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्तवृष्टौ ।
यो गोकुलं गोपकुलञ्च सुस्थं
चक्रे स नो रक्षतु चक्रपाणिः ।।[१२५]

ठीक इसीप्रकार कविप्रवरदीक्षित जी ने 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में एक से तीन, सात से नौ ग्यारह से उन्नीस, तेईस से इकतीस, तैंतीस से चालीस, बयालिस से सतावन तथा उनसठ से तिरसठवें श्लोक तक इन्द्रवज्रा छन्द में रचना की है, जिसका एक छन्द उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत जा रहा है –

कालकूटमिवमन्यते शिवो मामकं प्रकृतिदुर्मदं पयः ।
ब्रूहि तावदधुनातमेति तं मा विषीदतु यवीयसो पुनः ।।[१२६]

अर्थात् प्रकृत्या दुर्मद मेरे जल–प्रपात को शिवके कालकूट (विष, जो शिवजी ने पान किया था) की तरह समझते हैं, उनसे आप ऐसा न समझने को कहें, जिससे मेरी लघु भगिनी (पार्वती) शिव के अभाव में दुःखी न हो ।

हरिणी

'वेदर्त्यश्वैर्मभनमयला गश्वेत्तदा हरिणी ।'[१२७]

जिसमें मगण, भगण, नगण, मगण, यगण, लघु और गुरु क्रमशः हों और चार, छः तथा सात पर यति हो, उसे 'हरिणी' छन्द कहते हैं । यथा –

यस्या नित्यं श्रुतिकुचलये श्रीशालिनी लोचने
रागः स्वीयोऽधरकिसलये लाक्षारसारंजनम् ।
गौरीकान्तिः प्रकृतिरुचिरा रम्यांगरागच्छटा
सा कंसारेरजनि न कथं राधा मनोहारिणी ।।[१२८]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के पञ्चम सर्ग में मात्र चौसठवाँ श्लोक ही हरिणी छन्द में उद्धृत है, जो प्रकृत प्रसंग में उदाहरण स्वरूप द्रष्टव्य है –

कपर्दममारापगासलिलसेकसान्द्रीकृतं
विधुन्वति सविभ्रमं पशुपतौ विकीर्णास्ततः ।
क्वाचित्सुरपुरंध्रयः क्वचन यक्षविद्याधराः
क्वचिच्च परमर्षयः समवलन्त समूर्च्छिताः ।।[१२६]

अर्थात् तदन्तर सुरनदी के जल से आई सिर को विलासपूर्वक शिवजी के प्रकम्पित करने पर कहीं इन्द्र पुरस्थ अप्सराएँ, कहीं यक्ष–विद्याधर तथा कहीं बड़े बड़े ऋषि मूर्च्छित हो गए ।

प्रहरणकलिका

'ननभनलगिति प्रहरणकलिका ।'[१३०]

यदि प्रथम दो नगण, पुनः भगण, पुनः नगण और अन्त में एकलघु और एक गुरु हो, तो उस छन्द को 'प्रहरणकलिका' कहते हैं । यथा –

व्यथयति कुसुमप्रहरणः कलिका
प्रमदवनभवा तव धनुषि तता ।
विरहविपदि मे शरणमिह ततो
मधुमर्थनगुणस्मरणमविरतम् ।।[१३१]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के पञ्चम का छाछठवाँ श्लोक ही एकमात्र इसका उदाहरण है, जो अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :–

अक्लिष्टपन्नगमजर्जरितेन्दुरेख

मव्यस्तकाशकितवस्तवकावतंसम् ।

शम्भोरदृश्यत शिरः सुरसिन्धुमुक्त -

दिव्यद्रुमप्रसवसौरभसारसान्द्रम् ।।[१३२]

अर्थात् क्लेशरहित होने से स्वस्थ सर्प, मलिनरहित होने से प्रकाशमान चन्द्रमा, काशपुष्प एवं मन्दार से सुगन्धित शिव का सिर सुरनदी रहित सुगन्धित दिव्य वृक्ष की तरह दिखाई पड़ा ।

कोकिलक (नर्दटक)

'हयऋतुसागरैर्यतियुतं यदि कोकिलकम् ।'[१३३]

यदि 'नर्दटक' छन्द में सात, छः और चार पर यति की जावे, तो उसे 'कोकिलक' छन्द कहते हैं । यथा -

लसदरुणेक्षणं मधुरभाषणमोदकरं

मधुसमयागमे सरसकेलिभिरुल्लसितम् ।

अलललितद्युति रविसुतावनकोकिलकं

ननुकलयामि तं सखि ! सदा हृदि नन्दसुतम् ।।[१३४]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में नीलकण्ठ दीक्षित जी ने पञ्चम सर्ग के केवल सरसठवें श्लोक में ही 'कोकिलक' छन्द का प्रयोग किया है, जो यहाँ प्रस्तुत है -

प्रणमदमरग्रामप्रस्तूयमानमहास्तव

स्तवकितगुहामूलाः कैलासशैलतटास्तदा ।

प्रशमितवियद् गंगाहंकारसंकथनादृत -

प्रमथपरिषच्छन्नाः किं नाम नादधतेऽद्भुतम् ।।[१३५]

अर्थात् इस समय प्रणाम करते हुए देवताओं द्वारा प्रस्तुत महास्तोत्र से कैलाश पर्वत की तटानुवर्तिनी गुफायें व्याप्त हो गईं । आकाश गंगा का अहंकार

शान्त हो गया । इस कथन से प्रमथगणों का सम्मान होने लगा । क्या इस गंगावतरण से बड़ा भी कोई आश्चर्यपूर्ण कार्य हो सकता है ? अर्थात् नहीं ।

प्रभावती

जिसमें क्रमशः तगण, भगण, सगण और जगण हों और उनके अन्त में एक गुरु रखा गया हो तथा चार और नौ अक्षरों पर यति की गई हो तो उसे प्रभावती छन्द कहा जाता है । यथा –

एते क्रमात्तभजसंज्ञका गणा –
गश्चान्ततो यदि निहितो महीपते ।
वेदैर्ग्रहैश्च भवति यतिश्च शोभना
नागाधिपो वदति तथा प्रभावतीम् ।।[१३६]

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के पष्ठ सर्ग के अरसठवें श्लोक में दीक्षितजी ने इस छन्द का प्रयोग किया है, जो यहाँ प्रस्तुत है –

सा वेगादथमणिकर्णिकाजलान्तः
संपातप्रतिहतिसंभवैर्द्युसिन्धुः ।
व्याकीर्णैर्नवकुसुमैरिवाम्बुलेशै –
र्विश्वेशं विनयपरिष्कृता ववन्दे ।।[१३७]

अर्थात् मणिकर्णिकाजल के अन्दर गिरने से जिसका वेग मन्द हो गया है तथा नवीन पुष्प की तरह फैले हुए फेनिल जलकणों से विनययुक्त होकर वह सुरनदी विश्वेश्वर महेश की वन्दना करने लगी ।

मेघविस्फूर्जिता

'रसर्त्वश्वैय्मौन्सौं ररमुरुयुतौ मेघविस्फूर्जिता स्यात् ।'[१३८]

जिसमें क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, रगण, रगण और अन्त में एक गुरु हो, उस छन्द को 'मेघविस्फूर्जिता' कहा जाता है । यथा –

कदम्बामोदाढ्या विपिनपवनाः केकिनः कान्तकेका
विनिद्राः कन्दल्यो दिशिदिशि मुदा दर्दुरा दृप्तनादाः ।
निशाः नृत्यद्विद्युद्विलसितलसन्मेघविस्फूर्जिता चे –
त्प्रियः स्वाधीनोऽसौ दनुजदलनो राज्यमस्मात्किमन्यत् ।।[१३९]

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के षष्ठ सर्ग के मात्र उनहत्तरवें श्लोक में दीक्षित जी ने मेघविस्फूर्जिता छन्द का प्रयोग किया है, जिसको निम्नलिखित श्लोक में दृष्टिगत किया जा सकता है –

स्वछन्दप्रवरद्भगीरथरथक्रेंकारधाराश्रव
प्रत्युद्यन्मुनिकोकलोचनपुटीनिर्वेदसर्वंकषैः ।
स्रोतोभिर्घनसारसान्द्रशिशिरैः स्वर्लोककल्लोलिनी
तामालिम्पदिवेन्दुचूडनयनज्वालाजटालां पुरीम् ।।[१४०]

अर्थात् स्वच्छन्दगामी भगीरथ रथानुवर्तिनी सुरनदी के प्रपातध्वनि से अभ्युदित मुनियों के नेत्रों से दर्शनीय तटों में प्रवाहित कर्पूर की तरह स्वच्छातिस्वच्छ सुशीतल जलकणों वाले स्रोतों से उस सुरनदी ने चन्द्रशेखर की मस्तकाग्नि से प्रकाशित काशीनगरी को मानो शुभ्रता से प्रलिप्त कर दिया अर्थात् गंगा से काशी का और भी महत्त्व बढ़ गया ।

त्वरितगति :

'त्वरितगतिश्च नजनगैः'[१४१]

जिस छन्द में क्रमशः नगण, जगण, नगण और एक गुरु वर्ण होता है, उसे 'त्वरितगतिः' छन्द कहते हैं । यथा –

त्वरितगतिर्ब्रजयुवतिस्तरणिसुताविपिनगता ।
मुरारिपुणा रतिगुरुणा सह मिलिता प्रमदमिता ।।[१४२]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के अन्तर्गत दीक्षित जी ने अष्टम सर्ग में एक से सैंतालिस श्लोकों तक त्वरित गतिः छन्द का ही प्रयोग किया, जिसका एक श्लोक अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है –

तमसि तत्कुहरोपहिते महत्यनुचिता तपनातपसंकथा ।
तपन एव यदि स्वयमापतेद्भवति कज्जलपिण्ड इव क्षणात् ।।[१४३]

अर्थात् उस गुफा के कुहरा से प्राप्त अन्धकार में सूर्य की धूपकथा का कोई महत्त्व नहीं । यदि सूर्य भी उसके अन्धकार को दूर करने के लिए उसमें गिर पड़े तो वह स्वयं कज्जल के समान हो जायेगा अर्थात् उस प्रगाढ़ अन्धकार को दूर करने में सूर्य भी असमर्थ हैं ।

चन्द्रिका :

'ननततगुरुभिश्चन्द्रिकाश्चतुर्भिः ।'[१४४]

जिस छन्द के एक पाद में क्रमशः दो नगण, दो तगण, और एक गुरुवर्ण होता है । उस 'चन्द्रिका' छन्द कहते हैं । यथा –

शरदमृतरुचश्चन्द्रिकाक्षालिते दिनकरतनयातीरदेशे हरिः ।
विहरति रभसाद्वल्लवीभिः समं त्रिदिवयुवतिभिः कोऽपि देवोयथा ।।[१४५]

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के सप्तम सर्ग का मात्र अड़तालिसवाँ श्लोक ही चंद्रिका का उदाहरण है, जो अधोलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है –

इति स्तुवन्मुकुटनिवेशितांजलिर्भगीरथः प्रणतशिवं करंहरम् ।
न्यवर्तत क्षणगमनोपरोधतः क्वजाह्नवी प्रतिचलिता तटादिति ।।[१४६]

अर्थात् इसप्रकार मस्तकपर्यन्त हाथ जोड़े हुए राजा भगीरथ प्रणाम करने वालों का शुभ करने वाले शिव की स्तुति करते हुए क्षणिक गमनावरोध से 'जाह्नवी, तट से कहाँ तक गयी' ऐसा सोचकर लौट आये ।

विपिनतिलक :

'विपिनतिलकं नसनरेफयुग्मैर्भवेत् ।'[१४७]

जिसके एक चरण में नगण, सगण, नगण और दो रेफ हों, उसे विपिनतिलक नामक वृत्त कहते हैं, यथा –

विपिनतिलकं विकसितं वसन्तागमे
मधुकृतमदैर्मधुकरैः क्वणद्भिर्वृतम् ।
मलयमरुता रचितलास्यमालोकयन्
प्रजयुवतिभिर्विहरति स्म मुग्धो हरिः ।।[१४८]

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के सप्तम सर्ग के उन्यासवें श्लोक में सम्पूर्ण काव्य में केवल एक ही स्थान पर इस छन्द का प्रयोग किया गया है, जो उदाहरणार्थ द्रष्टव्य है –

अथ नृपमधिरूढस्यन्दनं यान्तमग्रे –
सुरसरिदनुयान्ती वीचिभिर्मन्थराभिः ।
विहितजनकुटुम्बा सन्निधौ दण्डपाणे –
र्बलवदनुगमेऽपि प्राप्तशंकेव रेजे ।।[१४६]

अर्थात् इसके अनन्तर आगे चलने वाले रथारुढ राजा भगीरथ का मन्थर तरंगों के साथ अनुसरण करती हुई सुरनदी बलपूर्वक अनुगमन करने पर जैसे दण्डपाणि (यमराज) के समक्ष कोई परिवार सशंकित हो, इसप्रकार सुशोभित हुई ।

सुरसावृत्त

'म्रौ भ्नौ यो नो गुरुश्चेत्स्वरमुनिकरणैराह सुरसाम् ।'[१५०]

जिसमें क्रमशः मगण, रगण, भगण, नगण, यगण और अन्त में एक गुरु हो, उसे 'सुरसा' वृत्त कहते हैं । इसमें सात, सात और पाँच वर्णों पर यति होती है । यथा –

कामक्रीडासतृष्णो मधुसमयसमारम्भरभसात्
कालिन्दीकूलकुंजे विहरणकुतुकाकृष्टहृदयः ।

गोविन्दोवल्लवीनाधररसुधां प्राप्य सुरसां
शंके पीयूषपानप्रचयकृतसुखं व्यस्मरदसौ ।।[१५१]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के सप्तम सर्ग का पचासवाँ श्लोक 'सुरसा' वृत्त का एकमात्र उदाहरण है, जो निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है –

आचान्तो नयनैरपक्ष्मवलयैरायम्य पौरैर्जनै
र्धावं धावमुपावरुन्ध्य सरणिं संघीभवद्भिः पुरः ।
स्पृष्टः साधय साधयेति लहरी हस्तैरिवान्वक्तया
त्रस्यन्त्या पुरुशासनादतिययौ देवः स वाराणसीम् ।।[१५२]

अर्थात् एकत्रित नागरिकों के द्वारा निरन्तर देवगंगा की तरंगों को दृष्टि से आचमन करके उनके आगे–आगे बार–बार दौड़कर मार्ग को अवरुद्ध करने तथा त्रिपुर शासक शिव से डरनेवाली सुरनदी के हाथरूपी तरंगों से साधय–साधय (सिद्ध करो, सिद्ध करो) ध्वनि के साथ सुरनदी के जल से परिमार्जित राजा भगीरथ काशी से निकल पड़े ।

मालती

'भवति नजावथ मालती जरौ'[१५३]

जिस छन्द के एक पाठ से क्रम से नगण, जगण और जगण रगण होते हैं, उसे मालती छन्द कहते हैं । यथा –

इह कलयाच्युतकेलिकानने
मधुरससौरभसारलोलुपः ।
कुसुमकृतस्मितचारुविभ्रमा
मलिरपि चुम्बति मालती मुहुः ।।[१५४]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के अष्टम सर्ग के एक से सतावन श्लोक तक की नीलकण्ठ दीक्षित जी ने मालती छन्द में रचना की है, जिसका एक श्लोक उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

सति सरस्वती सन्ति पयोधराः
सति तदम्भसि सन्ति च सिन्धवः ।
तदिह काम्बुकथेति विषीदताम –
भयदेयमजायत यादसाम् ।।[१५५]

तात्पर्य यह है कि समुद्र के रहने पर भी मेघ हैं, जल होने पर भी बहुत से समुद्र हैं, इसप्रकार जल की कथा का अन्त नहीं, इससे भयभीत होने वाले जलीय जन्तुओं के लिए यह सुरनदी अभय प्रदान करने वाली हुई । (अर्थात् जल तो बहुत हैं किन्तु सुरनदी के समान कोई भी जल नहीं हो सकता । इसीलिए इसको अमृत कहा गया है ।

सुमुखी

'नजजलगैर्गदिता सुमुखी ।'[१५६]

जिस छन्द के एक पादमें क्रमशः नगण, दो जगण, एक लघु और एक गुरु होते हैं । उसे 'सुमुखी' कहा जाता है । यथा –

तरणिसुतातटकुंजगृहे
वदनविधुस्मितदीधितिभिः ।
तिमिरमुदस्य वृतं सुमुखी
हरिमवलोक्य जहास चिरम् ।।[१५७]

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के अष्टम सर्ग के अट्ठावन से सत्तरवें श्लोक तक कविवर दीक्षित ने 'सुमुखी' छन्द का प्रयोग किया है । इसका एक उदाहरण अधोलिखित श्लोक में यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

चचार कर्णद्वयसानुरागे

चित्ते यदन्तःपुरसुन्दरीणाम् ।

स तेन संरक्त इवाबभासे

परिष्कृतः कांचनकंचुकेन ।।[१५८]

अर्थात् अन्तःपुर की सुन्दरियों के श्रवणानुरागी मन में विचरण करने से वे राजा भगीरथ विशुद्ध स्वर्ण कंचुक (वस्त्र) की तरह अनुरक्त होकर सुशोभित हुए ।

रथोद्धता

'रात्परैर्नरलगैः रथोद्धता ।'[१५९]

जिस छन्द के एक पाद में क्रमशः रगण से परे नगण, रगण, एक लघु और एक गुरु होता है, वह रथोद्धता' वृत्त कहा जाता है । यथा –

राधिका दधिविलोऽनस्थिता

कृष्णवेणुनिनदैरथोद्धता ।

यामुनं तटनिकुंजमंजसा

सा जगाम सलिला हृतिच्छलात् ।।[१६०]

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के अष्टम सर्ग के इक्यासी से नब्बे श्लोक तक कविवर नीलकण्ठ दीक्षित जी ने 'रथोद्धता' वृत्त का प्रयोग किया है । इसका एक श्लोक उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

पादे निपेतुः परिरभ्यदीर्घं

तस्थुर्मुखैस्तस्य मुखं चुचुम्बुः ।

संकल्पयोगाच्चिरविप्रलब्धा –

स्तथापितं नैव विशश्वसुस्ताः ।।[१६१]

अर्थात् तरुणियाँ उस समय राजा भगीरथ के पैरों में गिर पड़ीं । उनका गाढालिंगन किया और अपने मुख से उनके मुख का चुम्बन किया । यद्यपि

मानसिक रूप से वे चिर समयतक वियुक्त रहीं तथापि उन्होंने उनकी उपलब्धि से इस समय चिर वियोग को भूल गयीं ।

वृत्ताछन्द

'ननसगगुरुरचिता वृत्ता ।'[१६२]

जिस छन्द में क्रमशः दो नगण, सगण, एवं दो गुरु वर्ण होते हैं, वह 'वृत्ता' छन्द होता है । 'गंगावतरणम्' में भी कवि ने अष्टम सर्ग के ६१–६४ वें श्लोक तक वृत्ता छन्द का प्रयोग किया है । जिसका एक श्लोक निम्नलिखित पंक्तियों में उदाहरणार्थ दिया जा रहा है –

साहित्यं न हि जानते कतिपये्शास्त्रैकनिष्ठा यदि
क्षन्तव्यं विदुषामिदं क्वनु पुनः सर्वत्र सर्वज्ञता ।
उत्पन्नाः किल धूमकेतव इव क्लिश्नन्ति यत्साहितीं
दुर्वैदग्ध्यलवेन केचिदिह तद्दुःखाय विद्यावताम् ।।[१६३]

अर्थात् शास्त्र में मात्र निष्ठा होने पर भी कुछ लोग साहित्य के मर्म को नहीं जानते । एतदर्थ विद्वानों को क्षमा करना चाहिए क्योंकि सर्वत्र सर्वज्ञता नहीं होती किन्तु धूमकेतु (अग्नि) की तरह पैदायसी कवि साहित्य को क्लिष्ट करते हैं और ऐसे मूर्ख कविविद्वानों के लिए दुःखद होते हैं ।

५.२.४ रीति–निरूपण :

५.२.४.१ प्रस्तावना

आचार्य भरत ने नाट्योपयोगी प्रवृत्ति और रीति का परिचय दिया है । रीति के उल्लेख में आचार्य भामह जैसे प्राचीन और प्रथम आलंकारिक हैं । जिन्होंने वैदर्भ और गौड जैसे वर्त्म का प्रचलन किया । आचार्य दण्डी भी उन्हीं का अनुसरण करते हैं । आचार्य वामन उसी पगदण्डी (पथ) को 'रीति' नाम से बताते हैं ।

इस तरह वामनाचार्य रीति संप्रदाय के स्थापक बनते हैं । उन्होंने 'रीतिरात्मा काव्यस्य, विशिष्टा पदरचना रीतिः, विशेषो गुणात्मा । सात्रिधा वैदर्भी गौडीया पाञ्चाली चेति ।'[१६४] कहा है ।

रीति का अर्थ :

रीङ्गतौ धातु से स्त्रीलिंग में क्तिन् प्रत्यय करके निष्पन्न होने वाले 'रीति' शब्द का अर्थ 'मार्ग' ऐसा होता है । पन्था, गति, प्रस्थान, विधि और पद्धति इत्यादि उसके समानार्थी शब्द मिलते हैं ।[१६५] 'रीति' शब्द री + क्तिन् पूर्वक निष्पन्न हुआ है ।[१६६] काव्यशास्त्रीयसंदर्भे विशिष्टलेखनकला रीतिः । इसीलिए आचार्य दण्डी उसकी अनेकता की कल्पना करते हैं । क्योंकि जितने कवि उतनी उनकी विशेषताएँ और जितनी विशेषताएँ उतने प्रकार के मार्ग । जिस तरह चीनी, गुड़ और गन्ने भिन्न-भिन्न होते हुए भी स्वभाव से एकरूप अर्थात् मधुर हैं । फिर भी विवेकियों के लिए उनका पार्थक्य है । शारदातनय ने वचन, पुरुष और जाति इत्यादि से रीति का आनंत्य माना है । आचार्य जयदेव तक पहुँचते पहुँचते चार मार्ग हो गये । उनके मत से रीति-भेद निम्नलिखित हैं ।

'पाञ्चाली च लाटीया गौडीया च यथा रसम् ।
वैदर्भी च यथासंख्यं चतस्रो रीतयः स्मृताः ।।'[१६७]

आचार्य आनंदवर्धन उसे 'संघटना' नाम से बताते हैं ।[१६८] आचार्य कुन्तक रीति को सुकुमार मध्यममार्ग और विचित्र मार्गों से परिचय कराते हैं ।[१६९] आचार्य मम्मट ने 'केषाञ्चित् एता वैदर्भीप्रमुखा' कहकर वैदर्भी रीति में ही उपनागरिका, परुषा और कोमला नाम से परिचित कराते हैं ।[१७०] आचार्य भोज उनकी संख्या ६ मानते हैं । जो प्रस्तुत कारिका में उद्धृत है –

'वैदर्भी चाथ पाञ्चाली गौडीयावन्तिका तथा ।
लाटीया मागधी चेति षोढा रतिर्निगद्यते ।।'[१७१]

जिसमें 'वैदर्भी', पांचाली, गौडी, लाटी, मागधी और अवन्तिका का समावेश है । आचार्य विश्वनाथ ऐसी पद-संघटना को रीति कहते हैं ।[१७२] विद्याराम रीति का महत्त्व स्थापित करते हुए कहते हैं जैसे लोक / संसार में भी रीत्यनुसार कर्म शोभित बनता है । उसी प्रकार काव्यसंपत्ति का संग्रथन / संगठन रीति-वृत्ति के हिसाब से होना चाहिए । उसी समय चमत्कार उत्पन्न होता है ।[१७३] आचार्य आनंदवर्धन संघटना गुणाश्रया बताते हैं । आचार्य कुन्तक उन्हें कविसंघटनास्वभावा कहते हैं । हरिदास सिद्धांत वागीश गुण और रीति की उपमा पति और पत्नी के साथ देते हैं ।[१७४] उनके मत से काव्यशरीर में सुप्-तिङ् रूप पदों का सन्निवेश होता है और वही पदयोजना रीति कही जाती है । नृसिंहकवि गुणों से युक्त पदबन्धत्व को रीति कहते हैं ।[१७५]

इसीलिए विभिन्न आचार्यों ने रीति लक्षण की दृष्टि से स्वाभिप्राय दिया और संख्या की दृष्टि से प्रायः तीन रीतियाँ वैदर्भी, गौडी और पांचाली को मान्यता दी । प्रस्तुत महाकाव्य की दृष्टि से रीति-विवेचना निम्नलिखित है ।

रीति के भेद

(१) **वैदर्भी :**

नृसिंह कवि और श्रीकृष्ण कवि के मत से वैदर्भी का लक्षण निम्नांकित है –

बन्धपारुष्यरहिताशब्दकाठिन्यवर्जिता ।
नातिदीर्घसमासा च वैदर्भीरीतिरिष्यते ।।[१७६]

नव्यालंकारिकों में श्रीकृष्ण कवि और नृसिंह कवि वैदर्भी को अल्पसमासा कहते हैं । जो कठिनबन्ध और पारुष्यहीन होता है । विद्याराम उसे कोमल संदर्भवाली स्निग्ध पदावलीयुक्त, लघुवृत्तियुक्त तथा ललित सुन्दर बताया है ।[१७७] शिवराम त्रिपाठी के मत से दो-तीन पदों के समास वाला और उसका प्रयोग

शृंगार, करुण, वीर, बीभत्स तथा भयानक रस में होता है ।[१७८] प्रस्तुत पद्य वैदर्भी से युक्त है –

महोत्सवोऽयं खलु क्षत्रियाणां जन्ये खलानां स्वकरै र्विनाशनम् ।
स एव प्राप्तः समयः सुशोभनः विधीयतां सार्थकता स्वजन्मनः ।।[१७९]

यहाँ जो पदावली प्रस्तुत है, वह कोमल है । अल्पसमासा रचना है । वीर रस से युक्त है । नायक के चरणो में क्षत्रिय आ रहे हैं । युद्ध में अपने हाथों से दुष्टों का वध करना क्षत्रियों के लिए महोत्सव है । आज वह सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है । सारे क्षत्रिय अपना जन्म सफल करते हैं ।

यहाँ सन्दर्भ भी सुन्दर है और सुशोभनः व महोत्सवः जैसे मनोरम शब्द भी हैं ।

(२) **गौडी :**

आचार्य अच्युतराय के मत से गौडी का लक्षण इसप्रकार है –

चतुरधियथेष्टपदसमस्ततद्रसोचितपदसंघटनात्वं गौडीत्वम् ।[१८०]

अच्युतराय के मत से भी चार पदों से अधिक पदों द्वारा बना समास जिसमें अभीष्ट हो, वह गौडी है । विद्याराम के मत से अत्यंत कष्टोच्चार्य अक्षरों से युक्त स्रग्धरादि छन्दों से युक्त, दीर्घ समासा, तुच्छ, अर्थान्वित और भयंकर कर्मों में प्रयुक्ता गौडी है ।[१८१] हरिदास सिद्धांत वागीश के मत से महाप्राण वर्णों से आश्रित, अधिकप्रयोगा रीति गौडी है ।[१८२]

यहाँ प्रयुक्त गौडी का उदाहरण निम्नलिखित है –

इह गुरुण्डकुशासनपद्धतिर्निखिलमानवमानसपीडनम् ।
कृतवती खलु यस्य फलं ह्यहो भवति हन्त गुरुण्डविनाशनम् ।।[१८३]

जहाँ अग्रंजों की कुत्सित शासन पद्धति सारे मनुष्यों के मन को पीड़ित कर रही है । जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों का विनाश हो रहा है । जहाँ गुरुंडों की शासन–पद्धति और क्रूरता से संपूर्ण मानव समाज का मन पीड़ित था, ऐसा

कथन एक ही शब्द में ७ जितने पदों से बने दीर्घ समास की रचना में कर दिया गया है । यह पद्य भयानक रस से युक्त है । तुच्छभाव से पूर्ण और 'ख' जैसे महाप्राण वर्ण का उपयोग भी है । पदरचना का उच्चारण भी कठिनता से हो ऐसा है । मन घृणास्पद बन जाता है ।

इसप्रकार साथ–साथ अंग्रेजों की भयंकर शासनप्रथा का चित्रण भी इस पद्य द्वारा महाकवि प्रकाशित करते हैं ।

(३) पाञ्चाली :

आचार्य अच्युतराय के मतानुसार पाञ्चाली का लक्षण इसप्रकार है –

चतुः पदानधिकसमस्तत्तद्रसोचितपदसंघटनात्वं पाञ्चालीम् ।'[१८४]

अच्युतराय के मत से पाञ्चाली के अंतर्गत चार अथवा कम पदों का समास जहाँ प्रयुक्त होता है, वहाँ बनता है । श्रीकृष्ण कवि वैदर्भी और गौडी का मिश्रण अर्थात् 'पाञ्चाली' ऐसा मानते हैं ।[१८५] एक विद्वान् द्वारा प्रणीत प्रस्तुत पद्य पाञ्चाली में प्रयुक्त है –

स्थितां हंसे देवीं शरदि निशि पूर्णेन्दुवदनां
दधानां कल्याणीं विदितवरवीणां रसवतीम् ।
कटाक्षैर्भक्तेभ्यो विशदवरबोधं वितरतीं मुदा
वन्दे वाणीं विबुधजनसेव्यां भगवतीम् ।।[१८६]

सरस्वती वन्दना करते हुए महाकवि नमस्कार करते हैं । विद्वत्जनों से सेवित, हंसारुढ, शारदी पूर्णिमाके चन्द्र जैसा मुखवाली, सुविदित, श्रेष्ठ, तथा कल्याणकारिणी रसवती वीणा को धारण करनेवाली, कृपा कटाक्षों द्वारा भक्तों को विशद और उत्तम ज्ञान देनेवाली भगवती शारदा को मैं नमन करता हूँ ।

अंशतः समास जिन दो पदों से आवृत्त है, जैसे कि पूर्णेन्दुवदनां, विदितवरवीणां इत्यादि में समासयुक्त रचना है वह मधुर और अनतिविस्तृतसमासा रचना है । वर्णों की उदारता भी है । शारदा की वन्दना में 'विशदवरबोध'

कहकर जाने कि महाकवि व्यंजित करना चाहते हों' अथवा अब जनपीड़ा में से मुक्ति का स्वच्छ वरदान मिलने से जनसमाज को सहायता मिलेगी । अर्थ की मधुरता से वातावरण भी मधुर बनता है ।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन में तीन रीतियाँ प्रमुख आलंकारिकों को स्वीकार हैं । उनका निदर्शन किया गया है । समग्रतया महाकाव्य के अवलोकन से प्रतीत होता है कि कवि को वैदर्भी रीति पसंद है । क्योंकि उसके लक्षणों से युक्त वर्णनशैली प्रायः प्रयुक्त होती है । महाकाव्य देशभक्ति, ओज, उत्साह और भव्य भावनाओं से पूर्ण है ।

५.२.४.२ गङ्गावतरणम् महाकाव्य में रीति विधान :

'उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालंकाररीतयः ।'[१८७]

अर्थात् गुण, अलङ्कार और रीति; ये काव्य के रसावबोध के उत्कर्ष (वृद्धि) के हेतु होते हैं, जबकि रस के अपकर्षक तत्त्वों को दोष कहा जाता है – रसापकर्षकाः दोषाः । प्रकृत प्रसंग में रीति के प्रतिपाद्य होने के कारण यहाँ रीति का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है –

साहित्य–दर्पण के अनुसार रीति के चार भेद किये गये हैं, यथा –

'वैदर्भी चाथ गौड़ी च पांचाली लाटिका तथा'[१८८]

अर्थात् वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली और लाटिका । ये भेद देश नाम के आधार पर किये गये हैं तथा इसके अतिरिक्त इनकी विशेषताएँ और इनके लक्षण निम्नलिखित हैं –

वैदर्भी :

माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैः रचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।।[१८९]

माधुर्य के व्यंजक वर्णों से पूर्ण, समास रहित या छोटे–छोटे समासों से युक्त ललित रचना को वैदर्भी रीति कहा जाता है ।

अनंगमंगलभुवः तदपांगस्य भंगयः ।
जनयन्ति मुहुर्यूनामन्त्रः संतापसन्ततिम् ।।[१६०]

उस रमणी के उपांगों की भंगिमा (कटाक्ष–विक्षेप) कामदेव की मंगलमय जन्मभूमि जैसी है, जो निरन्तर युवक प्रेमियों के अन्तस्थल में सन्ताप परंपरा उत्पन्न किया करती है ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में कविवर नीलकण्ठ दीक्षित ने जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, उनमें से अधोलिखित पंक्तियों में वैदर्भी रीति का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

क्व नु नाम सभा राज्ञां दुराक्षेपैकशिक्षिता ।
क्व नु वाचः सुधीलोकलालनैकरसाः कवेः ।।[१६१]

अर्थात् कहाँ राजाओं की दूषितारोप प्रशिक्षित राजसभा ? कहाँ बुद्धिजीवियों के जीवनोद्धार रस को धारण करने वाली वाणी ? अर्थात् दोनों परस्पर विरोधी हैं ।

गौडी :

समासबहुला गौडी[१६२]
ओजप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः ।[१६३]

ओज के प्रकाशक, कठिन वर्णों से पूर्ण, समास बहुला, उद्भट रचना को गौडी रीति कहा जाता है –

चंचलद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात
संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
स्त्यानावनद्धघन शोणितशोणपाणि
रुत्तंसयिष्यति रुचास्तव देवि भीमः ।।[१६४]

अर्थात् निरंतर फड़कती हुई भुजाओं के द्वारा घुमाई गई गदा से मैं सुयोधन के उरुयुगल तोड़ दूँगा । चिकने तथा भली प्रकार लगाये गये रक्त वाले हाथों से मैं तुम्हारे बालों की (चोटी करुँगा) गूँथूँगा ।

'गंगावतरणम्' महाकाव्य में गौडी रीति का एक उदाहरण अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है जब कि ऐसे अनेक उदाहरणों से यह महाकाव्य परिपूर्ण है–

पौरजानपदपार्थिवलोकप्रस्तुतस्तुतिवचोमुखरायाम्
जातु संसदि निषद्यसुहृद्भिः संलपन्नति निनोय स कालम् ।।[१६५]

अर्थात् ग्रामवासियों द्वारा राजाओं के लिए प्रस्तुत की जाने वाली स्तुति वाणी से मुखरित सभा में बैठकर राजा भगीरथ अपने सुहृदों के साथ वार्तालाप करते हुए समय यापन करते रहे ।

पाञ्चाली :

लक्षण :

वर्णैः शेषैः पुनर्द्वयोः ।
समस्तपंचषपदो बन्धः पांचालिका मता ।।[१६६]
द्वयोर्वैदर्भीगौडयोः ।।[१६७]

दोनों (वैदर्भी तथा गौडी) रीतियों से बचने वाले जो वर्ण हैं अर्थात् जो न माधुर्य के व्यंजक हैं और न ओज के, उन से जो रचना की जाय । यथा –

मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया ।
मधुकरांगनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे ।।[१६८]

अर्थात् वसन्त से बढ़ी हुई मधु समृद्धि से प्रबुद्ध मतवाली भ्रमरी ने गुनगुनाना शुरू कर दिया ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में पांचाली रीति के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, जिनमें से एक उदाहरण अधोलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है –

नास्ति मन्दपवनो न वसन्तः क्वणितं च चरितं कुसुमेषोः ।
तावता विरहिणां किमिवासीत्तेषु मन्मथकणोऽपि कृतान्तः ।।[१९९]

अर्थात् न मन्द पवन चल रहा है, न तो वह वसन्त है और कामदेव का व्यापार भी बन्द है, तो फिर क्या वियोगियों में यह प्रभाव भस्मीभूत उसके कणमात्र का है ।

लाटी :

लक्षण :

लाटी तु रीतिवैदर्भी पांचालयोरन्तरे स्थिता ।।[२००]

वैदर्भी तथा पांचाली इन दोनों के बीच की अर्थात् दोनों के लक्षणों से कुछ–कुछ युक्त रीति को लाटी कहते हैं ।

अयमुदयति मुद्राभंजनः पद्मिनीना –
मुदयगिरिवनालीबालमन्दारपुष्पम् ।
विरहविधुरकोकद्वंद्वबन्धुर्विभिन्दन
कुपितकपिकपोलक्रोडताम्रस्तमांसि ।।[२०१]

अर्थात् प्रातः काल का समय है, सूर्योदय हो रहा है, कमल की मुद्रा भंग हो रही है । मन्दारमाला की भाँति प्रकाश प्रकाशित होने लगा है । चक्रवाल मिथुन रात्रि विरह के बाद मिल रहे हैं । सूर्य को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो कुपित बन्दर के गालों में रक्तिमा छा गई है ।

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के आठों सर्गों में यद्यपि लाटी रीति के अनेक उदाहरण विद्यमान हैं, तथापि उनमें से एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

उष्णमम्बुरविरुग्रमयूखः सान्द्रमुर्मुरकिरश्च समीराः ।
भूः पफाल पुनराः कथमासीत्पान्थपातकिदशापरिंपाकः ।।[२०२]

अर्थात् तपन से जल गर्म है, सूर्य किरणें प्रतप्त हैं, घनीभूंत सन्तप्त हवा बह रही है, उसमें भी पृथ्वी फलीभूत है । अहह, ऐसी स्थिति में निर्धन निम्नवर्गीय पथिकों की स्थिति कैसी होगी ?

५.२.५ गुणविवेचन :

५.२.५.१ गुण के लक्षण :

आचार्य भरत, आचार्य भामह, आचार्य दण्डी और आचार्य कुन्तक इत्यादि गुण सामान्य का लक्षण नहीं देते हैं । आचार्य वामन गुण को लक्षित करते हुए कहते हैं । यथा –

काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः[२०३]

आचार्य दण्डी 'काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते ।' कहकर पृथक् मत देते हैं । आचार्य मम्मट गुणों को रसधर्म, रसोत्कर्षक और अचलस्थिति मानते हैं ।[२०४] नव्यालंकारिकों में हरिदास वागीश के मतानुसार 'गुण' रस के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं ।[२०५] गुण का महत्त्व बताते हुए विद्याराम कहते हैं कि – 'अलंकारयुक्त काव्य भी गुणहीन हो, तो विक्षिप्त लगता है ।'[२०६]

५.२.५.२ गुण के प्रकार :

आचार्य भरत गुणों की संख्या १० बताते हुए निम्नलिखित कारिका में कहते हैं –

श्लेषः प्रसादः समतामाधुर्यमोजः पदसौकुमार्यम् ।
अर्थस्यव्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणादशैते ।।[२०७]

श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदसौकुमार्य, अर्थव्यक्ति कान्ति और उदारता १० गुणों की गणना करने में आया है । आचार्य दण्डी भी इन्हीं गुणों को मानते हैं, परन्तु लक्षण भिन्न देते हैं । आचार्य वामन इन्हीं गुणों को

शब्दगत और अर्थगत दो प्रकार का मानते हैं । अग्निपुराणकार १६ गुणों में ७ शब्द, ६ अर्थ, ६ शब्दार्थोभयगत भेद करते हैं । तो भोज ने उन्हीं गुणों की संख्या २५ कर दी है ।[२०८] उनके (भोज) मत से भरतमुनि उपर्युक्त गुणों के उपरांत उदात्तत्व, और्जित्य, प्रेय, सुशब्दत्व, गाम्भीर्य, विस्तार संक्षेप, सम्मितत्त्व, भाविकत्व, गति, रीति, उक्ति और प्रौढिः को मानते हैं और शब्द–अर्थगत दोनों प्रकार से पुनः भेद करते हैं ।[२०९]

सर्वाधिक मान्य आचार्य भामह, आचार्य आनंदवर्धन, आचार्य मम्मट, आचार्य विश्वनाथ और हेमचन्द्राचार्यादि हैं । अच्युतराय दूसरे प्रकार से दोषाभावरूप गुणत्व को समझाते हैं । जिस प्रकार गवादि द्वारा लोमादिनिराकरणरूप दुग्धभिन्न वस्तु का अभावरूप शुद्धि मान्य है । उसके बाद शर्करादिमिश्रण भावरूप द्वितीयकोटि का गुण प्रसिद्ध है । जिस विस्तार से वर्णदोषापवाद गुण, पददोषापवाद गुण, वाक्यदोषापवाद गुण, पदैकदेश दोषापवाद गुण, नैसर्गिक वाक्यदोषापवादगुण, अर्थदोषापवादरूप गुण और रसदोषापवाद गुण से ५६ प्रकार के दोषापवाद गुण विषय विभाग प्रस्तुत करते हैं ।[२१०] आचार्य रुद्रट वाक्य के पदगुंफन सौंदर्य को लेकर गुण विवेचन प्रस्तुत करते हैं –

रचनाचारुत्वे खलु शब्दगुणाः संनिवेशचारुत्वम् ।[२११]

आचार्य कुन्तक मार्ग के नाम बताते हुए तीन मार्गों की कल्पना करते ख हैं । सुकुमार, विचित्र और मध्यम वर्ग, प्रत्येक मार्ग के चार–चार गुणों की कल्पना की है ।[२१२]

५.२.५.३ गुण विवेचन :

आचार्य आनन्दवर्धन के शब्दों में गुण की परिभाषा निम्नलिखित है –

तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः ।
आङ्गश्रितास्त्वलश्चारा विज्ञेयाः कटकादिवत् ।।[२१३]

माधुर्यगुण शृगाराश्रय में रहता है । ओज रौद्र इत्यादि रसों को परमदीप्तिवर्धक बनाता हैं । जिसमें वीर और अद्भुत रस भी समाविष्ट है ।[२१४] प्रसाद में शब्द और अर्थ की स्वच्छता रहती है । जो सारे रसों में साधारण रूप से रहता है । माधुर्यद्रुति शृंगार करुण-शांत रस में रहता है । महाकाव्य में प्रचुरमात्रा में गुणाश्रितत्त्व मिलता है । यह तत्तत् दृष्टांतों द्वारा द्रष्टव्य है । आचार्य भरत आदि उक्त गुण परंपरा में प्रस्तुत महाकाव्य में प्रसिद्ध १० गुणों का ही आलेखन किया है ।

प्रसाद :

समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।[२१५]

यह समस्त रस और रचना में प्रसारित रहता है । जहाँ श्रवण मात्र से अर्थबोध हो, वहाँ प्रसाद गुण होता है । आचार्य भरत के मत से उसका लक्षण अधोलिखित है -

अप्यनुक्तो बुधैर्यत्र शब्दोऽर्थो वा प्रतीयते ।
सुखशब्दार्थसंयोगात् प्रसादः स तु कीर्त्यते ।।[२१६]

अर्थात् शब्द से ही संपूर्ण अर्थ की प्रतीति हो जाय; प्रायः ऐसे वाच्यवाचक संबंध वाले मुख्य शब्द और अर्थ के संयोग में प्रसाद गुण होता है । नृसिंह कवि के मतानुसार श्रोता के चित्त (हृदय) को व्याप्त जो व्याप्त कर लें, वह प्रसाद है ।[२१७] समग्र महाकाव्य जाने इस गुण से आवृत्त है । प्रसाद गुण का दृष्टांत निम्नांकित है -

महोरस्कं शूरं पृथुलभुजनेत्रं च सुदृढं निपाते शत्रूणां कुपितयमतुल्यं तु विकटम् ।
महोत्साहं दक्षं नृपतिजननीभ्रातृप्रवरं निहन्तुं ते पाशैः नृपतिपुरमानीय रिपवः ।।[२१८]

यहाँ वाचक शब्दों से वाच्य अर्थ का बोध क्षणभर में हो जाता है । अतःअर्थबोध तत्काल पाठक को आस्वाद योग्य हो जाता है । यहाँ शब्द और अर्थगत दोनों दृष्टि से यह गुण सन्निहित है ।

समता :

सामान्यतया सुबोध पदावली युक्त पद्य भाग ही 'समता' गुण है । जहाँ साधारणतया समासरहित पद और सुबोधता हो, व्यर्थ अक्षरप्रयोग न हो, वहाँ 'समता' गुण होता है । भरतमुनि के शब्दों में ही उसका लक्षण निम्नांकित है –

नातिचूर्णपदैर्युक्ता न च व्यर्थाभिधायिभिः ।
दुर्बोधनैश्च न कृता समत्वात् समता मता ।[२१९]

समतागुण का उदाहरण प्रस्तुत ग्रंथ के निम्नलिखित पद्य में देखने को मिलता है –

भ्रान्तोऽसि मुग्धोऽसि विलुप्तचेतनः कोपानले हन्त निमज्जितोऽसि ।
फलं स्वकृत्यस्य यथा तथा वै इहैव देशेह्यचिरान्तु भोष्यसे ।।[२२०]

लक्षणानुसार यह समता गुण का समीचीन उदाहरण है ।

५.२.५.४ गङ्गावतरणम् महाकाव्य में गुण विधान :

गुणों का महत्त्व :

वामन ने गुणों को पद–रचता का विशिष्ट धर्म कहा है, जिनसे काव्य शरीर में यौवन आता है और काव्य का जीर्णोद्‌यान वासन्ती उपवन में परिणत होता है । दूसरे शब्दों में युवक शरीर में यौवन का या उद्यान में वसन्त का जो स्थान है, वही स्थान वामन के मतानुसार काव्य में गुणों का है । शरीर या युवक शरीर में एक और चैतन्य रहता है, चेतनाशून्य युवक समानरूप से अनुपादेय होते हैं । आत्मा तो चैतन्य ही है, यौवन नहीं तथापि यौवन का महत्त्व लगभग उतना ही है । काव्य का चैतन्य है – सौन्दर्य और यौवन है – 'गुण' । युवक शरीर की प्रशंसा करनी हो तो यह भी कहा जा सकता है कि यौवन ही उसकी आत्मा है । यह एक अत्युक्तिपूर्ण कथन है एक लाक्षणिक प्रयोग है । वामन ने गुणों के संदर्भ में ऐसा ही प्रयोग किया है ।

गुणों के लक्षण :

गुणों के लक्षण के विषय में दण्डी और भामह चुप हैं । भरत गुणों का स्वरूप लक्षण न कर तटस्थ लक्षण ही करते हैं और कहते हैं – 'दोषों का विपर्यास ही गुण है ।' मानों गुण वेदान्त का ब्रह्म जो नेति–नेति के द्वारा ही जाना जा सकता है । स्पष्ट ही भरत ने दोषों को भावात्मक और गुणों को अभावात्मक माना और यदि भरत ने दोषों को अभावात्मक ही माना हो तो गुणों को तो भावात्मक नहीं ही कहा । अभाव का अभाव भावरूप ही हो, यह आवश्यक नहीं है । भरत गुणों के लक्षण के विषय में किसी ऐसी स्थिति में पहुँचे नहीं दिखाई देते, जिस पर निर्भर रहा जा सके । वामन ने इस स्थिति को बदलने का प्रयत्न किया है और लिखा है – 'वे तत्त्व गुण होते हैं, जो काव्य–शोभा को जन्म देते हैं । जनक को अभावात्मक नहीं माना जा सकता । अतः वामन के इस कथन से स्पष्ट है कि वे गुणों को 'भावात्मक' तत्त्व मानते हैं । किसी का अपोह या विपर्यास नहीं ।

दण्डी और वामन आदि ध्वनिकारों से पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुण को शब्द और अर्थ का धर्म माना है । वामन की दृष्टि में गुण काव्य के शोभाकारक धर्म है ।[२२१] यदि ये नित्य धर्म है[२२२] तथापि वामन काव्य की आत्मा रस को नहीं, रीति को मानते हैं, जो कि गुण विशिष्ट पद रचना है । इस कारण उनकी दृष्टि के गुण रस के धर्म न होकर रचना के धर्म होते हैं । वे उन्हें स्पष्टतः शब्द तथा अर्थ के धर्म के रूप में स्वीकार करते हैं ।[२२३]

वामन के पश्चात् ध्वनिकार और उनके अनुयायियों ने गुण को रस–धर्म मान लिया । ध्वनिकार के मतानुसार जो प्रधानभूत (रस) अंगी के आश्रित रहने वाले हैं, उनको गुण कहते हैं ।[२२४] इसप्रकार ध्वनिकार ने गुण को आत्माभूत रस का धर्म माना है । शरीरभूत शब्दार्थ का नहीं ।

ध्वनिकार के पश्चात् मम्मट ने उनके लक्षण को और अधिक स्पष्ट कर दिया । उनके मतानुसार गुण काव्य के धर्म हैं, नित्य हैं तथा रस का उत्कर्ष

करने वाले हैं ।[२२५] हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने प्रायः इसी लक्षण का अनुकरण किया है । केवल पण्डितराज जगन्नाथ ने गुण को रस धर्म मानने में आपत्ति की है । उनका तर्क है कि काव्य का आत्मा होने के कारण रस तो गुणशून्य हुआ, उसका धर्म अथवा गुण कैसा ? (परमात्मा गुण शून्यैवेति मायावादिनो मन्यन्ते) । अतएव गुण शब्दार्थ का धर्म है, परंतु आगे चलकर उनके विवेचन में शब्द अर्थ के 'साथ–साथ रस को भी गुण का आधार माना गया है, जिससे गुण रस धर्मत्व फिर स्थापित हो जाता है ।

इसप्रकार गुण काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व हैं । इस विषय में सबकी पूर्ण सहमति है । परन्तु वामन आदि ध्वनिकार से पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुण को शब्दार्थ का धर्म माना है । ध्वनिकार से उत्तरवर्ती आचार्यों भोजादि ने वामन की ही मान्यता को स्वीकार किया है ।

ध्वनिकार एवं उनके अनुयायी मम्मट, हेमचन्द्रादि ने गुण को रस का धर्म मानते हुए उसे चित्तवृत्ति का रूप माना है, वर्णादि व्यंजक रूप में उसके आधार हैं । इनके मतानुसार माधुर्यादि गुण द्रुत आदि चित्तवृत्तियों के तद्रूप ही हैं । उनका वास्तविक आधार रस है । परन्तु व्यंजक रूप में वर्णगुम्फन, समास तथा रचना आदि भी गुणों के आधार हैं । अतएव गुण अपने सूक्ष्मरूप में चित्तवृत्ति रूप है और स्थूल अथवा मूर्त्तरूप में वर्णगुम्फन तथा शब्द घटना रूप हैं । द्रुति, दीप्ति तथा व्यापकत्व नामक चित्तवृत्ति उसका अन्तर आधार तत्त्व तथा वर्णगुम्फ और शब्दगुम्फ बाह्यतत्त्व हैं ।

गुण–भेद :

आचार्य भरत और वामन गुणों की संख्या १० मानते हैं और दसों की संज्ञाएँ निम्नलिखित हैं –

(१) श्लेष (२) प्रसाद (३) समता (४) माधुर्य (५) सुकुमारता
(६) अर्थव्यक्ति (७) उदारता (८) ओज (६) कान्ति (१०) समाधि

गुणों की गणना का यह क्रम दण्डी द्वारा स्वीकृत क्रम है। भरत इनकी गणना निम्नलिखित क्रम से करते हैं –

(१) श्लेष	(२) प्रसाद	(३) समता	(४) समाधि	(५) माधुर्य
(६) ओज	(७) सौकुमार्य	(८) अर्थव्यक्ति	(६) उदारता	(१०) कान्ति

उपर्युक्त दश गुणों में से जो गुण नीलकण्ठ दीक्षित रचित महाकाव्य 'गंगावतरणम्' में यत्र-तत्र उद्धृत हैं, उनके लक्षण अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं –

(क) प्रसाद-गुण :

(१) भरत :

अप्यनुक्तोबुधैर्यत्र शब्दोऽर्थो वा प्रतीयते ।
सुखशब्दार्थसम्बोधात् प्रसादः परिकीर्त्यते ।।[२२६]

जहाँ शब्द या अर्थ बिना बताए प्रतीत हो जाय, वहाँ प्रसाद-गुण होता है, क्योंकि इससे शब्द और अर्थ का बोध सुख से हो जाता है।

(२) दण्डी

'प्रसादवत् प्रसिद्धार्थम् ।'[२२७]

अर्थात् प्रसिद्ध अर्थवाला पद प्रसाद युक्त पद होता है।

इसीप्रकार 'नीलकण्ठ दीक्षित' विरचित महाकाव्य 'गंगावतरणम्' में प्रसाद गुण का अधोलिखित श्लोक द्रष्टव्य है –

हतः श्लोको हतं काव्यं हताबुद्धिर्हतं यशः ।
सद्भिरुद्भावितो दोषो यदि नाभ्युपगम्यते ।।[२२८]

अर्थात् सज्जन विद्वान् जिसे आलोचना रूपी दोष से न देखें, वह श्लोक मृत है। काव्य-अकाव्य, बुद्धि-विनाश और कीर्ति-अपकीर्ति के समान है।

प्रथम सर्ग के एक अन्य श्लोक में भी प्रसाद–गुण का सहजभाव दर्शनीय है –

अन्धास्ते कवयो येषां पन्थाः क्षुण्णःपरैर्भवेत् ।
परेषां तु यदाक्रान्तः पन्थास्ते कविकुंजराः ।।[२२९]

अर्थात् जिनका मार्ग शत्रुओं से अवरुद्ध हो, वे कवि अन्धे होते हैं । जो कवि हाथी की तरह अपना मार्ग स्वयं निर्मित करें, वे ही महाकवि हैं ।

इसीप्रकार द्वितीय सर्ग का भी प्रसादगुण का एक श्लोक अधोलिखित पंक्तियों में यहाँ प्रस्तुत है –

कामिनः पथि तलेषु तरूणां गाढ़नम्रविटपेषु निवेश्य ।
अध्वखेदमहरन्त वधूनामम्बुभिः कमलिनीदलनीतैः ।।[२३०]

अर्थात् कामी पुरुष मार्ग में घनीभूत शाखावाले वृक्षों के नीचे बैठकर कमलिनी के पत्ते में लाये हुए जल से प्रेयसियों का मार्गजन्य श्रम दूर करते थे ।

(ख) माधुर्यगुण :

(१) भरत :

बहुशो यच्छ्रुतं वाक्यमुक्तं वापि पुनः पुनः ।
नोद्वेजयति यस्माद्धि तन्माधुर्यमिति स्मृतम् ।।[२३१]

जिससे वाक्य को बार–बार सुनने पर भी चित्त में उद्वेग न आए, वही माधुर्य है ।

(२) दण्डी

मधुररसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः ।
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः ।।[२३२]

माधुर्य वह गुण है जिससे रसवत्ता आती है और नीरस वस्तु में भी रस की प्रतीति होती है । उससे बुद्धिमान् जन वैसे ही प्रसन्न होते हैं, जैसे वसन्त में भ्रमर ।

कोई भी सानुप्रास वाक्य इसका उदाहरण है । इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में आगत माधुर्यगुण का अधोलिखित उदाहरण भी द्रष्टव्य है –

उत्तरीयमहरत्कुचकुम्भादुन्ममार्ज मुखघर्मपयांसि ।
अंगमंगमपि पान्थवधूनामालिलिंग सुकृती वनवातः ।।[२३३]

अर्थात् जंगली होने पर भी भाग्यशाली वायु ने प्रेयसियों के स्तनों को आच्छादित करने वाले दुपट्टे को हटा दिया । मुख में घर्मजन्यबिन्दुओं को दूर किया, इसप्रकार पथिकों की बधुओं के अंग–प्रत्यंगों का भी उसने आलिंगन किया ।
माधुर्यगुण का द्वितीय उदाहरण –

फूत्कृतैरजहदूष्मतरंगैर्भूयसा मसृणितोष्ठदलानि ।
अस्वदन्तसुदृशामभिकेभ्यो मुग्धघर्मकणितानि मुखानि ।।[२३४]

अर्थात् फूत्कारजन्य ग्रीष्म तरंगों से अत्यधिक मात्रा में स्निग्ध अधरोष्ठ खुल गये । सुन्दर नेत्रों वाली मुग्धांगनाओं के स्वेदकणालंकृत मुखों का कामियों ने रसास्वादन किया ।

इसी सर्ग के माधुर्यगुण का एक अन्य श्लोक भी यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–

हारदाम्नि हरिचन्दनपंके शीतरोचिषि शिरीषदलेषु ।
कामिनीकुचतटेषु चलिल्ये पञ्चाभिः किमसुभिः कुसुमेषोः ।।[२३५]

अर्थात् हारदामन, हरिचन्दन, चन्द्रमा, शिरीषपुष्प और कामिनी का स्तनतट क्या ? इनके निर्माण में कामदेव के पंचबाण[२३६] का उपयोग हुआ है ।

(ग) ओज–गुण का उदाहरण :

(१) भरत :

अवगीतोऽपिहीनोऽपि स्यादुदात्तावभासकः ।
यत्र शब्दार्थसम्पत्यातदोजः परिकीर्तितम् ।।[२३७]

अवगीत, अविहीन, उदात्तावभावक तथा शब्दार्थ संपत्ति से ओजस्वीबन्ध युक्त होता है ।

गुण–सूची

	गुण–संज्ञा	भरत	दण्डी	भामह	वामन	
					शब्दगुण	अर्थगुण
१	श्लेष	सार्थक पदों का आश्लेष	अल्पप्राण अक्षरों वाले पदों का अशिथिल बन्ध	+	शब्द की मसृणता, जिससे अनेक पद एक प्रतीत हों	क्रम और कुटिलता का विदित न होना
२	प्रसाद	शब्द से अर्थ का सुखपूर्वक बोध	अर्थ की स्पष्टता	अर्थ की स्पष्टता	ओजोमिश्रित शिथिलता	अर्थ की विमलता
३	समता	पदों की अन्योन्य समता	आरम्भ से अन्त तक एक–सा बन्ध	+	आरम्भ से अन्त तक एक ही मार्ग	अविषम बन्ध
४	माधुर्य	अनुद्वेजक पदावली	अनुप्रास, यमक और अग्राम्यता से युक्त सरस पदावली	पदों की असमासहीनता तथा श्रव्यता	लम्बे समासों का अभाव यानी पदों की पृथकृता अमिश्रितता	उक्ति–वैचित्र्य
५	सुकुमारता	सुकुमार अर्थ मिले हुए तथा सुख से बोले जाने योग्य पदों का प्रयोग	ऐसा बन्ध जिसमें अक्षर निष्ठुर न हों।	+	अपरुष शब्द	अपरुषता
६	अर्थव्यक्ति	अर्थ का अविलम्ब बोध	अर्थ का सीधे सीधे–बोध	+	अर्थसर्म्पकता में विलम्बाभाव	वस्तुस्वभाव की स्फुटता
७	उदारता	(१) अति विचित्र अनेक प्रकार के अर्थो वाले सौष्ठव युक्त सुन्दर उक्तियों का कथन (२) दिव्यभाव, शृङ्गार, अद्भुतता से युक्त कथन	(१) नायक में उत्कर्ष या उदात्तता का ज्ञापन (२) श्लाघ्य विशेषणों से युक्त होना	+	अग्राम्यता	पदों का नृत्य सा करता हुआ प्रतीत होना
८	ओज	(१) शब्द और अर्थ की उदात्त सम्पत्ति (२) समासयुक्त, उदार स्वर वाले विविध पद	समासाधिक्य	पदों की समास बहुलता	पदबन्ध की गाढता	प्रौढि. (१) पद के लिए वाक्य (२) वाक्य के लिए पद (३) विस्तार (४) संक्षेप तथा (५) साभिप्रायता
९	कान्ति	मनः श्रोत्रप्रसादी शब्दबन्ध	अर्थ को लौकिक रूप में ही प्रस्तुत करना	+	उज्ज्वलता	रसदीप्ति
१०	समाधि	अर्थ की विशेषता	अन्य के गुण का अन्य में स्वाभाविक संक्रमण	+	आरोह तथा अवरोह से युक्त क्रम	वक्तव्य अर्थ का दर्शन

गुण–सूची के संदर्भ :

१ श्लेष भरत – नाट्य शास्त्र १७/६७, दण्डी–काव्यादर्श १/४३, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/२० तथा ३/२/४

२ प्रसाद–भरत – नाट्य शास्त्र १७/६६, दण्डी–काव्यादर्श १/४५, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/६८ तथा ३/२/३ भामह काव्या. २/१, ३

३ समता भरत – नाट्य शास्त्र १७/१००, दण्डी–काव्यादर्श १/४७, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/११ तथा ३/२/५

४ माधुर्य भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०२, दण्डी–काव्यादर्श १/५१, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/२० तथा ३/२/१० भामह काव्या. २/१, ३

५ सुकुमारता–भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०४, दण्डी–काव्यादर्श १/७०, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/२१ तथा ३/२/११

६ अर्थव्यक्ति–भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०५, दण्डी–काव्यादर्श १/७३, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/२३ तथा ३/२/१३

७ उदारता–भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०६, दण्डी–काव्यादर्श १/७६,७६, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/२२ तथा ३/२/१२

८ ओज–भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०३, दण्डी–काव्यादर्श १/८०, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/५ तथा ३/२/२ भामह–काव्या. २/२

६ कान्ति–भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०७, दण्डी–काव्यादर्श, १/८५, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/२४ तथा ३/२/१४

१० समाधि–भरत – नाट्य शास्त्र १७/१०१, दण्डी–काव्यादर्श १/६३, वामन–काव्यालं. सूत्र ३/१/१२–१६ तथा ३/२/६–६

५.२.६ ध्वनियोजना :

पृष्ठ भूमि :

ध्वनिसिद्धांत रस की ही अभिवृद्धि है । काव्यक्षेत्र में ध्वनि ने रस को व्याप्त किया । रस सदैव ध्वनित होता है; वाच्य इस तर्क से ध्वन्यालोक में काव्य की श्रेष्ठता निश्चित की गयी है ।

५.२.६.१ ध्वनि एवं उस का स्वरूप :

आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं – 'प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः व्याकरणमूलत्वात् सर्वविद्यानाम् ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति ।'[२३८] अर्थात् वैयाकरण प्रथमतः विद्वान् है, क्योंकि व्याकरण सभी विद्याओं का मूल है उन विद्वानों ने सुनाई पड़ने वाले वर्णों को 'ध्वनि' ऐसा कहा है । आचार्य मम्मट ने भी कहा है – 'बुधैः वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यंग्यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरित व्यवहारः कृतः । ततः तन्मतानुसारिभिः अन्यैरपि न्यग्भावितवाच्य व्यङ्ग्यव्यञ्जनक्षमस्य शब्दार्थयुगलस्य ।'[२३९]

सहृदय लोग काव्य में शब्द की अपेक्षा अर्थ को महत्त्व देते हैं । काव्य के शब्दरूपी शरीर में शब्द का महत्त्व आपातमात्र है, वास्तविक चमत्कार अर्थ में निहित रहता है,[२४०] क्योंकि अर्थ वाच्य भिन्न प्रतीयमान रमणी के लावण्य के समान बताया गया है ।[२४१]

५.२.६.२ ध्वनि की परिभाषा :

आचार्य आनन्दवर्धन काव्यविशेष को ध्वनि कहते हैं जो वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक प्रधान तथा आकर्षक होता है ।[२४२] अथवा जहाँ संकेत वहाँ ध्वनि, अर्थात् ध्वनि का आविर्भाव व्यंग्य की प्रधानता में रहता है । आचार्य मम्मट ध्वनि के संबंध में मत देते हुए लिखते हैं । 'इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्कथितः बुधैः ।[२४३] यदि वह किसी विचार के रूप में हो, तो वस्तु ध्वनि,

उक्ति – चमत्कार के रूप में हो तो अलंकार ध्वनि और रसभावादि के रूप में हो, तो उसे रसध्वनि कहते हैं ।

५.२.६.३ ध्वनि के भेदोपभेद : (आचार्य आनन्दवर्धन) :

ध्वनि सिद्धांत के आद्यप्रवर्तक आचार्य आनन्दवर्धन ने त्रिविधरूप में प्राप्त व्यंग्यार्थ की प्रकृति के आधार पर स्थूल रूप में ध्वनि के तीन प्रकार स्वीकृत किये हैं । वस्तुरूप, अलंकाररूप और रसभावादिरूप ।

आचार्य आनंदवर्धन ने प्रथम तो ध्वनि के दो भेद बताये ।
(१) अविवक्षितवाच्य (२) विवक्षितान्यपरवाच्य[२४४] तदनन्तर अविविक्षितवाच्य के दो भेद किये ।

(क) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य (ख) अत्यंततिरस्कृतवाच्य[२४५]

व्यंग्यार्थ की प्रतीति के लिए वाच्यार्थ बोध आवश्यक है । वाच्यार्थ बोध के बाद ही व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है । उससे वाच्यार्थ के इस संबंध को ध्यान में रखकर व्यंग्यार्थ की प्रतीति में वाच्यार्थ की अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष सहकारिता का आधार आनंदवर्धन ने ध्वनि के मुख्य भेदों को कहा ।

विवक्षितान्यापरवाच्य ध्वनि में वाच्यार्थ पद के बाद ही व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है । परंतु वाच्यार्थ बोध और व्यंग्यार्थ की प्रतीति के बीच पौर्वापर्य का क्रम कहीं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, तो कहीं नहीं होता । इस कारण इसका पुनः दो भाग करते हैं ।

(क) असंलक्ष्यक्रम (ख) संलक्ष्यक्रम

असंलक्ष्यक्रम में रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति भावोदय और भावशबलता को सम्मिलित किया गया है ।

संलक्ष्यक्रम व्यंग्यध्वनि प्रथमतः दो भागों में विभक्त है, यथा –

(क) शब्दशक्तिमूल, (ख) अर्थशक्तिमूल

अर्थशक्तिमूल का पुनः दो भाग करते हैं ।

(क) प्रौढोक्ति मात्र निष्पन्न शरीर (ख) स्वतः संभवी । यहाँ पर यह उल्लेख उपयुक्त होगा कि ध्वनिकार ने अर्थशक्ति मूल ध्वनि के दो भेदों में प्रोढोक्ति मात्र निष्पन्न संलक्ष्यक्रमध्वनि का पुनः दो भेद दिये हैं ।
(क) कविकल्पित (ख) कवि निबद्ध कल्पित ।

इन उपभेदों के कल्पना के दो आधार हैं । व्यंजक और व्यंग्य । पुनः दोनों का वस्तुरूप और अलंकार रूप दो–दो प्रकार बन जाने के कारण ध्वनि के चार भेद हुए । तदनन्तर चार भेदों के तीन–तीन भेद अधिक होते हैं । स्वतः संभवी रूप, कवि प्रौढोक्तिरूप और कवि निबद्ध वक्तृप्रौढोक्ति रूप । इस तरह अर्थशक्ति मूल के कुल १२ भेद होगें, जिन्हें निम्नोक्त प्रकार से देखा जा सकता है; यथा –

(१) स्वतः संभवी वस्तु से वस्तु ध्वनि ।
(२) स्वतः संभवी वस्तु से अलंकार ध्वनि ।
(३) स्वतः संभवी अलंकार से वस्तु ध्वनि ।
(४) स्वतः संभवी अलंकार से अलंकार ध्वनि ।
(५) कविप्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु ध्वनि ।
(६) कविप्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से अलंकर ध्वनि ।
(७) कविप्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि ।
(८) कविप्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से अलंकार ध्वनि ।
(६) कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से वस्तु ध्वनि ।
(१०) कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति सिद्ध वस्तु से अलंकार ध्वनि ।
(११) कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से वस्तु ध्वनि ।
(१२) कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्ति सिद्ध अलंकार से अलंकार ध्वनि ।

इस तरह व्यंग्य के प्रकारों से ध्वनि के स्वरूप का विवेचन करने के पश्चात् ध्वनिकार ने व्यंजक के प्रकारों से भी उसका निरूपण किया है । उन्होंने अविवक्षितवाच्य और विवक्षितान्यपरवाच्य का संलक्ष्यक्रम व्यंग्य (शब्दशक्तिमूल) के

मात्र पदप्रकाश्य और वाक्यप्रकाश्य भेद स्वीकार किया है ।[२४६] असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य (रसादि ध्वनि) का वर्ण, पद इत्यादि, वाक्य, संघटना और प्रबंध से प्रकाशित हुआ स्वीकारा गया है ।[२४७] इसके अतिरिक्ति ध्वनिकार अर्थशक्तिमूल का पद-प्रकाश्य और वाक्यप्रकाश्य होने के बावजूद अपने प्रबंधप्रकाश्य को भी मानते है ।[२४८] जैसे कोष्ठक की दृष्टि से देखें तो –

(१)	अविवक्षितवाच्य	(१) अर्थान्तरसंक्रमित (पद, वाक्य) – २
		(२) अत्यंततिरस्कृत (पद, वाक्य) – २
(२)	विवक्षितान्यपरवाच्य	(१) संलक्ष्यक्रम-व्यंग्य शब्दशक्तिमूलक अर्थशक्तिमूल (पद, वाक्य) – २
(३)	विवक्षितान्यपरवाच्य	असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य (पद, पदांश, वर्ण, वाक्य, संघटना और प्रबंध) – ६
(४)	विवक्षितान्यपरवाच्य	संलक्ष्यक्रमव्यंग्य – अर्थशक्तिमूल कुल बारह – (पद, वाक्य, प्रबंध) – ३६

५.२.६.४ ध्वनि-निरूपण :

(क) अविवक्षितवाच्य ध्वनि :

जहाँ वाच्यार्थ स्वयं अविवक्षित होकर लक्ष्यार्थ का बोध कराता है, वहाँ अविवक्षितवाच्य ध्वनि होता है । उसके मूल में लक्षणा होने से इसे लक्षणामूलक ध्वनि भी कहते हैं । यहाँ जो व्यंग्य अर्थ होता है, वह गूढ अर्थात् सहृदय मात्र संवेद्य होता है । वही व्यंग्यार्थ यहाँ प्रधान (मुख्य) होता है । अर्थात् लक्ष्यार्थ की अपेक्षा उसमें अधिक विशेषता देखी जाती है । उसके दो भेद है ।

(१) अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य (२) अत्यंततिरस्कृतवाच्यध्वनि । पुनः वाक्य और पदगत दो-दो भेद होते हैं ।

(१) अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य :

उसमें मूल तो प्रयोजनवती उपादान लक्षणा काम करती है । जहाँ मुख्यार्थ स्वयं के स्वरूप के अनुपयोगी होने के कारण विशिष्ट रूप अन्य अर्थ में हो जाय, वहाँ अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि होता है ।[२४६] मुख्यार्थ का स्वयं के रूप में उपयोगी न होना दो प्रकार से होता है । एक शब्द के पुनरुक्ति से तथा दूसरे वाच्यार्थ के प्रकरणानुकूल अर्थविशेष को न कहने के कारण । संक्षेप में कह सकते हैं कि वाच्यार्थ के अर्थान्तरपरिणति का एक प्रयोजन होता है । वह व्यंग्यार्थ होता है और चमत्कारपूर्ण होने के कारण उसका ही प्राधान्य होता है ।

(अ) वाक्यप्रकाश्य अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि :

इसप्रकार की ध्वनि का अत्यंत सुन्दर उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है –

स्रुवा महास्त्राविविधास्तथा शराः अध्वर्यवस्तत्र भटा महाबलाः ।
दक्षास्तथा होतृगणा रणांगणे सेनां गुरुण्डस्य हविर्विलक्षणा ।।[२५०]

बड़े–बड़े अस्त्र इस युद्ध के स्रुवा हैं, बाण अध्वर्यु हैं, महायोद्धा शत्रुवधारूपी हवन कार्य में हैं और अंग्रेजों की सेना उसमें विलक्षण हवि के समान है । यहाँ स्रुवा, अध्वर्यु, होता और हवि यज्ञ विशेष के अंग हैं । महाकवि ने तो स्वातंत्र्य समर के अस्त्र, बाण, महायोद्धा और अंग्रेजों का वर्णन किया है परंतु उनके मुख्यार्थ रूप स्रुवा इत्यादि को बताकर जैसे यज्ञ की आवश्यकता के लिए जरुरी स्रुवा इत्यादि हों, उस तरह यहां युद्ध की आवश्यकता के अस्त्र इत्यादि हैं, जो लक्षित है । इसलिए इन शब्दों का वाच्यार्थ अन्य अर्थ में संक्रमित हो गया । जिस कारण प्रयोजनरूप युद्धक सामग्री और योद्धाओं की अतिशयित ध्वनि है । यहाँ ध्वनि एक से अधिक पदों पर आधारित है । इसलिए यह वाक्य प्रकाश्य ध्वनि का उदाहरण बनेगा ।

(२) दण्डी :

‘ओजः समासभूयस्त्वम् ।’

ओज गुण में समास की मात्रा अधिक रहती है ।

इसीप्रकार नीलकण्ठ दीक्षित विरचित महाकाव्य 'गंगावतरणम्' के द्वितीय सर्ग के अन्त में ओजगुण का एक श्लोक उद्धृत है –

साम्राज्यं यदि सप्तमार्णवतटीविश्राम्यदाज्ञाक्षरं
सौंदर्यं यदि मुद्रिताः स्मरगिरः साचेन्मतिः को गुरुः ।
शौर्यंचेत्पुनरन्यदेव तदिति स्तोत्रं विचित्रं सतां
शृण्वन्नेव भगीरथक्षितिपतिर्निन्ये सहस्रं समाः ।।[२५१]

अर्थात् जिसका आज्ञासूचक साम्राज्य सप्त समुद्र पर्यन्त विस्तृत है, उसके शारीरिक सौंदर्य में कामोक्तियाँ मुद्रित हैं । ऐसे विद्वान् का गुरु कौन हो सकता है ? उनकी शूरता ही कुछ और है । इसप्रकार सज्जनों के स्तोत्र का श्रवण करते हुए राजा भगीरथ ने हजारों वर्ष व्यतीत किये ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' के पंचम सर्ग में गंगा की गर्वोक्तियुक्त ओज का अन्य उदाहरण इसप्रकार है –

सावलेपनिपतन्मदूर्मितासंप्लवैककवलीकृतो
संगतः पयसि शंखशुक्तिभिर्नन्दिता ननु गवेषयिष्यते हरः ।।[२५२]

अर्थात् भयंकर ध्वनि करने वाली गिरती हुई मेरी तरंगों के प्लवन में ग्रसित शिव जल में शंख शुक्तियों के साथ निश्चित रूप से नन्दी द्वारा खोजे जायेंगे ।

(क) ध्वनि–विवेचन :

ध्वनिनाऽतिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना ।
आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः ।।[२५३]

ध्वन्यालोक में 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग पाँच अर्थों में किया गया है – व्यंग्य अर्थ, वाचक शब्द, वाच्य अर्थ, व्यंजना व्यापार और समुदाय रूप काव्य । जैसा कि आचार्य अभिनवगुप्त लिखते हैं :

अर्थो वा शब्दो वा व्यापारो वा । अर्थोऽपिवाच्यो वा ध्वनतीति, शब्दोऽप्येवम् । व्यंग्यो वा ध्वन्यत इति । व्यापारो वा शब्दार्थयोर्ध्वननमिति । कारिकाया तु प्राधान्येन समुदाय एव काव्यरूपो मुख्यतया ध्वनिरिति प्रतिपादितम् ।[२५४]

तेन वाच्योऽपि ध्वनिः वाचकोऽपि ध्वनिः वाचकोऽपि शब्दो ध्वनिः द्वयोरपि व्यंजकत्वं ध्वनतीति कृत्वा । सम्मिश्रयते विभावानुभाव सवलनयेति व्यंग्योऽपि ध्वनिः, ध्वन्यत इति कृत्वा । शब्दनं शब्दः शब्दव्यापारः न चासावभिधादिरूपः अपि स्वात्मभूतः सोऽपि ध्वनिः । काव्यभित्तिव्यपदेश्यश्च योऽर्थः सोऽपि ध्वनिः उक्तप्रकार ध्वनिचतुष्टयमयत्वात् ।[२५५]

पंचधाऽपि ध्वनिशब्दार्थे येन यत्र यतो यस्य यस्मै इति बहुब्रीहिर्यथाश्रयेण यथोचितं सामानाधिकरण्यं सुयोज्यम् ।[२५६]

ध्वनि शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार उक्त पाँचों अर्थों में इसप्रकार योजना होगी ।

(१) ध्वनतीति ध्वनिः (२) ध्वन्यत इति ध्वनिः (३) ध्वननं ध्वनिः ।

प्रथम के अनुसार वाच्य अर्थ और वाचक शब्द 'ध्वनि' शब्द से अभिहित होते हैं । द्वितीय के अनुसार केवल व्यंग्यरूप अर्थ 'ध्वनि' है और तृतीय के अनुसार व्यंजनाव्यापार 'ध्वनि' है । 'ध्वनि' शब्द का पाँचवाँ विषय 'समुदायरूप काव्य' है क्योंकि ये चारों प्रकार उसमें होते हैं । इसलिए 'काव्यविशेषः से ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः' यहाँ समुदायरूप काव्य में 'ध्वनि' शब्द का व्यवहार है और प्रथम कारिका में 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः'[२५७] व्यंग्य अर्थ की दृष्टि से कहा गया है ।

अन्य सभी अर्थों में व्युत्पत्तितः और व्यवहारतः 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग होने पर भी मुख्यतः व्यंग्य अर्थ ही 'ध्वनि'[२५८] शब्द से अभिहित होता है और वह भी शब्द तथा अर्थ को अतिशंसित करके चारुत्वातिशय के कारण प्रधानरूप

से प्रतीयमान हो, तब 'ध्वनि' कहलाता है । व्यंग्यत्व की स्थिति में ही वाच्यादि भी 'ध्वनि' शब्द से वाच्य हो सकते हैं ।

इसप्रकार प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट काव्य के बाह्य तत्त्वों का उचित रूप से आदर करते हुए ध्वनि को काव्य के आत्मा के रूप में ध्वनिकार ने प्रतिष्ठित किया । इतना होते हुए भी वे स्वयं इस सिद्धांत का प्रतिष्ठापक बनने को तत्पर नहीं । उनका ध्वनि सिद्धांत बुधजनों द्वारा पूर्व समाम्नात था । केवल उस 'ध्वनि' के संबंध की व्युत्पत्तियों का निराकरण तथा उसके उदाहरणों आदि के द्वारा स्पष्टीकरण सहृदयों के मन की प्रसन्नता के लिए उन्होंने यहाँ किया –

'तेन ब्रूमः सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ।'

५.२.६.५ ध्वनिशब्द के विभिन्न अर्थ एवं उनकी उत्पत्ति के स्रोत :

ध्वनि प्रसाद का प्रयोग वर्णरूप में व उच्चारणीय शब्द के अर्थ में किया गया है क्योंकि इससे घण्टा की आवाज से उत्पन्न अव्यक्त ध्वनितरंगों की भाँति, व्यक्त ध्वनि तरंगें उत्पन्न होती हैं । वैयाकरण के ऐन्द्रिय बोध की व्याख्या इसप्रकार करते हैं । ध्वनि के ऐन्द्रिय बोध का कारण कर्णोदर से उन ध्वनितरंगों में से एक तरंग का संसर्ग है, जो अपने स्रोत से यथाक्रम उत्पन्न होती हैं । ध्वन्यर्थ सिद्धांत के प्रतिपादकों ने ध्वनि शब्द का प्रयोग व्यंग्य अर्थ के लिए इसलिए किया है, क्योंकि ध्वन्यर्थ का बोध जिस प्रक्रिया से होता है, वह 'ध्वनि' के ऐन्द्रियबोध की प्रक्रिया के तुल्य ही है । ठीक जिसप्रकार क्रमागत ध्वनियों से स्रोता को ध्वनि का इन्द्रियजन्यप्रत्यक्ष होता है । उसीप्रकार सहृदय को ध्वन्यर्थ का बोध वाच्यार्थ, तात्पर्यार्थ, लाक्षणिकार्थ के यथाक्रम बोध से होता है ।

शैवागमों में प्रतिपादित स्वात्म, पूर्ण, सर्वव्याप्त चित् तत्त्व के समान वैयाकरण सामान्यरूप सर्वव्यापी 'नाद' में विश्वास करते हैं, जिसको शास्त्रीय भाषा में 'स्फोट' कहते हैं । ध्वन्यर्थ सिद्धांत प्रतिपादकों ने वैयाकरणों का अनुगमन करते हुए 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग ध्वन्यर्थ उत्पादक शब्द तथा अर्थ दोनों के लिए

किया है । इसका सीधा–सा कारण यह है कि जिस प्रकार पद के अंतिम उच्चारित वर्ण से स्रोता के अंतःकरण में पद स्फोट का उदय होता है । उसी प्रकार ध्वन्यर्थ उत्पादक शब्द अथवा ध्वन्यर्थ उत्पादक अर्थ से ध्वन्यर्थ का बोध उत्पन्न होता है ।

एक ही पद का उच्चारण दो व्यक्ति करते हैं । दोनों व्यक्तियों से उच्चरित पद के विभासक वर्ण एक समान ही हैं । अतएव दोनों के विषय में कहा जा सकता है कि उनका उच्चारण करने का प्रयत्न समान ही हैं, किन्तु तीव्र या मन्दगति से उच्चारण करने पर हमें उसी की गति के अनुसार बोध होता है । इसीप्रकार ध्वनि सिद्धांत के प्रतिपादकों ने शब्द की उस अन्य क्रिया को 'ध्वनि' कहा है, जिससे ध्वन्यर्थ की उत्पत्ति होती है । इसका कारण यह है कि कुछ शब्द ऐसे होते हैं, जो अभिधेयार्थ, तात्पर्यार्थ एवं लाक्षणिक अर्थ को प्रकट करने वाली क्रिया के अतिरिक्त ध्वन्यर्थ को प्रकट करने वाली क्रिया को भी करते हैं ।

'ध्वनि' शब्द का प्रयोग उस काव्य कृति के लिए भी किया जाता है, जिसमें ध्वन्यर्थ का अस्तित्व होता है, और जो अपने समग्र रूप में ध्वन्यर्थ के बोधन का साधन रूप होती है ।

इसप्रकार ध्वनि शब्द का प्रयोग निम्नलिखित पाँच अर्थों में किया जाता है –

५.२.६.६ ध्वन्यर्थ प्रतिपादक प्रमुख शास्त्रकार :

रसास्वाद के विषय के समान ही ध्वन्यर्थ के विषय में भी अभिनवगुप्त के व्याख्यान सबसे अधिक युक्तिपूर्ण हैं और संस्कृत काव्यलक्षणशास्त्र के क्षेत्र में सभी परवर्ती शास्त्रकारों ने उनके मत का अनुसरण किया है । महिमभट्ट, जिन्हों ने अभिनवगुप्त का अनुसरण किया था किन्तु किसी गम्भीर शास्त्रकार ने उनके मत को मान्यता नहीं दी । 'ध्वन्यर्थ' का अन्वेषण किसी शास्त्रकार ने प्रारंभ

किया था, जिसका खण्डन महिमभट्ट ने ११वीं शताब्दी में करने का असफल प्रयत्न किया । आनन्दवर्धनाचार्य ने अपनी 'ध्वनिकारिका' में इसका विस्तृत प्रतिपादन किया । अभिनवगुप्त की विशिष्ट मान्यता इसलिए है कि उन्होंने इसकी मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक व्याख्या की ।

समय की इस अवधि के लेखकों को निम्नलिखित रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

(१) ध्वनि सिद्धान्त के प्रतिपादक एवं समर्थक

(२) ध्वनि सिद्धांत के विरोधी

(३) ध्वनि तथा लाक्षणिकार्थ[२५६] की अभिन्नता अथवा एकरूपता के प्रतिपादक ।

प्रथम कोटि के शास्त्रकारों में वे शास्त्रकार भी थे, जो यह विश्वास करते थे कि 'ध्वन्यर्थ' के समान किसी अर्थ का अस्तित्व है परन्तु वे इसके स्वरूप का पूर्णतया परिचय नहीं दे सकते थे ।

'ध्वनि–कारिका' के लेखक के पूर्व ऐसा कोई भी ग्रंथ उपलब्ध नहीं था, जिसमें ध्वनि सिद्धांत के प्रतिपादक को एवं विरोधियों के मतों को प्रकट किया गया हो किन्तु ऐसा भी नहीं कि काव्यलक्षण चिन्तकों की ध्वन्यर्थ के किसी स्वरूप का ज्ञान नहीं था । किन्तु जो भी ज्ञान था वह केवल मौखिक ही था, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा था ।

५.२.६.७ अर्थप्रतीति का सिद्धांत :

अभिनवगुप्त के प्रकृत ध्वनि–सिद्धांत की पूर्ण स्थापना के पूर्व अर्थबोध के विषय में भाषा की तीन शक्तियों को ही स्वीकार किया जाता था –

अभिधाशक्ति – भाषा की वह शक्ति जो अभिधेय अर्थ के मानसिक चित्र को श्रोता के मानस चक्षुओं के सामने इस कारण उपस्थित करती है क्योंकि अत्यंत प्राचीन समय में उस शब्द के विशिष्ट अक्षर समूह का सम्बन्ध उस विशिष्ट मानसिक चित्र के साथ रहा है ।[२६०]

तात्पर्यशक्ति – एक वाक्य में प्रयुक्त शब्द पूर्णरूपेण असम्बन्धित होते हैं और श्रोता में ऐसे अर्थरूप विशिष्ट मानसिक चित्रों को उत्पन्न करते हैं, जो एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं होते ।[२६१] उदाहरणार्थ –

'कुलालः घटं करोति'

कुम्हार घट को बनाता है ।

यहाँ कुम्हार के बनाने की क्रिया का जो सम्बन्ध घड़े के साथ है, उसको संस्कृत भाषा में विभक्ति रूप 'अम्' प्रत्यय से और हिन्दी भाषा में कर्मकारक सूचक 'को' शब्द से प्रकट किया जाता है । इस प्रसंग में यह भी कहा जा सकता है कि कुछ दार्शनिक जैसे प्रभाकर के मतावलम्बी यह मानते हैं कि इसप्रकार की 'शब्दशक्ति' की स्थापना अनावश्यक है ।

लक्षणाशक्ति – प्रायः वर्तमान साहित्य में हम इसप्रकार के वाक्यविन्यास पाते हैं, जो विचारों को ऐसे ग्रथित रूपों में प्रकट करते हैं कि उनको शब्दों की उपर्युक्त शक्तियाँ स्पष्ट नहीं कर सकती हैं । निम्नलिखित दृष्टांत से उपर्युक्त कथन स्पष्ट हो जाता है –

'गंगायाम् घोषः'

गंगा के तट पर गोष्ठ या आभीरपल्ली है ।

शब्द की उपर्युक्त शक्तियों अर्थात् अभिधा एवं तात्पर्य की सहजता से श्रोता को उपर्युक्त वाक्य के अभीष्ट ग्रथितरूप अर्थ का बोध नहीं हो सकता । अभिधा नामक शब्द की प्रथम शक्ति से गंगा शब्द से 'एक विशेष जलधारा' का और 'घोष' शब्द से 'एक छोटे आकार के गाँव' का चित्र श्रोता के अन्तःकरण में उत्पन्न होता है । भाषा की तात्पर्य नामक दूसरी शक्ति प्रयुक्त कारक विभक्तियों के सहयोग से अर्थरूप उपर्युक्त दो मानसिक चित्रों में आवश्यक सम्बन्ध स्थापित करती है । किन्तु इससे भी पूर्व स्पष्टीकरण नहीं हो पाता । अतएव पूर्ण अर्थज्ञान के लिए इसकी तीसरी लक्षणाशक्ति[२६२] का प्रयोग किया

जाता है । जिससे यह स्पष्ट हो पाता है कि 'एक छोटे आकार का गाँव गंगा के तट पर बसा हुआ है, जो पवित्र तथा शीतल है ।

५.२.६.८ ध्वनि का दृष्टांत :

गोदावरी नदी के किनारे निर्जन स्थान में एक प्रेमी प्रेमिका दोनों मिलने आते थे । उनमें प्रेमिका निश्चित समय से कुछ पूर्व आ जाती थी और धार्मिक कृत्य के लिए एक व्यक्ति को सुमनों को चुनते हुए देखती थी । उसके दर्शन से उस प्रेमिका को प्रसन्नता नहीं होती थी । वह चाहती थी कि वह व्यक्ति उस स्थान पर न आए । उस स्थान पर भयंकर कुत्ता रहता था । वह जानती थी कि यह व्यक्ति उस कुत्ते से बहुत भयभीत रहता है । उस दिन कुत्ता कहीं चला गया था । अतएव प्रेमिका ने निपुणता के साथ उस धार्मिक को समझाने की चेष्टा इसप्रकार करती है –

भ्रम धार्मिक ! विश्रब्ध स शुनकोऽद्य मारितस्तेन
गोदावरीकूललतागहनवासिना दृप्तसिंहेन ।[२६३]

अर्थात् हे धार्मिक ! अब आप इस स्थान पर स्वतंत्रापूर्वक विचरण कर सकते हैं, क्योंकि जिस कुत्ते से आप इतना अधिक भयभीत रहते थे, उसे आज उस दुर्घर्ष सिंह ने मार डाला है जिसके विषय में आप भलीभाँति यह जानते हैं कि वह गोदावरी के तट पर सघनलता में निवास करता है ।

इससे यह समझना कठिन नहीं है कि इसप्रकार के व्यक्ति पर इसका क्या प्रभाव पड़ सकता है । जहाँ एक धार्मिक (धर्मपरायण) व्यक्ति के सामने 'दृप्तसिंहेन' दुर्घर्ष सिंह ने जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाय ।

इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में भगीरथ के समक्ष गंगा की उक्ति से सम्बन्धित एक ध्वनि का उदाहरण द्रष्टव्य है –

प्रविष्टमात्रास्वपि मे रसातलं प्रवाहनासीरतरंगपंक्तिषु ।
पतेदलाबूफलकर्परोपमं विभिद्य विध्यण्डकपालसम्पुटः ।।[२६४]

यहाँ पर गंगा की उक्ति से यह ध्वनि निकलती है कि राजा भगीरथ भय से आतंकित होकर पृथ्वी पर मेरे अवतरण का प्रयास छोड़ दें ।

तृतीय सर्ग का द्वितीय उदाहरण भी द्रष्टव्य है । जिसमें गंगा की उक्ति है –

मदम्बुसम्पातविधूतकल्मषैर्महीशपूर्वैस्तव यत्र वत्स्यते ।
स एक लोको यदि मत्पयोजवात्पथि प्रलीयेत फलेतपस्तव ।।[२६५]

अर्थात् जिस स्थान में आपके पूर्वजों ने निवास किया था । मेरे जल के प्रभाव से वे कल्मषरहित होंगे किन्तु वही स्थान मार्ग में मेरे जल वेग से यदि प्रलय हो जाय, तो क्या तभी तुम्हारा तप फलीभूत होगा ?

इसी सर्ग का एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है, जिसमें ध्वनि मात्र से ही राजा भगीरथ को गंगा भयभीत करती हैं –

अचिन्तयित्वा कृतिगौरवं विधेरपि त्यजन्ती करुणां शरीरिषु ।
पताम्यहं यद्यपि कुत्र वा भवन्भवान्निवापांजलिमाचरिष्यति ।।

अर्थात् ब्रह्मा की सृष्टिगुरुता को न सोचकर देहधारियों के प्रति करुणा को छोड़कर यदि मैं गिरती हूँ, तो किस स्थान में आप पितरों का श्राद्ध करेंगे ।

५.२.६.६ अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :

चूँकि कवि नीलकण्ठदीक्षित व्यङ्ग्य प्रधान काव्य के प्रतिनिधि महामनीषी हैं । इसलिए उन्होंने अपनी कृतियों में प्रायः असंलक्ष्यक्रमध्वनि का ही प्रयोग किया है । अत्यंततिरस्कृतवाच्यध्वनि की प्रयोग संख्या प्रायः नगण्य है, अति न्यून है । अतः यहाँ गंगावतरणम् महाकाव्य से अत्यन्त तिरस्कृतवाच्यध्वनि के उदाहरण मैं प्रस्तुत नहीं कर रही हूँ ।

संदर्भ–सूची :

१.	काव्यप्रकाश १–२ की वृत्ति
२.	‘कविता क्या है’ – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३.	तैत्ति रीयोपनिषद् अनुवाक् १
४.	शिवमहिम्न स्त्रोत – ४
५.	रसरत्नहारः – पृ. १०४
६.	काव्यप्रकाशः –३ ४/३१ से ३४ पृ. १३६
७.	संस्कृतकाव्यशास्त्र का इतिहास पृ. ४४१
८.	संस्कृतकाव्यशास्त्र का इतिहास पृ. ४४१
९.	काव्यप्रकाशः कारिका ४५ पृ. ६६
१०.	रसकौस्तुभ – पृ. २८
११.	काव्यकौमुदी – पृ. ४७
१२.	काव्यकौमुदी – पृ. ४८
१३.	काव्यदर्पण – पृ. १०३
१४.	साहित्यसारः – पृ. १०३
१५.	साहित्यसारः – पृ. १०३
१६.	साहित्यसारः – पृ. १०४
१७.	साहित्यासरः – पृ. १०४
१८.	साहित्यसारः – पृ. १०४
१९.	रसमीमांसा – पृ. २६
२०.	रसमीमांसा – पृ. १०३
२१.	साहित्य–दर्पणः ३. १८२
२२.	साहित्य–दर्पणः पृ–५८२, पृ. २५१
२३.	रसगंगाधर पृ. १८६, पृ. १२२

२४.	संगीतरत्नाकरः 'दि नम्बर ओफ रसज
२५.	दशरूपकम् – पृ. ४. ८३
२६.	अनुयोगद्वार–सूत्र–दि नम्बर ओफ रसज, पृ. १५८
२७.	काव्यप्रकाश–मम्मट, ४–२६
२८.	नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, ८–१५
२९.	रसगंगाधर–पण्डितराज जगन्नाथ, पृ. १३१
३०.	मनोनुऽकूलेष्वर्थेषु सुखसंवेदनं रतिः, – सरस्वतीकण्ठाभरणालंकारः ५–१३८ पूर्वार्द्ध
३१.	काव्यप्रकाश–प्रथम उल्लास (कारिका १–२)
३२.	सरस्वतीकण्ठाभरणम्, (भोज) पञ्चम परिच्छेद, पृ. ३६८
३३.	सरस्वतीकण्ठाभरणम् – पृ. ४३१
३४.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, २–३६
३५.	गङ्गावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ३–५७
३६.	गङ्गावतरणम्–नलकण्ठ दीक्षित, ७–१८
३७.	व्यङ्ग्यक्रीडादिभिश्चेतो विकासो हास उच्यते । सरस्वती. ५–१३६ (अ) पूर्वार्द्ध
३८.	शोकश्चित्तस्यवैधुर्यमभीष्टं विरहादिभिः । सरस्वती. ५/१३६ उत्तरार्द्ध
३९.	गङ्गावतरणम् – ४–५१
४०.	गङ्गावतरणम् – ४–८६
४१.	प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्य प्रबोधःक्रोध उच्यते । सरस्वती. ५–१४० पूर्वार्द्ध
४२.	गङ्गावतरणम् – ४–४७
४३.	गङ्गावतरणम्–४–६२
४४.	कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह इष्यते । सरस्वती. ५–१४०
४५.	काव्यानुशासन और सरस्वतीकण्ठाभरण – पृ. ३८१

४६.	गंगावतरणम्–४–७४
४७.	वही, ५–१६
४८.	भयंचित्तस्य वैक्लव्यं रौद्रादिजनितं विदुः । सरस्वती. ५/१४१ (अ)
४९.	सरस्वती कण्ठाभरणम् – पृ. ३८२
५०.	'गङ्गावतरणम्' ३–६
५१.	गङ्गावतरणम्–३–७
५२.	जुगुप्सागर्हणार्थानां दोषसन्दर्शनादिभिः सरस्वती. ५–१४१ उतरार्द्ध
५३.	सरस्वतीकण्ठाभरणम्–पृ.३८३
५४.	गंगावतरणम्–३–२
५५.	विस्मयश्चित्तविस्तारः पदार्थातिशयादिभिः सरस्वती. ५–१४२ अ पूर्वार्द्ध
५६.	सरस्वतीकण्ठाभरणम् पृ. ३८३
५७.	गंगावतरणम्–३–३३
५८.	काव्यालंकारः १.१३
५९.	काव्यादर्शः २.१
६०.	साहित्य–दर्पणः १०.१
६१.	ध्वन्यालोकः २.१६
६२.	काव्याप्रकाशः पृ. ३८१
६३.	काव्यालश्चारमञ्जरी, पृ. १
६४.	काव्यविलासः पृ. १३
६५.	मन्दारमरन्दचम्पू पृ. १०६
६६.	रसदीर्घका पृ. ६१
६७.	साहित्यबिन्दु पृ. १४३
६८.	साहित्यसुधासिन्धु पृ. ३२६
६९.	नञ्जराजयशोभूषण पृ. ५४

७०.	काव्यालंकार कारिका - पृष्ठ ५२
७१.	अलंकारकोश पृ. २४
७२.	आधुनिक संस्कृतकाव्यशास्त्र पृ. २४५
७३.	काव्यादर्शः २.१४
७४.	अग्निपुराणम् ३४४-५,६
७५.	काव्यालंकारः २.३०
७६.	अलंकारत्नाकरः पृ. ७
७७.	काव्यालंकारसंग्रहः १.१५
७८.	सरस्वतीकंठाभरणम् ४.५
७९.	काव्यप्रकाशः - पृ. १२५
८०.	गङ्गावतरणम्-१-१४
८१.	गंगावतरणम् ६-४३
८२.	गंगावतरणम्-२-३०
८३.	गंगावतरणम् ३-६
८४.	गंगावतरणम् ३-१४
८५.	गंगावतरणम् महाकाव्य - प्रथम सर्ग-२३
८६.	सरस्वतीकण्ठाभरण-भोज, ३-२५
८७.	गंगावतरणम् महाकाव्य-१-२६
८८.	अप्रस्तुतप्रशंसा स्यादस्तोतव्यस्य या स्तुतिः । कृतोऽपि हेतोर्वाच्या च प्रत्येतव्या च सोच्यते ।। - सरस्वती कण्ठाभरण, ४-५२
८९.	काव्यादर्शः १.११
९०.	सुवृत्ततिलकम्-३.१.७
९१.	विष्णुपुराणम्-३.६.२६

९२.	ऐतरेयब्रह्मणे–२.३
९३.	शौनकीयबृहत्देवता–८.१३.२७
९४.	निरुक्तम् अ.७
९५.	श्री अरविन्द का काव्यदर्शन–पृ. ११६
९६.	छन्दः कौमुदी (उपोद्घात) पृ. ४
९७.	छन्दः कौमुदी (उपोद्घात) पृ. ४
९८.	छन्दः कौमुदी (उपोद्घात) पृ. ५
९९.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. २१
१००.	सुवृत्त तिलक–क्षेमेन्द्र, पृ. ११
१०१.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. १–२२
१०२.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ४–१३
१०३.	सुवृत्त तिलक–क्षेमेन्द्र, पृ. १३
१०४.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ३८
१०५.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, १–८२
१०६.	वही, पृ. ८–७७
१०७.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, १ से ८६
१०८.	छन्दोमञ्जरी–गंगादास, पृ. ६३
१०९.	छन्दोमञ्जरी–गंगादास, पृ. ६३
११०.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, १–८५
१११.	छन्दोमञ्जरी–गंगादास, पृ. १२२
११२.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, २–३९
११३०.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ७२
११४.	छन्दोमंजरी, पृ. ७२
११५.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. २–६५

११६.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. १२७
११७.	वही, पृ. १२७
११८.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ३–३८
११६.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ६२
१२०.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ६३
१२१.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ४ से ६४
१२२.	छन्दोमंजरी–'गंगादास' पृ. ३४
१२३.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ३४
१२४.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ४ से २२
१२५.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ३३
१२६.	छन्दोमंजरी – गंगादास, पृ. ६८
१२७.	वही पृ. ३३
१२८.	वही, पृ. ६६
१२६.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ५–६४
१३०.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ७४
१३१.	वही, पृ. ७४
१३२.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. ५ से ६६
१३३.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पे. ६८
१३४.	छन्दोमंजरी, पृ. ६८
१३५.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. ५–६७
१३६.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ७१
१३७.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ६–६८
१३८.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. १०६
१३६.	वही, पृ. १०६

१४०.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ६–६९
१४१.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ३०
१४२.	वही, पृ. ३०
१४३.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ८–९
१४४.	छन्दोमञ्जरी–गंगादास, पृ. ६६
१४५.	वही, पृ. ६७
१४६.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ७–४८
१४७.	छन्दोमंजरी–गंगादास पृ. ८३
१४८.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ८२
१४९.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ७–४९
१५०.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ११२
१५१.	छन्दोमंजरी, पृ. ११२
१५२.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ७ से ५०
१५३.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ५६
१५४.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ५९
१५५.	गंगावतरण–नीलकण्ड दीक्षित, पृ. ८ से २१
१५६.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ४०
१५७.	वही, पृ. ४०
१५८.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. ८ से ६८
१५९.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ४१
१६०.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ४१
१६१.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ८–९०
१६२.	छन्दोमंजरी–गंगादास, पृ. ४४
१६३.	गंगावतरणम्–नीलकण्ठ दीक्षित, ८–९३

१६४.	काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः पृ. १४ से १६
१६५.	आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र पृ. २२२
१६६.	संस्कृत हिन्दी शब्दकोश पृ. ८५७ (वामन शिवराम आप्टे)
१६७.	चन्द्रालोकः पृ. ६५
१६८.	ध्वन्यालोकः ३.६२
१६९.	वक्रोक्तिजीवितम् पृ. ६६
१७०.	काव्यप्रकाशः ४.६
१७१.	सरस्वती कण्ठाभरणम् पृ. २२८
१७२.	साहित्य–दर्पणः पृ. ६५८
१७३.	रसदीर्घिका पृ. ५१
१७४.	काव्यकौमुदी पृ. ६५
१७५.	नञ्जराजयशोभूषण पृ. १८
१७६.	नञ्जराजयशोभूषण पृ. १८
१७७.	रसदीर्घिका, पृ. ५२
१७८.	रसरत्नहार, पृ. ८८
१७९.	श्रीवीरकुमारसिंहचरितम् ५.८६
१८०.	साहित्यसारः पृ. ३२८
१८१.	रसदीर्घिका पृ. ५२
१८२.	साहित्यबिन्दुः पृ. १३०
१८३.	श्रीवीरकुमारसिंहचरितम् ६.३०
१८४.	साहित्यसारः पृ. ३२८
१८५.	नञ्जराजयशोभूषण पृ. १८
१८६.	श्रीवीरकुमारसिंहचरितम् १५.१
१८७.	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६७

१८८.	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६
१८६.	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६
१६०.	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६
१६१	गंगावतरणम् – नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. १–२३
१६२	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६७
१६३	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६७
१६४	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ३०२
१६५	गंगावतरणम् – नीलकण्ठ दीक्षित, २ से १
१६६	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६८
१६७	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६८
१६८	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथ, पृ. ४६८
१६६	गंगावतरणम् – नीलकण्ठ दीक्षित, २–४८
२००	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथकविराज, पृ. ४६८ मेहरचन्द लक्षमनदास नई दिल्ली – १६८२
२०१	साहित्य–दर्पण – विश्वनाथकविराज, पृ. ४६८ मेहरचन्द लक्षमनदास नई दिल्ली – १६८२
२०२	गंगावतरणम् – नीलकण्ठ दीक्षित, पृ. २ से ५१
२०३	काव्यालंकारसूत्रवृत्तिः ३.१.१
२०४	काव्यप्रकाशः पृ. ४८०
२०५	उत्कर्षाधायको रसस्य धर्मो गुणाः । काव्यकौमुदी, पृ. ६२
२०६	काव्यस्य महनीयत्वाधायकाः सम्मताः गुणाः ।
२०७	गुणैर्हीनो हि विक्षिप्तो सालंकारोऽपि कथ्यते । रसदीर्घिका, पे. ६६
२०८	नाट्यशास्त्रम्, १७.५०,
२०६	सरस्वतीकण्ठाभरणम् १.६२

२१०	आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र, पृ. २०६ से २१०
२११	काव्यालंकार (२.१०)
२१२	वक्रोक्तिजीवितम् १.३०, ३३
२१३	ध्वन्यालोक २.६
२१४	ध्वन्यालोक २.६
२१५	साहित्य–दर्पण ८.८
२१६	नाट्यशास्त्रम् १७.६७
२१७	नञ्जराज्यशोभूषण २.७०
२१८	श्रीवीरकुमारसिंहचरितम् २.६७
२१९	नाट्यशास्त्रम् १७.६८
२२०	एते दोषास्तु विज्ञेया सूरभिर्नाटकाश्रयाः । एत एव विपर्यस्ता गुणाः काव्येषु कीर्त्तिताः ।। नाट्यशास्त्र, १७–६४
२२१	काव्यशोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः । वामान, काव्यालंकार सूत्रवृत्तिः, ३–१–१
२२२	पूर्वेनित्याः पूर्वेगुणा नित्याः । तैर्विना काव्यशोभानुपपत्तेः । वामन–काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ३–१–३
२२३	ये खलु शब्दार्थयोर्धर्माः काव्यशोभां कुर्वन्ति, ते गुणाः । ते चौजः प्रसादादयः । वही, ३–१–१ की वृत्ति
२२४	तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः । आनन्दवर्धन ध्वन्यालोक : २–६ पूर्वार्द्ध
२२५	ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इव आत्मनः । उत्कर्षहेतवः ते स्युः अचलस्थितयो गुणाः ।। – मम्मट काव्यप्रकाश, ८–६६
२२६	नाट्यशास्त्र – भरत, पृ. १७–६७

२२७	दण्डी, पृ. १–४५
२२८	गंगावतरणम्, १–१६
२२९	गंगावतरणम्, १–१७
२३०	गंगावतरणम्, २–३८
२३१	नाट्यशास्त्र भरत, १७–१००
२३२	दण्डी १०–५१
२३४	गंगावतरणम्, २–३९
२३५	गंगावतरणम्, २–४३
२३६	गंगावतरणम्, २–४६
	अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका । नीलोत्पलं च पंचैते पंचबाणस्य सायकाः ।। अन्यच्च सम्मोहनोन्मानौ च शोषणस्तापनस्तथा । स्तम्भनश्चेति कामस्य पंचबाणाः प्रकीर्तिताः ।।
२३७	नाट्यशास्त्र – भरत, १७–१०१
२३८	ध्वन्यालोकः उद्योत १.१
२३९	काव्यप्रकाशः उल्लास – १.४ का वृत्तिभाग
२४०	ध्वन्यालोकः १.२
२४१	ध्वन्यालोकः १.४
२४२	ध्वन्यालोकः १.१३
२४३	काव्यप्रकाश १.४
२४४	ध्वन्यालोकः १४३
२४५	ध्वन्यालोकः २.१
२४६	ध्वन्यालोकः ३.१

२४७	ध्वन्यालोकः ३.२
२४८	ध्वन्यालोकः ३.१५
२४६	साहित्य–दर्पण ४.३ की वृत्ति
२५०	श्रीवीरकुमारसिंहचरितम् ६.१४
२५१	गंगावतरणम् १–८६
२५२	गंगावतरणम् ५–७
२५३	सूक्ति मुक्तावली जल्हण संकलित – राजशेखर
२५४	ध्वन्यालोक – आनन्दवर्धन, पृ. १०४–१०५, विद्याभवन वाराणसी १६६५
२५५	वही, पृ. १४१–१४२
२५६	वही, पृ. १४३
२५७	वही, कारिका १/१
२५८	स्वतंत्रकलाशास्त्र, डॉ. के. सी. पाण्डेय, पृ. ३०० (भारतीय)
२५६	ध्वन्यालोक : ३
२६०	ध्वन्यालोक : ३
२६१	ध्वन्यालोक : १०
२६२	साहित्य–दर्पण ३६–८
२६३	ध्वन्यालोक : १६
२६४	गंगावतरणम् ३–२
२६५	गंगावतरणम् ३–३

❀❀❀

षष्ठ अध्याय
गंगावतरणम् महाकाव्य में बिम्बविधान एवं पात्रचित्रण

६.१ बिम्ब का सैद्धांतिक निरूपण
६.१.१ गंगावतरणम् में बिम्बविधान
६.१.२ बिम्ब के उपादान
६.१.३ बिम्ब का स्वरूप निरूपण
६.१.४ बिम्ब की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि
६.१.५ बिम्ब की स्वरूपगत विशेषताएँ
६.१.६ बिम्ब के गुण
६.१.७ बिम्ब–शिल्पन
६.१.८ बिम्ब का आलंकारिक तत्त्वों के साथ संबंध
६.१.९ बिम्ब एवं बिम्बव्यवस्था
६.२ 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में पात्र चित्रण
६.२.१ नायक राजा भगीरथ
६.२.२ नायिका सुरनदी गंगा
६.२.३ नायिका भेद
६.२.४ नायक के सहायक पात्र
६.२.५ भगवान् रुद्र
६.२.६ अग्नि देवता
६.३ गंङ्गावतरणम् महाकाव्य के अन्य पात्रों का परिचय
६.३.१ महर्षि जह्नु
६.३.२ माता पार्वती
६.३.३ ब्रह्मा
६.३.४ भगवान् विष्णु
६.३.५ महर्षि अगस्त्य
६.३.६ महर्षि कपिल
६.३.७ मंदाकिनी
६.३.८ पृथ्वी
६.३.९ कार्तिकेय

षष्ठ अध्याय
गंगावतरणम् महाकाव्य में बिम्बविधान एवं पात्रचित्रण

६.१ बिम्ब का सैद्धांतिक निरूपण :

प्रस्तावना :

महाकाव्य के लक्षणों में लक्षणकारों ने एक लक्षण दिया है – ''तत्रैको नायकः शूरः''[१] यहाँ नायक महाकाव्य के लक्षणों में उल्लेखनीय तत्त्व है और वह प्रमुख पात्र भी है, इस पात्र के आसपास कथानक के आधार की पूर्वभूमिका तैयार रहती है । समग्र कथानकरूपी आधार को फैलाने के लिए तथा कथातंतुओं को सुग्रथित करने के लिए नायक के साथ घटक पात्रों का भी उपयोग किया जाता है । इस तरह चरित्र–चित्रण महाकाव्य की रचना में आवश्यक तत्त्व माना गया है ।

इन चरित्रों की पंक्ति में प्रत्येक पात्र का अलग स्थान है । मुख्यरूप से नायक के सामने ही प्रतिनायक को भी महाकाव्य में उपस्थित किया जाता है । प्रतिनायक के अभाव में नायक का उत्कर्ष चमत्कारपूर्ण नहीं हो पाता है, और न ही कोई संघर्षपूर्ण तथा महत्त्वपूर्ण घटना ही घटित हो पाती है । वस्तुतः संघर्ष और उत्कर्ष अन्योन्याश्रित हैं । आचार्य दण्डी ने नायक के चरित्रोत्कर्ष के लिए विधिनिर्देश किया है ।[२] आचार्य दण्डी ने आचार्य रुद्रट की तरह खलनायक को भी शक्तिशाली बताने के लिए कहा है । इसी के साथ पात्रसृष्टि को विस्तृत करते हुए वे मंत्रदूत... कहकर मन्त्री, दूत, सहायक, सेना, राजा, रानी, दास और दासी इत्यादि की आवश्यकता मानते हैं ।

अतः अभीष्ट कृति के विम्बावबोध के लिए तत्सम्बद्ध प्रमुख पात्रों का चित्रण अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है । यही कारण है कि इस अध्याय में सर्वप्रथम

बिम्बव्यवस्था का सैद्धांतिक प्रतिपादन किया गया है तत्पश्चात् पात्रचित्रण को स्थान प्रदान किया गया है । यथा –

६.१.१ गंगावतरणम् में बिम्बविधान :

महाकवि के गहन चिन्तन और उसकी गहन अनुभूति की दृष्टि से 'गङ्गावतरणम्' का काव्यात्मक बिम्ब, काव्य में व्यापक तरीके से रूपतत्त्व की प्रतिष्ठा करता हुआ काव्यांग है । संस्कृत समीक्षा–शास्त्र में 'बिम्ब, काव्य के मूल्यांकन में निकष रूप स्पष्टतया मान्य रहे या न रहे, परन्तु आचार्य भरत से लेकर पं. जगन्नाथ तक विभिन्न काव्यसिद्धांतों में विशेषरूप से दृश्यधर्मता देखी जा सकती है, रूप कोई भी हो । भारतीय काव्यशास्त्रीय संप्रदायों में अलंकार के साथ बिम्ब का संबंध सामीप्ययुक्त माना जा सकता है । वैसे भी, संवेदनक्षम मूर्त अभिव्यक्ति बिम्ब की सीमा में आ जाती है । वर्ण, शब्द, वाक्य या स्वाभाविक संगीतात्मक छन्द–प्रयोग बिम्ब के शिल्प के अंतर्गत सहृदय को प्रभावित करते हैं क्योंकि अनुभूति के अर्क के रूप में कवि के अदृश्य भाव जब दृश्य जगत् में प्रवेश करते हैं, तब अस्वाभाविक कल्पन–बिम्ब के आधार की पूर्वभूमिका तैयार होती है ।

६.१.२ बिम्ब के उपादान :

पाश्चात्य जगत् में 'बिम्ब' काव्यालोडन का मापदण्ड माना जाता है । बाद में भारत में भी हिन्दी और संस्कृत में आधुनिक दृष्टि से साहित्य संप्रदाय की दृष्टि से कुछ शोधकार्य हुए हैं । ऐसे तो प्रत्येक शब्द बिम्बात्मक होता है । जब काव्यात्मक बिम्ब की बात आती है, तब अपेक्षित विशेषताओं का ध्यान रखना आवश्यक है ।[३] कवि का अलंकार रूप में अप्रस्तुत का चयन करना चाहिए ।[४] भारतीय संस्कृत साहित्य में बिम्ब–कल्पना छंदादितत्त्वों के अनुशासन से संतुलित है ।

६.१.३ बिम्ब का स्वरूप निरूपण :

'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'इमेज' शब्द का हिन्दी अनुवाद है । इन्द्रिग्राह्य विधान की प्रवृत्ति का मूल बिम्ब–सिद्धांत में निहित है ।

इस संदर्भ में शब्दार्थ संबंध को यदि व्याकरणिक दृष्टि से देखा जाय तो प्रश्न यह है कि शब्द के साधुत्व की व्यवस्था क्या है ? वे पूर्वतः लोक (जगत्) में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर शब्द की रचना करना चाहते हैं या नये शब्दों की रचना करना चाहते हैं ? इस मौलिक सैद्धांतिक प्रश्न के जवाब में कात्यायन स्पष्टीकरण करते हैं – 'सिद्धेशब्दार्थसम्बन्धे' पतंजलि उसकी व्याख्या में कहते हैं कि पाणिनि ने शब्द, अर्थ और उनके संबंध को पूर्वतः सिद्ध मानकर ही अपने शास्त्र की रचना की है । वे नये शब्दों, नये अर्थों और नये संबंधों की रचना या स्थापना करके भाषा की व्यवस्था करने में प्रवृत्त (भागीदार) नहीं हुए हैं । इसलिए पतंजलि ने अपने पस्पशाह्निक के प्रारंभ में ही यह प्रश्न उठाया है और उसीके जवाब में 'अथ सिद्धशब्दस्य कः पदार्थः' कहा है ।

भाषा और शब्दों की यही शाश्वत स्थिति है, इस तथ्य को पस्पशाह्निक में सुस्पष्ट किया गया है कि जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, वैयाकरण वैसे ही शब्दों का निर्माण नहीं करता है, वे तो जगत् में प्रयुक्त शब्दों का अन्वाख्यान मात्र करते हैं ।

व्याडि ने अपने अन्तिम ग्रंथ 'संग्रह' में इस तथ्य को बहुत ही सुन्दर तरीके से स्पष्ट किया है – 'सम्बन्धस्य नैव कर्त्तास्ति शब्दानां लोकवेदयोः । शब्दैरेव हि शब्दानां सम्बन्धः स्यात् कृतः कथम् ।' शब्द और अर्थ तथा दोनों का संबंध स्वतः सिद्ध है, उसे बनानेवाला कोई नहीं है ।'[६]

६.१.४ बिम्ब की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

१९०८ में ह्यूम ने कवि कल्प की स्थापना की थी । एजरापाउन्ड ने बिम्ब के लिए 'इमेजिस्ट' शब्द प्रयुक्त किया । जिसे हिन्दी में 'बिम्बवादी' कह सकते हैं ।[७]

व्यूल के मत से कविगत (१) प्रत्यक्षतुल्य निरूपण
(२) कवि की बिम्ब विधानोन्मुखता

काव्यगत (१) संक्षिप्त प्रस्तुति
(२) अवयवगत संक्षिप्त नियमों का पालन

इस तरह उपर्युक्त सिद्धान्त दो प्रकार से साबित हो सकता है । यहाँ बिम्ब शब्द से तात्पर्य है वस्तु का तथ्यात्मक मूल्यांकन ।[८]

६.१.५ बिम्ब की स्वरूपगत विशेषताएँ :

बिम्ब की परिभाषा के आधार पर निम्नांकित विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं । (१) संतुलित शब्द चित्र, (२) इन्द्रिय संवेदन, (३) मानवीय संवेग, (४) बुद्धि भाव तत्त्व, (५) संप्रेषणीयत्व और (६) कवितात्पर्य प्रकाशन ।

भाषा की चित्रधर्मिता के कारण चित्रकला की अपेक्षा, चित्रात्मक पदविन्यास इन्द्रिय संवेदना के स्पर्श से प्रत्यक्ष होता है । ऐन्द्रिय बोधात्मक, गुणसंवलित काव्यांश रागतत्त्व से दीप्त (प्रकाशित) होता है । भावानुगामिनी बौद्धिकता से सूक्ष्मयथातथ्य का निरूपण होता है । निष्कर्षतः भावनात्मक गांभीर्यसह, बौद्धिकता तथा ऐन्द्रिय संवेदन क्षमता से युक्त चित्रात्मक शब्दों की अभिव्यक्ति 'बिम्ब' है ।[९]

६.१.६ बिम्ब के गुण :

भावोत्तेजकता, भावसान्द्रता, नावीन्य, परिचयात्मकता, उर्वरता और औचित्य इत्यादि उसके निर्णायक तत्त्व हैं । प्रबंध कवि के कथावस्तु का लघुतम रूप, घटना समुच्चय और प्रांसगिकता प्रकरण इत्यादि बिम्ब रूप से निरूपित है ।

६.१.७ बिम्ब-शिल्पन :

कवि मानव को सहज बहुविध सुख-दुःखात्मक संवेदनाओं, भावनाओं और विचाराभिव्यक्तियों को वाणी का कवच चढ़ाकर कल्पना के आश्रय में शाब्दिक पुनःनिर्माण करते हैं ।

पाश्चात्य विवेचकों ने कविता का बाह्य पक्ष 'बिम्ब' को माना है । जिसमें सी.डी. लूईस, सिडनी, पुटेनहुम, केरोलीन स्पर्जियन, मिडिल्टन मरी और जेम्स कज्यूर इत्यादि हैं ।

हिन्दी आलोचकों में रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि काव्य में मूर्तिमत्ता को बिम्ब मानते हैं । अन्य विद्वानों जैसे कि रामदहन मिश्र, नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशंकर प्रसाद, गणपति चन्द्र गुप्त, बलवीर सिंह, महादेवी वर्मा, डॉ. सुशीला शर्मा और डॉ. जगदीश गुप्त इत्यादि का मत भी शुक्ल जी के ही अनुसार है ।

प्राचीन आलोचकों में आचार्य भरत, नाट्यशास्त्र में कहते हैं कि 'बिम्ब' काव्य का सुन्दर रीति तत्त्व होने के बावजूद अपनी भावान्विति और रसपेशलता के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण है । जो काव्यगुण है, वही बिम्ब गुण बताया गया है ।[१०]

आचार्य दण्डी कहते हैं कि संपूर्ण इतिहास, संपूर्ण संस्कृति इस दर्पणरूपी वाङ्मय (बिम्ब) में सुरक्षित है । जो आज अपने समक्ष नहीं है, उसकी कीर्ति व निखिल भावसंपदाएँ शब्द बिम्बों के माध्यम से अपने समक्ष उपस्थित होती हैं । यथा –

आदिराजयशोबिम्बमादर्शं प्राप्य वाङ्मयम् ।
तेषामसन्निधानेऽपि न स्वयं पश्य नश्यति ।।[११]

आचार्य दण्डी अप्रस्तुत जन्य बिम्ब विधान को स्वाभाविक समझते थे, वहाँ बिम्ब गुण 'समाधि' को काव्य का सर्वस्व समझकर अप्रस्तुत विधान से उत्पन्न बिम्ब को काव्य का प्रमुख धर्म समझते थे ।

आचार्य भामह 'भाविक' नामक प्रबंधगुण, जिसके द्वारा त्रिकाल को नयन गोचर किया जा सके; ऐसा कहकर बिम्ब को मान्यता प्रदान करते हैं ।[१२] आचार्य वामन के विचार से गुण संवलित शब्द का अधिक प्रयोग ही काव्य बिम्ब का मुख्य तत्त्व है । गुण के साथ वैदर्भी रीति का प्रयोग श्रेष्ठ बिम्ब के सर्जन हेतु आधार रूप है ।[१३] आचार्य आनन्दवर्धन संपूर्ण प्रकार से बिम्बोपादान को

ध्वन्यालोक में प्रस्तुत करते हैं । रसात्मक अर्थवस्तुपरक काव्य बिम्ब का निर्माण महाकवि की प्रतिभा का अपेक्षी एवं द्योतक है । उनके मतानुसार विविध वाच्यवाचक के रचना प्रपंच की विशिष्टता से युक्त गुणादि का भावानुरूप, विशद (विशाल) शैली में कोई तात्पर्य अर्थ विवृत्ति निमित्त औचित्यसंमत सुंदर पदनिबंधन ही बिम्बन शैली की सफलता का तरीका है ।[१४] आचार्य राजशेखर कहते हैं कि उसी तरह के प्रतिभाशाली कवि के मतिदर्पण में संपूर्ण विश्व प्रतिफलित होता है ।[१५] क्योंकि कवि जन यथाप्रसंग एक ही 'चन्द्र' को कभी अमृतांश तो कभी 'दोषाकर' कहकर पृथक् शब्द बिम्बों से चित्रित करते हैं । जिसके लिए गुणालंकार का समुचित सन्निवेश आवश्यक है । आचार्य भट्टनायक के मत से 'साक्षात्कारात्मिकाप्रतीति' की आस्वाद्यता ही काव्य–बिम्ब का प्रयोजन है । आचार्य कुन्तक के विचार में बिम्ब प्रकारान्तर से काव्य के अमूर्तन प्रक्रिया को ही कहते हैं । जो छः प्रकार से वक्रता के नाम से जानी जाती है । उसमें से उपचार वक्रता अर्थात् भिन्न स्वभावी दो पृथक् पदार्थों के परस्पर संबंधों का आरोपण, जिसमें आरोपण हेतु प्रस्तुत और अप्रस्तुत का किंचित् साधारण धर्म ही विवक्षित होता है । इस विधि में अमूर्त के स्थान पर मूर्तिविधान, मानवीकरण, सघन वस्तु के स्थान पर द्रव वस्तु का प्रयोग किया जाता है । उदा. 'हस्तापचेयं यशः' । विशेषणवक्रता के अन्तर्गत क्रियाविशेषणों या कारकविशेषणों के माहात्म्य से उसके वस्तु का स्वाभाविक सौंदर्य प्रकट होता है । अभिनवगुप्त के मतानुसार शब्द 'चमत्कार' ही बिम्ब विधान का उपस्थापक है ।[१६] आचार्य महिमभट्ट 'प्रतिबिम्बवाद' की कल्पना को ही बिम्ब के आधुनिक रूप की कल्पना मानते हैं । वे रस को ही 'प्रतिबिम्ब कल्प' कहते हैं ।[१७]

६.१.८ बिम्ब का आलंकारिक तत्त्वों के साथ संबंध :

६.१.८.१ बिम्ब प्रतिबिम्ब :

दृष्टांत अलंकार के लक्षण में बिम्ब का समान धर्मी 'प्रतिबिम्ब' शब्द देखने को मिलता है । 'बिम्ब' उपमेय के लिए और 'प्रतिबिम्ब' उपमान के लिए प्रयुक्त होता है ।[९८]

६.१.८.२ बिम्ब और अलंकार :

अलंकार मात्र अलंकरण के निमित्त होता है और बिम्ब में चित्रमयता, ऐन्द्रियगोचरता तथा संदर्भयुक्तता होती है । दोनों के बीच इतना भेद है ।

६.१.८.३ बिम्ब और रस :

लक्षक रूप बिम्ब और लक्ष्य रूप रस को मान सकते है । उदा.

शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति ।

व्योम्नीव भृकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम् ।[९९]

यहाँ क्रुद्ध कृष्ण के कहने से ध्यान में नहीं आता, परंतु जहाँ भृकुटि खींचे जाने से आकाश में 'केतुउदय' रूप बिम्ब का सामंजस्य मिले तो शिशुपाल के मृत्यु-विधाता भगवान् कृष्ण के रौद्ररूप का साक्षात्कार होता है । यहाँ विभाव, अनुभाव इत्यादि बिम्बात्मक है । इसलिए रस उपस्कार्य और बिम्ब उपकारक है ।

६.१.८.४ बिम्ब और प्रतीक :

प्रतीक का काम चित्रात्मक विशेषताओं के संकेतों द्वारा भावोत्तेजन करना है । बिम्ब अपनी चित्रात्मक विशेषताओं के कारण उसे भावोद्दीप्त बनाता है और प्रतीक में बुद्धितत्त्व निहित होता है । प्रतीयमानत्व मुख्य होता है और प्रस्तुत वाच्य का महत्त्व अधिक नहीं रहता है, प्रतीक सृष्टि अभिव्यक्ति लाघव को सूचित करती है । बिम्ब कल्पनोद्भूत है । प्राथमिक कक्षा में प्रथम कल्पना बिम्बप्रतीक बनेगा ।

६.१.८.५ बिम्ब एक विश्लेषण :

पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय हेनरी वेल्स के पुस्तक 'पोयेटिक इमेजरी' में बिम्ब के सात प्रकार प्रस्तुत किये गये हैं ।[२०]

(१) शोभाधर्मी (२) लुप्त (३) उग्र (४) मूलाश्रयी
(५) सान्द्र (६) विस्तीर्ण (७) समृद्धि

आर. एच. फोगले ने बिम्ब को ५ भागों में विभाजित किया है –

(१) ऐन्द्रिय (२) ऐन्द्रियसंश्लिष्ट (३) भावारोपण (४) मूर्त (५) अमूर्त

उपर्युक्त ऐन्द्रिय में चाक्षुष, श्रव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य, आस्वाद्य तथा आवयवीय जैसे अवान्तर भेद गिनाये गये हैं ।

काव्य शास्त्रज्ञ हिन्दी आलोचक डॉ. केदारनाथ शर्मा ने बिम्ब को ८ भागों में विभाजित किया है –

(१)	सर्जनात्मक	(५)	उदात्त
(२)	छायात्मक	(६)	नाद
(३)	घनात्मक	(७)	अमूर्त
(४)	मिश्रित	(८)	प्रतीकात्मक

परंतु डॉ. नगेन्द्र का वर्गीकरण ध्यातव्य है, जिसमें समस्त बिम्बों का अंतर्भाव है –

(१)	दृश्यबिम्ब	चाक्षुष वगैरह
(२)	लक्षित	उपलक्षित
(३)	सरल	संश्लिष्ट
(४)	खंडित	समाकलित
(५)	वस्तुपरक	स्वछंद[२१]

प्राचीन वर्गीकरण के अन्तर्गत स्वरूप, जाति, वास्तविकता एवं अर्थाभिव्यक्ति के रूप में वस्तु के बिम्ब को प्रत्यक्षवत् उपस्थित करना ही उसका अलंकारत्व है ।[२२] वस्तुगत सौंदर्य की अनारोपित विवृत्ति ही उसकी परिधि है और लोकजीवन

की निकटता है । अतः किसी भी साहित्य की प्रारंभावस्था में बिम्ब प्रयोजना की रीति प्रचुरमात्रा में देखने को मिलती है ।

जिसमें कल्पना अर्थात् उपमा, उत्प्रेक्षण, दृष्टांत आदि अलंकार तथा लक्षणादि शक्तियों, उपचारवक्रता, अन्योक्ति एवं मानवीकरण जैसी कथनविधियों से काल्पनिक बिम्ब की सृष्टि होती है । बिम्ब व्यापार भावप्रधान होने से कवि के भावाभिप्राय तभी संभवित बनते हैं जब वे चित्रात्मक बोधगम्यशैली में अर्थ का प्रत्यक्षीकरण करा सकें ।[२३] जहाँ वर्तमान के साथ भूत और भविष्य भी समाविष्ट हों ।

६.१.६ बिम्ब एवं बिम्बव्यवस्था :

६.१.६.१ बिम्ब :

बिम्ब का एक भेद है दृश्यबिम्ब; जो स्वभावोक्तिमूलक, वक्रोक्तिमूलक तथा रसोक्ति मूलक ऐसे अनेक प्रकारों में विभक्त होता है । प्रथम दृश्यबिम्ब विभाग, जिसमें ऐन्द्रियबिम्बों का समावेश होता है, और स्वभावोक्ति इत्यादि का गत्वर, स्थिर, धर्म और धर्मी में अन्तर्भाव होता है । इस तरह प्रत्येक बिम्ब चार–चार भागों में विभक्त होता है, इसके उपरांत अदृश्य बिम्ब भी बिम्ब का एक प्रकार स्वीकार किया गया है ।

६.१.६.२ बिम्ब–व्यवस्था :

जहाँ ऐन्द्रिय संवेदन की यत्किंचित् प्रतीति हो, वहाँ दृश्यबिम्ब बनता है । दृश्यबिम्ब की सृष्टि में कवि का प्रकृतिगत सूक्ष्म निरीक्षण अधिक रहता है । दृश्यांकन की निपुणता के समय आश्रमांचल प्रदेशगत विशेषता और व्यक्तिगत विशिष्टताएँ हृदयावर्जक बनती हैं । जिससे रूपादिवृत्तियों को तृप्ति मिलती है । ध्वनिबिम्बों में पाठक का मन तृप्त हो जाता है । क्रियाव्यापार के सूक्ष्मबिम्ब द्वारा विद्वान् महाकवि पात्रों के मनोभाव और प्रकृति की गतिविधियों इत्यादि का प्रत्यक्षीकरण करते हैं, वे वहाँ मनोवैज्ञानिकता प्रदान करके नूतनता की सृष्टि

करते हैं । भावसंदीप्ति, रसपेशलता बिम्बविधान की नैसर्गिक प्रकृति है । दृश्यबिम्ब में मात्र ऐन्द्रिय नहीं संवेदन भी समाविष्ट है । बिम्बग्रहण तथा क्षेत्र और उसका प्रस्तुतीकरण भी विशेष महत्त्व रखता है । प्राकृतिक क्षेत्रों का बिम्ब प्रायः दृश्य है ।

बिम्ब ग्रहण के गत्वर, स्थिर, धर्म और धर्मी ये चार भेद हैं । गत्वर गतिसूचक है । स्थिर, स्थित वस्तु इत्यादि का मूल्यांकन करता है । धर्म अर्थात् किसी भी पदार्थ में रहनेवाले गुण इत्यादि, जो पराश्रित होते हैं । वे जिसमें अवस्थित हों, उसे धर्मी कहते हैं ।

इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि –

'चतुष्टयी शब्दानांप्रवृत्तिः जातिधर्माः गुणधर्माः इत्यादि ।

६.२ 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में पात्र चित्रण :

भूमिका :

सर्वप्रथम यह जानकारी आवश्यक है कि 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में उसके नायक राजा भागीरथ की वंश–परंपरा की कथा है, जिसकी मुक्ति के लिए उन्हों ने सुरनदी को पृथ्वी पर अवतरित कराया । यह परंपरा अधोलिखित पंक्तियों में इसप्रकार है –

बाहु नामक राजा को हैहय और तालवंशी राजाओं ने परास्त कर उनके राज्य को छीन लिया । बाहु राज्यच्युत होकर अपनी गर्भवती पटरानी के साथ जंगल में चले गये । पटरानी की सौत ने ईर्ष्यावशात् पटरानी का गर्भ रोकने के लिए विष दे दिया । उस विष के प्रभाव से वह गर्भ सात वर्ष तक भीतर ही पड़ा रहा । महाराज बाहु महर्षि और्व के आश्रम के समीप वृद्धावस्था होने से दिवंगत हो गये । उनकी पटरानी भी उनका अनुगमन करने के लिए चिता पर चढ़ने के लिए उद्यत हुई । त्रिकालज्ञ महर्षि और्व ने उसी समय आश्रम से बाहर निकलकर पटरानी को इस कर्म से निवृत्त किया और बताया कि उसके

गर्भ से महातेजा यशस्वी, पराक्रमी सम्राट् पुत्र उत्पन्न होगा । उस चितारोहण से निवृत्त होकर रानी महर्षि और्व के साथ उनके आश्रम पर चली गयी ।

कुछ दिनों के अनन्तर महाराज बाहु की पत्नी ने उस गर (विष) के साथ ही एक बालक को जन्म दिया । गर के साथ उत्पन्न होने से उस बालक का नाम सगर पड़ा । उपनयनादि संस्कारों को सम्पन्न कर महर्षि और्व ने विधिवत् उसे शिक्षा दी । एक दिन सगर ने अपनी माता से अपने पिता के बारे में पूछा । सगर की माता ने उसके पिता की पराजय से लेकर मृत्यु तक सारा वृत्तान्त सुना दिया । माता की बात सुनकर सगर क्रोध से भर गये । और उन्होंने हैहय तथा तालजंघीय राजाओं को मार डाला । तदनन्तर शक यवन, पारद, पह्लव आदि ने मारे जाने पर वसिष्ठ जी की शरण ली । वसिष्ठ जी ने उन्हें संस्कारों से च्युत कर छुड़ा दिया । राजा ने शकों को अर्धमुण्डित कर दिया । यवनों का शिर मुड़ा दिया तथा अन्य क्षत्रियों को भी स्वाध्याय तथा वषट्कारादि से पृथक् करा दिया ।

सगर की दो स्त्रियाँ थी – काश्यप की पुत्री सुमति तथा विदर्भराज की लड़की केशिनी । उन स्त्रियों ने संतान के लिए महर्षि और्व की आराधना की । उनकी आराधना से संतुष्ट होकर और्व ने कहा – 'एक से वंश वृद्धि करने वाला एक पुत्र होगा और दूसरी से साठ हजार पुत्र होंगे । जिसकी जो इच्छा हो, माँग लो । ऋषि की बात सुनकर केशिनी ने एक पुत्र तथा सुमति ने साठ हजार माँग लिये ।

महर्षि के वरदान से केशिनी ने वंशवृद्धिकारक असमंजस नामक पुत्र को जन्म दिया और कश्यपसुता सुमति ने साठ सहस्र पुत्रों को जन्म दिया । असमंजस बाल्यावस्था से ही बड़ा दुराचारी था । उसके आचरणों में सुधार न देखकर पिता ने उसका त्याग कर दिया । असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान् था । सगर के अन्य साठ सहस्र पुत्रों ने भी असमंजस के चरित्र का ही अनुकरण किया ।

सगर के पुत्रों के द्वारा सकल सत्कर्मों के बन्द हो जाने से त्रैलोक्य में हाहाकार फैल गया । देवगण भगवान् विष्णु के अंशभूत महर्षि कपिल के पास पहुँचे । देवताओं ने कहा भगवन् । ये सगर के पुत्र बड़े दुराचारी हैं । इन्होंने असमंजस के चरित्र का ही अनुकरण किया और संसार की दयनीय स्थिति बना दी है । जागतिक प्राणियों की रक्षा के लिए ही आपका अवतार हुआ है । इस कष्ट से हमें बचाइए । भगवान् कपिल ने कहा कि वे थोड़े ही दिनों में नष्ट हो जायेंगे ।

इसी अवसर पर महाराज सगर ने अश्वमेध यज्ञ प्रारंभ किया । उनके पुत्रों द्वारा सुरक्षित यज्ञीय घोड़े को कोई व्यक्ति चुराकर पृथ्वी में घुस गया ।

तदनन्तर उस अश्व के खुरों का अनुसरण करते हुए प्रत्येक पुत्र ने एक एक योजन भूमि खोद डाली । तब उन्हें पाताल में अश्व विचरता दिखायी पड़ा । समीप ही परमर्षि भगवान् कपिल भी समाधिस्थ बैठे थे । उन्हें देखकर उन दुराचारियों ने 'यही घोड़े का चोर है' । इसप्रकार कहते हुए अस्त्र-शस्त्र उठाकर उनकी ओर दौड़े । भगवान् कपिल के कुछ आँख चढ़ाते ही वे अपने शरीरोत्थ अग्नि से जल मरे ।

महाराज सगर को जब अश्वरक्षक पुत्रों की मृत्यु कपिलदेव जी की कोपाग्नि से ज्ञात हुई तो उन्होंने असंमजस सुत अंशुमान् को अश्व लाने के लिए नियुक्त किया । अंशुमान् सगर पुत्रों द्वारा मार्ग से कपिलमुनि के आश्रम पर गया और भक्तिभावेन उन्हें तुष्ट किया । कपिल मुनि ने प्रसन्न होकर कहा वत्स ! इस अश्व को ले जाकर अपने पितामह को दो । तेरा पौत्र पृथ्वी पर गंगा जी को लायेगा । तेरी अन्य जो कामना हो, वह माँग लो ।' अंशुमान् ने ब्रह्मदण्ड से सन्दग्ध अपने पितृगणों के स्वर्ग प्रदायक वर की याचना की । कपिलदेव जी ने कहा कि 'यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि तेरा पौत्र गंगा जी को लायेगा । गंगा-जल से तुम्हारे पितरों की अस्थियों का स्पर्श होते ही वे स्वर्ग चले जायेंगें । महर्षि कपिल की आज्ञा ले अंशुमान् घोड़े को लेकर लौट

आये और सगर ने अपना यज्ञ समाप्त किया । सगर ने पुत्रों के प्रेम से अपने पुत्रों द्वारा खोदे सागर को पुत्र बनाया । अंशुमान् के पुत्र दिलीप हुए और दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए । जिन्होंने भूतल पर गंगा जी का पदार्पण कराया ।

६.२.१ नायक राजा भगीरथ

रूपादि अनेक गुणों से युक्त पात्र नायक कहा जाता है, जिसका प्रतिपादन अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है –

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः ।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रुढवंशः स्थिरो युवा ।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्र–चक्षुश्च धार्मिकः ।।[२४]

नेता नायक विनय आदि गुणों से सम्पन्न होता है जैसे वीर चरित में विनम्र नायक का वर्णन करते हुए कहा गया है कि –

यद्ब्रह्मवादिभिरूपासितवन्द्यवादे
विद्यातपोव्रतनिधौ तपतां वरिष्ठे ।
दैवात्कृतत्वयिमया विनयापचार
स्तत्र प्रसीदभगवन्नमयंजलिस्ते ।।[२५]

नायक मधुर और प्रियदर्शी भी होता है । यथा –

राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सदृशी समुद्वहन् ।
अप्रतर्क्यगुणरामणीयकः सर्वथैव हृदयंगमोऽसि ।।[२६]

नायक त्यागी और सर्वस्व देने वाला होता है । क्योंकि त्याग व दानशीलता धीरोदात्त की विशेषताएँ है यथा –

त्वंच कर्णः शिविमांसं जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ।।[२७]

नायक चतुर और शीघ्र जान लेने वाला होता है । जैसे वीर चरित में –

स्फूर्जत्वज्रसहस्रनिर्मितमिव प्रादुर्भवत्यग्रतो –

रामस्य त्रिपुरान्तकृद्दिविषदां तेजोभिरिद्धं धनुः ।

शुण्डारः कलभेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डक –

स्तस्मिन्नाहित एव गर्जितगुणं कृष्टं च भग्नं च तत् ।।[२८]

नायक प्रिय बोलने वाला और प्रियभाषी होता है, जैसा कि वीर चरित में उद्धृत है –

उत्पत्तिर्जमदग्नितः स भगवान्देवः पिनाकी गुरु –

वीर्यं यत्तु न तद्गिरां पथिननु व्यक्तंहि तत्कर्मभिः ।

त्यागः सप्तसमुद्रमुद्रितमहीनिर्व्याजदानावधिः

सत्यंब्रह्मतपोनिधेर्भगवतः किं वा न लोकोत्तरम् ।।[२९]

नायक लोक अनुरक्ति वाला होता है । जैसा कि वीरचरित में द्रष्टव्य है –

त्रय्यास्त्राता यस्तवायं तनूस्तेनाद्यैव स्वामिनस्ते प्रसादात् ।

राजन्वन्तो रामभद्रेण राज्ञा लब्धक्षेमाः पूर्णकामाश्चरामः ।।[३०]

नायक पात्रता में उदाहरण स्वरूप होता है । उसकी पात्रता, मन को पवित्र कर देती है जैसे 'रघुवंश' में –

का त्वं शुभे कस्य परिग्रहो वा

किं वा मदभ्यागमकारणं ते ।

आचक्ष्वमत्वा वशिनां रघूणां

मनः परस्त्रीविमुखप्रवृत्तिः ।।[३१]

नायक पराक्रमी होता है – जैसे हनुमान्नाटक में –

बाहोर्बलं न विदितं न च कार्मुकस्य

त्रैयम्बकस्य तनिमा तत एष दोषः ।

तच्चापलं परशुराम मम क्षमस्व

डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम् ।।[३२]

नायक रुढिवंशी होता है । यथा –

ये चत्वारो दिनकरकुलक्षत्रसन्तानमल्ली –

मालाम्लानस्तवकमधुपा जज्ञिरे राजपुत्राः ।

रामस्तेषामचरमभवस्ताडकालरात्रि –

प्रत्यूषोऽयं सुचरितकथाकन्दलीमूलकन्दः ।।[३३]

नायक मन से स्थिर चित्तवाला और क्रिया–कलापों में चंचल होता है । जैसा कि वीरचरित में उद्धृत है –

प्रायश्चित्तं चरिष्यामि पूज्यानां वो व्यतिक्रमात् ।

न त्वेव दूषयिष्यामि शस्त्रग्रहमहाव्रतम् ।।[३४]

राजा भर्तृहरि ने भी नायक के विषय में ऐसा ही कहा है –

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः

प्रारभ्यविघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः

प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति ।।[३५]

नायक बुद्धि से युक्त, युवा और ख्याति प्राप्त होता है । विशिष्ट ज्ञानवान् होता है जैसा कि 'मालविकाग्निमित्र' में महाकवि कालिदास ने नायक की बुद्धिमत्ता एवं ज्ञानशीलता का वर्णन करते हुए कहा है कि –

यद्यत्प्रयोगविषये भाविकमुपदिश्यते मया तस्यै ।

तत्तद्विशेषकरणात् प्रत्युपदिशतीव मे बाला ।।[३६]

इसके स्पष्टीकरण हेतु नायक को विशिष्ट नेता कहा गया है –

भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् ।

उद्देश्य के अनुसार ही नायक के लक्षण अधोलिखित श्लोक में द्रष्टव्य हैं –

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखीमृदुः ।।[३७]

अर्थात् नायक निश्चिन्त, धीरललितः, कलाओं में आसक्ति रखने वाला, सुखी और मृदुभाषी होता है । जैसा कि 'रत्नावली' में कहा गया है –

राज्यं निर्जितशत्रुयोग्यसचिवेन्यस्तः समस्तो भरः
सम्यक् पालनलालिताः प्रशमिताशेषोपसर्गाः प्रजाः ।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
कामः काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सवः ।।[३८]

नायक शान्त प्रकृति का होता है –

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः ।[३९]

नायक विनय आदि नेतृत्व से सामान्य गुणवाला, धीरशान्त ब्राह्मण वणिक् आदि सचिवों से प्रकरणों का ज्ञान करने वाला तथा निश्चिन्तता होने पर भी कार्य की सफलता के प्रति चिन्तित रहने वाला होता है । जैसा कि 'मालती–माधव' 'मृच्छकटिक' आदि में माधव और चारुदत्त आदि नायकों का उल्लेख है –

तत उदयगिरेरिवैक एव स्फुरितगुणद्युतिसुन्दरः कलावान् ।
इह जगति महोत्सवस्य हेतुर्नयनवतामुदियाय बाल–चन्द्रः ।।[४०]

नायक का द्वितीय उदाहरण 'मृच्छकटिक' से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

मखशतपरिपूतं गोत्रमुद्भासितं यत्
सदसि निविडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात् ।
मम निधनदशायां वर्तमानस्य पापै
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम् ।।[४१]

धीरोदात्त नायक का लक्षण बताते हुए आचार्य धनंजय कहते हैं कि –

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान्विकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्त दृढव्रतः ।।[४२]

धीरोदात्त नायक महाज्ञानी शोक और क्रोध से परे होता है । उसे आत्मश्लाघा की अभिलाषा नहीं होती है । वह अहंकार से दूर और विनयावनत होता है तथा दृढनिश्चयी भी होता है । जैसा कि 'नागानन्द' में जीमूतवाहन है । यथा –

शिरामुखैःस्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति ।
तृप्तिम् न पश्यामि तवैव तावत्किं भक्षणात्त्वं विरतोगरुत्मन् ।।[४३]

इसीप्रकार हनुमान्नाटक में राम के प्रति भी कहा गया है कि –

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च ।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः ।।[४४]

धीरोधत्त नायकदशरूपककार ने धीरोद्धत्त नायक का लक्षण करते हुए कहा है कि –

लक्षण :

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः ।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।।[४५]

नायक को घमंड और पराक्रम का मद नहीं होता । विरोध में उसके असहनशीलता तथा ज्ञान के बल से अनुपस्थित वस्तु को माया के बल पर प्रकाशित कर देता है । वह छद्म और वंचना से परे होता है ।

इसीप्रकार धीरललित और धीरप्रशान्तादि नायकों के लक्षणोदाहरण भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं, किन्तु यहाँ इसकी आवश्यकता न होने के कारण प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है । ध्यातव्य है कि –

'गंगावतरणम्' महाकाव्य में नीलकण्ठ दीक्षित ने राजा भगीरथ को महाकाव्य का नायक बनाया है जो उपर्युक्त नायक के गुणों से भरपूर मेल ही नहीं खाता है अपितु भगीरथ में महानायक बनने के अतिरिक्त एक गुण है, वह है तपस्या, जिसके बल पर वे अलौकिक वरदान प्राप्त कर लेते हैं । नायक के गुणों में

तपस्या के गुणों को अलग रखा गया है । अतएव राजा भगीरथ एक महान् और अलौकिक नायक की कोटि में आते हैं ।

६.२.२ नायिका सुरनदी गंगा :

'गंगावतरणम्' महाकाव्य की नायिका सुरनदी गंगा भी नायक की ही भाँति अलौकिक और सुरनदी के रूप में मानव वेषधारी देवी है । नायिका के लक्षणों को 'दशरूपक' में निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया गया है –

स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा ।

नायिकाएँ तीन प्रकार की कही गई हैं –

(१) स्वस्त्री

(२) परस्त्री और

(३) साधारण स्त्री

नाट्यशास्त्री धनंजय यहाँ पर स्वस्त्री के सामान्य लक्षणों का उल्लेख करते हैं । यथा –

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक् ।।[४६]

शीलयुक्त अच्छे लक्षणों वाली, पतिव्रता, अकुटिला, लज्जावती, पुरुष की सेवा में निपुण स्वस्त्री होती है । शीलवती स्त्री का एक उदाहरण प्राकृत भाषा में द्रष्टव्य है । यथा –

कुलबालिआए पेच्छह जोव्वणलाअण्णविब्भमविलासा ।
पवसन्ति व्व पबसिए एन्ति व्व पिये घरं एते ।।
कुलबालिकायाः प्रेक्षध्वं यौवनलावण्यविभ्रमविलासः ।
प्रवसन्तीव प्रोषिते आयान्तीव प्रिये गृहमायाते ।।[४७]

हसितमविकारमुग्धं भ्रमितं विरहितविलाससच्छायम् ।
भणितं स्वभावसरलं धन्यानां गृहे कलत्राणाम् ।।[४८]

इसीप्रकार स्वीया स्त्री लज्जावती नायिका होती है । यथा –

लज्जा पर्याप्तप्रसाधनानि परतृप्तिनिष्पिपासानि

अविनयदिङ्मोहानि धन्यानां गृहे कलत्राणि ।।

इसप्रकार वह स्वीया, मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा तीन प्रकार की होती है –

मुग्धाः नववयः कामारती वामा मृदुः क्रुधि ।

बाल्यावस्था को उत्तीर्ण तरुणी कामदेवरमण में सुख की अनुभूति कराने वाली नायिका मुग्धा होती है । यथा –

विस्तारी स्तनभार एव गमितो न स्वोचितामुन्नतिं

रेखोद्भासिकृतं बलित्रयमिदं न स्पष्टनिम्नोन्नतम् ।

मध्येऽस्या ऋतुरायतार्धकपिशा रोमावली निर्मिता ।

रम्यं यौवनशैशवव्यतिकरोन्मिश्रं वयो वर्तते ।।[४६]

काममुग्धा नायिका का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है –

दृष्टिः सालसतां विभर्ति न शिशुक्रीडासु बद्धादरा

श्रोत्रे प्रेषयति प्रवर्तितसखीसम्भोगवार्तास्वपि ।

पुंसामंकमपेतशंकमधुना नारोहति प्राग्यथा

बाला नूतन यौवनव्यतिकरावष्टभ्यमाना शनैः ।।[५०]

रतवामा नायिका का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है । यथा –

व्याहृत प्रतिवचो न संदधे गन्तुमैच्छदवलम्बितांशुका ।

सेवते स्म शयनं पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिनः ।।[५१]

क्रुद्ध होने पर भी मृदुस्वभाव वाली नायिका का एक उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है –

प्रथमजनिते बाला मन्यौ विकारमजानती

कितवचरितेनासज्यांके विनम्रमुखैव सा ।

चिबुकमलिकं चोन्नम्योच्चैरकृत्रिमविभ्रमा

नयनसलिलस्यन्दिन्योष्ठे रुदन्त्यपि चुम्बिता ।।[५२]

इसप्रकार दूसरी नायिकाओं में भी लज्जा से युक्त प्रेमपाश में बँधे हुए मुग्ध व्यवहार वाली निबंधन योग्य नायिका का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

न मध्ये संस्कारं कुसुममपि बाला विषहते

न निःश्वासैः सुभ्रूर्जनयति तरंगव्यतिकरम् ।

नवोढा पश्यन्ती लिखितमिव भर्तुः प्रतिमुखं

पुरोहद्रोमांचा न पिबति न पात्रं चलयति ।।[५३]

मध्या के लक्षण इसप्रकार हैं –

मध्योद्यद्यौवनानंगा मोहान्तसुरतक्षमा ।[५४]

युवावस्था को प्राप्त काम और मोह में रत रहने योग्य नारी मध्या कहलाती है । जैसे यौवन से युक्त मुग्धा का एक उदाहरण निम्नलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है ।

आलापान्भ्रूविलासो विरलयति लसद्बाहुविक्षिप्तियातं

नीवीग्रंथिं प्रथिम्ना प्रतनयति मनाङ्मध्यनिम्नो नितम्बः ।

उत्पुष्यत्पार्श्वमूर्च्छत्कुचशिखरमुरोनूनमन्तः स्मरेण

स्पृष्टा कोदण्डकोट्या हरिणशिशुदृशो दृश्यते यौवनश्रीः ।।[५५]

कामवती नायिका का एक उदाहरण अधोलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है –

स्मरनवनदीपूरेणोढाः पुनर्गुरुसेतुभि –

र्यदपि विधृतास्तिष्ठन्त्यारादपूर्णमनोरथः ।

तदपिलिखितप्रख्यैरंगैः परस्परमुन्मुखा –

नयननलिनीनालाकृष्टं पिबन्ति रसं प्रियाः ।।[५६]

मध्या नायिका संभोगवती होती है । यथाप्राकृत के एक श्लोक में कहा गया है कि –

ताव च्चिअ रइसमए महिलाणं विब्भमा विराअन्ति ।

जाव ण कुवलयदलसच्छइं मउलेन्ति णअणाई ।।[५७]

(तावदेव रतिसमये महिलानां विभ्रमा विराजन्ते । यावन्नंकुवलयदलसच्छाये मुकुलयतो नयने ।)

इसप्रकार धीरा, अधीरा और धीराधीरा नायिका का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

धीरा सोत्प्रसावक्रोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम् ।

खेदयेद्दयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम् ।।[५८]

मध्या धीरा नायिका प्रिय के समक्ष खेद प्रकट करते हुए अपने मंतव्य को प्रस्तुत करता है । जैसे माध का एक

उदाहरण द्रष्टव्य है –

न खलु वयममुष्य दानयोग्याः

पिबति च पाति याचकौ रहस्त्वाम् ।

व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै भवतु

यतः सदृशोश्चिराय योगः ।।[५९]

धीराधीरा नायिका अश्रुपात करती हुई, दुःखपूर्ण अपने मन्तव्य को प्रकट करती है । इसके लिए 'अमरुकशतकम्' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

बाले नाथ विमुंचमानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं

खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान्सर्वेपराधा मयि ।

तत् किं रोदिषि गद्गदेनवचसा कस्याग्रतो रुद्यते ।[६०]

नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ।।

अधीरा नायिका रुदन करती हुई भी कठोर वचन बोलती है । यथा –

यातु–यातु किमनेन तिष्ठता

मुञ्च मुञ्च सखि मादरं वृथाः ।

खण्डिताधरकलंकितं प्रियं

शक्नुमो न नयनैर्निक्षितुम् ।।[६१]

प्रगल्भा नायिका का वर्णन अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य है ।

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्के ।

विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना ।।[६२]

गाढयौवना, नायिका का एक उदाहरण अधोलिखित श्लोक में उद्धृत है –

अभ्युन्नतसस्तनमुरो नयने च दीर्घे

वक्रे भ्रुवावतितरां वचनं ततोऽपि ।

मध्योऽधिकं तनुरतीव गुरुर्नितम्बो

मन्दागतिः किमपि चाद्भुतयौवनायाः ।।[६३]

भावप्रगल्भा नायिका का एक उदाहरण –

न जाने सम्मुखायाते प्रियाणि वदति प्रिये ।

स्वार्ण्यगानि किं यान्ति नेत्रतामुतकर्णताम् ।।[६४]

रत्नप्रगल्भा का एक उदाहरण –

कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयंबन्धना –

द्वासः प्रश्लथमेखलागुणधृतं किंचिन्नितम्बे स्थितम् ।

एतावत्सखिवेद्मि केवलमहं तस्यांगसंगे पुनः

कोऽसौकास्मि रतं नु किं कथमिति स्वल्पादि मे न स्मृतिः ।।[६५]

उपर्युक्त नायिका के सभी गुण चूँकि 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में आगत सुरनदी गंगा में विद्यामान हैं । अतएव महाकाव्य की प्रधान नायिका का श्रेय गंगा को जाता है ।

गंगा को अनुजा भगवान् शिव की अर्धांगिनी पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती हैं, जो महाकाव्य में द्वितीय नायिका के रूप में आती हैं ।

६.२.३ नायिका भेद :

काव्यालंकार, रुद्रट की नायिका को अधोलिखित चार्ट में इसप्रकार दर्शाया है –

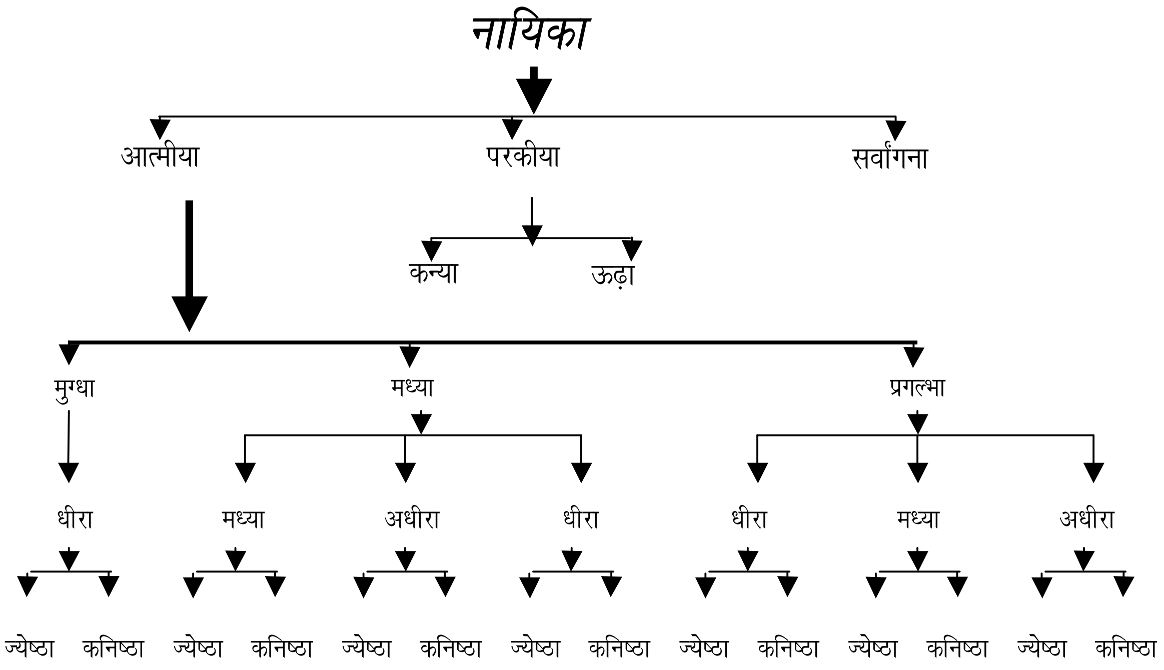

इनके अतिरिक्त जो भी पात्र इस महाकाव्य में हैं वे इसप्रकार है –

६.२.४ नायक के सहायक पात्र :

वस्तुतः इस महाकाव्य के नायक के सहयोगी पात्रों का स्वरूप पौराणिक दृष्टि से सर्वविदित है । अतः इन सभी के वैदिक स्वरूप और उनके क्रमिक विकास को आगे प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है ।

शिव – (रुद्र, शंकर, महेश, चन्द्रशेखर, शम्भु, विश्वेश्वर, विश्वनाथ, दिगम्बर, अर्धनारीश्वर, भस्मलिप्त, महाकपटी, भिक्षु, विषभक्षक, भोगिभूषण, मदनान्तक, ईश, त्रिपुर, शासक, त्रिपुरारि, महाकाल, उमापति आदि ।

६.२.५ भगवान् रुद्र :

शिव की महत्ता के उदय होने का इतिहास बड़ा मनोरम है । पौराणिक काल में तथा आजकल रुद्र को जितना महत्त्व तथा प्राधान्य प्राप्त है उतना वैदिक काल में न था । आजकल विष्णु के साथ शिव ही हम हिन्दुओं के प्रधान देवता हैं, परंतु इस प्रधानता का क्रमिक विकास धीरे–धीरे शताब्दियों में

सम्पन्न हुआ है । ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों के अध्ययन करने की रुद्र के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातों का पता लगाया जा सकता है । ऋग्वेद में केवल तीन सूक्त, प्रथम मण्डल का ११४ वाँ सूक्त, २सरे मण्डल का ३३वाँ सूक्त तथा ७वें मण्डल का ४६ वाँ सूक्त रुद्र देवता के साथ आता है । ऋग्वेद में रुद्र का स्थान अग्नि, वरुण, इन्द्र आदि देवताओं से कुछ कम है । यजुर्वेद का एक पूरा अध्याय ही इनकी स्तुति में प्रयुक्त किया गया है । यह 'रुद्राध्याय' यजुर्वेद की अनेक संहिताओं में थोड़े बहुत अन्तर के साथ उपलब्ध होता है । तैत्तिरीय संहिता का १६वाँ अध्याय 'रुद्राध्याय' के नाम से विख्यात है । अथर्ववेद के ११वें काण्ड के द्वितीय सूक्त में रुद्रदेव की स्तुति की गई है ।

ऋग्वेद में रुद्र का स्वरूप इसप्रकार का वर्णित है : रुद्र के हाथ तथा बाहु हैं (ऋ. २/३३/०) । उनका शरीर अत्यंत बलिष्ट है । उनके ओठ अत्यंत सुन्दर हैं (सुशिप्रः) उनके मस्तक पर बालों का एक जटाजूट है, जिसके कारण वे 'कपर्दी' कहलाते हैं (ऋ. १/१४/१) । उनका रंग भूरा है बभ्रुः तथा आकृति देदीप्यमान है । वे नानारूप धारण करने वाले हैं (पुरुरूपः) तथा उनके स्थिर अंग चमकनेवाले सोनेके गहनों से विभूषित हैं । वे रथ पर सवार होते हैं । यजुर्वेद के रुद्राध्याय में तथा अथर्व. के रुद्रसूक्त में उनके स्वरूप का इससे कहीं अधिक विशद वर्णन उपलब्ध होता है । रुद्र के मुख, चक्षु, त्वक्, अंग, उदर, जिह्वा तथा दाँतो का उल्लेख किया गया है (अथर्व. ११ काण्ड २ सूक्त ५-६ मन्त्र) । उनके सहस्त्र नेत्र हैं (सहस्त्राक्षः) । उनकी गर्दन का रंग नीला है । (नीलग्रीवः), परन्तु उनका कण्ठ उज्ज्वल रंग का है (शितिकण्ठः)[६६] उनके माथे पर जटाजूट का वर्णन भी है, साथ ही साथ कभी-कभी वे मुंडित केश (व्युप्तकेश शु.य. १६/२९) भी कहे गए हैं । उनके केश लाल रंग या नीले रंग के हैं (हरिकेशः) वे माथे पर पगड़ी पहननेवाले हैं । (उष्णीषी यजु. १६/२२) रंग उनके शरीर का वर्ण कपिल है (बम्लुशः १६/१८) ।

रुद्राध्याय के अनुसार रुद्र एक बलवान् सुसज्जित योद्धा के रूप में हमारे सामने आते हैं । उनके हाथ में धनुष् तथा बाण हैं । उनके धनुष का नाम 'पिनाक' है । शु. यजुर्वेद १६/५१) । उनका धनुष् सोने का बना हुआ, हजारों आदमियों को मारनेवाला, सैकड़ों बाणों से सुशोभित तथा मयूरपिच्छ से विभूषित बतलाया गया है । बाणों को रखने के लिए वे तरकस (इषुधि) धारण करते हैं, जो संख्या में सौ है । उनके हाथ में तलवार भी चमकती रहती है (निषंगी) तथा इस तलवार को रखने के लिए उनके पास म्यान (निषंगुधि) है । वे वज्र भी धारण करते हैं । वज्र का नाम सृक् है (शु.य. १६/२१) । शरीर की रक्षा करने के लिए वे अनेक साधनों को पहने हुए हैं । माथे की रक्षा करने के लिए वे शिरस्त्राण धारण करते हैं । (बिल्मी शु. यु. १६/३५) और देह के बचाव के वास्ते कवच तथा वर्म पहने हुए हैं । महीधर की टीका के अनुसार वर्म कवच से भिन्न होता था ।[६७] कवच कपड़ों का सिला हुआ 'अंगरखा' के ढ ंग का कोई पहनावा था । रुद्र शरीर पर चर्म का कपड़ा पहनते हैं (कृति वसानः शु. य. १६/५१) । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस तरह रथ पर चढ़ कर धनुर्बाण से सुसज्जित योद्धा रणांगण में शत्रुओं के संहार के लिए जाता है, उसी भाँति रुद्र सिर पर बिल्म तथा देह पर कवच और वर्म पहनकर रथ पर आसन मार धनुष् पर बाण चढ़ाकर अपने भक्तों के बैरियों को मारने के लिए मैदान में उतरते हैं । वे धनुष् पर बाण हमेशा चढ़ाए रहते हैं । इसलिए उनका नाम है – आततायी । इनके अस्त्र–शस्त्र इतने भयानक हैं कि ऋषि इनसे बचने के लिए सदा प्रार्थना किया करते हैं –

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवान् उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषंगधिः ।।[६८]

रुद्र का शरीर नितान्त बलशाली है । ऋग्वेद में वे क्रूर बतलाए गए हैं । वे स्वर्गलोक के रक्तवर्ण (अरुष) वराह हैं (ऋ. १/११४/५) वे सबसे श्रेष्ठ वृषभ हैं : वे तरुण हैं । उनका तारुण्य सदा टिकने–वाला है । वे शूरों के

अधिपति हैं और अपने सामर्थ्य से वे पर्वतों में टिकी हुई नदियों में बल का प्रवाह उत्पन्न कर देते हैं । उन्हें न माननेवाले मनुष्यों को वे अवश्य अपने बाणों से छिन्न–भिन्न कर देते हैं, परन्तु अपने उपासक मनुष्यों के लिए वे अत्यंत उपकारी हैं । इसलिए वे 'शिव' नाम से भी पुकारे जाते हैं । उनके संबंधियों का परिचय मंत्रों के अध्ययन से चलता है । रुद्र मरुतों के पिता है (ऋ. १/११४/६) । यही कारण है कि अनेक मंत्रों में मरूत तथा रुद्र की स्तुति एक साथ की गई मिलती है । मरुतो के 'रुद्रिय' संज्ञा पाने का यही रहस्य है । रुद्र के मरुतों के पिता होने के विषय में षड्गुरु शिष्य ने 'सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थदीपिका' में रोचक आख्यान दिया है । इसी प्रसंग को लेकर द्या द्विवेद ने नीतिमंजरी में यह उपदेश किया है कि –

दृष्ट्वा परव्यथां सन्तः उपकुर्वन्ति लीलया ।
दितेर्गर्भव्यथां हत्वा रुद्रोऽभून्मरुतां पिता ।।

पिछले ग्रंथों में रुद्र के लिए 'त्रयम्बक' शब्द का व्यवहार प्रचुर मात्रा में पाया जाता है । इस 'त्रयम्बक' का प्रयोग ऋग्वेद के केवल एक ही मंत्र में किया गया है, जो शुक्ल यजुर्वेद (अ. ३,६० मं.) में भी उद्धृत पाया जाता है ।

रुद्र का स्तुतिपरक यह मंत्र नितान्त प्रसिद्ध है :–

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ।।[६६]

'त्रयम्बक' शब्द का अर्थ समस्त भाष्यकारों ने 'तीन नेत्र वाला' किया है । परंतु पाश्चात्य विद्वानों को इस अर्थ में आस्था नहीं है । यहाँ 'अम्बक' शब्द को जननी वाचक मानकर रुद्र की ये तीन मातायें कौनसी थीं । वैदिक काल के अनन्तर रुद्र की पत्नी के लिये प्रयुक्त 'अम्बिका' शब्द का प्रथम प्रयोग वाजसनेयि संहिता (३/५७) में आता है, परन्तु इतना अन्तर अवश्य है कि यह उनकी पत्नी का नाम न होकर उनकी भगिनी का नाम बतलाया गया है[७०] इनकी

पत्नी के अन्य नाम वैदिक ग्रंथों में मिलते हैं । 'पार्वती' शब्द तैत्तिरीय आरण्यक में और 'उमा हैमवती' शब्द केनोषनिषद् में प्रयुक्त हैं ।

इसप्रकार ऋग्वेदीय देवमण्डली में रुद्र का स्थान नितान्त नगण्य–सा प्रतीत होता है, परंतु अन्य संहिताओं में इनका महत्त्व बढ़तासा दीख पड़ता है । रुद्राध्याय में रुद्र के लिए भव, शर्व, पशुपति, उग्र, भीम शब्दों का प्रयोग ही नहीं मिलता, प्रत्युत् हर दशा में वर्तमान प्राणियों के ऊपर इनका अधिकार जागरुक रहता है । विश्व में ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, चाहे वह स्वर्लोक में, अन्तरिक्ष में, भूतल के ऊपर या भूतल के नीचे हो, जहां भगवान् रुद्र का आधिपत्य न हो । यह समस्त विश्व सहस्त्रों रुद्रों की सत्ता से ओतप्रोत है । रुद्र जगत् के समग्र पदार्थों के स्वामी हैं । वे अन्नों के, खेतों के, वनों के अधिपति हैं । साथ ही साथ चोर, डाकू, ठग आदि जन्य जीवों के भी वे स्वामी हैं । अथर्ववेद में रुद्र के नामों में भव, शर्व, पशुपति तथा भूतपति, उल्लिखित है (११/२/१) पशुपति का तात्पर्य इतना ही नहीं है कि गाय आदि जानवरों के भी ऊपर उनका अधिकार चलता है, प्रत्युत् 'पशु' के अंतर्गत मनुष्यों की भी गणना अथर्ववेद को मान्य है :–

तवेमे पंच पशव्ये विभक्ता ।
गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ।।[७१]

इसप्रकार 'पशु' के तांत्रिक अर्थ का आभास हमें अथर्ववेद के इस मंत्र में सर्वप्रथम मिलता है । जिसमें समग्र भुवन निवास करते हैं । वह नाना वस्तुओं की धारणा करनेवाला विस्तृत ब्रह्मांडरूपी कोश रुद्र की अपनी वस्तु है । रुद्र का निवास अग्नि में, जल में, औषधियों तथा लताओं में ही नहीं है, बल्कि उन्होंने इन समस्त भुवनों की रचनाकर इन्हें सम्पन्न बनाया है –

यो अग्नौ रुद्रो य अप्स्वन्त र्य ओषधीर्वीरुध आविवेश ।
य इमा विश्वा भुवनानि चाकलृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ।।

यह सुन्दर मंत्र रुद्र की महिमा स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर रहा है । यह तो हुई यजुः और अथर्व. संहिताओं की बात । ब्राह्मण काल में तो रुद्र का महत्त्व और भी बढ़ता ही चला गया है । ऐतरेय ब्राह्मण के एक दो उल्लेखों से ही रुद्र की महनीयता की पर्याप्त सूचना मिलती है । ३/३/३३ में प्रजापति के उनकी कन्या के सहगमन का प्रसंग उठाकर रुद्र की उत्पत्ति की चर्चा की गई है । वहाँ गौरव के ख्याल से इनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया है । ऋग्वेद के एक विनियोग वाक्य में रुद्र का नाम प्रयुक्त किया गया है । वहाँ ऐतरेय की यह व्यवस्था है कि इस नाम को गौरव की दृष्टि से छोड़ देना चाहिए ।

उपनिषदों में रुद्र की प्रधानता का परिचय हमें भली भाँति मिलता है । छान्दोग्य (३/७/४), बृहदारण्यक (३/६/४), मैत्री (६/५) महानारायण (१३/२), नृसिंहतापनी (१/२), श्वेताश्वतर (३/२,४) आदि प्राचीन उपनिषदों में रुद्र के वैभव तथा प्रभाव का वर्णन उपलब्ध होता है । श्वेताश्वतर में रुद्र की एकता, जगन्निर्माण में निरपेक्षता, विश्व के आधिपत्य, महर्षित्व तथा देवताओं के उत्पादक तथा ऐश्वर्य सम्पन्न बनाने के सिद्धांतों का प्रतिपादन स्पष्ट भाषा में किया गया है । 'एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुः' (३/२)

'यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं
स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।३/४

आदि श्वेताश्वतर श्रुति के प्रसिद्ध मंत्र इस विषय में प्रमाणरूप से उद्धृत किए जा सकते हैं । अवान्तरकालीन उपनिषदों में अनेक का विषय रुद्र-शिव की प्रभुता, महनीयता, अद्वितीयता दर्शाना है । अतः अथर्वशिर, कठरुद्र, रुद्रहृदय,

पाशुपतब्रह्म आदि शिवपरक उपनिषदों के नामोल्लेखमात्र से हमें यहाँ संतोष करना पड़ता है ।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस रुद्र को ऋग्वेद तथा पिछली संहिताएँ 'उग्र' नाम से पुकारती हैं, उस रुद्र का प्राकृतिक आधार क्या था ? प्रकृति के किस व्यक्त तथा दृश्य पदार्थ का निरीक्षण कर उसे 'रुद्र' की संज्ञा प्रदान की गई है ? 'रुद्र' शब्द की व्युत्पत्ति से इस समस्या के हल होने की तनिक भी सूचना नहीं मिलती । प्राचीन वैदिक ग्रंथों में सर्वत्र 'रुद्र' की व्युत्पति 'रुद्र' (रोना) धातु से निष्पन्न बतलाई गई है । शतपथ ब्राह्मण (६/१/३/८) में रुद्र की उत्पत्ति की मनोरम कहानी दी गई है कि प्रजापति ने जब सृष्टि की रचना प्रारंभ किया तब एक कुमार का जन्म हुआ, जो जन्म लेते ही अपने नामकरण के लिए रोने लगा । नामकरण आगे किया गया अवश्य, परंतु जन्म के समय ही रोदन-क्रिया के साथ सम्बद्ध होने के कारण उस कुमार का नाम 'रुद्र' रखा गया (यदरोद्वीत् तस्मात् रुद्रः) बृहदारण्यक (३/६/४) में इसीप्रकार दशों इन्द्रियों तथा मन को एकादश रुद्र के रूप में ग्रहण किया गया है । इन्हें 'रुद्र'[७२] कहने का तात्पर्य यही है कि जब ये शरीर छोड़कर बाहर निकल जाते हैं तो मृतक के सगे-संबंधियों को ही रुलाते हैं (ते यदास्माच्छरीरान्म र्त्यादुत्क्रामन्ति अथ रोदयन्ति । तद् तद् रोदयन्ति तस्माद्रुदा इति ।) पाश्चात्य वेदानुशीली विद्वानों ने रुद्र के प्राकृतिक आधार को ढूँढ़ निकालने का विशेष परिश्रम किया है । डॉ. वेबर रुद्र को तूफान का देवता मानते हैं । डॉ. हिलेब्रान्त के अनुसार ये ग्रीष्मकाल के देवता हैं तथा किसी विशिष्ट नक्षत्र से भी इनका संबंध है । डॉ. श्रादेर के विचार में मृतात्माओं के प्रधान व्यक्ति को देवत्व का रूप प्रदान कर रुद्र मान लिया गया है क्योंकि यह वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है कि मृतकों की आत्माएँ आँधी के साथ उड़कर ऊपर जाती हैं । डॉ. ओल्डेनवर्ग इस मत में आस्था रखते हुए रुद्र का संबंध पर्वत तथा जंगल के साथ स्थापित करना श्रेयस्कर मानते हैं । रुद्र का संबंध पर्वत के

साथ अवश्य है । उनकी पत्नी उमा हेमवती कही जाती है । अतः इस मत के लिए भी कुछ आधार हैं । परंतु इन कथनों में कल्पना का विशेष उपयोग किया गया है । रुद्र के पूर्ववर्णित स्वरूप का पूरा सामंजस्य इन कथनों से कथमपि नहीं बैठता । इस विषय में प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री रुद्र के मौलिक तथ्य पर प्रकाश डालती है ।

६.२.६ *अग्नि देवता :*

वस्तुतः रुद्र अग्नि के ही प्रतीक हैं । अग्नि के दृश्य, भौतिक आधार पर रुद्र की कल्पना खड़ी की गई है । अग्नि की शिखा ऊपर उठती है । अतः रुद्र के लिंग की कल्पना की गई है । अग्नि वेदी पर जलते हैं । इसी कारण शिव जलधारी के बीच में रखे जाते हैं । अग्नि में घृत की आहुति दी जाती है । इसलिए शिव के ऊपर जल से अभिषेक किया जाता है । शिव भक्तों के लिए भस्म धारण करने की प्रथा का भी स्वारस्य इसी सिद्धांत के मानने से भलीभाँति हो जाता है । ऋग्वेद (२/१/६) ने 'त्वमग्ने रुद्रो' कहकर इस एकीकरण का संकेत मात्र किया गया है । अथर्व (७/८३) 'तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये' मन्त्र में इसी ओर इंगित करता है । रुद्र की आठ मूर्तियाँ आठ भौतिक पदार्थों की प्रतिनिधि हैं । 'रुद्र' अग्नि है, 'शर्व' जलरूप हैं, 'पशुपति' औषधि हैं, 'उग्र' वायु है, 'अशनि', 'विद्युत हैं, 'भव' पर्जन्य हैं, 'महान् देव' (महादेव) चन्द्रमा है, 'ईशान' आदित्य है । शतपथ से पता चलता है कि रुद्र को प्राच्य लोग (पूरब के निवासी) 'शर्व' के नाम से तथा वाहिक (पश्चिम के निवासी) लोग 'भव' नाम से पुकारते थे, परन्तु ये सब वस्तुतः अग्नि के ही नाम है :-

अग्निर्वै स देवः । तस्यैतानि नामानि शर्व इति यथा प्राच्या आचक्षते । भव इति यथा बाह्मकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति तान्यस्या शान्तान्येवेतराणि नामानि, अग्निरित्येव शान्ततमम् ।[७३]

शुक्लयजुर्वेद (३६/८) में अग्नि, अशनि, पशुपति, भव, शर्व, ईशान, महादेव, उग्र–ये सब एक ही देवता के पृथक्पृथक् नाम कहे गए हैं । शतपथ की व्याख्या के अनुसार 'अशनि' का अर्थ है विद्युत् । इस प्रकार यजुर्वेद के प्रमाण से स्पष्ट है कि पृथ्वीतल पर जो रुद्र देवता अग्निरूप से निवास करते हैं, आकाश में काले मेघों के बीच से चमकने वाली विद्युत् के रूप में वे ही प्रकट होते हैं । अतः रुद्र को विद्युत का अधिष्ठातृ देव मानना नितान्त उचित प्रतीत होता है । अथर्ववेद में एक स्थान पर (११/२/१७) रुद्र के संसार को लीलने के लिए जीभ लपलपाने का वर्णन मिलता है । मुझे जान पड़ता है कि जिह्वा ईयमानम् इत्यादि शब्दों के द्वारा काले बलाहकों के बीच में कौंधनेवाली क्षण–क्षण में चमकनेवाली बिजली की ओर स्पष्ट संकेत है । इसी को पुष्ट करनेवाली अथर्ववेदीय प्रार्थना हे कि है रुद्र, दिव्य अग्नि से हमें संसक्त न कीजिए । यह जो बिजली दीख रही हैं, उसे मेरेसिर पर न गिराकर कहीं अन्यत्र गिराइए –

मा नः सं स्त्रा दिव्येनाग्निना
अन्यत्रास्मद् विद्युतं पातयेताम् ।[७४]

इस विवेचन की सहायता से हम रुद्र के 'शिवत्व' को भली भाँति पहचान लेते हैं । वह भयानक पशु की भाँति उग्र तथा भयद अवश्य है, परन्तु वह अपने भक्तों को विपत्तियों से बचाता भी है तथा उनका मंगल साधन भी करता है । उसके रोग निवारण करने की शक्ति का अनेक बार उल्लेख आता है । उसके पास हजारों औषधियाँ हैं, जिनके द्वारा वह ज्वर (तक्मन) तथा विष का निवारण करता हैं । वैद्यों में वह सबसे श्रेष्ठ वैद्य है (भिषक्–तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि ऋ. २/३३/४) इस प्रसंग में रुद्र के दो वीशिष्ट विशेषण उपलब्ध होते हैं – जलाष (ठंडक पहुँचाने वाला) तथा जलाषभेषज (ठंडी दवाओं को रखनेवाला) ।

कस्य ते रुद्र मृळयाकु –

र्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।[७५]

वस्तुतः अग्नि के दो रूप हैं – घोरातनु और अघोरातनु । अपने भयंकर घोर रूप से वह संसार के संहार करने में समर्थ होता है, परन्तु अघोर रूप में वही संसार के पालने में भी शक्तिमान् है । यदि अग्नि का निवास इस महीतल पर न हो, तो क्या एक के लिए भी प्राणियों में प्राण का संचार रह सकता है ? विद्युत् में संहारकारिणी शक्ति का निवास अवश्य है, परन्तु वहीं विद्युत् भूतल पर प्रभूत जलवृष्टि का भी कारण बनती है और जीवों के जीवित रहने में मुख्य हेतु का रूप धारण करती है । सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर प्रलय में भी सृष्टि के बीज निहित रहते हैं और संहार में भी उत्पत्ति का निदान अन्तर्हित रहता है । महाकवि कालिदास को अग्नि की संहारकारिणी शक्ति में भी उपादेयता दीख पड़ती है –

कृष्यां दहन्नपि खलु क्षितिमिन्धनेद्धो

बीज–प्ररोह–जननीं ज्वलनः करोति ।[७६]

अतः उग्ररूप के हेतु से जो देव 'रुद्र' हैं, वे ही जगत् के मंगल साधन करने के कारण 'शिव' हैं । जो रुद्र है, वही शिव है । रुद्र और शिव की अभिन्नता अवान्तर वैदिक ग्रंथो में सुपष्ट शब्दों में प्रतिपादित की गई है, परन्तु इस अभिन्नता की प्रथम सूचना ऋग्वेद में ही उपलब्ध होती है (२/३३/७) । ऋग्वेदीय ऋषि गृत्समद के साथ साथ रुद्रदेव से हम भी प्रार्थना करते हैं कि रुद्र के बाण हम लोगों की स्पर्श न कर दूर से ही हट जाय़ तथा हमारे पुत्र और सगे संबंधियों के ऊपर उस दानशील की दया सतत बनी रहे :–

परिणोहेत रुद्रस्य वृज्याः

परितर्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।

अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व

मीढवस्तोकाय तनयाय मृक ।।[७७]

६.३ गंङ्गावतरणम् महाकाव्य के अन्य पात्रों का परिचय :

गंगावतरणम् महाकाव्य में बिम्बविधान के बोध लिए आगे अन्य पात्रों का भी चित्रण किया जा रहा है, जिनका गंगावतरणम् के वर्ण्य विषय से साक्षात् संबंध है और जिसकी उपस्थापना से काव्य के प्रणेता का मंतव्य सुस्पष्टतः प्रतिबिम्बित भी होता है यथा –

६.३.१ महर्षि जह्नु :

यह शब्दा 'हा' धातु से निष्पन्न होता है । कोश में इसकी निष्पत्ति करते हुए कहा गया है । हा+नु, द्वित्वमाकारलोपश्च । सुहोत्र का पुत्र, एक प्राचीन राजा, जिसने गंगा को अपनी पुत्री के रूप में गोद लिया था । (जब गंगा नदी भगीरथ की तपस्या के द्वारा स्वर्ग से इस धरा पर लाई गई तो मैदान में आकर उसने राजा जह्नु की यज्ञभूमि को पानी में डुबो दिया । जह्नु ने क्रुद्ध होकर गंगा को पी डाला । देवता, ऋषि और विशेषकर भगीरथ ने उनके क्रोध को शान्त किया । जह्नु ने प्रसन्न होकर गंगा को अपने कानों के द्वारा बाहर निकलने की स्वीकृति दी । इसलिए गंगा जह्नु की पुत्री समझी गई और उसे जाह्नवी, जह्नुकन्या, जह्नुतनया, जह्नुनन्दिनी या जह्नुसुता आदि नामों से पुकारा गया । रघु के ६/८५, ८/६५ में जह्नु और जाह्नवी का सुन्दर वर्णन मिलता है । तथा गंगावतरणम् काव्य में भी जह्नु का सुन्दर विवेचन है ।[६८]

६.३.२ माता पार्वती :

पार्वती शब्द पार्वत पूर्वक डीप् प्रत्यय करने पर बनता है, जिसके अनेक अर्थ हैं – यथा (१) दुर्गा का नाम, हिमालय की पुत्री के रूप में उत्पन्न (अपने पहले जन्म में वह सती थी) तां पार्वतीत्याभिजनेन नाम्ना बंधुप्रियां बंधुजनो जुहाव (२) ग्वालिन (३) द्रौपदी का विशेषण (४) पहाड़ी नदी (५) एक प्रकार की संगुधियुक्त मिट्टी ।[६९] गंगावतरणम् में पार्वती को शिव की प्रिया और गंगा की सौत के रूप में चित्रित किया गया है ।

६.३.३ ब्रह्मा

संस्कृतहिन्दीकोश में ब्रह्मा शब्द की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ इस प्रकार बताये गये हैं । यथा (१) (ब्रह्मन् + अण्, टिलोपः) ब्रह्मा, विधाता या परमात्मा से संबंद्ध (२) ब्राह्मणों से संबद्ध (३) वेदाध्ययन या ब्रह्मज्ञान से संबद्ध (४) वेदविहित, वैदिक (५) विशुद्ध, पवित्र, दिव्य (६) ब्रह्मा द्वारा अधिष्ठित मुहूर्त या अस्त्र । हिन्दूधर्मशास्त्र के अनुसार आठ प्रकार के विवाहों में से एक; जिसमें आभूषणों से अलंकृत कन्या, वर से बिना कुछ लिए, उसे दान कर दी जाती है, (यही आठों भेदों में सर्वश्रेष्ठ प्रकार है) । ब्राह्मो विवाहः आहूय दीयते शक्त्यलङ्कृता । (२) नारद का नामान्तर, हथेली का अंगुष्ठमूल के नीचे का भाग । (२) वेदाध्ययन । ब्रह्मा का एक दिन और एक रात ब्राह्म विवाह की रीति से विवाहित की जाने वाली देया कन्या, मुहूर्तः दिन का विशिष्ट भाग, दिन का सर्वथा सवेरे का समय (रात्रेश्च पश्चिमे यामे मुर्हूर्तो ब्राह्म उच्यते) ब्राह्मे मुहूर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् (रघु. ५/३६/८०) गंगावतरणम् महाकाव्य में पृथ्वी पर गंगा की अवतारणा के लिए ब्रह्मा की आराधना भगीरथ ने की थी, जिससे गंगा जी शिव की जटा तक पहुँची थीं ।

६.३.४ भगवान् विष्णु :

विष्णु सनातनपरंपरा के एक देवता हैं, जिन्होंने पृथ्वी पर गंगावतरण के लिए राजा भगीरथ का सहयोग किया था । देवत्रयी में दूसरा, जिसको संसार का पालनपोषण सौंपा गया है, (इस कर्तव्य को यह भिन्न-भिन्न अवतार धारण करके सम्पन्न करता । इस शब्द की व्युत्पत्ति इसप्रकार की गई है - यस्माद्विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः । तस्मादेवोच्यते विष्णुःविश्ववातोः प्रवेशनात् (२) अग्नि (३) पुण्यात्मा (४) विष्णु स्मृति के प्रणेता । कांची के एक नगर का नाम, विष्णु के पग ।[८१]

६.३.५ महर्षि अगस्त्य :

भारतीय परंपरा में एक ऋषि का नाम अगस्त्य है । जो गंगावतरणम् काव्य में वर्णित हैं । शब्दकोश में अगस्त्य से सम्बद्ध (विन्ध्याख्यम् अगम् अस्यति; अस्+क्तिच्–शक.) (अगं विन्ध्याचलं स्त्यायति स्तम्नाति स्त्यै+क, वा अगःकुंभः तत्र स्त्यानः संहतः इत्यगस्त्यः) (१) 'कुम्भज' एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम (२) एक नक्षत्र का नाम (३) अगस्त्यः – अगस्ति[८२]

६.३.६ महर्षि कपिल :

ऋषि का नाम (सगर के साठ हजार पुत्र थे, अपने पिता के यज्ञीय घोड़े को ढूँढते हुए ये कपिलमुनि से लड़ पड़े और उन पर घोड़ा चुराने का आरोप लगाया । इससे क्रुद्ध हो कपिल ने इन सब को भस्म कर दिया । ये सांख्य दर्शन का प्रवर्तक समझे जाते हैं (२) कुत्ता (३) लोबान (४) धूप (५) अग्नि का एक रूप (६) भूरा रंग (१) भूरी गाय (२) एक प्रकार का सुंगधित द्रव्य (३) एक प्रकार का शहतीर, (४) जोंक ।[८३]

६.३.७ मंदाकिनी :

मंदाकिनी गंगा का एक पर्याय और स्वरूप है तथा गंगावतरणम् महाकाव्य में वर्णित पात्रों में से विशिष्ट पात्र है । आप्टे ने अपने संस्कृतहिन्दीकोश में मंदाकिनी की व्युत्पत्ति एवं तत्सम्बद्ध अन्य वर्णन निम्नलिखित रूप से किया है । यथा –

(मन्दमकति – अक्+णिनि+ङीष्) (१) गंगा नदी (मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः रघु. १३/४८, कु. १/२९) (२) स्वर्गंगा, वियद्गंगा (मन्दाकिनी वियद्गंगा) मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भिः मेघ. ६७)[८४]

६.३.८ पृथ्वी :

पृथ्वी प्रकृत काव्य की महत्त्वपूर्ण पात्र है । शब्दकोशकार ने इससे संबंधित वर्णन निम्नप्रकार किया है ।[८५] यथा (पृथु+ङीष्) (१) पृथिवी, धरा (२) पाँच मूल तत्त्वों में से एक, पृथ्वी (३) बड़ी इलायची (४) एक छन्द ।

६.३.९ कार्तिकेय :

कार्तिकेय गंगावतरणम् के प्रमुख पात्र तथा माँ पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र हैं । इनसे संबंधित वर्णन शब्दकोश में निम्नरीति से दिया गया है । यथा –

(कृत्तिकानामपत्यं ढक्) स्कन्द (क्योंकि उसका पालन पोषण छः कृत्तिकाओं द्वारा हुआ था) भारतीय पौराणिकता के अनुसार कार्तिकेय युद्ध का देवता है, शिवजी का पुत्र है, (परन्तु उसके जन्म में किसी स्त्री का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप नहीं है) उसके जन्म के विषय में बहुत–सी परिस्थितियों का उल्लेख मिलता है । शिव ने अपना वीर्य अग्नि में फेंका (जो कि कबूतरी के रूप में शिव के पास गई जब कि वह पार्वती के साथ सहवास का सुखोपभोग कर रहे थे) जिसने इसे सहन न करने के कारण गंगा में फेंक दिया (इसीलिए स्कन्द को अग्निभू या गंगापुत्र भी कहते हैं) । उसके पश्चात् यह छः कृत्तिकाओं (जब वह गंगा में स्नान करने गई) में संक्रांत कर दिया गया । फलस्वरूप वह सब गर्भवती हुई और प्रत्येक ने एक–एक पुत्र को जन्म दिया परन्तु बाद में इन छः पुत्रों को बड़े रहस्यमय ढंग से जोड़ कर एक कर दिया गया । इसप्रकार वह छः सिर, बारह हाथ तथा बारह आँखों वाला, असाधारण रूप का व्यक्ति बना । (इसीलिए उसे कार्तिकेय, षडानन या षण्मुख कहते हैं) दूसरी कहानी के अनुसार गंगा ने शिव के वीर्य को सरकण्डों में फेंक दिया, इसी कारण उसे शर वनभव या शरजन्मा भी कहते हैं । कहते हैं कि उसने क्रौंच पहाड़ को विदीर्ण कर दिया । इसीलिए वह क्रौंचदारण कहलाता है । एक शक्तिशाली राक्षस तारक के विरुद्ध युद्ध में वह देवताओं की सेना का सेनापति था जिसमें उसने राक्षसों को परास्त

करके तारक को मार डाला । इसीलिए उसका नाम सेनानी और तारकजित्‌है । उसका चित्रण मयूरारोही के रूप में लिया जाता है) । पार्वती कार्तिकेय की माता है; इत्यादि ।[८६]

संदर्भ सूची :

१	साहित्य–दर्पण
२	काव्यादर्श
३	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. ३
४	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. २
५	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. ३
६	पाणिनीयपरम्परा शब्दानुशासन और उपयोगितावाद, पृ. ३३
७	पाणिनीयपरम्परा शब्दानुशासन और उपयोगितावाद, पृ. ४
८	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. ५
९	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. ११
१०	नाट्यशास्त्रम्, १७.४२
११	काव्यादर्श १.४
१२	काव्यलंकारः ३.४५, ५५
१३	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १.२.२१
१४	ध्वन्यालोक १.६
१५	काव्यमीमांसा पृ. १६७
१६	भुंजानस्याद्भुतभोगा स्पन्दाविष्टस्य च मनश्चमत्करणं चमत्कार इति । स च साक्षात्कार स्वभावो मानसोऽध्यवसायो वा, संकल्पो वा, स्मृति र्वा तथात्वेन स्फुरन्नस्तु ।' अभिनव पृ. ४७२
१७	डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, ग्रंथ, आनन्दवर्धन पृ. ५३६
१८	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. ८६
१९	शिशुपालवधम् १.७५
२०	कालिदास का बिम्बविधान, पृ.४६
२१	कालिदास का बिम्बविधान, पृ. ५०

२२	व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, पृ. ५५३
२३	काव्यालंकार, पृ. ३/५३
२४	दशरूपक, धनंजय, २/१,२
२५	वीरचरितम्४.२१
२६	वीरचरितम् २/३७
२७	वीरचरितम्
२८	वीरचरितम् १–५३
२९	वीरचरितम् २/३६
३०	वीरचरितम् ४/४४
३१	रघुवंशम्१६/८
३२	हनुमन्नाटकम् १/३८
३३	हनुमन्नाटकम् ३/२१
३४	वीरचरितम् ३/८
३५	भर्तृहरिनीतिशतकम् २६
३६	मालविकाग्निमित्रम् १/५
३७	दशरूपक – धनंजय, २/३
३८	रत्नावली नाटिका १/६
३९	दशरूपकम् २/४ का पूर्वार्ध
४०	मालतीमाधवम् २/१०
४१	मृच्छकटिकम् १०/१२
४२	दशरूपक – धनंजय २/४–५
४३	नागानन्दनाटकम् ५/५
४४	हनुमन्नाटकम् ३/२५
४५	दशरूपकम् २/५, ६ (उत्तरार्ध एवं पूर्वार्ध)

४६	दशरूपक – धनंजय २/१ ५
४७	दशरूपक – धनंजय पृ. १२२ पर उद्धृत
४८	दशरूपक – धनंजय पृ. १२२ पर उद्धृत योगिनी हृदय से
४९	दशरूपक – धनंजय पृ. १२३–१२४ पर उद्धृत
५०	दशरूपक – धनंजय पृ. १२४ पर उद्धृत
५१	कुमारसंभवम् ८/२
५२	दशरूपक – धनंजय पृ. १२४ पर उद्धृत
५३	दशरूपक – धनंजय पृ. १२४ पर उद्धृत
५४	दशरूपकम् – २/१६
५५	दशरूपकम् पृ. १२५ पर उद्धृत
५६	दशरूपक धनंजय २/१७
५७	दशरूपकम् पृ. १२६ पर उद्धृत
५८	दशरूपकम् पृ. १२६ पर उद्धृत
५९	शिशुपालवधम् ७/५३
६०	अमरुकशतकम् श्लोक ५७
६१	दशरूपकम् पृ. १२७ पर उद्धृत
६२	दशरूपकम् धनंजय २/१८
६३	दशरूपकम् पृ. १२९ पर उद्धृत
६४	अमरुकशतकम् श्लोक ६४
६५	अमरुकशतकम् श्लोक १०१
६६	नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च शु.य. १६/२८
६७	धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्यं सहस्त्रघ्नि शतवधं शिखण्डिनम्अ. १/२/१२
६८	षट्स्यूतं कर्पासगर्भं देहरक्षकं कवचम् । लोहमयं शरीररक्षकं वर्म । शु. यु. १६/३५ पर महीधरभाष्य ।

६६	ऋ. ७/५३/१४
७०	एष ते रुद्र भागः स्वस्राऽम्बिकया, तं जुषष्व स्वाहेष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः (शु. य. ३/५७)
७१	अथर्ववेद ११/२/६
७२	'रुद्र' की अन्य व्युत्पत्तियों के लिए देखिए ऋ. १/११४/१ का सायण भाष्य
७३	शतपथ, १/७/३/८
७४	अथर्ववेद ११/२/२६
७५	ऋ. २/३३/७
७६	रघु. ६–८० का उत्तरार्द्ध
७७	ऋ. २/३३/१४
७८	संस्कृतहिन्दी कोश, पृ. ४००
७६	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. ६०६
८०	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. ७२४
८१	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. ६६२
८२	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. ६
८३	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. २४६
८४	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. ७७६
८५	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. ६३३
८६	संस्कृतहिन्दीकोश, पृ. २७०

❀❀❀

सप्तम अध्याय
'गंगावतरणम्' महाकाव्य में प्रकृति–चित्रण

७.१ काव्य में प्रकृति–वर्णन की उपादेयता

७.२ हिमालय–वर्णन

७.३ काशीवर्णन

७.४ नागलोक वर्णन

७.५ कपिलमुनि का आश्रम वर्णन

७.६ प्रकृति–वर्णन के विविध आयाम

सप्तम अध्याय
'गंगावतरणम्' महाकाव्य में प्रकृति–चित्रण

७.१ काव्य में प्रकृति–वर्णन की उपादेयता :

संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में काव्य के लिए निर्दिष्ट लक्षणों के अंतर्गत प्रकृति–वर्णन का प्रमुख स्थान है । दण्डी के अनुसार "काव्य में नगर, सागर, पर्वत षड्ऋतु–वर्णन, चन्दोदय, उद्यान, मधुपान, रतोत्सव, विप्रलम्भ और विवाह आदि का वर्णन होना चाहिए ।"

आचार्य हेमचन्द्र ने काव्य में अर्थवैचित्र्य के अंतर्गत उपर्युक्त सभी वर्णनों को स्वीकार किया है । रुद्रट और आचार्य विश्वनाथ ने भी इसी मत का समर्थन किया है ।

काव्य के वर्ण्य विषयों में प्रकृति–वर्णन भी एक प्रमुख स्थान रखता है । प्रकृति–वर्णन प्रायः काव्य के अङ्ग बनकर आते हैं । प्रकृति–वर्णन से कवि की प्रवृत्ति का पता चलता है । कवि के लिए प्रकृति के जितने भी रूप हैं, सब वर्ण्य हैं, उसमें सुन्दर और असुन्दर का विवेक ठीक नहीं है । क्रोचे के अनुसार प्रकृति उसी व्यक्ति के लिए सुन्दर है, जो उसे कला की दृष्टि से देखता है । प्रकृति मूक है । मानव उसे जब तक वाणी नहीं देता, वह मूक रहती है ।

उपर्युक्त कथन का समर्थन पाश्चात्य विद्वान् अलेक्जेण्डर भी करते हैं – प्रकृति तभी सुन्दर लगती है, जब हम उसे कलाकार की दृष्टि से देखते हैं । प्रकृति स्वयं सुन्दर नहीं है वरन् हम प्रकृति का विस्तार से चयन करके वैसे ही देखते हैं जैसे कलाकार अपने रंगों के संयोग द्वारा सौंदर्य की अभिव्यक्ति करता है ।[१]

ई. एफ. कैरियर इसको और अधिक स्पष्ट करते हैं –

ऐसा नहीं है कि साधारण व्यक्ति प्रकृति के सौंदर्य को देखता ही नहीं । वस्तुतः जिसको हम कलाकार कहते हैं, उसमें और साधारण व्यक्ति में प्रकृति के सौंदर्यानुभूति के विषय में केवल मात्रा का अंतर होता है । कलाकार में केवल व्यापकता, अभिव्यक्ति एवं प्रत्यक्ष की प्रेरणा–शक्ति होती है ।[२]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि संस्कृत काव्य–जगत् में प्रकृति का व्यावहारिक रूप देखने को मिलता है । प्राचीन कवियों ने इसी प्रकृति का काव्यात्मक अर्थात् कलात्मक दृष्टिकोण से दिग्दर्शन किया तथा अनुभूति के पश्चात् उसे अभिव्यक्ति दी । इसके अतिरिक्त परिवर्तन और गति की अनंत चेतना में मग्न प्रकृति में मानव जीवन को गति मिल गयी है । मानव उसकी होड़ में विकसित हुआ है । प्रकृति के युग–युग के परिचय का संस्कार उसमें सौंदर्य भाषा के रूप में सुरक्षित है । इन्हीं संस्कारों में कवि प्रकृति के समक्ष अनुभूतिशील हो उठता है और अपनी कल्पना से काव्य व्यंजना को स्थान देता है । अतः कवि स्वभावतः ही प्रकृति का चित्रण करता है ।

कवि नीलकण्ठ दीक्षित भी अनुभूति और अभिव्यक्ति से मुक्त नहीं है । उनके काव्यों में प्रकृति–वर्णन को व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है ।

कवि ने षड्ऋतु वर्णन का प्रसंग उपस्थित किया है । कालिदास ने अपने खण्डकाव्य 'ऋतुसंहार' में षड्ऋतु के सौंदर्य को अंकित किया है । भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' में तथा माघ ने 'शिशुपालवधम्' में षड्ऋतु का वृहद् वर्णन किया है ।

प्रवरसेन के प्राकृत महाकाव्य 'सेतुबन्ध' में वर्षा तथा शरद् का सुन्दर चित्रण हुआ है । बुद्धघोष ने 'पद्मचूड़ामणि' में वर्षा, शरद् आदि ऋतुओं का वर्णन किया है ।

ठीक इसीप्रकार 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में महाकवि नीलकण्ठ दीक्षित जी ने प्रकृति के जिन विभिन्न स्थलों का वर्णन किया है, वे अधोलिखित पंक्तियों में द्रष्टव्य हैं –

७.२ हिमालय–वर्णन :

यह सुरनदी गंगा का उद्गम स्थान माना जाता है । इसकी छटा का वर्णन कविवर नीलकण्ठ दीक्षित ने इसप्रकार किया है कि –

मरुद्भिःदरेकान्ततुषारवर्षिभिर्मनोहरन्तीषु यदीयभूमिषु ।
नवाभिसारेऽप्यधरं मृगीदृशां विमुक्तशंकं व्रणयन्ति कामिनः ।''[३]

मात्र तुषार (हिमकण) वृष्टि करने वाले बर्फीले वायु से हिमालय के समीपवर्ती भूमिस्थान में शंकारहित होकर कामी लोग मृगनेत्रियों के अधर का रसास्वादन करते हैं ।

कठोरसौरातपतापविद्रवत्तुषारवापीसलिलैकजन्मनाम् ।
सरोरूहाणां किमिवोपहन्यते हिमेषु वा यत्र हिमात्ययेषु वा ।।[४]

तीव्रघर्म सन्ताप से द्रवीभूत हिमकणों के एकत्रित जल से उत्पन्न होने वाले कमलों का बर्फीले मौसम या ग्रीष्मकाल में कोई नुकसान नहीं होता ।

हिमस्पृशां यन्मरुतां प्रसादतो विछलासिनां मुग्धवधूरतेष्वपि ।
न शिक्षणीयाजनि जातु सीत्कृतिर्न चार्थनीया परिरम्भसान्द्रता ।।[५]

बर्फीले वायु की कृपा से मुग्धवधुओं के साथ विलासियों के रति काल में सीत्कार की शिक्षा और गाढालिंगन की याचना नहीं करनी चाहिए ।

पुराणवेणुव्यतिषंगसंभवं दवं यदीयाः शमयन्ति तत्क्षणम् ।
तदर्चिरुष्मग्लपितद्रवीभवत्तुषारसंघातमहाम्बुवृष्टयः ।।[६]

हिमालयस्थ सूर्य की किरणों से द्रवीभूत हिमकणों की महावृष्टियाँ प्राचीन बाँसों के संघर्षण से उत्पन्न दावाग्नि को तत्क्षण ही शान्त कर देती हैं ।

द्रवीभवद्भिः कवचिदातपोष्मणं कवचिच्च विद्याधरगानविद्यया ।

हिमस्वरूपैरितरैश्च यत्तटैः स्वयं भवेदेव न पंचषैर्दिनैः ।''[७]

कहीं पर धर्म से द्रवीभूत होते हुए तथा कहीं पर विद्याधरों की गान विद्या (संगीत) से हिम स्वरूपी तट द्रवीभूत हो रहे थे । अन्य जहाँ पर सूर्य का सन्ताप और गानविद्या का प्रभाव था, वहाँ भी कुछ ही दिनों में द्रवीभूत होने की संभावना थी ।

तपोविशुद्धे हृदये तपस्विनामपि क्षणादूर्ध्वमवस्थितो न यः ।

स एव यत्सानुविहारकौतुकी सदामहेशो यदि किं ततोऽधिकम् ।।[८]

तपस्वियों के तपःपूत हृदय में भी जो महेश क्षण भर स्थिर रह सकते, यदि वे पर्वत विहार के कुतूहल से यहाँ निरंतर रहते हों, तो हिमालय क्या उनके हृद्रय से अधिक पवित्र नहीं है ?

स्वतंत्रखेलद्भिःरिकन्यकाकरस्वयं ग्रहावर्जितमुग्धपल्लवाः ।

मुनीन्द्रवृन्दादृतमूलपांसवो जयन्ति धन्याः किल यत्र वीरूधः ।।[९]

स्वेच्छया क्रीड़ारत हिमसुता के हाथों से स्वयं गृहीत कोमल पत्तों वाले वृक्ष धन्य हैं, निश्चित रूप से समादृत मूलस्थ धूलियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं ।

परिभ्रमद्गधमृगाधिवासितं प्रकीर्णकल्पद्रुमपुष्पमप्यधः ।

शिलातलं स्निग्धविशालशीतलं सुखेन यत्राधिवसन्ति किन्नराः ।।[१०]

इसके नीचे तट पर भ्रमण करने वाले कस्तूरी मृगों से सुगन्धित और कल्पद्रुमों के पुष्पों से आच्छादित शिलातल, जो अत्यधिक स्निग्धता के कारण सुशीतल हैं, उस पर किन्नर लोग निवास करते हैं ।

यदीयनीहारकणानितस्ततः किरन्मृगांकः प्रथते सुधाकरः ।

यदीयगण्डोपल एव कश्चन प्रयाति कैलास इतिस्थिरं यशः ।।[११]

जिस हिमालय के बर्फ कणों को और भी बिखेरता हुआ चन्द्रमा सुशोभित होता है, उसकी चाँदनी में ऐसा प्रतीत होता है मानों स्थिर कीर्तिशाली कैलास इसके समीप आ रहा है ।

स यक्षविद्याधरकिन्नराप्सरः फणीन्द्रगन्धर्वनिरन्तरे पथि ।

व्रजन्नतिक्रम्य तुषारभूधरं जगाम कैलासगिरिं जनेश्वरः ।।[९२]

वे राजा भगीरथ यक्ष विद्याधर, अप्सरा, फणीन्द्र एवं गन्धर्वादिकों से व्याप्त मार्ग में जाते हुए हिमालय को अतिक्रमित कर कैलास पर्वत पर गये ।

महेशभूषाहिकुलानि कन्दरे चिरोपरोधात्क्षुधितानि रक्षितुम् ।

समीरणं सेवितुमागतं बलान्नयन्ति यत्र प्रमथाः कृपालवः ।।[९३]

गुफा में बहुत समय तक वायु न मिलने पर भूखे शिव के आभूषण स्वरूप सर्पों की रक्षा करने के लिए कृपालु शिव के प्रमथ गण जहाँ वायु सेवन के लिए बलपूर्वक ले जाते हैं ।

विशङ्कलंकेशभुजोपकम्पिताद्यतो विकीर्णा रजतोपला इव ।

गणा जयन्ति प्रलयान्तपावकज्वलत्रिलोकीभसितावगुण्ठिताः ।।[९४]

निर्भीक रावण के बाहु प्रकम्पन से चाँदी के टुकड़े की तरह फैले हुए प्रलय कालिक धूनी रमाये भस्माच्छादित शिवगण सर्वोत्कृष्ट हैं ।

तटेषु तत्तज्जगदण्डमण्डलीसमाहृतब्रह्मकरोटिकोटिषु ।

चरन्विधिर्यत्र न जातु शोचतिस्मरन्नपि स्वं किल पंचमं शिरः ।।[९५]

कैलास पर्वत के तटप्रान्त भाग में संसार के अनेक स्थानों से आकृष्ट ब्राह्मणों द्वारा बनाई गयीं झोपड़ियों में विचरण करते हुए ब्रह्मा जी निश्चिन्त रूप से पंचम शिर का स्मरण करते हुए भी कभी चिन्ता नहीं करते । (किसी समय शिव ने ब्रह्मा का एक सिर काट लिया था) ।

प्रवेशिताः स्फाटिककन्दरोदरं नवाङ्गना यत्कटकेषु किंनरैः ।

अपत्रपन्ते बहिरासिताः सखीरवेक्ष्य नैर्मल्यवशादतिस्फुटम् ।।[९६]

जिस पर्वत की गुफाओं में किन्नरों के साथ प्रविष्ट नवांगनायें निर्मलता से अत्यधिक स्पष्ट रूप में बाहर स्थित सखियों को देखकर लज्जित नहीं होतीं । (अर्थात् इन्हें यह जानकारी रहती है कि गुफा के अन्दर रहने के कारण सखियाँ उन्हें नहीं देख सकती) ।

बिभर्ति यः स्फाटिकराजतीस्तटीः कुटुम्बिनो यत्र धनेश्वरादयः ।

समः समृद्ध्या क इवास्य वर्तते प्रभुर्नभिक्षामटति स्वयं यदि ।।[१७]

जो पर्वत चाँदी की तरह स्फटिक तटप्रान्तभागों को धारण करता है, कुबेरादि जिसके पारिवारिक सदस्य हैं, ऐसी स्थिति में इसके समक्ष कौन हो सकता है । यदि स्वयं भगवान् शंकर भिक्षा के लिए भ्रमण न करते ।

शरार्कधुर्धूरवतीषु यत्तटे महेशपुष्पोपवनीषु रक्षिणः ।

स्वतः प्ररूढामपि जातु केतकीं न हि क्षमन्ते विषवल्लरीमिव ।।[१८]

जिस कैलास पर्वत के तटप्रान्तभाग में ऊँची नीची चोटियों पर सरपत, मन्दारादि वृक्ष एवं शिव जी के प्रिय पुरुषों की वाटिकाओं के संरक्षक स्वतः उत्पन्न केतकी की लता को भी विषलता समझकर दूर रहते हैं ।

सुरसिद्धतापसगतागतोचितां परिहृत्य तत्र पदवीं भगीरथः ।

अधितिष्ठति स्म तटमस्य पावनं हृदयं च तस्य पुनरिन्दुशेखरः ।।[१९]

देवता और सिद्ध तपस्वियों के आने जाने योग्य स्थान को प्राप्त करके तथा पर्वतस्थ तटप्रान्त भाग में भगीरथ भगवान् चन्द्रशेखर की हृदय में धारण करके पुनः साधना करने लगे ।

७.३ काशीवर्णन :

पठन्ति यस्यामथ पाठयन्ति प्राज्ञाः शतं निर्मिमते कृतीश्च ।

अस्थीन्यपूतान्यहयो न धार्या भोज्यं विषं नेति तु नावयन्ति ।।[२०]

जिस काशी में विद्वान् लोग पढ़ते-पढ़ाते हुए सैकड़ों कृतियों का निर्माण करते हैं किन्तु अपवित्र अस्थियों एवं सर्प को नहीं धारण करना चाहिए तथा विष भोज्य नहीं होता; इसका उन्हें परिज्ञान नहीं होता अर्थात् उनमें विचित्र सहनशीलता और विवेक सर्वज्ञ रहता है ।

आसाद्य यत्राक्षरमेकमीशात्प्राणैर्विमुच्यार्धपथं प्रपन्नैः ।

सहे नराश्चेत्पशुपक्षिणोऽपि यां सर्वभूता स्म इति स्मयन्ते ।।[२१]

जिस काशी नगरी में प्राणों से अधूरे मार्ग को छोड़कर ईश्वर से एकाक्षर प्रणव ॐ को प्राप्त कर मनुष्य की क्या बात, पशुपक्षी भी अपनी सद्गति से अपने में ही सर्वव्यापी ईश्वर का अनुभव होने से आश्चर्य चकित रहते हैं ।

सा तत्र सिन्धुर्विशती प्रसन्ना सेव प्रसन्नाश्च गिरः कवीनाम् ।
गभीरतास्वादिमवेगमूलां स्पर्धामबध्नन्नितरेतरेण ।।[२२]

काशी नगरी में प्रवेश करते ही वह सुरनदी कवियों की स्वच्छ वाणी की तरह निर्मल हो गयी । जैसे वाणी गंभीरता के आस्वादनार्थ वेग रहित परस्पर स्पर्धा रूप में कवियों की वाणी होती है । उसी प्रकार सुरनदी में भी जल की स्थिरता से गंभीरता आदि गुण आ गये ।

मय्यागतायामपि मुक्तिदायां तीर्थैः किमेभिः किमथापि लिंगैः ।
इतीव काश्यामुभयानितानि सा मज्जयन्ती शतशोव्यचारीत् ।।[२३]

मुझ मुक्तिदायिनी के यहाँ आने पर इन तीर्थों और शिवलिंगों की क्या आवश्यकता ? मानों, इसी विचार से वह सुरनदी काशी के उभयवर्ती तटों को डुबोती हुई विचरने लगी ।

अम्भोभरैराश्रममण्डलानि संप्लावयन्ती शतशो मुनीनाम् ।
प्रायेण तत्पापजिहासयेव ममज्ज गंगा मणिकर्णिकायाम् ।।[२४]

अपने पवित्र जल से मुनियों के आश्रम को अनेकशः डुबोती हुई वह सुरनदी मानों पाप विनाश के लिए ही मणिकर्णिका में विशेष रूप से बहने लगी ।

अपाततः स्वाद्विव तत्त्वतस्तु क्रूरादपि क्रूरतरं यदम्भः ।
पीते कणेऽप्यस्य शरीरिणो यत्पिबन्ति हालाहलमप्ययत्नम् ।।[२५]

काशी में स्वभावतः और परमार्थ रूप में गंगा का जल अत्यधिक मधुर (कोमल भी) तो है ही किन्तु यह अत्यधिक कठोर भी है क्योंकि इसका (जल का) पान करने पर लोग बिना किसी प्रयास के हालाहल (विष) का भी पान कर सकते हैं अर्थात् अमृत पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता ।

ऐश्वर्यलोभात्स्वमुपागतानां कर्णेजपन्किञ्चन देहभाजाम् ।

यः कोऽपियस्यां कितवावतंसो भिक्षाकपालानि करेषु दत्ते ।।[२६]

जिस काशी नगरी में ऐश्वर्य प्रलोभी लोगों के कान में कुछ कहते हुए कोई महाकपटी (शिव) उनके हाथों में भिक्षा पात्र रख देता है । अर्थात् यहाँ आने वालों का भौतिक मोह नष्ट हो जाता है ।

भर्तुं स्वमेकं वपुरप्यशक्त्या प्रायः स्वतीराश्रयिणां जनानाम् ।

शिष्येषु विन्यस्यति या त्रिलोकसृष्टिस्थितिंध्वंसमहाधिकारम् ।।[२७]

अपने एक शरीर का पालन भी जिनके लिए कठिन है, ऐसे लोग जब यहाँ गंगा तट का आश्रय ग्रहण करते हैं, तो उन्हें अनायास ही तीन लोकों की रचना, पालन और संहार का सबसे बड़ा अधिकार मिल जाता है अर्थात् यहाँ आने वाले का अभीष्ट अवश्य ही सिद्ध होता है ।

एकैकमस्याश्चुलुकं वहेयुरेते यदि क्वेव भवेद्द्युसिन्धुः ।

इति क्षितीशे बिभयांबभूव पश्यन्प्रजास्तत्र महेशरूपाः ।।[२८]

यदि ये काशीवासी एक–एक चुल्लू जल ग्रहण करेंगे तो सुरनदी की क्या स्थिति होगी ? महेश रूपी प्रजा को देखते हुए राजा भगीरथ भयभीत हो गये ।

ग्रस्ता जटाभिः प्रथमं पुरारेर्ग्रस्ता ततो या चुलुकेन जह्नोः ।

ब्रह्मर्षिभिः सात्रपपे दृशैव भग्नः सकृद्भज्यत एव भूयः ।।[२९]

सर्वप्रथम सुरनदी शिव की जटाओं से ग्रसित हुई पश्चात् जह्नु मुनि ने चुल्लु से उन्हें पी लिया । अब वह नदी ब्रह्मर्षियों के द्वारा दृष्टि से पान की जा रही है । एक बार टूट गया, वह आगे भी टूटता ही जाता है । (विचित्र गति है) ।

सा वेगादथ मणिकर्णिकाजलान्तः संपातप्रतिहतिसंभवैर्द्युसिन्धुः ।

व्याकीर्णैर्नवकुसुमैरिवाम्बुलेशैर्विश्वेशं विनयपरिष्कृता ववन्दे ।।[३०]

मणिकर्णिका के जल के अन्दर गिरने से जिसका वेग मन्द हो गया है तथा नवीन पुष्प की तरह फैले हुए फेनिल जलकणों से विनय युक्त होकर वह सुरनदी विश्वेश्वर महेश की वन्दना करने लगी ।

स्वच्छन्द प्रचरद्भगीरथरथक्रेंकारधाराश्रव
प्रत्युद्यन्मुनिलोकलोचनपुटीनिर्वेदसर्वंकषैः ।
स्रोतोभिर्घनसारसान्द्रशिशिरैः स्वर्लोककल्लोलिनी ।
तामालिम्पदिवेन्दुचूडनयनज्वालाजटालां पुरीम् ।।[३१]

स्वच्छन्दगामी भगीरथ रथानुवर्तिनी सुरनदी के प्रपातध्वनि से अभ्युदित मुनियों के नेत्रों से दर्शनीय तटों में प्रवाहित कर्पूर की तरह स्वच्छातिस्वच्छ सुशीतल जल कणों वाले स्रोतों से उस सुरनदी ने चन्द्रशेखर की मस्तकाग्नि से प्रकाशित काशी नगरी को मानों शुभ्रता से प्रलिप्त कर दिया । अर्थात् गंगा से काशी का और भी महत्त्व बढ़ गया ।

७.४ नागलोक वर्णन :

फणधरालयमूलनिवासिनं प्रमथनाथमवेक्ष्य भयेन वा ।
क्षणनिरुद्धतरंगरया पुनः परिपपात भगीरथबोधिता ।।[३२]

नागलोक के मूल निवासी शिव को जानकर उनके भय से सुरनदी की तरंगों का वेग कुछ अवरुद्ध हो गया, वे भगीरथ के प्रबोधित करने पर पुनः तीव्र गति से प्रवाहित होने लगीं ।

कनकभूधरमूलमणित्विषा गलितमसेऽथ रसातले ।
भुजगराजभुजार्गलपालितां धुरि ददर्श स भोगवतीं पुरीम् ।।[३३]

सुमेरु पर्वत की मूलस्थ मणिकान्ति से अंधकार रहित पाताल में सर्पराज वासुकि की भुजारूपी अर्गला से सुरक्षित नागलोक को राजा भगीरथ ने देखा ।

प्रवसतो विनिवर्तयितुं पतीन्कृतधियः किल यत्फणिकन्यकाः ।
पथिकुहापि तदीक्षणगोचरे परिनिपत्य भवन्ति गतज्वराः ।।[३४]

प्रवासी पतियों को लौटाने का निश्चय करने वाली नागकन्याएँ कुहरा व्याप्त मार्ग में भी उनके देखने मात्र से ही जिस नागलोक में ज्वर रहित हो जाती हैं ।

स्वयमुपेतसमीरकृताशनैः स्फुटितभूविवरोदरशायिभिः ।

फणधरैरनपेक्षितवेतनैः प्रभुरवर्तत यत्र स वासुकिः ।।[३५]

स्वयं प्राप्त होने वाले वायु का पान करने वाले एवं किलों में शयन करने वाले अवैतनिक सर्प नाग वासुकि के समीप रहते हैं ।

सदनमेत्य स जग्धिकृते सखीन्समुपहूय निवेश्य च पंक्तिशः ।

विदधति व्यजनैरुपवीजनं किमपि यत्र मुखेष्वनिलाशनाः ।।[३६]

अपने मित्र सर्पों को आमंत्रित कर और उन्हें पंक्तिबद्ध प्रवेश कराकर जिस नागलोक में सर्पगण फूत्कार से सर्पराज को व्यजन (चँवर) डुला रहे थे, ऐसा राजा भगीरथ ने वहाँ देखा ।

सति फणावलयातपवारणे सति च तन्मणिदीपशिखांकुरे ।

घने तटिज्जटिलेषु घनागमेष्वभिसरन्ति न यत्र फणिस्त्रियः ।।[३७]

जिस नागलोक में सर्पों के फणरूपी छत्र एवं प्रकाशनार्थ सर्पमणि होने पर भी घनीभूत बिजली वाले वर्षा काल में सर्पों की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलती ।

न विधुरस्ति न दक्षिणमारुतः क इव तद्विधुरः कुसुमायुधः ।

तदपि शासनमस्य दुरुत्तरं शिरसि बिभ्रति यत्र फणिस्त्रियः ।।[३८]

जिस नागलोक में चन्द्रमा दक्षिणानिल और कामदेव के न होने पर भी सर्प–पत्नियाँ वासुकि के अनतिक्रमणीय शासन का पालन करती है ।

कतिचिदच्युतमञ्चकुलोद्भवाः कतिपये हरकुण्डलवंशजाः ।

रविरथाश्वगुणान्वयजाः परे तदिह तार्क्ष्यभयं न यदोकसाम् ।।[३९]

विष्णु की शय्या स्वरूप शेषनाग के कुल में उत्पन्न होने वाले कुछ सर्प तथा शिवजी के कुण्डल में लिपटे रहने वाले कुछ सर्प उस वंश के थे । इनके

अतिरिक्त अन्य सर्प सूर्यास्त गुणानुयायी वंश से उत्पन्न हुए थे ये सभी सर्पगण गरुड़ के भय से यहाँ नागलोक में रहते हैं ।

अधुतसिद्धशिरोमणिभूषणो ग्रथनविश्लथनासहकंचुकः ।
अधृतकुण्डलमुग्धमुखाम्बुजो जयति यत्र भुजंगवधूजनः ।।[४०]

जिस नागलोक में मणिरूपी आभूषण सिर पर धारणा करने वाली शिथिल केंचुलरूपी कंचुक धारण करने वाली एवं सुन्दर कमल की तरह मुख वाली कुण्डलित सर्पिणियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं ।

सति महावरणेऽपि हि यज्जना न दधते परिखाखनने त्वराम् ।
तनुतराब्जभवाण्डकरण्डकाधरकपालपरिक्षतिशंकया ।।[४१]

जिस नागलोक में रहनेवाले लोग अत्यधिक सूक्ष्म मृत्युलोक मधु के छत्ते की तरह ऊपर स्थित होने से ऊपर गिरने की आशंका के कारण अत्यधिक जल से सुरक्षित रहने के लिए परिखा (खाई) खनन में शीघ्रता नहीं करते ।

परिपतत्सु ततः स समन्ततः स्वमवलोकयितुं पुरवासिषु
बहिरभीतवदास्तहृदा पुनः परिजजापङ्क्पततेर्मनुम् ।।[४२]

तदन्तर चारों तरफ दौड़ते हुए सर्पो के आ जाने पर वे राजा भगीरथ भयभीत न होकर हृदय से सूर्यवंशी मनु का जप करने लगे ।

पतति तत्र सुधाशनदीजले फणधराः कतिचित्पथि पातिनः ।
प्रविशिशुर्भयसंकुचितांगका रथविटंकपदेषु महीपतेः ।।[४३]

प्रवाहित सुरनदी के मार्ग में आनेवाले कुछ सर्प राजा भगीरथ से भयभीत होकर शरीर को संकुचित करके रथ के सर्वोच्च स्थानों में प्रविष्ट हो गये ।

प्रमथनाथजटापटलापतत्फणधरेन्द्रमुखादखिलां कथाम् ।
श्रुतवतां किल तन्नगरौकसां सुरनदी न बभूव भयावहा ।।[४४]

वहाँ नागलोक में सर्पराज वासुकि के मुख से गंगाद्वारा शिव जटा में गिरने की कथा श्रवण करने वालों के समक्ष सुरनदी पुनः भयभीत नहीं हुई ।

प्रविशतीषु रसातलमण्डलं त्रिदशसिन्धुजलोरगपंक्तिषु ।

अजनि बन्धुसमागमसंभवः फणभृतां प्रतिमन्दिरमुत्सवः ।।[४५]

पाताल लोक में सुरनदी की जलोरग (जल, सर्प या सर्पाकृति वाली जलपंक्ति) पंक्तियों के प्रवेश करने पर सर्पों ने बंधु मिलन का महोत्सव मनाया ।

अथ परीत्य स भोगवतीं पुरीममरसिन्धुसखो वसुधेश्वरः ।

शुचि विविक्तमनोरममासद्भगवतः कपिलस्य तपोवनम् ।।[४६]

इसके अनन्तर सुरनदी के मित्र राजा भगीरथ भोगवती (नागलोक) नगरी का अतिक्रमण करके भगवान् कपिल मुनि के पवित्रतम् एवं सुंदर तपोवन में प्रविष्ट हुए ।

७.५ कपिलमुनि का आश्रम वर्णन :

कपिलकोपहुताशनसंभृतं स पुरतः पितृभस्म निरीक्ष्य तत् ।

प्रमदशोकसमागममूर्च्छितो द्विविधमश्रुदधौ युगपद्दृशोः ।।[४७]

राजा भगीरथ कपिल मुनि के क्रोधाग्नि से भस्मीभूत पितरों की राख को सामने देखकर अत्यधिक शोक से मूर्च्छित हो गये और उनकी आँखों में आँसू आ गये ।

अथ रथादवतीर्य भगीरथे सगरजानुपसर्पति वीक्षितुम् ।

भसितराशिममज्जयदम्भसा भगवती सुरलोकतरंगिणी ।।[४८]

अनन्तर रथ से उतरकर समरात्मजों की राख को देखने के लिए राजा भगीरथ के पहुँचने से पूर्व ही सुरनदी ने भस्म को अपने जल में तिरोहित कर दिया ।

सुरसरित्कवलीकृतशेषितं दिवि यदास्त पदं त्रिदिवौकसाम् ।

तदपि तत्क्षणनिर्हृतकल्मषैरपहृतं बलिभिः सगरात्मजैः ।।[४९]

सुरनदी में निमज्जित होने पर स्वर्ग में देवताओं के लिए जो स्थान निर्धारित था, उसका उस समय पाप रहित बलि से सगर–पुत्रों ने अपहरण कर लिया ।

प्रथमलब्धसुरालयसंभृतप्रतिनवामृतपानगलत्तृषः ।

तदपवर्जितमञ्जलिमम्भसामपि पपुः पितरः सुरवत्सलाः ।।[५०]

सर्वप्रथम स्वर्ग की प्राप्ति के अनन्तर अमृत–पान से प्यास रहित होकर भी पुत्रवत्सल पितरों ने भगीरथ द्वारा प्रदत्त सुरनदी के जल से निर्वापांजलि का पान किया ।

अथ नदीमवगाह्य विनिर्गतः क्षितिपतिः परिपूर्णमनोरथः ।

मृदुगभगीरपदामशृणोद्दिवि स्तुतिमसौ चतुराननगुम्फिताम् ।।[५१]

तदनन्तर परिपूर्ण मनोरथ वाले राजा भगीरथ नदी में स्नान कर बाहर निकल आये तथा ब्रह्मा के द्वारा की जाने वाली मृदु गंभीर स्तुति को आकाश में श्रवण किया ।

७.६ प्रकृति–वर्णन के विविध आयाम :

प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप प्रकृति का मानवीयकरण है । कवि प्रकृति के विभिन्न रूपों और व्यापारों में व्यापक चेतना के स्थान पर व्यक्तिगत जीवन का आक्षेप करता है ।[५२] जब मनुष्य का प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध स्थापित हो जाता है । उस समय मनुष्य तथा प्रकृति के मध्य भेद की स्थिति समाप्त हो जाती है तथा स्वभाव में एकता स्थापित हो जाती है । इसप्रकार के भाव को पाश्चात्य विद्वान् वड्र्सवर्थ ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है । उन्होंने प्रकृति को अपने अधिकतम् निकट अनुभव किया है । इसी कारण प्रकृति प्रदत्त शिक्षा को प्रमुख माना है ।

नीलकण्ठदीक्षित ने 'गंगावतरणम्' महाकाव्य में निम्नलिखित श्लोकों में प्रकृति के विभिन्न आयामों को इसप्रकार प्रदर्शित किया है –

मारुतो न मधुरप्युपरेमे किं पिकैरमुखरैरिति खिन्नः ।
संदधे धनुषि नैव मनोजः सायकं त्रिचतुराणि दिनानि ।।[५३]

कोयलों के न कूजने पर खिन्न होने से क्या वासन्ती पवन नहीं बह रहा है ? संभवतः यही कारण है कि कामदेव ने इसीलिए तीन चार दिनों तक धनुष पर बाण नहीं चढ़ाया ।

हारदाम्नि हरिचन्दनपंके शीतरोचिषि शिरीषदलेषु ।
कामिनीकुचतटेषु च लिल्ये पञ्चभिः किमसुभिः कुसुमेषोः ।।[५४]

हारदामन, हरिचन्दन, चन्द्रमा, शिरीष, पुष्प और कामिनी का स्तन तट क्या इनके निर्माण में कामदेव के पंचबाण का उपयोग हुआ है ?

सर्वरात्रमपि संलपनाद्यैर्विभ्रमैः समपनीय विभाते ।
अप्रमर्दितकुचं युवतीनामश्रपालिमलभन्त युवानः ।।[५५]

श्रृंगारजन्य प्राथमिक विलासों में ही पूरी रात व्यतीत कर प्रातः काल युवतियों के अप्रमर्दित स्तनों का युवकों ने आलिंगन प्राप्त किया ।

नास्ति मन्दपवनो न वसन्तः कूणितं च चरितं कुसुमेषोः ।
तावता विरहिणां किमिवासीत्तेषु मन्मथकणोऽपिकृतान्तः ।।[५६]

न मन्द पवन चल रहा है, न तो वह वसन्त है और कामदेव का व्यापार भी इस समय बन्द है, तो फिर क्या वियोगियों में यह प्रभाव भस्मीभूत उसके कण मात्र का है ।

हिमस्पृशां यन्मरुतां प्रसादतो विलासिनां मुग्धवधू रतेष्वपि ।
न शिक्षणीयाजनि जातु सीत्कृतिर्न चार्थनीया परिरम्भसान्द्रता ।।[५७]

बर्फीले वायु की कृपा से मुग्धवधुओं के साथ विलासियों के रति काल में सीत्कार की शिक्षा और गाढ़ालिंगन की याचना नहीं करनी चाहिए ।

पुराणवेणुव्यतिषंगसंभवं दवं यदीयाः शमयन्ति तत्क्षणम् ।
तदर्चिरूष्मग्लपितद्रवीभवत्तुषारसंधातमहाम्बुवृष्टयः ।।[५८]

हिमालयस्थ सूर्य की किरणों से द्रवीभूत हिमकणों की महावृष्टियाँ प्राचीन बाँसों के संघर्षण से उत्पन्न दावाग्नि को तत्क्षण ही शान्त कर देती है ।

शरार्कधुर्धूरवतीषु यत्तटे महेशपुष्पोपवनीषु रक्षिणः ।
स्वतः प्ररूढामपि जातु केतकीं न हि क्षमन्ते विषवल्लरीमिव ।।[५९]

जिस कैलास पर्वत के तटप्रान्तभाग में ऊँची–नीची चोटियों पर सरपत, मन्दारादि वृक्ष एवं शिव जी के प्रिय पुष्पों की वाटिकाओं के संरक्षक स्वतः उत्पन्न केतकी की लता को भी विषलता समझकर दूर रहते हैं ।

कल्पान्तोद्भ्रान्तजीमूतगर्जितस्निग्धमांसलः ।
संध्यासु शुश्रुवे तेन शंभोर्डमरुकध्वनिः ।।[६०]

संध्या समय में राजा भगीरथ ने प्रलय–कालिक विशाल मेघगर्जन की तरह शिव की डमरू–ध्वनि को सुना ।

कालकूटमिव मन्यते शिवो मामकं प्रकृतिदुर्मदं पयः ।
ब्रूहि तावदधुनापि मेति तं मा विषीदतु यवीयसी पुनः ।।[६१]

प्रकृत्या दुर्मद मेरे जल प्रपात को शिव का कूट (विष, जो शिव जी ने पान किया था) की तरह समझते हैं । उनसे आप ऐसा न समझने को कहें, जिससे मेरी लघुभगिनी (शिव के अभाव में) दुःखी न हो ।

कर्णयोर्यदि पतेयुरन्ततो गर्जितानि चलतां मदम्भसाम् ।
तत्त्वतः कथय किं भवेच्छिवस्त्वं हितन्महिमलेशवेदिता ।।[६२]

मेरे जल–प्रपात की गर्जना यदि उनके कानों में पड़ेगी, तो आप ही कहें शिव का क्या होगा ? क्योंकि आप ही उसके वेग का स्वल्प परिज्ञान रखते हैं ।

पथि विलम्ब्य विलम्ब्य पदे–पदे गिरिगुहासु निलीय निलीय च ।
उपजगाम कथंचिदुपान्तिकं नववधूरिवनर्मसखस्य सा ।।[६३]

मार्ग में पग–पग विलम्ब करके और पर्वत–कन्दराओं में पुनः पुनः प्रवेश करके वह सुरनदी किसी प्रकार विदूषक की वधू की तरह समुद्र के समीप आ गयी । ।। ७ ।।

तमसि तत्कुहरोपहिते महत्यनुचिता तपनातपसंकथा ।

तपन एव यदि स्वयमापतेद्भवति कज्जलपिण्ड इव क्षणात् ।।[६४]

उस गुफा के कुहरा से व्याप्त अंधकार में सूर्य की धूपकथा का कोई महत्त्व नहीं । यदि सूर्य भी उसके अंधकार को दूर करने के लिए उसमें गिर पड़े तो वह स्वयं कज्जल के समान हो जायेगा । अर्थात् उस प्रगाढ़ अंधकार को दूर करने में सूर्य भी असमर्थ है ।

प्रतिनवाम्बुदशीकरसेचनप्रकटितोष्मणि तत्र हि यादसाम् ।

ज्वरमधत्त यथा जलदागमो न तु तथा मधुमास विपर्ययः ।।[६५]

नये–नये मेघों के छोटे–छोटे कणों से अभिसिंचित होने पर जल में ऊष्मा प्रकट हो जाती थी, जिसमें जल–जन्तुओं में मेघों का आगमन ग्रीष्म ज्वर उत्पन्न कर देता था ।

संदर्भ सूची :

१	ब्यूटी एण्ड अदा कॉमर्स आफ वेल्यू, पृ. ८७
२	कैरियट ई. एफ. थेयरी ऑफ ब्यूटी, पृ. ६८
३	गंगावतरणम् – ३/५५
४	गंगावतरणम् – ३/५६
५	गंगावतरणम् – ३/५७
६	गंगावतरणम् – ३/५८
७	गंगावतरणम् – ३/५९
८	गंगावतरणम् – ३/६०
९	गंगावतरणम् – ३/६१
१०	गंगावतरणम् – ३/६२
११	गंगावतरणम् – ३/६३
१२	गंगावतरणम् – ३/६४
१३	गंगावतरणम् – ३/६५
१४	गंगावतरणम् – ३/६६
१५	गंगावतरणम् – ३/६७
१६	गंगावतरणम् – ३/६८
१७	गंगावतरणम् – ३/६९
१८	गंगावतरणम् – ३/७०
१९	गंगावतरणम् – ३/७१
२०	गंगावतरणम् – ६/५८
२१	गंगावतरणम् – ६/५९
२२	गंगावतरणम् – ६/६०
२३	गंगावतरणम् – ६/६१

२४	गंगावतरणम् – ६/६२
२५	गंगावतरणम् – ६/६३
२६	गंगावतरणम् – ६/६४
२७	गंगावतरणम् – ६/६५
२८	गंगावतरणम् – ६/६६
३९	गंगावतरणम् – ६/६७
३१	गंगावतरणम् – ६/६८
३२	गंगावतरणम् – ६/६९
३३	गंगावतरणम् – ८/३३
३४	गंगावतरणम् – ८/३४
३५	गंगावतरणम् – ८/३५
३६	गंगावतरणम् – ८/३६
३७	गंगावतरणम् – ८/३७
३८	गंगावतरणम् – ८/३८
३९	गंगावतरणम् – ८/३९
४०	गंगावतरणम् – ८/४०
४१	गंगावतरणम् – ८/४२
४२	गंगावतरणम् – ८/४२
४३	गंगावतरणम् – ८/४३
४४	गंगावतरणम् – ८/४४
४५	गंगावतरणम् – ८/४५
४६	गंगावतरणम् – ८/४६
४७	गंगावतरणम् – ८/४७
४८	गंगावतरणम् – ८/४८

४६	गंगावतरणम् – ८/५०
५०	गंगावतरणम् – ८/५१
५१	गंगावतरणम् – ८/५२
५२	डॉ. रघुवंश 'प्रकृति और काव्य' भाग एक, पृ. ११२
५३	गंगावतरणम् – २/४५
५४	गंगावतरणम् – २/४६
५५	गंगावतरणम् – २/४७
५६	गंगावतरणम् – २/४८
५७	गंगावतरणम् – २/५७
५८	गंगावतरणम् – ३/५८
५६	गंगावतरणम् – ३/७०
६०	गंगावतरणम् – ४/३६
६१	गंगावतरणम् – ५/८
६२	गंगावतरणम् – ५/१०
६३	गंगावतरणम् – ८/७
६४	गंगावतरणम् – ८/६
६५	गंगावतरणम् – ८/११

❀❀❀

अष्टम अध्याय
'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य का सामाजिक जीवन-दर्शन

८.१ समाज का स्वरूप

८.२ दर्शन एवं धर्म

अविच्छिन्नता

विवेचनात्मकता

अष्टम अध्याय
‘गङ्गावतरणम्’ महाकाव्य का सामाजिक जीवन-दर्शन

८.१ समाज का स्वरूप :

सामान्यतया मनुष्यों में विशिष्ट ज्ञान रखनेवालों का समूह ही ‘समाज’ कहलाता है किन्तु संप्रति लोकव्यवहार में एक विशिष्ट प्रकार के जनसमुदाय को भी समाज कहे जाने का प्रचलन है । ध्यातव्य है कि प्रकृत प्रसंग में एक खास प्रकार के जनसमुदाय के अर्थ में ‘समाज’ शब्द का प्रयोग किया गया है । कविवर नीलकण्ठ दीक्षित राजा भगीरथ के राजज्यकाल का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि तत्कालीन समाज का अग्रणी और प्रजापालक, सत्यनिष्ठ, महान्, तपस्वी तथा दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति ही उस समाज का राजा होता था । ऐसे ही थे, सगर वंश में उत्पन्न राजा भगीरथ, जिन्होंने कपिल मुनि द्वारा भस्मीभूत अपनेवंशज के सगर पुत्रों के लिए कठोर तप कर उनकी मुक्ति के लिए देवलोक से पृथ्वी पर गंगावतरण कराया ।

तत्कालीन समाज का वर्णन करते हुए नीलकण्ठ दीक्षित लिखते हैं –

पौरजानपदपार्थिवलोकप्रस्तुतस्तुतिवचोमुखरायाम् ।
जातु संसदि निषद्यसुहृद्भिः संलपन्नति निनाय से कालम् ।।[१]

ग्रामवासियों द्वारा राजाओं के लिए प्रस्तुत की जानेवाली स्तुति वाणी से मुखरित सभा में बैठकर राजा भगीरथ अपने सुहृदों के साथ वार्तालाप करते हुए समय व्यतीत कर रहे थे ।

उपर्युक्त श्लोक का तात्पर्य यह है कि आधुनिक गोष्ठियों की भाँति ही तत्कालीन नरेश भी सुहृदों के साथ बैठकर वार्तालाप करते थे ।

राजा भगीरथ सूर्यवंशी थे और अद्वितीय योद्धा होते हुए भी कठोर तप कर सकने में समर्थ थे । 'गंगावतरणम्' के द्वितीय सर्ग में उनकी तपस्या का एक उदाहरण द्रष्टव्य है ।

नान्नमाद्रियत नाम्बु न मूलं का भविष्यति कथापि फलानाम् ।
मारुतं परमभुक्तनिदाघस्तं च हर्तुमिव तस्य तदाभूत् ।।[२]

राजा भगीरथ ने कन्दमूल, अन्नादिकों का आदर नहीं किया यानी परित्याग कर दिया, तो फलों की बात ही क्या होगी ? वे केवल वायु पान करते थे । तीव्र घर्म उस समय ऐसा लग रहा था मानो वह उनका अपहरण कर रहा हो ।

आधुनिक युग की भाँति ही राजा भगीरथ के राज्यकाल में भी युवक और युवतियाँ यात्रा के समय अधिक ताप होने पर वृक्षों के नीचे थोड़े समय तक विश्राम करते थे । यथा –

उत्तरीयमहरत्कुचकुम्भादुन्ममार्ज मुखघर्मपयांसि ।
अङ्गमङ्गमपि पान्थवधूनामालिलिङ्ग सुकृती वनवातः ।।[३]

जंगली होने पर भी भाग्यशाली वायु ने प्रेयसियों के स्तनों को आच्छादित करने वाले दुपट्टे को हटा दिया । मुख में घर्मजन्य बिन्दुओं को दूर किया । इसप्रकार पथिकों की वधुओं के अङ्ग प्रत्यंगों का भी उसने आलिङ्गन किया ।

राजा भगीरथ का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ था, जब लोग तपस्या के बल पर अलौकिक आत्माओं का भी साक्षात्कार कर लेते थे । जैसे राजा भगीरथ ने तप के बल पर सुरनदी गंगा का साक्षात्कार किया । यथा –

ततः प्रणामैः स्तुतिभिश्च पार्थिवं प्रसादयन्तं सुरलोकवाहिनी ।
जगाद सद्यो जगदण्डमण्डलं निमज्जयन्तीव वचोभिरेव सा ।।[४]

कठोर तप के पश्चात् प्रणाम और स्तुतियों से सुरनदी को प्रसन्न करने वाले राजा भगीरथ से देवलोक को धारण करने वाली सुरनदी तत्क्षण ही अपने तरङ्गों में विश्व को डुबोती हुई बोली ।

सुरनदी गंगा ने राजा भगीरथ को अपनी श्रेष्ठता और प्रभाव से अवगत कराते हुए कहा कि – यदि पृथ्वी पर मेरा अवतरण हुआ तो संपूर्ण धरा जलमग्न हो जाएगी । ऐसी स्थिति में आप पितरों का श्राद्ध कहाँ करेंगे । किन्तु भगीरथ द्वारा पुनः पृथ्वी पर अवतरण का अनुरोध करने पर गङ्गा ने भगीरथ द्वारा किए गए प्रयास की प्रशंसा की ।

उदाहरणार्थ –

विषादमभ्येमि भुवं पदे पदे विपद्यमानामनुचिन्त्य यद्यपि ।
तथापि नन्दामि चिरोपसंभृतां तरंगकण्डूमपनेष्यतात्वया ।।[५]

यद्यपि पृथ्वी पर पदे–पदे अपनी विद्यमानता को सोचकर विषाद प्राप्त कर रही हूँ । तथापि बहुत समय से धारण की गई तरङ्गों को तुम्हारे द्वारा मुक्त कराने के प्रयास की मैं प्रशंसा करती हूँ ।

राजा भगीरथ द्वारा पृथ्वी पर गंगावतरणम् के प्रयास को देखकर स्वयं ब्रह्मा जी ने भी भगवान् शम्भु की दीक्षा से उन्हें दीक्षित किया और शिव को प्रसन्न करनेवाला पंचाक्षर मन्त्रमधु उन्हें प्रदान किया, जिसके कारण वे अद्वितीय प्रतिभावान् हो गये । उदाहरणार्थ –

प्रविष्टमात्रश्रुतिसम्पुटोदरः समन्त्रराजः शशिखण्डपाण्डरः ।
तमांसि तस्य प्रबिभेद तत्क्षणं मनांसि यूनामिव मान्मथः शरः ।।[६]

चन्द्रखण्ड की तरह प्रकाशमान वह मन्त्रराज जैसे ही भगीरथ के कानों में प्रवेश किया, वैसे ही उनके हृदय में व्याप्त वह अज्ञान रूपी अन्धकार उसीप्रकार नष्ट हो गया जैसे कामव्यथित व्यक्ति का विवेक नष्ट हो जाता है ।

तत्कालीन सामाजिक स्थिति का वर्णन करते हुए 'गंगावतरणकार' का कथन है कि जिस स्थान पर राजा भगीरथ भगवान् शंकर की आराधना में लीन थे, वहीं का एक दृश्य आधुनिक युग तक आया हुआ परिलक्षित होता है –

मरुदभिरेकान्ततुषारवर्षिभिर्मनोहरन्तीषु यदीयभूमिषु ।
नवाभिसारेऽप्यधरं मृगीदृशां विमुक्तशंकंव्रणयन्ति कामिनः ।।[७]

मात्र तुषार वृष्टि करने वाले बर्फीले वायु से जिस हिमालय के समीपवर्ती भूमिस्थान में शंका रहित होकर कामी लोग मृगनेत्रियों के अधर का रसास्वादन करते हैं ।

राजा भगीरथ के काल और आधुनिक कालीन समाज में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता । जैसा व्यवहार तत्कालीन समाज में था, वैसा ही आज तक चला आ रहा है । यथा –

विना सशपथैः सान्त्वैर्विना व्याजैश्चं कामिनाम् ।
अपि सान्द्रं परिष्वंगमन्वजानन्नवांगनाः ।।
गर्भेष्वाप्रपदीनानामवगुण्ठनवाससाम् ।
अशेत द्वन्दमस्पन्दमासक्तोरुभुजं मिथः ।।
कंचुकाहरणातंककातराणां मृगीदृशाम् ।
दयालुर्हैमनो वायुर्ददौ रोमांचकंचुकम् ।।[८]

नवांगनायें शपथ, आश्वासन और विना किसी व्याज के (शीत के कारण) कामियों के प्रगाढ़ आलिंगन से परिचित हो गईं ।

गृहों में पैर तक फैले वस्त्रावरण से आच्छादित स्त्री–पुरुष परस्पर चिपके हुए निष्पन्द शयन करने लगे ।

रतिकाल के समय वस्त्ररहित होने से लजीली मृगनेत्रियों को दयालु बर्फीले वायु ने रोमांच रूपी कंचुक (वस्त्र) प्रदान किया ।

उस समय जो कुछ समाज में था, यथा–वन, पहाड़, नदियाँ, पशु, नर–नारी, किन्नर, ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, शिव, सूर्य, भ्रमर, कुन्दादि वृक्ष आदि; वह

सब कुछ अभी तक आधुनिक युग में भी विद्यमान है । आपसी मनमुटाव जो प्रायः आजकल समाज में देखा जाता है । यह भगीरथ के काल में भी था ।

इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ग्रस्तोदकायां मयि शंकरेण
किं नाम मह्यं कृतवानसि त्वम् ।
नाहंसुता ते न गुरुर्ममत्व –
मिति क्रुधेवाथ जहौ हिमाद्रिम् ।।[९]

यहाँ पर क्रुद्ध गंगा अपने पिता हिमालय से कहती है कि शिव ने जब मुझे ग्रसित कर लिया, तब आप ने मेरे लिए क्या किया, अतः मैं आपकी पुत्री नहीं हूँ और आप मेरे पिता नहीं हैं । इसप्रकार मानो क्रोध से सुरनदी ने हिमालय का परित्याग कर दिया ।

आधुनिक समाज में जिस प्रकार छोटे बालक क्रीड़ा करते हुए आपस में लड़ते हैं । ऐसा ही एक उदाहरण तत्कालीन समाज का भी द्रष्टव्य है –

गच्छन्पुरस्तस्य रथो यथेच्छं
गंगा च पश्चात्तमनुव्रजन्ती ।
प्रायेण धाटीग्रहणप्रसक्तौ
बालावुभौ केलिपराविवास्ताम् ।।[१०]

आगे–आगे भगीरथ का स्वछन्दगामी रथ चल रहा था और गंगा उसके पीछे–पीछे चल रही थी । उस समय ऐसा लग रहा था मानो क्रीडारत दो बालक आपस में लड़ने लगें हों ।

प्रत्येक युग में सामाजिक वातावरण सदैव एक सा ही रहा है, ऐसा 'गरूड पुराण' से भी प्रतीत होता है –

सुवेशं पुरूषं दृष्टवा
भ्रातरं यदि वा सुतम् ।

योनिः क्लिद्यति नारीणां

सत्यं सत्यं हि शौनक ।।[११]

अर्थात् सुन्दर वेश में पुरुष को देखकर चाहे वह उसका भाई अथवा पुत्र हो, नारी की मनः स्थिति में उससे सम्मलेन के लिए विह्वलता आ जाती है ।

गंगावतरणम् महाकाव्य में भी जब राजा भगीरथ गंगा के आगे–आगे मार्गदर्शन करते हुए चल रहे हैं । उस समय भगीरथ का तेज और लावण्यमयी काया को देखकर एक सखी दूसरी सखी से उनके प्रति द्रवीभूत होती हुई कहती है –

अलमेनमुदीक्ष्य निर्दयं सखी सौधादवरुह्यते (मया) ।

त्वमिहास्व मनो बहिर्गतं मम चेदेति निरुद्ध्य शंस मे ।।[१२]

हे, सखि, इस निर्दय राजा को देखकर मेरा मन इसके साथ होकर मुझसे बाहर हो गया है । मैं अब अट्टालिका से उतर रही हूँ । तुम यहीं रहो । यदि किसी प्रकार पकड़ में आ जाय, तो मुझे बुलाना ।

तत्कालीन समाज में भी कुछ लोग भी हर्ष–विषाद से परे न थे । इसका एक उदहारण 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के अधोलिखित श्लोक में द्रष्टव्य है –

समुपलभ्य पयांसि यथा पुरं

मुमुदिरे न तथा जलमानवाः ।

सलिलशोषदशासु लयं गतान्

समनुचिन्त्य शिशूनरुदन्यथा ।।[१३]

पानी सूख जाने पर नष्ट हुए अपने बच्चों को स्मरण कर जल मानवों ने जितना रोदन किया । अत्यधिक जल के मिलने पर वे उतना हर्षित नहीं हो सके । स्वर्ग से जिस प्रकार गंगावतरण के समय देवकन्याओं ने दिव्य पुष्प की वर्षा की थी, उसी प्रकार नगर–प्रवेश होने पर सेना सहित राजा भगीरथ के ऊपर पौरांगनाओं ने लाजा वर्षण किया । उस समय की स्थिति को देखकर

अपने पराक्रमी राजा पर जनता की मानसिकता कैसी थी, इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

पादे निपेतुः परिरभ्य दीर्घं
तस्थुर्मुखैस्तस्य मुखं चुचुम्बुः ।
संकल्पयोगाच्चिरविप्रलब्धा
स्तथापितं नैव विशश्वसुस्ताः ।।[९४]

तरुणियाँ उस समय राजा भगीरथ के पैरों में गिर पड़ी । उनका आलिंगन किया और अपने मुख से उनके मुख का चुम्बन किया तथापि मानसिक रूप से वे चिर समय तक वियुक्त रहीं तथापि उन्होंने उनकी उपलब्धि से इस समय वे चिर–वियोग को भूल गईं ।

राजा भगीरथ के समय उनके राज्य का ऐसा ही सामाजिक स्वरूप था ।

८.२ दर्शन एवं धर्म :

भारतवर्ष में दर्शनशास्त्र की लोकप्रियता जितनी है उतनी किसी भी अन्य देश में नहीं । पाश्चात्य देशों में दर्शनशास्त्र विद्वज्जनों के मनोविनोद का साधन मात्र है । इसलिए वे अन्य विषयों के अध्ययन में मनमानी कल्पना किया करते हैं, परंतु भारतवर्ष में दर्शन तथा धर्म एवं तत्त्वज्ञान तथा भारतीय जीवन का गहरा संबंध है । त्रिविध ताप से सन्तप्त जन की शान्ति के लिए, क्लेशमय संसार से आत्यंतिक दुःखनिवृत्ति करने के लिए ही भारत में दर्शनशास्त्र का आविर्भाव हुआ है । विचारशास्त्र पंडितजनों की कमनीय कल्पना का विजृम्भणमात्र नहीं है; अपितु उसका अधिराज्य इस व्यावहारिक जगतीतल पर है । अन्य देश में विचार–शास्त्र तथा धर्म में पारस्परिक संबंध का अभाव ही लक्षित होता है, किन्तु भारत में दोनों का संबंध नितांत घनिष्ठ है । दर्शनशास्त्र के द्वारा सुचिन्तित आध्यात्मिक तथ्यों के ऊपर ही भारतीय धर्म की दृढ़ प्रतिष्ठा है; जैसा विचार, वैसा आचार । बिना धार्मिक आचार के द्वारा कार्यान्वित हुए दर्शन की

स्थिति निष्फल है और बिना दार्शनिक विचार के द्वारा परिपुष्ट हुए धर्म की सत्ता अप्रतिष्ठित है । इन दोनों का सामंजस्य जितना भारतवर्ष में दृष्टिगोचर होता है, उतना अन्य किसी देश में नहीं । पश्चिमी विचारशास्त्र के अनेकांश में प्रतिष्ठाता यूनानी दार्शनिक अफलातूँ (प्लेटो) की यह नितान्त विख्यात उक्ति है कि दर्शन का उद्गम आश्चर्य से होता है (फिलासफी बिगिन्स इन वन्डर), आश्चर्यजनक तथा कौतुकमय घटना की व्याख्या से विचार शास्त्र की उत्पत्ति होती है, परंतु भारत में तो इसकी उत्पत्ति दुःख की व्यावहारिक सत्ता की व्याख्या तथा उसके निराकरण करने के लिए साधन–मार्ग की विवेचना से होती है । भारतीय जीवन तथा धर्म के ऊपर इतना प्रकृष्ट प्रभाव डालने के कारण ही दर्शन की इतनी लोकप्रियता है ।

अविच्छिन्नता :

भारतीय दर्शन की धारा प्राचीन वैदिककाल से अविच्छिन्नरूप से प्रवाहित होती चली आ रही है । इस धारा में विराम के दर्शन तो कभी नहीं हुए । अन्य देशों के दर्शनशास्त्र से तुलना करने पर इस विशेषता की महत्ता का पर्याप्त रूप से अनुभव किया जा सकता है । क्या किसी अन्य देश में विचार–धारा में महत्ता पानेवाला पाश्चात्य दर्शन क्या अपने जीवन में इतना विपुल विकास पाने में समर्थ हो सका है ? पाश्चात्य दर्शन की उत्पत्ति विक्रम–पूर्व सातवीं शताब्दी के आसपास प्राचीन यूनान में हुई, परंतु उसका प्रवाह चलते–चलते रुक गया; फिर किसी विशेष दार्शनिक का जन्म हुआ और उसके प्रभाव से वह विचारधारा कुछ और अग्रसर हुई । जब तक उसका प्रभाव बना रहता है तब तक इसका प्रवाह भी समीचीन रूप से बहता है, परंतु उसके प्रभाव के न्यून होते ही यह प्रवाह फिर स्थगित हो जाता है । इसप्रकार पाश्चात्य दर्शन की धारा उस नदी के समान है, जो कभी दृष्टिगत होती है और कभी दृष्टि से ओझल हो जाती है, परंतु भारतीय दर्शन की धारा उस पुण्यसलिला गंगा के समान है, जो अनेक

नद तथा विपुलकाय नदियों के जल से परिपुष्ट होती हुई शुष्क स्थानों को जलाप्लावित तथा क्षेत्रों को शस्यसम्पन्न बनाती हुई अपने निश्चित स्थान की ओर समभाव से सदैव बहती चली जाती है । इस दीर्घकाल के जीवन में विभिन्न सभ्यताभिमानी जातियों तथा धर्माभिमानी पुरुषों के साथ संपर्क होने पर भी भारतेतर विचारों का प्रभाव इस दर्शन पर तनिक भी न पड़ सका; प्रत्युत् अपनी विशालता तथा विशुद्धता के कारण इसी ने अन्य दर्शनों के ऊपर प्रकृष्ट प्रभाव जमाने में विशेष क्षमता प्राप्त की । प्राचीन यूनान के विचारक–मूर्धन्य पाइथागोरस के रेखागणित धर्म तथा दर्शन–संबंधी सिद्धांतों पर विशेषतः पुनर्जन्म, अहिंसा आदि के ऊपर भारतीय दर्शन के प्रभाव पड़ने की घटना इतिहास के साक्ष्य पर प्रामाणिक मानी जाती है । सूफी लोगों के ऊपर वेदान्त तथा तन्त्र के सिद्धांतों का प्रभाव विशेषरूप से पड़ा ही था । दाराशिकोह ने उपनिषदों का फारसी भाषा में अनुवाद का प्रयास कर उनके सिद्धांतों को स्वधर्मावलम्बियों में फैलाने का स्तुत्य प्रयास किया । फारसी भाषा में अनूदित इन्हीं उपनिषदों का अनुवाद लैटिन भाषा में किया गया; जिसके कारण भारतीय विचार की श्रेष्ठता तथा सुन्दरता का परिचय सर्वप्रथम यूरोप के दार्शनिकों को हुआ । इन्हीं अनुवादों को पढ़कर जर्मनी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक शीपेनहावेर उपनिषदों के सूक्ष्म, उन्नत विचारों पर इतने रीझ गये थे कि उनके अनेक सिद्धांतों की स्फूर्ति इन ग्रंथों से हुई और उन्होंने यह उदार हृदयोद्गार निकाला कि उपनिषद् मेरे जीवन में संतोष देनेवाले हैं और मेरी मृत्यु में भी संतोष देनेवाले रहेंगे । आजकल भारतीय दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के अनुवाद संसार की समस्त सभ्य भाषाओं में हो गये हैं या हो रहे हैं । साथ ही इन अनुवादों के द्वारा भारत के विचार–शास्त्र का प्रभाव अलक्षित रूप से संसार के धर्मों तथा दर्शनों पर पड़ रहा है । यहाँ की यह विशेषता भारतीय दर्शनों की महत्ता को सूचित कर रही है ।[१४]

विवेचनात्मकता :

भारतीय तत्त्वज्ञान भारतीय धर्मज्ञान के समान उदार, व्यापक, विशाल तथा विवेचनात्मक रहा है । भारतीय जनश्रुति का बोझ कभी इसके उन्नति मार्ग में व्याघातक नहीं रहा है । ऐहिक तथा पारलौकिक तत्त्वों की विवेचनात्मकता किंवा उसके विश्लेषण–कार्य में तार्किक बुद्धि का उपयोग करने में ही दर्शन की दर्शनता है । यदि धार्मिक–परंपरा इस नैसर्गिक कार्य में व्याघातक बनती है, तो विचारों का विकास स्वाभाविक रूप से अग्रसर नहीं हो सकता । यूरोप के मध्यकाल में ईसाई संप्रदाय के दर्शन ने ईसाई धर्म के अस्वाभाविक तर्क विरोधी सिद्धांतों की पुष्टि करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगा । फलतः मध्यकाल में यूरोपीय तत्त्वज्ञान की बाढ़ रुक गई । परंतु इस पुण्यमय भारत देश में ऐसी विषम स्थिति कभी उपस्थित ही नहीं हुई । आरंभ से ही भारतीय तत्त्वज्ञान समीक्षात्मक रहा है और तार्किक बुद्धि की कसौटी पर धर्म के मानवीय सिद्धांतों को भी बताने तथा परखने से वह कभी नहीं हिचकता । ईश्वर जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के ऊपर भी वह अपना स्वतंत्र विचार प्रकट करने में तनिक भी पीछे नहीं हटता । सांख्य ने ईश्वर की सत्ता के विषय में मौनावलम्बन करना ही श्रेयस्कर समझा, यद्यपि उन्हें निश्चय है कि वह तार्किक युक्तियों के द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सकता ।[१५] योग एक निरतिशय ज्ञान–सम्पन्न परम् पुरुष की कल्पना को स्वीकार करता है[१६] परंतु नैयायिकों की भाँति यह उसे जगत् का कर्ता मानने के लिए उद्यत नहीं है । कर्ममीमांसा खंडन करने के लिए पूर्व पक्ष के रूप में ईश्वर का उल्लेख अपने ग्रंथों में करती है क्योंकि जगत् के समस्त व्यवहार के लिए वह कर्म को ही सर्वप्रधान स्थान देती है । प्राचीन बौद्धों (हीनयान मतावलम्बियों) को तथा जैनों को इस संसार के कार्य–कलाप की व्याख्या के लिए ईश्वर के प्रति तनिक भी पक्ष–पात नहीं है । भौतिकवादी चार्वाकों ने स्पष्ट शब्दों में ईश्वर का निराकरण किया है और वैदिक विधि–विधानों के अस्वाभाविक तथा तर्क–विरुद्ध होने के कारण खुले शब्दों में

खिल्ली उड़ाई है । ब्राह्मण पुरोहितों पर गालियों की बौछार की है, परंतु भारतीय दर्शनशास्त्र के इतिहास में वेद-वाह्य चार्वाक भी उतना ही महत्त्व रखते हैं, जितना वेदानुयायी दार्शनिक । निरीश्वरवादी सांख्य को उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जितना ब्रह्मप्रतिपादक वेदान्त को । इसप्रकार भारत के तत्त्वज्ञान में जो व्यापकता, उदार-हृदयता, विवेचना-शक्ति आलोचकों की दृष्टि को आनंदित करती है, वह अन्य देश के तत्त्वज्ञान में अप्राप्य है ।

'गंगावतरणम्' महाकाव्य के रचयिता कविवर नीलकण्ठ दीक्षित की वंश-परंपरा और जैसा कि उनका नाम पूर्वजों ने 'नीलकण्ठ' रखा, तदनुसार वे भी शिव भक्त थे । अतएव उन्होंने अपने ग्रंथों की शैवपरक रचना की । उन्होंने अपने महाकाव्य गंगावतरणम् के प्रत्येक सर्ग में शिव की ही आराधना की, तपस्या की और प्रशस्ति का गान किया है, एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

अनुसंधाय - चण्डीशमन्तश्चण्डांशुमण्डले ।
पार्थिवः पंचषान्मासानुपासामास वासरे ।"

राजा भगीरथ ने चण्डीपति शिवजी को हृदय में धारण करके तीव्र घर्म दिवसों में पाँच माह पर्यंत शिव जी की पूजा की ।

संदर्भ सूची :

१	गंगावतरणम् महाकाव्य – नीलकण्ठदीक्षित, २.१
२	गंगावतरणम्, २–३०
३	गंगावतरणम्, २–३६
४	गंगावतरणम्, ३–१
५	गंगावतरणम्, ३–१०
६	गंगावतरणम्, ३–५३
७	गंगावतरणम्, ३–५५
८	गंगावतरणम्, ४–११, १२, १३
९	गंगावतरणम्, ६–३०
१०	गंगावतरणम्, ६–४४
११	गरुड़पुराण, १०६–३७
१२	गंगावतरणम्, ७–१५
१३	गंगावतरणम्, ८–२८
१४	कीथ–रिलिजन एण्ड फिलासफी ऑफ वेद, पृ. ६३४–३७
१५	ईश्वरासिद्धः (सांख्यसूत्र १–९२)
१६	क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः (योगसूत्र १/२४)

❀❀❀

नवम अध्याय
परवर्ती संस्कृत साहित्य में गंगा–सम्बन्धी चिन्तन

९.१ स्तोत्रपरक कृतियाँ
- ९.१.१ महर्षि वाल्मीकि प्रणीत गङ्गाष्टकम्
- ९.१.२ श्रीकविकालिदास प्रणीत गङ्गाष्टकम्
- ९.१.३ श्रीशङ्कराचार्यविरचितगङ्गाष्कटम्
- ९.१.४ स्वामी श्रीअनन्तानन्द सरस्वती प्रणीत गङ्गाष्टकम्
- ९.१.५ श्रीगङ्गास्तोत्रम्
- ९.१.६ गङ्गास्तव
- ९.१.७ दशहरा गङ्गास्तुति
- ९.१.८ श्री गङ्गामाहात्म्यम्
- ९.१.९ गङ्गालहरी
- ९.१.१० गंगावतरण
- ९.१.११ श्री त्रिपथगाकाव्यम्
- ९.१.१२ हे गङ्गे !
- ९.१.१३ भागीरथी दर्शनम् महाकाव्यम्
- ९.१.१४ रक्षत गङ्गाम्ः
- ९.१.५ 'सद्बोधशतकम्' :

९.२ प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में वर्णित जल एवं गङ्गाजल की आधुनिक व्याख्याएँ तथा उपयोगिताएँ
- *९.२.१ जल की गति का अधोगामी होना*
- *९.२.२ जल से स्वास्थ्य लाभ व चिकित्सा*
- *९.२.३ उषा–पान*
- *९.२.४ प्राण शक्ति का नियमन*
- *९.२.५ विद्युत जल*
- *९.२.६ कलश एवं उसके आकार का जल पर प्रभाव*
- *९.२.७ जल से आंखों के रोग दूर होना*
- *९.२.८ जलयान*
- *९.२.९ जल स्त्रोत का अन्वेषण*
- *९.२.१० गंगा जल*

नवम अध्याय
परवर्ती संस्कृत साहित्य में गंगा–सम्बन्धी चिन्तन

परमपावनी पुण्यतोया भगवती जाह्नवी की स्तुति में असंख्य भारतीय विद्वानों ने बहुविध स्तोत्रों की रचना की है, जिनमें कुछ स्तोत्रों का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है –

९.१ स्तोत्रपरक कृतियाँ :

९.१.१ महर्षि वाल्मीकि प्रणीत गङ्गाष्टकम् :

प्रकृत स्तोत्र में कुल ८ श्लोक हैं तथा ९वाँ फलश्रुतिपरक है । यह स्तोत्र 'मातः शैलसुता–सपत्नि वसुधाशृङ्गारहारावलि स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथी प्रार्थये'' से आरंभ होता है तथा ''गाङ्गंपुनातु सततं शुभकारिवारि'' तक पूर्णता को प्राप्त करता है ।

इस स्तोत्र के प्रणेता महर्षि वाल्मीकि बताये गये हैं ।

९.१.२ श्रीकविकालिदास प्रणीत गङ्गाष्टकम् :

इस गङ्गाष्टकम् के प्रणेता श्री कालिदास हैं ।

इसका ९वाँ श्लोक भी फलादेश ही करता है ।

''नमस्तेऽस्तु गङ्गे'' से श्री गणेश होकर ''पदं ते'' की पूर्णता पर्यंत यात्रा करने वाला यह स्तोत्र अत्यंत प्रभावकारी है ।

९.१.३ श्रीशङ्कराचार्यविरचितगङ्गाष्कटम् :

प्रकृत अष्टक श्रीमच्छङ्कचार्य द्वारा रचित है । इस स्तोत्र में कुल १० श्लोक हैं, जिनमें ८ श्लोकों में स्तुति करते हुए स्तोत्रकार ने ९वें श्लोक में

अपनी इच्छा को अभिव्यक्ति दी है तथा १०वें में फलश्रुति की उपास्थापना की है ।

"भगवति भवलीला" से इसका आरंभ होता है तथा "विष्णुलोकं स गच्छति" पर्यंत यह स्तोत्र पूर्ण होता है ।

६.१.४ स्वामी श्रीअनन्तानन्द सरस्वती प्रणीत गङ्गाष्टकम् :

प्रस्तुत अष्टक के प्रणेता स्वामी श्री अनन्तानन्द सरस्वती जी हैं, जोस्वामी श्री शान्तानन्द सरस्वती के शिष्य थे । आपके गङ्गाष्टकम् का श्री गणेश "न शक्तास्त्वां स्तोतुं" से होता है तथा अन्त "तस्मै ददाति सुरनिम्नगा" तक होता है । इसके आठ श्लोकों में गंगा जी की स्तुति की गयी है और नवें श्लोक में फलश्रुति की गयी है ।

६.१.५ श्रीगङ्गास्तोत्रम् :

प्रकृत स्तोत्र १४ श्लोकों से सुशोभित श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचित है । इसका प्रथम श्लोक है –

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणि तरलतरङ्गे ।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले ।।

इस स्तोत्र के स्तुतिपरक आरंभिक १३ श्लोक हैं और १४वाँ फलश्रुतिपरक है ।

६.१.६ गङ्गास्तव :

यह स्तोत्र कल्किपुराण से समुद्धृत है । जिसमें ऋषियों एवं ऋषिवर सूत जी के पारस्परिक वार्तालाप के संदर्भ में गङ्गा की स्तुति की गयी है । वस्तुतः इस स्तोत्र में १० श्लोकों द्वारा गंगा की स्तुति व अंतिम ४ श्लोकों में फलश्रुति की उपस्थापना की गयी है ।

६.१.७ दशहरा गङ्गास्तुति :

प्रकृत गङ्गास्तुति के वक्ता स्वयं भगवान् ब्रह्मा हैं । जिसका प्रथम श्लोक है –

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाश्वर्यै ते नमो नमः ।।

इस स्तोत्र में कुल २८ श्लोक हैं, जिसका अंतिम फलश्रुतिपरक श्लोक है–

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ।।

६.१.८ श्री गङ्गामाहात्म्यम् :

प्रकृत श्लोक संग्रह में कुल ५ श्लोक हैं, जो 'स्तवनाञ्जलिः' नामक ग्रंथ के पृष्ठ १५५ पर प्रकाशित है । इस स्तोत्र–ग्रन्थ के प्रकाशक स्वामी ब्रह्मास्थानन्द हैं, जो धन्तोली, नागपुरस्थ रामकृष्ण मठ के अध्यक्ष हैं ।

६.१.९ गङ्गालहरी :

रसगङ्गाधर के प्रणेता एवं न्याय, व्याकरणादि शास्त्रों के प्रख्यात मनीषी पण्डित राजजगन्नाथ द्वारा गङ्गा जी की आराधना हेतु प्रणीत कुल ५२ श्लोकों वाला प्रकृत ग्रंथ स्तोत्र साहित्य की मुख्य धुरी है । इस ग्रंथ में प्रारंभ से लेकर ४८ वें श्लोक तक शिखरिणी छन्द है । मात्र परवर्ती चार श्लोक ही अन्य छंदों में हैं और अंतिम श्लोक द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि 'गंगालहरी' का दूसरा नाम 'पीयूषलहरी' भी है, जो पंडित राजजगन्नाथ द्वारा निर्मित है । यथा –

इमां पीयूषलहरीं जगन्नाथेन निर्मिताम् ।
यः पठेत्तस्य सर्वत्र जायन्ते सुखसम्पदः ।।

६.१.१० गंगावतरण :

हिन्दी साहित्य के प्रख्यात कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा प्रणीत काव्य गंगावतरण है, जिसमें कुल १३ सर्ग हैं । इस हिन्दी काव्य में गंगा जी के अवतरण संबंधित तथ्यों का सविस्तार वर्णन किया गया है । यथा –

जेठ मास सित पच्छ स्वच्छ दसमी सुखदायी ।
तिहिं दिन गंग उमंग भरी भूतल पर आयी ।।
दस–विधि–पातक हरन–हेत फहरात फरहरा ।
तातैं ताकौ पर्यौनाम अभिराम दसहरा ।।

इस पद्य की रचना गंगा दशहरा के पावन पर्व के लिए की गयी है ।

प्रस्तुत ग्रंथ इण्डियन प्रेस (पब्लिकशंस) प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग से १७७६ में प्रकाशित हुआ था ।

६.१.११ श्री त्रिपथगाकाव्यम् :

वेदानन्द जी द्वारा प्रणीत तथा १६६७ में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली के आर्थिक सहयोग से नाग प्रकाशन द्वारा प्रकाशित प्रकृत काव्य कुल २४० पृष्ठों व तीन तरंगों में विभक्त है; जिसमें भगवती गंगा की उपासना स्तुतिपरक श्लोकों द्वारा वर्णित है । यही कारण है कि ग्रंथ के आदि में झोपजामा वेदानन्द जी 'प्रस्तुति' नामक शीर्षक के अंतर्गत कहते हैं कि –

धातुः कमण्डलुमण्डलात् समुद्भवन्ती श्रीविष्णुपदाद् द्रवन्ती शम्भुसटामुद्भिद्य भुवमवतरन्ती तापत्रयं समूलमुन्मूलयन्ती परमप्रमोदोदधिकल्लोलमालिनी तरलयन्ती तरङ्गभङ्गैरभ्यङ्गमुच्चावचचराचरानाकेदारखण्डादासागरसङ्गमं प्रवहति हंसमालेव सुरदीर्घिकेयमनन्तनागायिता । सेयं सुरापगापि निम्नगा त्रिपथगेति प्रथितमेव तथ्यं प्रभावतामपश्चिमविपश्चिताम् ।

स्यन्दन्ति परितः सरितः, लसन्ति शतं स्रोतस्विन्यः, रणन्ति सन्ततं तरङ्गिण्यः, समुच्छलन्ति वेगवत्यो झश्चारिण्यो निर्झरिण्यः, नदन्ति नद्यः, नन्दन्ति महानद्यः, भ्राम्यन्ति भ्रमिभिर्नदाः, नटन्ति साट्टहासं शेषकवोपमितैरमितैस्तुङ्गतरङ्गभङ्गसघातैर्महासागरमेखलाशृङ्‌लाः । सत्यम् ।

६.१.१२ हे गङ्गे !

प्रकृत स्तोत्र के प्रणेता डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' हैं । यह स्तोत्र 'जयतु जयतु हे गङ्गे' पंक्ति से आरंभ होता है । इसका प्रकाशन संवत् २०६२ (३० जनवरी २००६) के गाण्डीवम् साप्ताहिक में प्रो. कृष्णचन्द द्विवेदी के संपादकत्व में हुआ था ।

६.१.१३ भागीरथी दर्शनम् महाकाव्यम् :

डॉ. गोस्वामी बलभद्रप्रसादशास्त्री द्वारा प्रणीत एवं नागप्रकाशन, दिल्ली से १६६८ में प्रकाशित दस तरङ्गीय प्रकृत महाकाव्य प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टियों से भगवती गंगा से संबंधित बहुविध दस्तावेज प्रस्तुत करता है । उदाहरणार्थ यदि इस महाकाव्य के पृष्ठ ७ पर गङ्गा की उत्पत्ति[१], पृ. ४ और ६ पर गोमुख[२] पृष्ठ ११ से १४ तक हृषीकेश[३] पृष्ठ १६ पर स्वार्गाश्रम[४] और १७ पर हरिद्वार का व्यवस्थित वर्णन दृष्टिगोचर होता है, यथा –

विभूतिर्भूतेशप्रभवरदाशीरिव भुवि,
हरन्ती लोकानामखिलभवतापं त्रिपथगे ।
उदारं द्वारं वै विषयविरतेर्जीवनभृताम्,
हरिद्वारं तीर्थप्रवणमकरोः पावनजलैः ।।
शरण्यं लोकानां तव जननि लोकोत्तरयशो,
न मात्रं चैतन्यं जडमपि पुनीते तव पयः ।

यतः स्पर्शादेवोपलवनलतावृक्षबहुलं,
हरिद्वारं धन्यं भुवविदितं पावनमभूत् ।।[५]

वहीं हरिपौड़ी[६], कनरवल[७], मंशा देवी[८], गयुरुकुल[९] वैज्ञानिक कृषि, नहरों[१०] और महाराज शान्तनु के पुत्र गाङ्गेय भीष्म के ऐतिहासिक जन्मस्थान की चर्चा को भी रेखांकित किया जा सकता है तथा आगे २/३१ तक के ६ श्लोकों में गंगा के चरित्र और गाङ्गेय की भयानक प्रतिज्ञा का वर्णन भी देखा जा सकता है ।

इसीप्रकार यदि पृष्ठ २८, २६, ७७, ७८ और ८१ पर कवि ने समाजदर्शन संबंधी तथ्यों को उपस्थापित किया है, तो पृष्ठ २८ से ६१ तक के पृष्ठों पर गढ़मुक्तेश्वर[११], महर[१२], अनूपशहर[१३], हरिवाबाश्रम[१४], नरौरा[१५], शूकरक्षेत्र[१६], काम्पिल्य[१७], शृङ्गीपुर[१८], पाञ्चालनरेश के पुत्रेष्टि यज्ञ के स्थल एवं पुत्र धृष्टद्युम्न व पुत्री द्रौपदी के जन्मस्थान[१६] ? हरदोई[२०] शाकाहाग्राम[२१], विलग्राम[२२], कवि-परिचय, मातृभूमिपरिचय[२३], भागीरथी-प्रार्थना[२४], स्वतंत्रतासंग्राम सेनानी राजानरपतिसिंह के ग्राम रोइयां[२५], कान्यकुब्ज[२६], अश्वतीर्थ[२७], महाराज हर्षवर्धन राष्ट्रद्रोही जयचंद्र, कविप्रवर श्रीहर्ष, खेरेश्वर[२८], शिवराजपुर[२६], गंगेश्वर, सिद्धेश्वर, कपिलेश्वर[३०], वक्सर[३१], विठूर[३२], आदमपुर[३३], रुद्रपुर[३४], परियर[३५], कानपुर[३६] एवं तीर्थराज प्रयाग[३७] का चित्र देखा जा सकता है । इन तीर्थों के वर्णन-प्रसंग में कवि ने यथावसर राष्ट्र के गौरवभूत घटनाओं, महापुरुषों के जीवन-परिचय, उनकी साधना, उद्योग-धंधों, भक्त ध्रुव के जन्म-स्थान, वाल्मीकि मुनि के आश्रम, अक्षयवट, भरद्वाज ऋषि की तपःस्थली, चन्द्रशेखर आजादादि क्रान्तिकारियों के त्याग बलिदान, न्यायालय, नेहरु-भवन एवं त्रिवेणी-संगम प्रभृति का सांगोपांग विवेचन किया है ।

आगे चलकर ६ठें तरंग के श्लोक २ से ५ में विन्ध्याचल एवं तत्सम्बद्ध इतिहास व ५ वें में भगवती विन्ध्यवासिनी का विवेचन हैं तो श्लोक ६ से भगवान् शिव की नगरी काशी के वर्णन का आरम्भ होता है, जो राजाहरिश्चन्द्र, भगवान् शंकराचार्य, गोस्वामी तुलसीदास, दशाश्वमेधमणिकर्णिकादि घाट,

काशीविश्वनाथ, कालभैरव, हनुमान् जी, कबीर, पंडितराज जगन्नाथ, विविध देवालयों, वरुणानदी, अंगवंगकलिंग, महाराष्ट्र, कर्णाटक, गुजरात आदि के निवासियों के स्वरूप का गान करते हुए २१ वें श्लोक में मार्कण्डेय आश्रम पर्यंत पर्यवसित हो जाता है ।

प्रकृत महाकाव्य में कहीं राजागाधि की राजधानी वाणिज्य प्रधान नगरी गाजीपुर[३८] का वर्णन है तो कहीं भारतीय संस्कृति[३९], भूगोल[४०], दर्शन[४१], समाज[४२], धर्म[४३], इतिहास [४४], व्यापार[४५], राष्ट्र के गौरवभूत महापुरुषों[४६], (जिनमें सुभाषचन्द्र बोस, कवीन्द्र रवीन्द्र, चैतन्य महाप्रभु एवं स्वामी विवेकानन्द आदि का वर्णन सम्मिलित है), ग्रह–गजराज–युद्ध, पाटलिपुत्र एवं कलकत्ता व कालिका देवी के मंदिर का व्यवस्थित प्रतिपादन है । इसीप्रकार ग्रंथ के अष्टम तरंग में महाराज सगर के पुत्रों का विधिवत् वर्णन[४७], नवें तरंग के अंतर्गत ३० श्लोकों द्वारा गंगाजल के प्रदूषण[४८] व दसवें तरंग[४९] में गङ्गाजी की विशेषताओं, उनकी महिमा व सामर्थ्य का वर्णन करते हुए कवि ने अन्त में अनेकानेक स्तुतियों के द्वारा उससे अपनी गलतियों के लिए क्षमा–याचना का स्तुत्य प्रयत्न किया है ।

इसप्रकार यह महाकाव्य गंगास्तोत्रों की श्रृंखला में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है ।

६.१.१४ रक्षत गङ्गाम्:

प्रकृत महाकाव्य डॉ. कमला पाण्डेया द्वारा ११ सर्गो व लगभग ७०० श्लोकों में प्रणीत तथा १९९९ में श्रीमाता पब्लिकेशन्स (हनुमानधाट वाराणसी) द्वारा प्रकाशित है, जिसमें गंगा जी से संबंधित बहुविध विषयों का निरूण्ण किया गया है ।

ग्रंथ के प्रथम सर्ग में गंगा के उत्पत्ति संबंधी पौराणिक मत एवं द्वितीय सर्ग में आधुनिक मत की मीमांसा की गयी है, जहाँ १४ श्लोकीय मंगलाचरण के पश्चात् क्रमशः १०२ और ३० श्लोकों का उपयोग किया गया है ।

तृतीय सर्ग की संज्ञा 'यात्रा' है, जिसमें कुल ७४ एवं 'हृषीकेश वर्णनम्' नामक चतुर्थ सर्ग में ४० श्लोक हैं । इन दोनों सर्गों में हिमालय, अलकनन्दा, बद्रीनाथ, भागीरथी, देवप्रयाग, गोमुख, गंगोत्तरी, टिहरी, हृषीकेश, हरिद्वार, कण्वाश्रम, शुकाश्रम, हस्तिनापुर, कन्नौज व कर्णपुर, प्रभृति तीर्थों का अनेकानेक श्लोकों में साङ्गोपाङ्ग निरूप्ण है । पाँचवें में प्रयाग, छठें में काशी और ७ वें में विहार प्रान्त का सविस्तार प्रतिपादन किया गया है, जिनके अंतर्गत प्रयाग, यमुना, अक्षयवट, विन्ध्याचल, काशी एवं वहाँ के सभी तीर्थों, मंदिरों, गंगा के प्रतीकात्मक स्वरूपों, पाटलिपुत्र व तत्रस्थ व्यापार की चर्चा की गयी है इसके अतिरिक्त अष्टम सर्ग में बंगाल, नवम में अध्यात्म दशम में प्रदूषण तथा ग्यारहवें सर्ग में प्रदूषण परिहार के उपायों का व्यवस्थित वर्णन किया गया है ।

इसप्रकार सूक्ष्मतया विचार करने पर 'रक्षतगङ्गाम्' नामक प्रस्तुत महाकाव्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, जिसे गङ्गास्तोत्रात्मक काव्य–परंपरा में विशिष्ट स्थान प्राप्त है ।

प्रायः प्रत्येक सर्ग के आरंभ में एक श्लोक दिया गया है तथा ग्रंथ के मुखपृष्ठ से लेकर वर्ण्य विषयों के प्रतिपादन पर्यंत अनेक अवसरों पर यथाप्रसंग भावबोध हेतु विविध चित्र दिये गये हैं । इस काव्य के अंतर्गत सभी श्लोकों का डॉ. अनुराधा बनर्जी ने सुन्दर भावानुवाद किया है, जो इसमें प्रकाशित है तथा संदर्भ–सूची में वृहन्नारदीयपुराण, भागवत, ब्रह्मवैवर्त, महाभारत, कल्याण के विशेषाङ्कों, वाराहपुराण, कुम्भमहापर्व, स्कन्धपुराण, गर्गसंहिता, ह्वेनसांग का विवरण, रामचरितमानस, गंगा हिमालय से सागर तक पारिस्थितिक अध्ययन, गङ्गामाहात्म्य, छन्दोमंजरी, मत्स्यपुराण, जाबालोपनिषद्, काशी का इतिहास, पंचकोशात्मक ज्योतिर्लिङ्ग, वाराणसी आर्यतीर्थों का समन्वय, शब्दकल्पद्रुम, सर्वदर्शन संग्रह, नन्दमौर्य के साम्राज्य का इतिहास, अर्थशास्त्र, प्राचीन भारत का इतिहास, विद्यापति पदावली, आधुनिक भारत, वृहदारण्यकोपनिषद्, ऋग्वेद, रसगङ्गाधर, गङ्गाष्टकम्,

गङ्गावतरण की दार्शनिक व्यवस्था, अमरकोश, गोरक्षपद्धति, ब्रह्मपुराण एवं पद्मपुराण आदि ग्रंथों में गङ्गासंबंधी जो भी उद्धरणीय अंश हैं, सभी से इस ग्रंथ में सहयोग लिया गया है ।

६.१.५ 'सद्बोधशतकम्' :

सद्बोधशतकम् नामक ग्रंथ के श्लोक संख्या ७६, ८३ एवं ८८ में गंगा के महत्त्व का वर्णन देखा जा सकता है तथा इन श्लोकों की समुचित व्याख्या बालबोधिनी टीका के अंतर्गत संस्कृत साहित्य की विदुषी प्रो. उमादेश पाण्डेय ने किया है । वे श्लोक हैं –

गङ्गातरङ्गहिमशीकरशीतलानि विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयङ्गतानि,
यत् सावमानवरपिण्डरता मनुष्याः ।। ७६ ।।

तपस्यन्तः सन्तः किमधिनिवसामः सुरनदीं
गुणादारान्दारानुत परिचरामः सविनयम् ।
पिबामः शास्त्रौघानुत विविधकाव्यामृतरसान्
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने ।। ८३ ।।

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य
ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।
किं तैर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशङ्काः
कण्डूयन्ते जरठहरिणाः शृङ्गमङ्गेमदीये ।। ८८ ।।

गंगा जल आध्यात्मिक, चिकित्सकीय एवं पुण्यप्रद गुणों से युक्त है । इसीलिए शास्त्र में गंगाजल के पान का विधान है – गीतागङ्गोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते । यह जल विविध रोगप्रद जन्तुओं का विनाशक है ।

६.२ प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में वर्णित जल एवं गङ्गाजल की आधुनिक व्याख्याएँ तथा उपयोगिताएँ :

६.२.१ जल की गति का अधोगामी होना :

अथर्ववेद १२/१/१६ में आया हैं :-

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं चरन्ति ।

पृथ्वी पर जल गतिशील ''समानी'' सम धरातल बनाते हुए दिनरात बहते रहते हैं । (water seeks its own level) वैशेषिक दर्शन में कहा है :-

द्रवत्वात् स्पन्दनम् नाड्या वायुसंयोगादारोहणम् ।

(पानी हवा के दबाव से तथा नलिका की सहायता से ऊपर चढ़ेगा ।)

मोदनात् पीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च ।

(ढकेलने और दबाने से पानी ऊपर चढ़ता है)

यही वह सिद्धांत है जिसके आधार पर आजकल शहरों में जल कल निरुपित किया गया है ।

कर्नल जेवियट द्वारा अनूदित आइने अकबरी के पृष्ठ १८ पर एक कपाल यन्त्र का उल्लेख है जिसमें जल भरा रहता था और उससे दिन के आठों पहरों का समय निर्देश होता था । यह पानी के दबाव पर बहाव पर ही आश्रित हो सकता था ।

उज्जैन के महाकाल मन्दिर में वास्तव में इसी सिद्धांत पर आधारित काल गणना यंत्र घड़ी थी ।

६.२.२ जल से स्वास्थ्य लाभ व चिकित्सा :

इसका संकेत यों तो संध्या और यज्ञ दोनों में आचमन और अंग प्रक्षालन क्रिया में ही हैं क्योंकि आचमन से कफ-निवृत्ति कही है और जल को अमृत बताया है । प्रक्षालन से अंग प्रत्यंगों से सुस्ती को दूर भगाना अभिप्रेत है ।

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति वाले श्लोक में जल को शुद्धकर्ता बताया है । तांबे के जलपात्र में रखा हुआ जल विशेष प्रभाव युक्त होकर आंतों के रोगों को दूर करता है । यह पश्चिमी वैज्ञानिकों का मत है । यहाँ हम अथर्ववेद ६/२३/३ को उद्धृत करते हैं, जिसमें सूर्य की धूप में जल-सेवन को कल्याणकारी औषधि बताया गया है :

देवस्य सवितुः सवे कर्म कृण्वन्तु मानुषाः ।

शं नो भवन्त्वप ओषधीः शिवाः ।।

(सूर्य देवता की प्रेरणा में रहकर मनुष्य कर्म करे तो जल औषधि बनकर हमारे लिये कल्याणाकारी होता है ।)

लुई कुने की स्नान चिकित्सा – फ्रान्स में लुई कूने ने कूने-स्नान-पद्धति द्वारा टब में स्नान द्वारा पेट ग्रस्त सब रोगों को दूर करने की बात कही है । प्राकृतिक चिकित्सक उसका प्रयोग करते हैं ।

सोते समय पैर धोकर सोने से स्वप्न दोष नहीं होता और नींद अच्छी आती है । प्रातःकाल खाली पेट पानी पीने से पेट के विकार ठीक होते हैं तथा मुँह में पानी भरकर दोनों आँखों पर छीटे मारने से न केवल ज्योति बढ़ती है, बल्कि मोतिया बिन्दु तक कट जाती है । योग पद्धति में कुंजल क्रिया से पेट के सब रोग दूर होने की बात विख्यात है । भारत में यह सब बातें दैनन्दिन में परीक्षित है ।[५१]

६.२.३ उषा-पान :

जल चिकित्सा की कई पद्धतियाँ है । जल के शरीर के अन्दर जाने से मल-निष्कासन होता है, दूषित पदार्थ पसीना एवं मूत्रादि बनकर जल में घुलकर ही निकलते हैं । जल में उपस्थित स्वाभाविक विद्युत से भी रोग नष्ट होते हैं और सूक्ष्म ज्ञान-तंतुओं के चक्र सक्रिय हो जाते हैं । बुद्धि प्रखर होती है तथा

मस्तिष्क की क्षमतायें प्रगट होती है । प्रातः स्राव होने वाली ग्रंथियों के स्राव पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ता है । इस लिये खाली पेट जल पीने का रिवाज चाणक्य नीति में एक स्थल पर कहा गया है ।

अजीर्णे भेषजं वारि
जीर्णे वारि बलपदम् ।।

अर्थात् कुछ अजीर्ण रह गया हो तो वह प्रातः जल सेवन से ठीक हो जाता है और यदि न भी हो तो खुश्की दूर हो जाती है । शरीर की गर्मी निकालने में भी जल अद्भुत है । वह शरीरस्थ यूरिक ऐसिड और आक्जेलिक एसिड को घोलकर बराबर निकाल देता है । इस जलपान को आयुर्वेद में ऊषा-पान की संज्ञा दी गई है और उसके महत्त्व हेतु निम्न श्लोक वहाँ आया हैं :

अर्शः शोथो संग्रहणी ज्वरजठरजरा
कोष्ठभेदो विकारः ।
मूत्राघाता सपित्त श्रवणगतिशिरा
क्षोणिशूलाक्षरोगाः ।
ये चान्ये वातपित्तक्षयः कफकृताः
व्याधयः सन्ति जन्तोः
तास्तात् व्यास्तास्तु रोगान् निहरति
पयः पित्तमत्ते निशानाः ।

(अर्थात् मूल व्याधि, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, पेटे के रोग, कोष्ठ बद्धता, मोटापा, मूत्र-रोग, कान, नाक, आँख, गला आदि सभी रोगों को उषापान ठीक करता है ।)

उषापान की विधि :

रात्रि को सोने के पूर्व तांबे की कलशी या लोटे में स्वच्छ व छाना हुआ जल रख लेते हैं । उसे लकड़ी के स्टैण्ड पर रखना चाहिये क्योंकि पानी में प्राणशक्ति होती है और लकड़ी होने से ऊर्जा को नीचे नहीं जाने देती । रात्रि भर ताम्र पात्र में रहने से उसमें विद्युत शक्ति उत्पन्न होती है । इस जल को सूर्योदय से पूर्व उषा काल में नाक के द्वारा पिया जाता है । प्रारंभ में नाक के द्वारा पीने से कुछ कष्ट होगा पर अभ्यास से वह कष्ट होना बन्द हो जाता है । उषापान का प्रारंभ ग्रीष्म ऋतु में होना चाहिये । उसमें तुलसी और बेल पत्र डाल लें तो प्रथम से पेट के कीड़े और द्वितीय से मधुमेह वालों का विशेष लाभ होता है । रुद्राक्ष डालने से उच्च रक्त चाप वालों को लाभ होता है । उषापान के बाद अग्नि सार व उदराकर्षण करने से मल की शुद्धि होती है ।[५२]

६.२.४ प्राण शक्ति का नियमन

अमेरिका में रोजरी हील कॉलेज के फेलोव चेयरमैन जुस्टा स्मिथ हाथ से स्पर्श कर रोगों का इलाज करते हैं । प्रसिद्ध शोधकर्ता एन्ड्रिजा पुहारिन ने उसकी प्रक्रिया की वैज्ञानिक जाँच करने हेतु जुस्टा से पानी से भरा पात्र स्पर्श करने को कहा और देखा कि जल पर तो कोई प्रभाव नहीं पड़ा पर जल में उपस्थित जीवाणु उससे प्रभावित हुये । इससे सिद्ध हुआ कि जल में उपस्थित जीवाणु प्राणशक्ति का नियमन करते है । हाथ रगड़ने से चुम्बक पैदा होता है । चुम्बक के क्षेत्र में जल में विभिन्न आयनों का निर्माण होता है ।

६.२.५ विद्युत जल :

हमारे देश में एस.एस. नेहरु ने विद्युत प्रभावित जल से पौधों को जल्दी उगाने और उनसे अच्छी फसल लेने के सफल परीक्षण किये हैं । यह भी तभी संभव है जब जल में विभिन्न आयन पैदा होकर प्राण–शक्ति का नियमन करें ।

६.२.६ कलश एवं उसके आकार का जल पर प्रभाव :

घरों में मिट्टी का जल कलश भर कर रखते हैं । वह मिट्टी वालुका युक्त होती है । उसके छोटे–छोटे छिद्रों में से जल कण रिसते हैं । और आकाशीय वायु उनको वाष्प कण में बदलती है तथा एक ग्राम जल से वाष्पबनने में ४३६ कैलोरी गर्मी की जो आवश्यकता पड़ती है, वह गर्मी अन्दर के पानी से ले ली जाती है और पानी ठंडा हो जाता है । शीतल जल प्राप्त करने की यह भारतीय पद्धति अपनी निजी उपलब्धि है । हमने देखा कि जो रुसी वैज्ञानिक हरिद्वार की भारत देवी इलैक्ट्रीकल फैक्टरी में आये, वे स्वदेश लौटते समय भारत से सुराही अवश्य रुस ले जाते थे । वे उस पर मुग्ध थे । इसप्रकार मिट्टी के पात्र में रक्खे जल में से मिट्टी ही कीटाणु नाशक का भी काम करती है ।[५३]

कलश को हम पिरैमिडज की शक्ल वाला कह सकते हैं । भारत में यज्ञ मंडप पर भी जल–कलश भरकर रक्खे जाते हैं । मिश्र देश में पिरामिडों की अद्‌भुत शक्ति की अलौकिक गाथायें हैं । वैज्ञानिकों ने भी उन पर परीक्षण किये हैं । उनका मत है कि पिरामिड शक्ल के कारण विशेष विद्युत प्रभाव उत्पन्न होता है । अतः उसके अन्दर रक्खी वस्तु नष्ट नहीं होती । उसी प्रकार के गत्तों के पिरामिड बनाकर कुछ प्रयोग किये गये हैं । एक खास ऊँचाई से ऐसे पिरामिड पर रेजर ब्लेड रखने से वह खराब नहीं होता है और न उसमें जंग लगती है । आजकल पश्चिम में कई प्रकार की वस्तुओं को इसी आकार के डिब्बों में रखकर बेचा जा रहा है । हमारे देश में एक विम कम्पनी ने ऐसे ही डिब्बों में विम की पैकिंग की है और जल्दी नष्ट करने के ही हेतु यज्ञ कुण्ड का आकार इस देश में उल्टे पिरामिड का है ।

६.२.७ जल से आंखों के रोग दूर होना :

आपोहिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ।

यह ऋचा चारों वेदों में आई है ।

ऋ. १०/६/१ यजु. ११/५० तथा ३६/१४

साम. १८३७ अथर्व १/५/१

(जल सुखकारी है । उसे बल के लिए बड़े आनंद के लिये और दर्शन शक्ति पाने के लिए प्रयुक्त करो)

लेखक की यह अनुभूति है कि उसकी आंखों पर जाला आना मधुमेह के कारण प्रारंभ हो गया था । पर नित्य प्रातः मुँह में पानी भरकर जल से दोनों नेत्रों पर ५० बार जोर से जल से छीटे मारने से वह जाला कट गया और नयन–ज्योति स्थिर है ।

६.२.८ जलयान :

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्र ।

यनश्विना अहतुर्भज्युमस्तं शतारित्रा नावमातस्थिवांसम् ।।

(अग्रभणे समुद्रे) अगाध समुद्र में सैकड़ों (चरित्रों) चम्पुओं वाली नौका चलाने का निर्देश किया गया है ।

ऋग्वेद के ही निम्न मंत्र को लीजिये :–

सुत्रामाणं पृथिवी द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।

दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ।।

अच्छे चरित्रों अर्थात् चप्पुओं वाली दैवी नाव अर्थात् विद्युत वा अणु चालित नाव अथवा जलयान पर कल्याण के लिये चढ़ने का उपदेश है । इस नाव को (अनागस) छिद्र रहित, उत्तम सुख देने वाली, अखण्डित, अर्थात् टूटने

वाली (दृढ़) और अच्छी प्रकार अपितु उत्तम ढंग से बनायी हुई बताया है । ऋग्वेद ६-५८-३ के निम्न मंत्र में वायुयानों और पनडुब्बियों का वर्णन पढ़िये ।

मास्ते पूषन्नावोः अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।

ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमानः ।।

हे पोषण करने वाले ! जो तेरी (नावः अन्त समुद्रे) नौकायें अन्दर समुद्र में और अन्तरिक्ष में चलती हैं ।

'समुद्रे' से समुद्र में के अतिरिक्त समुद्र के तल पर भी अर्थ हो सकता है, किन्तु वेद ने 'अन्तः पद का प्रयोग करके 'अन्दर समुद्र में' ऐसा स्पष्ट निर्देश कर दिया है । ऋग्वेद में समुद्र की लहरों पर चलने वाली कार का निर्देश है । अब मंत्र देखिए :

परिप्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरुर्मावधिश्रितः ।

कारं बिभ्रत पुरुस्पृहम् ।

(ऋ. ६-१४-१)

(सिन्धोरुर्मा) समुद्र की ऊर्मियों अर्थात् लहरों पर (पुरुस्पृहं कारम्) अत्यंत स्पृहणीय कार को (कविः) क्रान्त दर्शी अर्थात् ज्ञानी शिल्पी (अधिश्रितः) धारण करता हुआ (परिप्रासिष्यदत) सब ओर चलाता है ।

६.२.६ जल स्त्रोत का अन्वेषण

पृथ्वी के नीचे दीमक के टीलों से जल स्रोत ढूंढ निकालने का वेदों में संकेत है - अथर्ववेद में दो मंत्र (२/३/४ तथा ६/१००/२) में ऐसा संकेत है कि दीमक जमीन में पानी के कुण्डों में जल पृथ्वी के ऊपर अपने बनाये टीलों तक लाती है । इसीप्रकार तैत्तिरीय आरण्यक (५/१४) में संकेत है कि दीमकें जमीन में अन्दर खुदाई करती जाती है जब तक कि उन्हें गहरे जाकर पानी का स्रोत न मिले ।

बराहमिहिर (सन् ५०५–५८७ ई.) ने अपनी कृति बृहत्–संहिता में ३.४३ मीटर की गहराई तक के पानी के स्रोतों का पता दीमक के पृथिवीस्थ मार्गों को देखकर ही लगाने की बात लिखी हैं ।

वास्तव में दीमकें टीलों पर स्थित अपने घरों में एक विशेष परिणाम की आर्द्रता बनाये रखना चाहती हैं, ताकि वे जीवित रह सकें, विशेषकर पूर्ण अथवा अर्ध अनार्द्र क्षेत्रों में । अतएव वे नीचे से फसल इत्यादि में होकर स्वयं पानी खींचकर लाती हैं । मिस्टर डब्लू वैस्ट ने १९६५ में दक्षिण अफ्रीका में ७० मीटर तक तथा वाटसन ने १९७२ में एक सोने की खान में २७ मीटर नीचे तक ऐसे दीमक पथों का पता लगाया था ।

ऐसे टीले प्रायः पेड़ों की जड़ में या तो उत्तर दक्षिण या पूर्व से पश्चिमी दिशा में होते हैं, जबकि इनकी चौड़ाई ०.४६ से ३.२० मीटर तक होती है । बराहमिहिर ने यह भी लिखा है कि इस दिशा का ताल्लुक पृथ्वी की चुम्बकीय शक्ति के दीमकों के व्यवहार पर प्रभाव से है । यह प्रायः लम्ब रूप ही होते हैं । इस २.७४ मीटर के बीच एक ही शैफट होती है । यह गणितीय ज्ञान आज के वैज्ञानिकों तक को नहीं है ।

जर्मनी के प्रोफेसर जी वेकर ने १९६३ में कुछ परीक्षण किये और यह पाया कि यदि इस रुख को दक्षिण से उत्तर या पश्चिम से पूर्व कर दिया जावे तो दीमक पानी लेने नीचे न जाकर कुछ घंटों में वापिस लौट आती है । उसने यह पता लगाया कि लकड़ी में से दाना निकालकर भी वे उत्तर से दक्षिण या पूर्व से पश्चिम की दिशा की ही ओर ले जाती हैं । नोबुल पुरस्कार विजेता प्रो. कार्लवान न ग्रिशने १९७४ में यह अनुसंधान किया कि रुख में पृथ्वी की चुम्बक शक्ति उन्हें लम्ब रूप शैफट बनाकर जल कण ऊपर लाने में उसी प्रकार सुविधा होती है, जैसे दिन में कुतुबनुमा (सूर्य कम्पैस) चीटियों, शहद की मक्खियों तथा अन्य पक्षियों को अपने मार्ग ढूंढने में करता है । अतः रेतीले एवं अनार्द्र तथा

अन्य स्थलों में कुएँ तथा ट्युब वैल हेतु उपयुक्त स्थान चुनने में दीमक के यह पथ अत्यंत उपयोगी हो सकते हैं ।

पृथ्वी के गर्भ में पानी का स्रोत ढूंढने की एक और विधि भारत में विख्यात है । कुछ लोग एक लकड़ी के टुकड़े को हाथ में पकड़कर चलते हैं । जहाँ पानी होता है, वह लकड़ी हिलने या जमीन की ओर झुकने लगती है । वहाँ नीचे पानी अवश्य मिलता है ।[५४]

६.२.१० गंगा जल :

वेदों में गङ्गा यमुना शुतुद्र इत्यादि शब्द शरीरस्थ नाड़ियों के वर्णन में आये है । उन्हीं के साम्य पर कुरु प्रदेश के आगे वाली धवल नीरा नदी का नामकरण गंगा किया गया । भगवद्गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को कहलवाया गया है कि नदियों में मैं गंगा हूँ । विष्णुपुराण (२०० ई.) में गंगा स्नान से अभूतपूर्व पुण्य होने का उल्लेख है । भागवतपुराण (६ ठीं शताब्दी ईसवी) में गंगा जल के स्पर्श मात्र से सगर के पुत्रों को मोक्ष–गाथा वर्णित है । पर वास्तविक वैज्ञानिक बात मत्स्य पुराण (५५०–६५० ई.) में कही गई है कि गंगा की धारा अनेक तीर्थों में होती हुई आई है । अतः उसका जल विशिष्ट गुण सम्पन्न है । इसी से औषधि जाह्नवी तोयम् प्रसिद्ध लोकोक्ति है । हिन्दुओं के जीवन में हर मंगल कार्य में गंगा–जल का उपयोग होता है और मृत्यु के बाद उसकी अस्थियों का भी प्रवाह उसी में होता है ।

गंगा–जल पर आधुनिक परीक्षण :

(१) आगरा के रसायनिक परीक्षक हैकिप्स ने रिपोर्ट दी थी कि गंगा–जल हैजे के कीटाणुओं को नष्ट करता है ।

(२) कनाडा की मेकगिल युनिवर्सिटी के वैज्ञानिक डॉ. हेमिल्टन ने भी गंगा जल के कीटाणु नाशक होने की परीक्षणोपरान्त पुष्टि की ।

(३) फ्रान्स के डाक्टर हैरन ने गंगा जल से विक्टोरिया फेज नामक औषधि बनाई, जो संक्रामक रोगों में प्रयुक्त होती है ।

(४) ब्रिटेन के डॉ. नेल्सन ने रिपोर्ट दी थी कि गंगा जल में वर्षो रकखे रहने पर भी कीड़े नहीं पड़ते ।

(५) मुझे इस बात में किंचित् मात्र भी संदेह नहीं प्रत्युत् मैं निश्चय करके गंगा जी को श्रेष्ठ मानता हूँ क्योंकि और किसी नदी का ऐसा उत्तम और गुण सहित जल नहीं है । परन्तु गंगा, को मुक्ति देने और पाप छुड़ाने का साधन नहीं मान सकता ।

(दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह, पृ. १३७/१६ में से पूना व्याख्यान का अंश)

गंगा का प्रथम नाम पद्मा था । फिर उसी नदी की नहर भगीरथ ने निकाली । इसीलिये उसका नाम भागीरथी पड़ा ।

(उपदेश मंजरी ८६/७–८)

वस्तुतः गंगा इस देश की इन्जीनियरों की उपलब्धि है । उसके हरिद्वार के पास के दोनों पहाड़ी किनारे औजारों से काटे हुये स्पष्ट झलकते हैं । सगर के राज्यकाल में इसम्रें ६०००० मानव दिन (Man Days) का श्रम लगा था ।[५५]

सन्दर्भ–सूची

१	भागीरथीदर्शनम् १/१७
२	भागीरथीदर्शनम् १/६
३	भागीरथीदर्शनम् २/२
४	भागीरथीदर्शनम् २/८
५	भागीरथीदर्शनम् २/११, १२
६	भागीरथीदर्शनम् २/१३–१५
७	भागीरथीदर्शनम् २/१८
८	भागीरथीदर्शनम् २/१६
९	भागीरथीदर्शनम् २/१९
१०	भागीरथीदर्शनम् २/२१–२२
११	भागीरथीदर्शनम् २/२३
१२	भागीरथीदर्शनम् ३/६
१३	भागीरथीदर्शनम् ३/१०
१४	भागीरथीदर्शनम् ३/११
१५	भागीरथीदर्शनम् ३/१२
१६	भागीरथीदर्शनम् ३/१३
१७	भागीरथीदर्शनम् ३/१४
१८	भागीरथीदर्शनम् ३/१५
१९	भागीरथीदर्शनम् ३/१६
२०	भागीरथीदर्शनम् ३/१७
२१	भागीरथीदर्शनम् ३/१८
२२	भागीरथीदर्शनम् ३/२१–२४

२३	भागीरथीदर्शनम् ३/२७–३१
२४	भागीरथीदर्शनम् ३/२७–३१
२५	भागीरथीदर्शनम् ३/३२–३४
२६	भागीरथीदर्शनम् ४/२–५
२७	भागीरथीदर्शनम् ४/६–१६
२८	भागीरथीदर्शनम् ४/८
२९	भागीरथीदर्शनम् ४/२१
३०	भागीरथीदर्शनम् ४/२२
३१	भागीरथीदर्शनम् ४/२३
३२	भागीरथीदर्शनम् ४/२५
३३	भागीरथीदर्शनम् ४/२६
३४	भागीरथीदर्शनम् ४/२७
३५	भागीरथीदर्शनम् ४/२८
३६	भागीरथीदर्शनम् ४/२९
३७	भागीरथीदर्शनम् ५/२–११
३८	भागीरथीदर्शनम् ५/१२–३४
३९	भागीरथीदर्शनम् ६/२२–२४
४०	भागीरथीदर्शनम् ६/४, १६, ५, ७/५, २०,२१
४१	भागीरथीदर्शनम् ६/२, १७, २२, ७/३
४२	भागीरथीदर्शनम् ६/५, २०, २४, २५
४३	भागीरथीदर्शनम् ६/२८, २९, ७/६
४४	भागीरथीदर्शनम् ६/१९
४५	भागीरथीदर्शनम् ६/२२, ७/२, ४,१०–१९

४६	भागीरथीदर्शनम् ७/२६, ३२, ३३
४७	भागीरथीदर्शनम् ७/२२–२८
४८	भागीरथीदर्शनम् ८/१–३३
४६	भागीरथीदर्शनम् ६/१–३०
५०	भागीरथीदर्शनम् १०/१–३१
५१	वैदिक वाङ्मय में विज्ञान पृष्ठ–१५५
५२	वही पृष्ठ–१५६
५३	वही पृष्ठ–१५७
५४	वही पृष्ठ–१६०
५५	वही पृष्ठ–१६१

❀❀❀

दशम् अध्याय
गंगा और तत्सम्बद्ध प्रदूषण चिन्तन

१०.१ पर्यावरण और गङ्गा

१०.२ जल–प्रदूषण की समस्या

१०.३ प्रदूषित जल की अवधारणा

१०.३.१ भौतिक गुण

१०.३.२ रासायनिक गुण

१०.४ जल और उसके गुणधर्म

१०.४.१ भौतिक गुणधर्म

१०.४.२ रासायनिक गुणधर्म

१०.४.३ जहरीले पदार्थ

१०.५ नदी जल की गुणवत्ता (भारतीय मानक के अनुसार)

दशम् अध्याय
गंगा और तत्सम्बद्ध प्रदूषण चिन्तन

१०.१ पर्यावरण और गङ्गा :

पर्यावरण की दृष्टि से गंगा के संदर्भ में डॉ. हरिमहर्षि कहते हैं कि – गंगा के बारे में सबसे पुरानी कथा भगीरथ के प्रयास की है । भगीरथ गंगा को स्वर्गलोक से धरती पर लाने के लिए प्रसन्न करने में सफल हुए थे गंगा प्रचंड–प्रवाह को अपनी जटा में रोक लेने के लिए, ताकि उसके वेग से धरती का नाश न हो जाय, शिव जी को भी प्रसन्न कर लिया था भगीरथ ने । लेकिन सबसे ताजी कथा उस केन्द्रीय मंत्री ने रची, जिन्होंने बड़े बचकाने ढंग से आत्मविश्वास के साथ संसद में घोषित किया था कि गंगा कभी भी प्रदूषित नहीं हो सकती ! इन दोनों गाथाओं के बीच है लाखों हिन्दू तीर्थयात्रियों का वह पवित्र आकर्षण, जिससे वे मानते हैं कि उसके पावन जल में नहाने से जीवन पवित्र होगा और उसमें अस्थि विसर्जित करने से परलोक सुधरेगा ।

गंगा हिमालय के दक्षिण ढलानों से और विंध्याचल के उत्तरी ढलानों के कुछ हिस्सों में बहती हुई बड़ी मात्रा में बर्फ और बारिश के पानी को साथ ले कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है । गंगा का कछार भारत की कुल भूमि के लगभग चौथाई भाग को समेटता है ।

उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल में गंगा में कदम–कदम पर लोग और कारखाने अपने अपशेषों और कूड़े–कचरे को डालते रहते हैं जिसके कारण नदी धीरे–धीरे गंदे नाले में बदलती जा रही है । केन्द्रीय जल–प्रदूषण निवारण व नियंत्रण–केन्द्र द्वारा किये गये एक परीक्षण की रिपोर्ट में कहा गया है कि ‘‘गंगा के किनारे बसे किसी भी बड़े शहर में गंदे नाले के पानी के उपचार का

संयंत्र नहीं है । यों इनमें से अधिकांश शहरों से सीवर का आंशिक प्रबंध है । कुल ४८ प्रथम श्रेणी के और ६६ द्वितीय श्रेणी के शहर रोज अपने गंदे नालों से भारी मात्रा में गंदा पानी गंगा में ज्यों का त्यों छोड़ते हैं । इसके साथ घाटों पर नहाना–धोना, अस्थि और बिना या अधजले शवों का विसर्जन इस बोझ को और बढ़ा देता है ।''

''गंगा के प्रदूषण में उद्योगों के रासायनिक अपशेषों का योगदान भी काफी है । डीडीटी के कारखाने, चमड़ा साफ करनेवाले, लुगदी व कागज उद्योग, पेट्रोकेमिकल और रासायनिक खाद, रबड़ और ऐसे कई कारखानों ने अपनी गंदगी फेंकने के लिए गंगा को ही उपयुक्त समझा है । इन सारे अपशेषों की मात्रा गंदे नालों से गिरने वाले पानी में आती है – कानपुर में १८ प्रतिशत, इलाहाबाद में ४ प्रतिशत और वाराणसी के निचले प्रवाह से औद्योगिक कचरा तेजी से बढ़ रहा है और उसका जहर नदी के बहुत से भाग में मछलियों को खत्म कर रहा है । रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं से प्रदूषण की मात्रा यों अभी कम ही है, लेकिन वह क्रमशः बढ़ती जा रही है ।''

इस रेखाचित्र के तथ्यों से पता चल सकता है कि ऋषिकेश, हरिद्वार और वाराणसी जैसे तीन पवित्र शहरों से गंगा का पानी काफी खराब हो रहा है; इन शहरों में वह बिना साफ किये पीने लायक नहीं रहा है । लगता है कि इलाहाबाद में यमुना का तेज प्रवाह अपने को गंगा में अर्पित कर गंगा को प्रदूषण की निगाहों से बचाये हुए है । कानपुर तो उतना पवित्र शहर भी नहीं है, भला वह क्यों पीछे रहे ! उसके गंदे नालों और उद्योगों के अवशेष के कारण यहाँ नदी में बड़ी संख्या में मछलियाँ मर रही हैं । शहरों के इस वर्गीकरण के लिए काम मे लिये गये तथ्यों में औद्योगिक प्रदूषण के सभी आंकड़े शामिल नहीं हैं – उन्हें जोड़ लें तो चित्र और भी भयानक बन जायेगा ।[१]

केन्द्रीय–जल–प्रदूषण–बोर्ड के एक परीक्षण से पता चला है कि कानपुर से १० कि.मी. पहले गंगा का पानी काफी शुद्ध है । लेकिन फिर शहर के जलकल यानी भैरोंघाट पंपिंग स्टेशन के बाद से उसमें गंदे नालों का पानी और कपड़ा मिलों व चमड़े के कारखानों का कचरा आने लगता है; उसका पानी दूषित होता जाता है । चमड़े के कारखानों के कचरे से पानी का रंग जो बदलता है, वह कानपुर से १० कि.मी. दूर किशनपुर गाँव तक बना रहता है । किशनपुर तक भी कई गंदे नाले सीधे नदी में गिरते हैं । इनके साथ कानपुर बिजलीघर से आनेवाला कन्डेन्सर का पानी, नहाने के तथा श्मशान के घाट, जे. के. रेयान्स के अपशेष भी हैं, जो गंगा को निरंतर प्रदूषित करते हैं ।

इलाहाबाद के पास फूलपुर में १९८० से इफ्को रासायनिक खाद कारखाने ने उत्पादन शुरू किया है । उसकी दैनिक क्षमता है १५५० टन यूरिया । कारखाना और उसके लोगों के लिए बसा नया शहर; कुल मिलाकर योजना लगभग १३,५०० घन लीटर पानी का उपयोग करता है और ५,५०० घन लीटर अपशेष नदी को लौटाता है । इलाहाबाद के सेंट्रल इनलैंड फिशरीज रिसर्च इन्स्टीटयूट के वैज्ञानिकों के अनुसार जहाँ से अपशेष नदी में मिलते हैं, वहाँ से कोई १६ कि.मी. तक बड़ी संख्या में जलचर मरते हैं और खेती के जानवरों को भी खतरा पहुँचा है ।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की एक शोध टीम के अनुसार इलाहाबाद, वाराणसी और पटना के पास गंगा का पानी जाड़ों और गरमियों में पीने लायक होता है लेकिन बरसात में नहीं, क्योंकि उसमें तब गंदगी की मात्रा अधिक होती है । क्लोराइड की मात्रा भी कम नहीं है और धुली आक्सीजन की स्थिति खतरे की सीमा पार कर चुकी है । इस जाँच के दौरान नाइट्रोजन का तत्त्व उचित सीमा में था, फीटोप्लांकटोन और जूप्लांकटोन भी हर जगह पाये गये । किसी भी नमूने में डीडीटी और डेलड्रिन का अंश नहीं पाया गया । ये बहुत

महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष हैं, क्योंकि इनसे गंगा के पानी की स्वच्छता का सबूत ऐसे क्षेत्र में मिलता है, जहाँ अभी ज्यादा औद्योगीकरण नहीं हुआ है, और नदी को केवल गंदे नालों का ही सामना करना पड़ता है ।

भागलपुर विश्वविद्यालय के दो प्रोफेसरों – श्री के. एस. बिलग्रामी और जे. एस. दत्ता मुंशी के अध्ययन से पता चलता है कि बरौनी के फरक्का तक की २५६ की.मी. दूरी में ''मोकामा पुल के पास नदी का प्रदूषण बहुत भयानक है, जहाँ बाटा शू फैक्टरी, द मैकडोवेल डिस्टलरी, तेलशोधक कारखाना, ताप बिजलीघर और रासायनिक खाद के कारखाने अपने अपशेषों को नदी में गिराते हैं ।''

बाटा और मैकेडोवेल फैक्टरी हर रोज बिना साफ किये कोई २५०,००० लीटर गंदा पानी गंगा में उड़ेल देते हैं । नदी के इस भाग के जहरीलेपन को आँकने के लिए कुछ प्रयोग किये गये हैं : बाटा वाले इलाके के पानी में छोड़ी गयी मछली ४८ घंटो में मर जाती है और मैकडोवेल वाले हिस्से में तो वह ५ ही घंटे में दम तोड़ देती है । बाटा से निकलनेवाला गंदा पानी कोलीफार्म बेक्टिरिया के लिए भी शामत है, यहाँ इनकी तादाद में भारी कमी आ जाती है पर तेल कारखाने के किनारे पर वे फिर तेजी से बढ़ने लगते हैं ।[२]

तेलशोधक कारखाने के अवशेष इतने अधिक हैं कि १९६८ में तो गंगा में मुंगेर के पास आग लग गयी थी । मछलियों को आगे बढ़ने की सुविधा दिये बिना बना फरक्का बाँध कई विशिष्ट किस्म की मछलियों को नदी के ऊपरी इलाके में स्थित प्रजनन–क्षेत्रों की ओर जाने से रोक रहा है । साथ ही उसके कारण एक ऐसी आड़ बन गयी है जहाँ बड़ी मात्रा में मछलियाँ बेरोक–टोक पकड़ी जा सकती हैं । औद्योगिक गतिविधियों के अलावा भागलपुर, सुल्तानगंज, मुंगेर और सिमरिया के श्मशान घाटों में रोजाना १२० से अधिक शव जलाये जाते हैं ।

फरक्का के बाद गंगा की मुख्य धारा बंगलादेश से लेकर ब्रह्मपुत्र में जा मिलती है । पर उसकी सहायक धाराहुगली पश्चिम की ओर आगे बढ़ती है । यहाँ इसमें दामोदर और रूपनारायण नदियाँ आ मिलती हैं । यह हुगली नदी का दुर्भाग्य ही है कि वह कलकत्ता और हावड़ा जैसे शहरों से गुजरती है । ये समूचे गंगा के मैदान में सबसे ज्यादा उद्योगों और जनसंख्या से भरे हुए शहर हैं ।

हुगली का मुहाना कलकत्ता के चारों ओर बने प्रमुख १५० कारखानों के अपशेषों से पटा पड़ा है । यहाँ ८७ जुट मिलों, १२ कपड़ा मिलों, ७ चर्मशोधनालयों, ५ कागज व लुगदी कारखानों और ४ शराब के कारखानों के अलावा ३६१ नालों से शहर का गंदा पानी निरंतर नदी में गिरता रहता है ।

आम धारणा है कि सागर का मुहाना प्रदूषित नहीं होता, क्योंकि एक तो वाष्पीकरण चलता रहता है और दूसरे समुद्र के ज्वार–भाटे से नदी की गंदगी धुलती रहती है । लेकिन सेंट्रल इनलैंड फिशरीज रिसर्च इन्स्टीटयूट, कलकत्ता के डॉ. बी. बी. घोष का कहना है कि यह प्रदूषण का इलाज नहीं है ।

कृषि मंत्रालय के एक वरिष्ठ अधिकारी कहते हैं कि "हुगली नदी में अब ज्यादा मछलियाँ नहीं रहीं ।" एक जमाने में हुगली नदी हिलसा मछलियों के प्रजनन का गढ़ मानी जाती थी । आज उनकी बिल्कुल कमी हो गयी है । सें ट्रल इनलैंड फिशरीज रिचर्स इंस्टिट्यूट के वैज्ञानिकों ने हुगली के मुहाने के प्रदूषण और मछली पकड़ने पर उसके प्रभाव को बारीकी से जाँचा है । हाल के एक अध्ययन से मालूम हुआ कि नवद्वीप से बजबज तक के १५८ कि.मी. लंबे क्षेत्र में अप्रदूषित भाग में ७१६.२६ टन मछली सालाना पकड़ी जाती है; इसका रोजाना औसत क्रमशः प्रति हेक्टर १५६ और २६ कि.ग्रा. पड़ता है ।

हर नदी में अपने को शुद्ध करने की क्षमता होती है । अपनी विशाल लंबाई–चौड़ाई और पानी की अत्यधिक मात्रा के कारण गं्गा में स्व–शुद्धिकरण

की क्षमता सबसे अधिक है । लेकिन उसमें फेंके जाने वाले इतने सारे कचरे और गंदगी को वह भला कब तक सहन करती रह पायेगी ?

एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में डॉ. डी. एस. भार्गव ने बताया था कि ऋषिकेश और वाराणसी के बीच गंगा में बीओडी का और 'री एयरेशन' का प्रमाण अन्य प्रमुख नदियों की तुलना में सबसे अधिक स्थिर रहता है । अन्य तत्त्वों की तुलना में इन दोनों का आकार भी अत्यधिक है । डॉ. भार्गव ने कहा कि कोलिफार्म जीवाणु बहुत ही कम समय में घट जाते हैं । इसलिए गंदे नाले के कचरे को गंगा बहुत कम समय में और थोड़ी ही दूर में निबटा लेने की क्षमता रखती है । औद्योगिक प्रदूषण से आने वाला विषैला पानी, अधिक साफ पानी के साथ आ मिलते रहने से पतला होकर खत्म हो जाता है ।

गंगा में अपने साफ रखने की क्षमता अत्यधिक है – ऐसी खबरें अखबारवालों को भले ही भा जायें, लेकिन इससे संतुष्ट होकर बैठा तो नहीं जा सकता । केन्द्रीय–जल–प्रदूषण–बोर्ड की रिपोर्ट में गंगा की स्व–शुद्धिकरण की प्रक्रिया जो भी होती है वह प्रायः शहरों के बाद की धारा में होती है, लेकिन शहरों के पास लोग हमेशा की तरह गंगा में नहाते ही हैं और वहाँ का पानी पीते ही हैं, जो बिलकुल ही अस्वास्थ्यकर है ।[३]

अब तक, गंगा के प्रदूषण के स्वरूप और प्रमाण के बारे में जो भी सबूत मिलते रहे हैं, वे छिटपुट रूप में ही हैं । लेकिन अब केन्द्रीय–जल–प्रदूषण–बोर्ड उन सब उपलब्ध तथ्यों को संकलितकर एक रिपोर्ट प्रकाशित कर रहा है । गंगा के प्रदूषण का मुकाबला करने के लिए योजना–आयोग द्वारा तैयार किये गये 'गगन से सागर तक' कार्यक्रम के एक भाग के रूप में एक समग्र अध्ययन आरंभ किया गया है, जिसमें कई विश्वविद्यालय शामिल किये गये हैं । सरकार ने इलाहाबाद और हल्दिया तक के क्षेत्र को राष्ट्रीयजल–मार्ग

घोषित करने का निश्चय कर लिया है ताकि अंतर्राष्ट्रीय विवादों के कारण होने वाले संभावित विलंब से बचा जा सके ।

१६६० के दशक के आरंभ से अब तक के प्रत्येक शोध–अध्ययन ने इस बात पर जोर दिया कि गंगा के प्रदूषण को, विशेषतः गंदे नालों व औद्योगिक अपशेषों द्वारा होनेवाले प्रदूषण को तत्काल रोका जाय । लेकिन उन असंख्य सुझावों को अमल में लाने के लिए बीते बीस वर्षों में प्रयत्न ना के बराबर ही हुआ है । आम लोग तो यही मान कर चलते हैं कि गंगा प्राचीन युग की ही तरह मानवों के पाप धोती हुई प्रवाहित हो रही है । पर्यावरण की चेतना तो कुछ नागरिक समूहों, समितियों और संबद्ध वैज्ञानिक दलों तक ही सीमित रह गयी है ।[४]

बनारस के संकटमोचन फाउंडेशन ने गंगा को बचाने के लिए वैज्ञानिक, तकनीकी और धार्मिक तथ्यों के माध्यम से प्रदूषण की समस्या को जन–जन तक पहुँचाने का एक बड़ा कार्यक्रम बनाया है ।

इस सिलसिले में गठित 'स्वच्छ–गंगा–अभियान–समिति' ने दिसम्बर १५ से ३० तक जनजागरण पखवाड़ा मानया । शहर में जगह–जगह गंगा के प्रदूषण पर गोष्ठियाँ की गईं । अखबारों में लेखों, दीवारों पर बड़ी संख्या पर पोस्टर और सिनेमाघरों में स्लाइड के जरिए गंगा को स्वच्छ रखने का संकल्प और संदेश पहुँचाया गया ।

फिलहाल, अभियान का स्वच्छ गंगा–सूचना–केन्द्र फाउंडेशन के भवन में हैं । नदी–प्रदूषण पर लोगों का ध्यान खींचने के लिए यह अपने किस्म का पहला तैरता हुआ सूचना केन्द्र है । इसमें गंगा के पर्यावरण और प्रदूषण से संबंधित वैज्ञानिक तथ्य, विभिन्न तकनीकी अध्ययन, चित्र, नक्शे और गंगा से संबंधित धार्मिक साहित्य रखा गया है । इस केन्द्र का उपयोग जन संपर्क और समय–समय पर सभाओं के लिए भी किया जा रहा है ।

फाउंडेशन गंगा–प्रदूषण पर एक नियमित बुलेटिन भी निकाल रही है । गंगा के माहात्म्य और इसकी वर्तमान दुर्दशा को विषय बनाकर लोकगीत शैली में कुछ लोकगीत भी तैयार किए गये हैं, जिन्हें उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में गंगा के किनारे बसे सैकड़ों गावों और शहरों तक पहुँचने की योजना है । गंगा पर एक वृत्तचित्र के अलावा एक राष्ट्रीय–नाटक–समारोह का भी आयोजन है । सभी नाटक 'गंगा' विषय पर होंगे और इनमें से कुछ चुने हुए नाटकों को पुरस्कृत भी किया जायेगा । 'स्वच्छ–गंगा–अभियान' नदी–प्रदूषण–विशेषज्ञों का एक अंतराष्ट्रीय सम्मेलन भी बुलाना चाह रहा है ।

अभियान के संकल्प बहुत बड़े हैं । लेकिन इन तक पहुँचने के लिए उनसे छोटे–छोटे कदम भी उठाने शुरु किए हैं । इसे वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, धर्म के लोगों, सामाजिक कार्याकर्ताओं और नई उमर के लड़के–लड़कियों का सहयोग मिल रहा है । अभियान ने 'स्वच्छ–गंगा–महिला–संमेलन' आयोजित कर बड़ी संख्या में स्त्रियों को इस काम के लिए तैयार किया है । प्राकृतिक रूप से समुद्र से निश्चित प्रक्रिया से प्राप्त शुरू एवं मीठे पानी से भी यह कमी पूरी नहीं हो पा रही है और इसी कारण शुद्ध पानी की प्राप्ति अब विकट समस्या बन गई है ।

१०.२ जल–प्रदूषण की समस्या :

शुद्ध जल पीने के अतिरिक्त दैनिक कार्यों, उद्योग–धन्धों, सफाई, कृषि आदि के कार्यों में प्रयोग होता है । शुद्ध जल में किसी प्रकार की मिलावट हो जाये तो इसकी उपयोगिता आंशिक अथवा पूर्ण रूप से नष्ट हो जाती है । इसे ही प्रदूषित जल कहते हैं और यह मानवीय उपयोग के योग्य नहीं माना जाता । विकसित और विकासशील देश जल–प्रदूषण की समस्या से प्रभावित हैं और इसके निवारण के लिए युद्ध स्तर पर प्रयास चलाये जा रहे हैं । हमारे देश में

भी केन्द्र एवं राज्य सरकारें प्रतिवर्ष शुद्ध जल उपलब्ध कराने के लिए करोडो रुपये खर्च कर रही है किन्तु समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं । अनुमान है कि संसार में २५ हजार व्यक्ति प्रतिदिन पानी की कमी अथवा प्रदूषित जल से प्रभावित होते हैं । विकासशील देशों में ८० प्रतिशत बच्चों की मृत्यु का कारण प्रदूषित जल से उत्पन्न होने वाले पेचिस, हैजा, पीलिया तथा पेट के रोग होते हैं । नन्हें बच्चों में जन्म से ही दुर्बलता, कुबडाँपन, अपंगता तथा विचित्र लाइलाज बीमारियाँ देखी जाती है । मलेरिया भी ठहरे हुए गंदे पानी में पैदा होने वाले मच्छरों से होता है ।

सामान्य रूप से जल प्रदूषण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है[५] :

(१) गंदगी युक्त जल जो सरलता से सीधे ही दिखाई देता है । इसप्रकार के जल को देखकर उसका उपयोग सावधानीपूर्वक किया जा सकता है ।

(२) वह प्रदूषित जल जिसे यांत्रिक अथवा रासायनिक परीक्षण से पहचाना जा सकता है । इसके लिए कई प्रकार के उपाय काम में लिये जाते हैं । इसप्रकार का प्रदूषित जल अधिक घातक होता है ।

१०.३ प्रदूषित जल की अवधारणा :

जल–प्रदूषण की परिभाषा से तात्पर्य है अशुद्ध जल अथवा वह जल जिसके भौतिक, रासायनिक एवं जैविक तत्त्वों में परिवर्तन हो गया हो अथवा मल जल, व्यावसायिक उच्छिष्टों, किसी प्रकार की गैस, तरल अथवा ठोस पदार्थ के मिश्रण होने से जल के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों में परिवर्तन हो गया हो ।

सामान्य रूप से स्वच्छ जल के मानक निम्न प्रकार से स्वीकार किये गये हैं[६] :

१०.३.१ भौतिक गुण :

(१) तापक्रमः १०० से. से १५० से. तक

(२) रंग १० से २० (प्लेटीनम कोबाल्ट स्केल पर)

(३) गंध ० से ४ पी. मान

(४) स्वाद पीने में स्वादिष्ट

(५) गंधलापन ५ से १० पी.पी.पी. (मेनिका स्केल पर)

१०.३.२ रासायनिक गुण :

(१) पानी की कठोरता १०० तक

(२) क्लोराइड, सल्फेट २५० पी.पी.एम.

(३) ठोस पदार्थ ३०० पी.पी.एम.

(४) लोहा, मेग्नीज ३ पी.पी.एम.

(५) पी.एच. ६.५–८

(६) आर्सेनिक व लैड १ पी.पी.एम.

(७) कार्बोनेट १२० पी.पी.एम.

(८) घुली आक्सीजन ५–६ पी.पी.एम.

प्रदूषण :

१०.४ जल और उसके गुणधर्म :

क्रम सं.	*सं. विवरण*	*स्वीकार्य*	*मात्रा अस्वीकार्य*	*इकाई*
१०.४.१ भौतिक गुणधर्म				
१	गंदालापन	२.५	१०	जे.टी.यू. इकाई
२	रंग	२.०	२५	प्लेटीनम कोबाल्ट स्केल
३	स्वाद या गंध	अप्रीतिकार	अप्रीतिकार	
४	पी.एच.	७.० से ८.५	६.५ से ६.२	

१०.४.२ रासायनिक गुणधर्म				
१	ठोस घुलनशील	५००	१५००	पी.पी.एम.
२	हाइनेस	२००	६००	पी.पी.एम.
३	क्लोराइड	२००	६००	पी.पी.एम.
४	फ्लोराइड	१.०	४.०	पी.पी.एम.
५	नाइट्रेट	४५	४५	पी.पी.एम.
१०.४.३ जहरीले पदार्थ				
१	आर्सेनिक	०.०५	०.०५	पी.पी.एम.
२	कैडमियम	०.०१	०.०१	पी.पी.एम.
३	क्रोमियम	०.०५	०.०५	पी.पी.एम.
४	साइनाइड	०.०५	०.०५	पी.पी.एम.
५	पारा	०.००१	०.००१	पी.पी.एम.[७]

१०.५ नदी जल की गुणवत्ता (भारतीय मानक के अनुसार)[८]

(१)	ई. कोलाई (पी.पी.एम. प्रति १०० सी.सी.)	पाँच प्रतिशत नमूनों में पाँच हजार से अधिक न हो ।
(२)	पी.एच.	६.० से ९.०
(३)	क्लोराइड (मिलीग्राम प्रति ली.)	६००.००
(४)	घुली आक्सीजन	४०.०० (अधिक हो तो अच्छा)
(५)	बायो केमिकल आक्सीजन	३.०० मि.ग्रा. प्रति ली.
(६)	तैलीय पदार्थ	०.१ मि.ग्रा. प्रति ली.
(७)	फिनालिक पदार्थ	०.००१ मि.ग्रा. प्रति ली.
(८)	साइनाइड	०.०१ मि.ग्रा. प्रति ली.

(९)	सेलेनियम	०.०५ मि.ग्रा. प्रति ली.
(१०)	लेड	०.१ मि.ग्रा. प्रति ली.
(११)	क्रोमियम	०.०५ मि.ग्रा. प्रति ली.
(१२)	आर्सेनिक	०.२ मि.ग्रा. प्रति ली.[९]

गंगा की कुल लंबाई उसकी सहायक नदियों यमुना, घाघरा, गंडक, गोमती, कोसी और सोन को मिलाकर ८०४७ कि.मी. है । ब्रह्मपुत्र की धारा भारत में ४००० की.मी. से भी अधिक लंबी है ।[१०]

जगह–जगह के उद्योगों और नगरपालिकाओं ने गंगा और उसकी सहायक नदियों को गंदे नाले के रूप में बदल दिया है । गंगा में स्वयं शुद्ध होते जाने की अद्‌भुत क्षमता होते हुए भी वह आज देश में सबसे अधिक प्रदूषित नदियों में गिनी जाने लगी है ।[११]

सन्दर्भ–सूची :

१.	जल और जल प्रदूषण, पृष्ठ ५८
२.	वही, पृष्ठ ५६
३.	वही, पृष्ठ ६१
४.	वही, पृष्ठ ६१
५.	वही, पृष्ठ ७८
६.	वही, पृष्ठ ७६
७.	वही, पृष्ठ ०३
८.	वही, पृष्ठ ०३
६.	वही, पृष्ठ २१
१०.	वही, पृष्ठ ४४
११.	वही, पृष्ठ ५०

❀❀❀

एकादश अध्याय
उपसंहार

एकादश अध्याय
उपसंहार

उपसंहार शोध–प्रबंध की पूर्णता का संसूचक है । जिसमें शोधार्थी अपने शोध–प्रबंध का सार, शोध का महत्त्व, उसकी उपयोगिता तथा विषय से संबंधित अनेक नूतनातिनूतन अनुसंधानात्मक दृष्टिकोणों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है । वस्तुतः किसी भी विषय पर अनुसंधान करना इतना गंभीर, कठिन और विचार–सापेक्ष होता है कि बहुत परिश्रम के बावजूद शोध के आधार पर तैयार किए गये महानिबंध को पूर्ण नहीं कहा जा सकता । जहाँ तक प्रकृत प्रसंग में मेरे इस शोध–महानिबंध का प्रश्न है, उसका शीर्षक है ।

"गङ्गावतरणम् कथाश्रित भारतीय चिन्तन–परंपरा

एवं

उसके आलोक में कवि नीलकण्ठ दीक्षित विरचित गङ्गावतरणम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन ।"

प्रस्तुत शोध–प्रबंध का यह उपर्युक्त शीर्षक विषय की गहनता की दृष्टि से इतना सांस्कृतिक, धार्मिक, भौगोलिक, वाणिज्यिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं सनातन परंपरा से संबद्ध और ऐतिहासिक है कि इस पर शोध–महानिबंध तैयार करना, वर्तमान संदर्भों से संबद्ध तथ्यों पर गङ्गा से संबंधित विचार करना, उनके जल तत्त्व का विश्लेषण करना, प्रदूषण आदि पर विवेचन, गंगा के साथ तीर्थों के संबंध, उन पर भौगोलिक चिन्तन व भूमि–संरचना आदि जैसे बहूआयामी एवं बहुपयोगी अनुसंधान स्वयं में एक जटिल कार्य है । जैसे गङ्गा संबंधी सांस्कृतिक, स्रोत, काव्य, महाकाव्य–विचार, गङ्गा संबंधी वैदिक, पौराणिक, स्तोत्र, काव्य, महाकाव्य आदि से संबंधित विचार, गङ्गा–जल का वैज्ञानिक अनुशीलन, वाणिज्यिक

तथा पर्यावरणीय अध्ययन इत्यादि । फिर भी मैंने यथा–शक्ति इस विषय से संबंधित प्रायः प्रत्येक आयाम के प्रति अपने अध्ययन की मथानी से आलोडित–विलोडित करके उससे प्राप्त नवनीत को भावी पीढ़ी के अनुसंधित्सुओं के समक्ष उपस्थापित करने की कोशिश की है ।

जैसाकि शीर्षक से ही सिद्ध है कि हमारा यह शोध–प्रबंध मुख्यतया दो भागों में विभक्त है ।[१] "संस्कृत वाङ्मय में गङ्गावतरण की भारतीय–चिन्तन परंपरा[२] संस्कृत साहित्य की अनेकविध कृतियों के कृतिकार तथा कविवर नीलकण्ठदीक्षित प्रणीत गङ्गावतरणम् महाकाव्य का परिशीलन । यही कारण है कि मैंने अपने शोध महानिबंध को कुल दश अध्यायों में विभाजित करने का प्रयत्न किया है । जिसमें प्रथम अध्याय के रूप में सर्वप्रथम मैंने भारतीय चिन्तन–परंपरा और गङ्गा पर विषय–सामग्री एकत्र करने की कोशिश की है । जिसमें गङ्गा–जल और उसके वाङ्मय में गङ्गा संबंधी प्राप्त उद्धरणों की प्रस्तुति की है । जिसमें ऋग्वेद, आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथ एवं यजुर्वेद के साथ–साथ अन्य अनेक प्राचीन ग्रंथों के उद्धरणों का वर्णन किया है । यहाँ तक कि इस संदर्भ में अमरकोश, वाल्मीकि–रामायण एवं महाभारत सदृश महत्त्वपूर्ण ग्रंथों में वर्णित गङ्गा संबंधी उद्धरणों का उपयोग भी किया है ।

तत्पश्चात् इस अध्याय को पूर्णता प्रदान करने के लिए भारतीय संस्कृति के सिद्धांतों को पोषण प्रदान करनेवाले गङ्गा संबंधी अन्य विद्वानों एवं उनकी कृतियों में उपलब्ध सामग्री से भी मैंने यथा अवसर सहयोग लिया है । ऐसे स्रोतों में वामन जयादित्य की काशिका, वामनपुराण, वृहद्नारदीयपुराण, रहीम, कबीर सदृश कवि एवं भारतीय संस्कृति के अर्वाचीन ध्वजवाहक तथा गङ्गा के परम भक्त पं. विद्यानिवास मिश्र की कृतियाँ मुख्य हैं ।

इस शोधकृति के द्वितीय अध्याय का नाम है – "संस्कृत महाकाव्य की उत्पत्ति और उसका उदय ।" इस अध्याय के अंतर्गत मैंने महाकाव्यों की

उत्पत्ति व उदय पर विचार करते समय रामायण, महाभारत, कालिदास, वररुचि, पतंजलि इत्यादि की कृतियों से सहयोग लिया है । इस दरम्यान महाकाव्यों के वर्गीकरण तथा प्रशस्ति परक काव्यों की कृतियों पर प्रकाश डालते हुए मैंने अनेक ऐसे काव्यों का उल्लेख करने की कोशिश की है, जिनके नाम इतिहास में या तो प्रायः लुप्त हैं अथवा अप्रसिद्ध हैं । आगे चलकर मैंने महाकाव्य के लक्षण, प्रयोजन एवं हेतु आदि प्रवृत्तिगत विषयों पर भी विचार करने की कोशिश की है ।

इसीप्रकार अपने शोध–प्रबंध के ''नीलकण्ठ दीक्षित का परिचय एवं कर्तृत्व'' नामक तृतीय अध्याय में दीक्षित जी के समय, वंश–परंपरा, उनकी प्रतिभा, पांडित्य एवं कृतियों पर प्रकाश डालने की कोशिश की है । आगे इस अध्याय में मैंने यह भी प्रयत्न किया है कि कवि का जन्म–स्थान, उनके वंशवृक्ष, उनकी शिक्षा–दीक्षा, कवित्वशक्ति तथा उनके जीवन से संबंधित अन्य मुख्य बिंदुओं का विवेचन कहीं अछूता न रह जाय, जैसे कवि नीलकण्ठदीक्षित का स्वभाव, उनकी लोकप्रियता, काव्यगत–चमत्कार, व्यंग्य के प्रति आग्रह, कर्मयोग का महत्त्व, दीक्षित जी का दार्शनिक ज्ञान तथा गङ्गा, शिव, विष्णु इत्यादि देवताओं के प्रति उनकी भक्ति, इसके अतिरिक्त व्याकरण, तंत्र एवं तत्सम्बद्ध अनेक शास्त्रों के प्रति उनके ज्ञानवैभव आदि ।

इस प्रबंध के चतुर्थ अध्याय का नाम है – ''गङ्गावतरणम् महाकाव्य की कथावस्तु ।'' इस विषय के निरूपण में मुख्य रूप से मैंने गङ्गा जी की उत्पत्ति एवं उनके अवतरण की कथा के लिए वाल्मीकि रामायण को आधार बनाया है । जिसमें गङ्गावतरणम् के साथ–साथ गङ्गा से कार्तिकेय की उत्पत्ति, राजा सगर के पुत्रों के यज्ञाश्व का अपहरण, राजा सगर के पुत्रों द्वारा पृथ्वी को खोदते हुए महर्षि कपिल के आश्रम तक पहुँचना तथा कपिल ऋषि के क्रोध से उनका भस्म होना आदि विवेचित है । इसके अतिरिक्त मैंने महाराज अंशुमान् व भगीरथ की

तपस्या, ब्रह्मा जी का वरदान, गङ्गा जी के प्रवाह का शिव जी की जटा में आना, गङ्गा का जाह्नवी बनना एवं भगीरथ जी द्वारा गङ्गाजल से पितरों को तर्पण देना आदि विषयों के कथावस्तु का वर्णन करना उचित समझा है । इसीलिए इसके अंतर्गत अंत में मैंने वाल्मीकि-रामायण में वर्णित गङ्गावतरणम् संबंधी तथ्यों को उपस्थापित कर गङ्गा की महिमा को भी प्रस्तुत किया है ।

इस अध्याय को मुख्य रूप से प्राचीन और अर्वाचीन दो प्रकार के चिंतनों में विभक्त किया जा सकता है । क्योंकि; इस अध्याय में मैंने जिसप्रकार गङ्गावतरणम् के कथावस्तु के पूर्व प्राचीन चिन्तनात्मक वर्णन किया है, उसी प्रकार इस अध्याय के उत्तरार्ध में गङ्गा संबंधी भौगोलिक-चिंतन की भी उपस्थापना की है जिसके लिए भूगोल के प्रामाणिक ग्रंथों का सहयोग लिया जाना अत्यंत स्वाभाविक है । ध्यातव्य है कि विषय के इस भौगोलिक संविभाग में गङ्गा-प्रणाली, ऊपरी-गङ्गा-मैदान, मध्य-गङ्गा-मैदान एवं गङ्गा का निचला-मैदान आदि विषयों का विवेचन किया गया है । जिनमें गङ्गा संबंधी स्थिति, विस्तार, भौतिक प्रदेश, जलवायु, वनस्पति, जनसंख्या, कृषि, औद्योगिक एवं सांस्कृतिक विकास, मिट्टी, जन-संसाधन, अर्थतंत्र, खनिज-संसाधन एवं परिवहन इत्यादि विषयों को विवेचन का केन्द्रबिन्दु बनाया गया है ।

प्रकृत शोध-प्रबंध का पंचम अध्याय इसप्रकार है - "गङ्गावतरणम् महाकाव्य एवं उसमें सन्निरूपित काव्यशास्त्रीयतत्त्व" । इस अध्याय के आरंभ में रससम्बंधी पृष्ठभूमि के पश्चात् इसे अनेक उपखंडों में विभाजित किया गया है । अध्याय का यह विभाजन काव्यशास्त्रीय तत्त्वों को आधार बनाकर किया गया है, जैसे रस, अलङ्कार, छन्द, रीति, गुण व ध्वनि आदि ।

इन उप अध्यायों के निरूपण में प्रायः दो-दो सहायक उप-विभागों की व्यवस्था है । प्रथम उप-विभाग में विषय संबंधी प्रस्तावना प्रस्तुत की गई है, जिनमें तत्सम्बद्ध व्युत्पत्ति, वर्गीकरण, संख्या एवं काव्य के सौंदर्य से सम्बद्ध

प्रवृत्तियाँ आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । तत्पश्चात् द्वितीय उपविभाग में अलङ्कार आदि के भेदों का लक्षण व 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य में उनकी गतार्थता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है । रस, अलङ्कार, छन्द, गुण, रीति एवं ध्वनि प्रभृति प्रायः अधिकांश काव्य-तत्त्वों का इतिवृत्तात्मक व सैद्धांतिक निरूपण एवं गङ्गावतरणम् महाकाव्य में उनके मुख्य भेदों की गतार्थता का वर्णन इस अध्याय के अंतर्गत किया गया है । यह अध्याय अन्य अध्यायों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है ।

प्रकृत षष्ठ अध्याय का शीर्षक है – 'गङ्गावतरणम्' महाकाव्य में बिम्ब विधान एवं पात्र चित्रण । इसे मुख्य रूप से 'क', 'ख' एवं 'ग' तीन विभागों में विभक्त किया गया है । जिसमें विभाग 'क' का नाम है – बिम्ब विधान का सैद्धान्तिक निरूपण । विषय सुविधा की दृष्टि से प्रतिपादन की प्रस्तुत अध्याय के इस खण्ड को नव उपखण्डों में विभाजित किया गया है, जो इसप्रकार है – गङ्गावतरणम् में बिम्ब विधान, बिम्ब के उपादान, बिम्ब का स्वरूप निरूपण, बिम्ब की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, बिम्ब की स्वरूपगत विशेषताएँ, बिम्ब के गुण, बिम्ब-शिल्पन, बिम्ब का आलङ्कारिक तत्त्वों के साथ सम्बन्ध (बिम्ब-प्रतिबिम्ब, बिम्ब और अलङ्कार, बिम्ब और रस, बिम्ब और प्रतीक, बिम्ब : एक विश्लेषण) और बिम्ब एवं बिम्ब व्यवस्था ।

तत्पश्चात् द्वितीय खण्ड का शीर्षक है – गङ्गावतरणम् महाकाव्य में पात्र-चित्रण; जो महाकाव्य में वर्णित पात्रों के चरित्राङ्कन से सम्बद्ध है ।

किसी भी महाकाव्य के अन्तर्गत उसके नायक-नायिका एवं अन्य अनेक पात्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है । प्रकृत गङ्गावतरणम् महाकाव्य में महाराज भगीरथ, भगवान् शिव, भगवती गङ्गा, पार्वती, महर्षि जह्नु, भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, कार्तिकेय, राजा अंशुमान्, महर्षि कपिल, महाराज सगर और उनके ६० हजार पुत्रों का मुख्य रूप से वर्णन प्राप्त होता है किन्तु समूचे महाकाव्य में महाराज

भगीरथ एवं पुण्यसलिला गङ्गा की महत्त्वपूर्ण भूमिका को मुख्य रूप से रेखांकित किया गया है । इसके अतिरिक्त मेरे द्वारा पूर्वोक्त अन्य पात्रों को भी महाकाव्य में जहाँ जैसा महत्त्व दिया गया है तदनुसार मैंने इस शोध–प्रबंध में उन पात्रों का भी चरित्र–चित्रण करने का भरपूर प्रयास किया है । फिर भी उन पात्रों का चित्रण मेरे द्वारा प्रायः यहाँ नहीं किया जा सका है, जिनकी भूमिका गङ्गावतरणम् महाकाव्य में अति न्यून है ।

पात्र–चित्रण के मेरे इस प्रयत्न से लोक में लोगों को महाराज भगीरथ जैसा तपस्वी व कर्मयोगी बनने के लिए तथा शिव जैसा समर्थ व गंगा जैसी पवित्र बनने के लिए यदि कुछ भी प्रेरणा मिल सकी तो मैं अपना प्रयत्न सार्थक समझूँगी । इसीप्रकार खण्ड 'ग' में अन्य पात्रों के चित्रण को भी समाविष्ट किया गया है ।

सप्तम अध्याय 'गंगावतरणम्' महाकाव्य के प्रकृति–चित्रण से संबंधित है । यह तथ्य सभी सुधीजन को विदित है कि महाकाव्य के लिए प्राकृतिक उपादानों का वर्णन एक अनिवार्य तत्त्व होता है । अतः इस अध्याय में मैंने सर्वप्रथम काव्य में प्रकृतिवर्णन की उपादेयता का वर्णन किया है । तत्पश्चात् हिमालय, काशी, काशी का मणिकर्णिका घाट, नागलोक, चन्द्रमा, कामदेव, सर्पराज वासुकि एवं महर्षि कपिल मुनि के आश्रम का वर्णन किया है । साथ ही यथा–अवसर सूर्य, स्वर्ग, कोकिल, शिरीष, पवन, प्रातः, सन्ध्या, समुद्र, आतप, अंधकार, प्रकाश एवं जलप्रपात इत्यादि प्राकृतिक उपादानों का विवेचन करने का मैंने सर्वथा प्रयत्न किया है, जो अष्टसर्गात्मक गङ्गावतरणम् महाकाव्य में सुस्पष्टः वर्णित है ।

गङ्गावतरणम् महाकाव्य का सामाजिक जीवन दर्शन "इस शोध–प्रबंध के अष्टम अध्याय का शोध–विषय है । जिसमें समाज के स्वरूप का विवेचन करते हुए गङ्गा के साथ भारतीय समाज के संबंध को गङ्गावतरणम् के अंतर्गत प्राप्त

उद्धरणों के आधार पर सन्निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है । साथ ही महाराज भगीरथ के राज्य के व्यवस्थित चित्र को भी उपस्थापित किया गया है ।

इसके अतिरिक्त चूँकि गङ्गा भारतीय सनातन धर्म व दर्शन की संवाहिका है, इसलिए उनका गङ्गा से किस–प्रकार का संबंध है, इस तथ्य को आधार बनाकर यहाँ वर्ण्य विषय का सम्यक् निरूपण किया गया है ।

प्रकृत शोध–प्रबंध के नवम अध्याय का शीर्षक है, ''परवर्ती संस्कृत साहित्य में गङ्गा–संबंधी–चिन्तन'' । स्वर्गापवर्ग से भी श्रेष्ठ पवित्र भारतवर्ष के धर्म, परंपरा व संस्कृति के आधारभूत होने के कारण गङ्गा नदी अनादि काल से आस्तिक मानवजाति के चिन्तन का कारण रही है । इसीलिए इससे संबंधित वर्णन ऋग्वेदकाल से लेकर अविच्छिन्नतया पृथक्–पृथक् रूपों में आज तक होते आ रहे हैं । वेदों, पुराणों एवं अन्य परवर्ती साहित्य में गङ्गा संबंधी वर्णन सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं और बाद में भी गङ्गा जी को आधार बनाकर असंख्य स्तोत्र काव्य संस्कृत–भाषा में पहले भी लिखे गये तथा आज भी लिखे जा रहे हैं । ऐसे ग्रंथों में महर्षि वाल्मीकि, आद्य शंकराचार्य, कवि कालिदास व स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती ने पृथक्–पृथक् जिन गङ्गा स्तोत्रों की रचना की है, उन चारों को 'गङ्गाष्टकम्' के नाम से जाना जाता है । इसके अतिरिक्त भगवान् शंकराचार्य द्वारा प्रणीत 'गङ्गास्तोत्रम्', कल्किपुराण का 'गङ्गास्तवः', भगवान् ब्रह्मा द्वारा उक्त 'दशहरा गङ्गास्तुतिः', 'स्वामी ब्रह्मस्थानन्द जी द्वारा प्रकाशित 'श्रीगङ्गामाहात्म्यम्' पं. राजजगन्नाथ का 'गङ्गालहरी', जगन्नाथदास रत्नाकर का गङ्गावतरणम्, वेदानन्द जी द्वारा प्रणीत गंगा–काव्य तथा डॉ. अनन्तराम द्वारा प्रणीत 'गङ्गे' प्रभृति ग्रंथ, गङ्गा संबंधी साहित्य–रचना की त्रिकालाबाधकता को अभिव्यक्त करते हैं । जिसका वर्णन इस शोध–प्रबंध में किया गया है । अनन्तराम मिश्र की यह 'गङ्गा–स्तुति' संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के 'गाण्डीवम्' नामक साप्ताहिक में प्रकाशित हुई थी । इसीप्रकार गोस्वामी बलभद्र

प्रसाद शास्त्री द्वारा प्रणीत 'भागीरथीदर्शनम्' इत्यादि संस्कृत–ग्रंथ भी प्रकृत प्रसंग में रेखांकित किये जा सकते हैं । डॉ. कमला पाण्डेय द्वारा प्रणीत लगभग सात सौ श्लोकों वाला एवं 'रक्षतगङ्गाम्' नामक ११ सर्गों वाला महाकाव्य भी इसी परम्परा का द्योतक है । इस शोध–महानिबंध के अंतर्गत गङ्गाजल का वैज्ञानिक विवेचन भी किया गया है, जो परम महत्त्वपूर्ण है ।

प्रस्तुत शोध–महानिबंध का अंतिम अध्याय आधुनिक चिंतन से परिपूरित है । जिसका शीर्ष है ''गङ्गा और तत्सम्बद्ध प्रदूषण–चिन्तन'' जिसमें जल के वैज्ञानिक विवेचन, जल–प्रदूषण के विवरण, उनसे बचने के उपाय तथा जल–प्रदूषण की समस्या आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । जिन विषयों का विवेचन मैंने समूचे शोध–प्रबंध में किया है, उसके प्रति कोई दावा करना मेरा उद्देश्य नहीं है, हाँ इतना अवश्य है कि मुझ सदृश अल्पज्ञा ने इस अत्यंत गंभीर विषय के प्रतिपादन के लिए ''तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्[1] एवं प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः[2] के न्याय से अपनी मति और शक्ति के अनुरूप प्रयत्न अवश्य किया है । इसलिए 'छमहउँ सज्जन मोरि ढिठाई' के न्याय से विद्वज्जन मेरी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए मुझे क्षमा अवश्य करेंगे । शोध–प्रबंध में कुछ ऐसे विषय जो आयुर्वेद, रसायन–विज्ञान एवं जीव–विज्ञान से संबंधित हैं, जिनके विवेचन की इच्छा रखते हुए भी मैं पूर्ण न कर सकी । इसका मुझे खेद अवश्य है क्योंकि, जीव विज्ञान, आधुनिक विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान से संबंधित सामग्री की उपलब्धि अपने बहुविध प्रयत्नों के बावजूद प्रचुर रूप से मुझे न हो सकी । जिससे इन विषयों का मैंने यथा अवसर संकेत तो अवश्य किया है परंतु, उन पर केन्द्रित होकर यथोचित विवेचन न कर सकी । यदि भावी पीढ़ी को गंगा संबंधी अनुसन्धान के लिए मेरी यह शोधकृति स्वल्प प्रेरणा भी प्रदान कर सकी, तो मैं शोध की अपनी इस साधना को सार्थक समझूँगी ।

विद्वज्जन से प्रार्थना है कि मेरे इस शोध–प्रबंध में वर्णित विषय के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि अवश्य अपनायेंगे ।

ध्यातव्य है कि गङ्गा की प्रदूषण–मुक्ति को लेकर सन्तों का एक दल सन् २००६ में भारत के महामहिम राष्ट्रपति से महोदय मिला था, तथा गङ्गा की धारा के साथ धर्म और पर्यटन दोनों के मंजुल सामरस्य से संबंधित एक विद्वान् ने लेख लिखा था । लेख का शीर्षक है 'पंच प्रयाग : गङ्गा की धारा के साथ धर्म भी और पर्यटन भी ।'

इन दोनों ही तथ्यों को गुजरात वैभव ने (अहमदाबाद से प्रकाशित) क्रमशः ८–३–२००६ एवं २८–२–२००६ को प्रकाशित किया था और श्री सुन्दरलाल बहुगुणा ने २६–६–६६ को गङ्गा से सम्बद्ध अपना एक विचार व्यक्त किया था । इन तीनों ही लेखों को इस उपसंहार के अन्त में मैने ज्यों का त्यों प्रस्तुत किए दिया है, जिससे भावी शोधार्थियों को गङ्गासंबंधी–चिन्तन के प्रति वर्तमानकालिक सुधीजन से प्रेरणा प्राप्त हो सके ।

माँ गंगा को टिहरी बाँध से मुक्ति के लिए सर्वमंगला गंगा प्रवाह प्रदूषण मुक्ति मंच के संरक्षक करपात्री अग्निहोत्री परमहंस स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल पूर्व महामहिम राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम से मिला ।

डॉ. कलाम से मिले शिष्टमंडल में स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज के अतिरिक्त प्रदूषण–मुक्ति–मंच के राष्ट्रीय–समिति के अध्यक्ष कमलानंद जी, प्रयाग बाल–सभा, हिन्दु–जागरण–मंच, राजा राजेश्वर धाम–प्रयाग के स्वामी माधवानंद जी, सर्वमंगला जानकी धाम हरिद्वार के स्वामी दिव्यानंद जी प्रमुख थे । शिष्टमंडल से हुई वार्ता में महामहिम डॉ. कलाम को उक्त संतों ने गंगा सहित अन्य धार्मिक नदियों की स्थिति, प्रदूषण आदि मुद्दों पर विस्तार से चर्चा की । इस क्रम में डॉ. कलाम ने टिहरी बाँध से गंगा की मुक्ति एवं गंगोत्री से गंगा

सागर तक गंगा माँ के अविरल प्रवाह के लिए सुनिश्चित कार्रवाई का विश्वास दिलाते हुए संतों को आश्वासन दिया । उन्होंने गंगा को भारत की जीवन रेखा तथा भारतीय संस्कृति का प्राण बताया । इससे पूर्व स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज के नेतृत्व में गंगा–प्रदूषण को लेकर रामलीला मैदान से एक रैली निकली गयी जो संसद भवन तक पहुँची । इसके पश्चात् एक शिष्टमंडल प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह से मिलकर माँग पत्र सौंपा । इस शिष्टमंडल में स्वामी चिदात्मानन्द जी महाराज के साथ स्वामी महेश्वरानंद जी महाराज, स्वामी माधवानंद जी तथा स्वामी दिव्यानंद जी शामिल थे । इस अवसर पर चिदात्मानन्द जी महाराज ने हरियाणा, पंजाब, राजस्थान, नासिक, दिल्ली, उत्तरांचल, झारखंड, बंगाल, बिहार एवं उत्तर प्रदेश से आए संतों को धन्यवाद दिया तथा पीर ख्वाजा अफजल निजामी सजदानसीन के अध्यक्ष चिश्ती इजरत निजामुद्दीन औलिया, सूफी अमीर खुसरो रब्बानी, मोमिन फ्रंट के अध्यक्ष डॉ. महबूब आलम अंसारी, प्रो. बसही अमहद तथा अशोकानंद जी महाराज को इस कार्यक्रम में सहयोग के लिए कृतज्ञता व्यक्त की ।[३]

जब हम प्रयाग की बात करते हैं तो ज़ेहन में सीधे इलाहाबाद में संगम का ध्यान आता है । लेकिन इलाहाबाद के अलावा भी भारत में ऐसे कई संगम हैं जो उतने ही धार्मिक व पौराणिक महत्त्व के हैं । प्रयाग, नदियों के संगम को कहते हैं और इसे पवित्र माना जाता है । इलाहाबाद में गंगा–यमुना–सरस्वती का संगम होने के कारण इसे प्रयाग कहा जाता है । इसी कारण इसे एक पवित्र तीर्थ–स्थल के रूप में युगों–युगों से मान्यता मिली हुई है । भगवान् शिव ने स्वर्ग–सरिता गंगा को धरती पर उतारने के लिए अपनी जटाओं का सहारा दिया, तो वह असंख्य धाराओं में बह निकली । पर्वत रूपी, शिव की जटाओं से निकली ये जलधाराएँ जहाँ–जहाँ आपस में मिलीं, उन्हें हिन्दु–धर्म–चिंतन ने पूजनीय मान लिया । उत्तरांचल में भी ऐसे पाँच पवित्र प्रयाग हैं । यह

प्रञ्चप्रयाग है – विष्णु प्रयाग, नंद प्रयाग, कर्ण प्रयाग, रुद्र प्रयाग और देव प्रयाग । पौराणिक व धार्मिक महत्त्व के अलावा ये स्थान नैसर्गिक सौंदर्य से भी परिपूर्ण हैं । इसलिए ये तीर्थ–यात्रियों के साथ–साथ पर्यटकों के भी आकर्षण के केन्द्र हैं ।

गंगा की प्रमुख सहायक नदी अलकनंदा, अलकापुरी से विष्णुधाम बद्रीनाथ तक लगती है । पुराणों में वर्णित 'विष्णुपदी–गंगा' यही है । यह बद्रीनाथ से आगे बढ़ते हुए लगभग ३२ किलोमीटर की दूरी पर 'धौलीगंगा' से मिली है और यह मिलन स्थल ही विष्णु प्रयाग है । यह स्थान समुद्र तल से १३७२ मीटर की ऊँचाई पर स्थित है । मान्यता है कि इस स्थान पर देवर्षि नारद ने तपस्या करके भगवान् विष्णु से वरदान प्राप्त किया था ।

आज यहाँ विष्णु कुंड के निकट विष्णु भगवान् का प्राचीन मंदिर है । विष्णु प्रयाग के निकट से एक मार्ग रामायण में वर्णित 'कागभुशुण्डी ताल' तक जाता है । यह दुर्गम पथ है पर पदारोहियों को आकर्षित करता है । विष्णु–प्रयाग से जोशीमठ भी अधिक दूर नहीं है । जोशीमठ से आगे बढ़ती अलकनंदा में जिस स्थान पर मंदाकिनी मिलती है, वह स्थल पवित्र नंद प्रयाग कहलाता है । मंदाकिनी का उद्‌गम स्थल नंदादेवी शिखर के पास है । यहाँ गोपाल जी का मंदिर है । लोकमान्यता है कि राजा नंद ने भगवान् विष्णु को पुत्र रूप में पाने के लिए इस स्थान पर तप किया था किन्तु भगवान् तो यह वरदान पहले ही देवकी को दे चुके थे । अतः पुत्र बनकर तो देवकी के घर जन्मे, पर नंद के घर में यशोदा–पुत्र बनकर पालन–पोषण की माया रची । कर्णप्रयाग वह पावन–स्थल है जहाँ अलकनंदा एवं पिंडारगंगा का संगम होता है । पिडारगंगा, कुमाऊँ स्थित पिंडारी ग्लेशियर से निकल एक लंबी यात्रा कर अलकनंदा में आ समाती है । कहते हैं कि इसी सुंदर नैसर्गिक सुषमा से भरपूर स्थली में दुष्यंत व शकुंतला का मिलन हुआ था । मान्यता यह भी है

कि सूर्यदेव ने कर्ण को इसी स्थान पर कवच–कुंडल सौंपे थे । गढ़वाल की एक और खूबसूरत नदी मंदाकिनी, केदारनाथ होकर रुद्रप्रयाग में अलकनंदा से मिलती है । समुद्रतल से लगभग ६७० मीटर की ऊँचाई पर स्थित रुद्रप्रयाग में मंदाकिनी व अलकनंदा के संगम का दृश्य अत्यंत मनोहारी है । पौराणिक कथाएं बताती हैं कि दक्ष द्वारा शिव का अपमान करने पर सती ने यज्ञकुंड में प्राणोत्सर्ग कर दिया था, उन्हीं सती ने पुनः शिव प्रिया बनने के लिए, इसी स्थान पर हिमालय की पुत्री के रूप में पुनर्जन्म लिया था । एक मान्यता यह भी है कि रुद्रप्रयाग में ही देवर्षि नारद ने भगवान् शिव से संगीत प्रतियोगिता की थी । यहां पर रुद्रनाथ मंदिर व चामुंडा मंदिर दर्शनीय है । पंच प्रयागों में सबसे महत्त्वपूर्ण देव प्रयाग है । यहाँ गंगा अपने पूर्ण रूप में आती है । गोमुख से आती पावन भागीरथी व अलकापुरी से उतरती अलकनंदा देव प्रयाग में ही एकाकार होकर गंगा कहलाती है । संगम स्थल पर धारा के मध्य 'टोझडेइवर टीला' दर्शनीय स्थल है । देव प्रयाग में रघुनाथ मंदिर है, जिसमें भगवान् राम की श्यामवर्णी प्रतिमा है । पुराणों में वर्णित है कि देवप्रयाग की पुण्यभूमि पर 'इक्ष्वाकु–वंश' के अनेक महापुरुषों ने तपस्या की थी । इसी वंश में भगवान् राम ने जन्म लिया था । समुद्र तल से ६१८ मीटर ऊँचाई पर स्थित, देव प्रयाग का सौंदर्य सामने की पहाड़ियों से देखने पर अतुलनीय लगता है ।

ये पंचप्रयाग ऋषिकेश–बद्रीनाथ मार्ग पर स्थित है । बद्री–केदार की यात्रा पर निकले तीर्थयात्री इन प्रयागों का दर्शन करते हुए आगे बढ़ते हैं । केवल विष्णु प्रयाग को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर ठहरने की अच्छी व्यवस्था है । प्रकृति की गोद में बसे, गंगा के ये पंचप्रयाग एकात्म भाव से समर्पित हो जाने की महत्ता का संदेश भी देते हैं ।[४]

हाल ही में किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि जलवायु परिवर्तन और तापमान में वृद्धि होने की वजह से गंगोत्री ग्लेशियर हर साल १७ मीटर की दर से सिकुड़ रहा है । एक अन्य अध्ययन में बताया गया है कि गंगोत्री के समीप ही स्थित विशालकाय पिंडारी ग्लेशियर के पिघलने की गति ६.५ मीटर प्रति वर्ष है ।

गंगोत्री ग्लेशियर पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा किए गए अध्ययन में खुलासा किया गया है कि वर्ष १९७१ से २००४ के दौरान यह ग्लेशियर १७.१५ मीटर प्रतिवर्ष की रफतार से पिघल रहा था । जियोलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया के अध्ययन में बताया गया है कि वर्ष १९५८ से २००१ के दौरान पिंडारी ग्लेशियर ६.५१ मीटर प्रति वर्ष की गति से पिघल रहा था । जलवायु परिवर्तन और तापमान में वृद्धि के कारण ऊँचे बर्फीले ग्लेशियर की बर्फ पिघलेगी और समुद्र का जलस्तर बढ़ेगा, जिसकी वजह से भारतीय उपमहाद्वीप के निचले तटीय इलाके बुरी तरह प्रभावित होंगें । अध्ययन में कहा गया है कि भारतीय तटीय क्षेत्र में समुद्री हलचल का मिला जुला प्रभाव पड़ेगा । कच्छ की खाड़ी तथा पश्चिम बंगाल के तटीय हिस्से में यह हलचल तेज होगी, जबकि कर्नाटक के तटीय हिस्से में यह हलचल कम होगी ।

बहरहाल, ग्लेशियर के आसपास बिखरे मलवे, आर्थिक व्यवहार्यता और अभियान की विशालता को देखते हुए सरकार ग्लेशियरों के बर्फ को पिघलने से रोकने में असहाय प्रतीत होती है । पर्यावरण मंत्रालय का कहना है कि भारत जैसे विकासशील देशों के साथ नहीं बल्कि विकसित देशों के साथ मिल कर ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन रोकना पहली जिम्मेदारी है । क्योंकि तापमान में वृद्धि के लिए ग्रीन हाउस गैसें ही जिम्मेदार हैं । पर्यावरण एवं वन राज्य मंत्री एनएन मीना ने कहा कि भारत सरकार अंतराष्ट्रीय स्तर पर होने वाली बातचीत में

लगातार दबाव डाल रही है कि विकसित देशों को लंबे समय तक ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन घटाने की प्रतिबद्धता पूरी करनी चाहिए ।

बढ़ते तापमान के खतरों को भांपते हुए पिछले माह जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल ने नीति निर्माताओं के लिए एक परामर्श जारी किया था, जिसमें कहा गया था कि हिमालयी क्षेत्र में ग्लेशियरों के पिघलने से २१ वीं सदी के अंत तक समुद्र के जल स्तर में ०.१८ मीटर से ०.५६ मीटर की वृद्धि हो जाएगी । समुद्री जलस्तर में वृद्धि से भूमि में लवणता बढेंगी और भूमि क्षेत्र घटेगा । हालाँकि यह प्रक्रिया बहुत धीमी होगी, लेकिन तब इससे समुद्र तथा नदियों के समीपवर्ती तटीय इलाकों और डेल्टा में कृषि भूमि का क्षरण होने लगेगा ।

परामर्श में कहा गया है कि समुद्र के जलस्तर में वृद्धि होने से मीठा पानी नीचे चला जाएगा और भूजल की ऊपरी सतह पर खारा पानी मिल जाने के कारण उसमें लवणता बढ़ जाएगी । तटीय हिस्से में रहने वाले लोग समुद्री जलस्तर में वृद्धि से प्रभावित होंगे । आईपीसीसी की रिपोर्ट 'क्लाइमेट चेंज २००७ : फिजिकल साइंस बेसिस में कहा गया है कि १७५० से मानवीय गतिविधियों के कारण वायुमंडल में कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन और नाइट्रस आक्साइड के स्तर में वृद्धि हो रही है ।

रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि वैश्विक औसत वायु और सामुद्रिक तापमान में भी वृद्धि हो रही है जिसके कारण बर्फीले इलाकों की बर्फ पिघल रही है । मीना का कहना है कि जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में सरकार पूरी तरह सचेत है । क्योटो संधि के तहत भारत ने जीएचजी प्रतिबद्धता व्यक्त नहीं की है । लेकिन तापमान में वृद्धि को रोकने में मदद के लिए हमारे देश में कई कार्यक्रम और नीतियाँ तैयार की जा रही हैं ।[५]

गङ्गा का संकट सभ्यता का संकट है । सभ्यता के संकट से मानव जाति त्रस्त है । भोगवादी प्रवृत्ति प्रकृति के साथ कसाई–सा व्यवहार कर रही है । विकास की अवधारणा में बेहोश आज के कर्णधार समाजवादी जीवन की प्रतीक गङ्गा में बाँध बनाकर उसे पूँजीवादी शिकंजे में कस रहे हैं । आज धरती, प्रकृति और मानव के दुःखों को मिटाने के लिये तीन प्रकार के लोगों की आवश्यकता है । ज्ञान के प्रतीक मानवतावादी वैज्ञानिकों की, कर्म के प्रतीक आंदोलनकारी सामाजिक कार्यकर्ताओं की एवं भक्ति के प्रतीक करुण–हृदय साहित्यकारों एवं कलाकारों की । ये तीनों जन हृदय को आलोकित कर समाज परिवर्तन करेंगे । आज इन्कलाब लाने वाले बीज, जो तेजी से नष्ट हो रहे हैं, की रक्षा करनी है । विफल तकनीकी क्रान्ति वाले इस युग में अब मानवीय संवेदना की क्रान्ति की आवश्यकता है, जो यह बता सके, अहसास करा सके कि गङ्गा हमारी माँ है ।[६]

सन्दर्भ–सूची :

१	रघुवंशम् प्रथम सर्ग
२	रघुवंशम् प्रथम सर्ग
३	गुजरात वैभव – हिन्दी दैनिक समाचार–पत्र दि. ८–३–२००६, अहमदाबाद से प्रकाशित
४	गुजरात वैभव – हिन्दी दैनिक समाचार–पत्र दि. २८–०२–२००६, अहमदाबाद से प्रकाशित
५	गुजरात वैभव – हिन्दी दैनिक समाचार–पत्र दि. ४–३–२००७, अहमदाबाद से प्रकाशित
६	'माता गङ्गा के प्रति अर्पित श्रद्धासुमन' शीर्षक के अन्तर्गत 'रक्षत गङ्गाम्' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित दि. २६–०६–६६

❀❀❀

संदर्भ–ग्रंथ–सूची

संदर्भ–ग्रंथ–सूची

संस्कृत–ग्रंथ	
१	अग्निपुराणम् – महर्षि वेदव्यास (टीकाकार : आचार्य बलदेव उपाध्याय), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, ऑफिस, वाराणसी, १९९६, सं. प्रथम
२	अघविवेक – श्रीनीलकंठ दीक्षित (हस्तलिपि), ओरियण्टल म्युनिस्क्रिप्ट विभाग, मद्रास ।
३	अथर्ववेद – सं. सातवलेकर कुलजेन दामोदर भट्ट सूनुना श्रीपादशर्मणा, औन्ध–नगरम् (सातरा प्रदेश) मुंबई । वि. सं. १९९५
४	आनन्दसागरस्तवः – श्री नीलकंठ दीक्षित, आड्यार पुस्तकालय (अप्रकाशित) मद्रास
५	अभिनव भारती – आचार्य अभिनव गुप्त (भाष्यकार आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांत शिरोमणि), हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९६०
६	अमरुशतकम् –श्रीमदमरुक कवि, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी ।, द्वितीय संस्करण २०००
७	अलंकाररत्नाकर : कवि श्री शोभाकर मिश्र विरचित (सं.–प्रो. सी. आर. देवधर) ओरियन्टल बुक एजेन्सी पुना, प्रकाशन वर्ष १९४२
८	अलंकारसारमंजरी – म. म. श्रीनारायण शास्त्री खिस्ते, (सं. पं. बटुकनाथशास्त्री खिस्ते), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी । षष्ठ संस्करण – २०२१
९	ऋग्वेद संहिता – सं.–भट्टाचार्येण श्रीपादशर्मणा दामोदर भट्ट सूनुना सातवलेकरकुलजेन ।, वसंत–श्रीपाद – सातवलेकर, औन्धनगरम् (सातारा प्रदेश) मुंबई, वि. सं. १९९६

१०	ऐतरेय ब्राह्मण – आनंदाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना १८९६
११	कुमारसंभवम् – कवि श्री कालिदास (सं. – पं. शेषराज शास्त्री) चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी ।, द्वितीय संस्करण – १९७२
१२	काव्यदर्पण – राजचूड़ामणि दीक्षित, वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्
१३	काव्यप्रकाश : – श्री मम्मटाचार्य, नाग प्रकाशक, प्रथम संस्करण – १९९५
१४	काव्यमाला – सं. – श्री दुर्गाप्रसाद व्रजलाल, निर्णय सागर प्रेस माला का तृतीय लेख, १८९१, तृतीय आवृत्ति
१५	काव्यमीमांसा – सं. – डॉ. रमेश म. शुक्ल, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति, १९९५
१६	काव्यादर्श – दण्डी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष १९५८
१७	काव्यानुशासन – कवि हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, संस्करण १९०१
१८	काव्यालंकार – आचार्य भामह (भाष्यकार–देवेन्द्रनाथ शर्मा) बिहार – राष्ट्रभाषा परिषद्, द्वितीय संस्करण – २०४२ (संवत्)
१९	काव्यालंकारकारिका – सं. – डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी, चोखम्बा संस्कृत सुरभारती, प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम आवृत्ति १९७७
२०	काशिका – पं. वामन जयादित्य, पं. बाला शास्त्री वाराणसी, द्वितीय आवृत्ति १८९९
२१	काव्यालंकारसूत्राणि – श्रीवामनाचार्य (हिन्दी व्याख्याकार – डॉ. बेचन झा) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, वि. सं. २०३३
२२	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति – आचार्य वामन वाचस्पति, कलकता, संस्करण १९२२
२३	गङ्गावतरणम् महाकाव्य – श्री नीलकंठ दीक्षित (सं. – डॉ. कपिलदेव गिरि) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, जडाव भवन, वाराणसी, प्रथम संस्करण २०४२

२४	गरुड़ पुराण – महर्षि वेदव्यास (सं. – पं. श्रीराम शर्मा आचार्य) संस्कृति संस्थान, ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली (उ.प्र.), प्रथम, द्वितीय संस्करण १९६८
२५	चण्डीरहस्य – नीलकंठ दीक्षित (हस्तलिपि), आड्यार पुस्तकालय, मद्रास,
२६	चन्द्रालोक – जयदेव चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, १९३८
२७	चित्रमीमांसा – टीकाकार – श्री जगदीशचंद्र मिश्र चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी, प्रथम आवृत्ति, १९७१
२८	छन्दोमंजरी श्री गङ्गादास (सं. – पं. सत्यनारायण शास्त्री खण्डूड़ो) कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, वि.सं. २०४४
२९	छन्दःकौमुदी – सं. – पं. नारायण शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, सातवीं आवृत्ति १९७१
३०	तैत्तिरीय उपनिषद्, गीता प्रेस, गोरखपुर, १९८२
३१	दशरूपकम् – धनंजय, साहित्य भंडार सुभाष बाजार, मेरठ, प्रथम संस्करण १९८६
३२	ध्वन्यालोक : श्रीमदानन्दवर्धनाचार्य (सं. व्याख्याकार पं. बद्रीनाथ शर्मा), चौखम्बा संस्कृत सीरीज, ऑफिस, वाराणसी, पंचम संस्करण, वि.सं. २०५१
३३	नञ्जराजयशोभूषण – नरसिंह कवि, ऑरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा ई.स. १९३०
३४	नलचरित्रम् – कवि नीलकंठ दीक्षित (सं. श्यामदास शास्त्री), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण
३५	नागानन्दनाटकम् श्री हर्षदेव (व्याख्याकार – पं. श्री बलदेव उपाध्याय), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी–१, संस्करण १९६८

३६	निरुक्तम् – यास्क, संस्कृत पुस्तकालय, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण
३७	नीतिशतकम् – महाकवि भर्तृहरि, चौखम्बा ऑरियन्टालिया, नई दिल्ली, संस्करण १९८६
३८	नीतिशतकम् – महाकवि भर्तृहरि (सं. – डॉ. शान्तिकुमार एम. पंड्या), गुजराती अनुवाद सहित, पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद, प्रथम आवृत्ति १९८५
३९	नीलकंठ विजयचम्पू – कवि नीलकंठ दीक्षित, प्रकाशक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण १९६४
४०	भागीरथीदर्शनम् – डॉ. गोस्वामी बलभद्रप्रसाद शास्त्री, नाग प्रकाशक, जवाहरनगर दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९८
४१	मंदारमंदचम्पू – वासुदेव शर्मा, पाण्डुरंग जावजी, बम्बई, द्वितीय आवृत्ति, १९२४
४२	मालविकाग्निमित्रम् – महाकवि कालिदास (सं. – रामचन्द्र मिश्र), चौखम्बा संस्कृत सरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९६२
४३	मालतीमाधवम् – भवभूति, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, संस्करण प्रथम, १९०५
४४	मुकुन्दविलास – महाकवि नीलकंठ दीक्षित, आड्यार पुस्तकालय, मद्रास
४५	मृच्छकटिकम् – शूद्रक (व्याख्याकार – रमाशंकर त्रिपाठी), मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, संपादन वर्ष १९९६
४६	मैत्रायणी आरण्यक, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली, पूना, १८९६
४७	रघुवंश महाकाव्यम् – महाकवि कालिदास (व्याख्याकार – पं. रामचन्द्र झा), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण २०३८
४८	रत्नावली नाटिका – महाकवि श्रीहर्ष (सं. – प्रो. भोगीलाल चुन्नीलाल पटेल), सरल हिन्दी अनुवाद सहिता, प्रथम संस्करण १९६२

४६	रसगंगाधर – कवि पं. जगन्नाथ (व्याख्याकार श्री बद्रीनाथ झा), (हिन्दी व्याख्याकार पं. श्री मदनमोहन झा), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पंचम संस्करण १६८२
५०	रामायणसार संग्रह, आड्यार पुस्तकालय, मद्रास (अप्रकाशित)
५१	रक्षतगंगाम् महाकाव्य – डॉ. कमला पाण्डेया, श्रीमाता पब्लिकेशन्स, हनुमान घाट, वाराणसी, प्रथम संस्करण १६६६
५२	रसरत्नहार – श्री शिवराम त्रिपाठी, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, द्वितीय संस्करण ई. सं. १६३०
५३	वक्रोक्तिजीवितम् – आचार्य कुन्तक, व्याख्याकार – आचार्य विश्वेश्वर, (सं. – डॉ. नगेन्द्र), हिन्दी अनुसंधान – परिषद्, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष १६५५
५४	वामन पुराण – महर्षिवेदव्यास, (सं. – श्रीराम शर्मा आचार्य), सरल हिन्दी भाष्य सहित, संस्कृत संस्थान, ख्वाजा कुतुब, बरेली, (उ.प्र.) प्रथम संस्करण १६६०
५५	वाल्मीकिरामायण (बालकाण्ड) – महाकवि वाल्मीकि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, प्रकाशन वर्ष २०५२, संस्करण १५
५६	विष्णु पुराण – महर्षि वेदव्यास (अनुवादक श्री मुनिलाल गुप्त), गीताप्रेस, गोरखपुर, पंचम संस्करण १६६०
५७	वैराग्यशतकम् – कवि नीलकंठ दीक्षित, आड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, (अप्रकाशित)
५८	शतपथब्राह्मणम् – सं. – डॉ. अल्बेर्तेन वेबेरण, भाष्यकार – सायणाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, तृतीय संस्करण, वि. स. २०५४
५६	शांतिविलास – कवि नीलकंठ दीक्षित, डिस्क्रीप्टिव कैटलाग, तंजोर, (अप्रकाशित)

६०	शिवतत्वरहस्य – कवि नीलकंठ दीक्षित, आड्यार पुस्तकालय, मद्रास (हस्तलिपि)
६१	शिवमहिम्नस्तोत्रम् – श्री पुष्पदन्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, ३४वाँ संस्करण
६२	शिवलीलार्णव – नीलकंठ दीक्षित, वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम्, प्रकाशन वर्ष, १९११
६३	शिशुपालवधम् – कवि माघ (सं. – पं. हरगोविन्द शास्त्री), चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय आवृत्ति, १९६१
६४	शिवोत्कर्षमंजरी – नीलकंठ दीक्षित, आड्यार पुस्तकालय, मद्रास (हस्तलिपि)
६५	शुक्लयजुर्वेद – अनुवादक – सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, औन्धनगर (सातारा प्रदेश) मुंबई, वि.स. १९८४
६६	शौनकीय बृहद् देवता – शौनक ऋषि, (व्याख्याकार – डॉ. जयप्रकाश नारायण द्विवेदी), मूलचन्द एण्ड ब्रदर्स, फैजाबाद, प्रथम संस्करण १९८३–८४
६७	सरस्वतीकण्ठाभरणम् – कवि भोजदेव, (व्याख्याकार – डॉ. कामेश्वरनाथ मिश्र), चौखम्बा ऑरियन्टालीया इन्स्टिट्यूट, वाराणसी, प्रथम संस्करण – १९७६
६८	साहित्यदर्पण : आचार्य विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण – २०२० संवत्
६९	साहित्यसार : अच्युतराय, निर्णयसागर प्रेस, मुंबई, ई. स. १९०६
७०	साहित्य बिन्दु : जीवराम शास्त्री, सरस्वती प्रेस, दिल्ली, वि. सं. २००४
७१	साहित्यसुधासिन्धु – विश्वनाथ देव (सं. – रामप्रताप), भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, ई. सं. १९७८
७२	सुवृत्ततिलकम् – क्षेमेन्द्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई. सं. १९६८

७३	संगीत रत्नाकर : शांर्ङ्गदेव (सं. – पं. एस. सुब्रह्मण्यम् शास्त्री), वसंत प्रेस, आड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, प्रथम संस्करण १९४३
७४	श्री वीरकुमारसिंह चरितम् : एक समीक्षात्मक अध्ययन – भारती सोलंकी, (अप्रकाशित शोध–प्रबंध) वर्ष २००४
७५	श्री त्रिपथगाकाव्यम् – वेदानन्द : नाग प्रकाशक, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९७
७६	हनुमन्नाटकम् – हनुमान्, हरिप्रसाद भगीरथ, मुम्बई, द्वितीय आवृत्ति, १९५५

हिन्दी–ग्रंथ :

१	आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र – ले. – आनन्दकुमार श्रीवास्तव, ईस्टर्न बुकलिंकर्स, ५८२४, न्यु चन्द्रावल, दिल्ली, जवाहर नगर, प्रथम संस्करण १९९०
२	कालिदास का बिम्बविधान – ले. – अयोध्याप्रसाद द्विवेदी, अक्षयवट प्रकाशन, २–१०७३, जि. महरौली, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण ई. स. १९८६
३	जल और जल–प्रदूषण – सं. – दामोदर शर्मा, सं. डॉ. हरि महर्षि साहित्यागार, एम.एम.एस. हाईवे, जयपुर १९९६
४	देश, धर्म और साहित्य – ले. – पं. विद्यानिवास मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा. लिमिटेड २/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली १९० ००२, प्रथम संस्करण १९९२
५	पर्यावरण और संस्कृति का संकट – ले. – गोविंद चातक, तक्षशिला प्रकाशन, २३/४७९२, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९२

६	पर्यावरणप्रभुत्वम् (संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण) संपादिका – प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण १६६६
७	पाणिनीय – परंपरा, शब्दानुशासन और उपयोगितावाद – ले. – डॉ. महावीर विद्यानिधि प्रकाशन, डी. १०६१, गली नं. १०, दिल्ली, प्रथम संस्करण १६६८
८	पुराणों में वैदिक संदर्भ – संकलनकर्ता – विपिन कुमार परिमल पब्लिकेशन्स, २७/२८, शक्तिनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण १६६८
६	प्रकृति और काव्य – ले. – डॉ. रघुवंश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
१०	भारत का भूगोल, ले. – डॉ. जगदीशसिंह, डॉ. कामेश्वरनाथ सिंह एवं डॉ. रामबरन पटेल, ज्ञानोदय प्रकाशन २३४, दाउदपुर, गोरखपुर २७३ ००१, तृतीय संस्करण, १६६६
११	भारत एक भौगोलिक समीक्षा – ले. – बी. पी. राव, वसुन्धरा प्रकाशन, २३६, दाउदपुर, गोरखपुर – २७३ ००१, तृतीय संस्करण, १६८८–१६६५
१२	श्रीमद्भावगतपुराण – महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस, गोरखपुर, प्रथम संस्करण १६८८
१३	भगवद्गीता–महर्षि वेदव्यास, चौखम्बा संस्कृत सरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण, ई. सं. १६६६
१४	मत्स्यपुराण (पूर्वभागः) – महर्षि वेदव्यास (संपादक – तारणीश झा, अनुवादक – रामप्रताप त्रिपाठी) हिन्दी साहित्य संम्मेलन, सम्मेलन मार्ग, प्रयाग (इलाहाबाद), द्वितीय संस्करण, सन् १६८१
१५	महाभारतकोश – संपादक – डॉ. रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, द्वितीय भाग, १६६६

१६	व्यक्तिविवेक – ले. – महिमभट्ट, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, ई. सं. १६६४
१७	रसमीमांसा – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं. – विश्वनाथ प्रसाद मिश्र), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, तृतीय संस्करण, संवत २०१७
१८	वैदिक साहित्य और संस्कृति – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी, २२१ ००१, प्रथम संस्करण २००० ई.
१६	वैदिक संपत्ति – ले. – पं. रघुनन्दन शर्मा, शेठ सूरजी वल्लभदास वर्मा, कच्छ केसल सेंड हर्स्टब्रिज, मुंबई–४, द्वितीय संस्करण, संवत् १६६६
२०	वैदिक वाङ्मय में विज्ञान – ले. – डॉ. रामेश्वर दयाल गुप्त, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, प्रथम संस्करण १६६७
२१	शेफाली झर रही है – ले. – पं. विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, २१–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–२, द्वितीय संस्करण १६६७
२२	संस्कृत कवियों के व्यक्तित्व का विकास – ले. – डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) प्रथम संस्करण १६७६
२३	संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास – ले. – पी. वी. काणे, (अनुवादक – डॉ. इन्द्रचन्द्र शास्त्री), प्रथम संस्करण १६६६
२४	संस्कृत साहित्य का विशद इतिहास – ले. पुष्पा गुप्ता, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, ५८२५, न्यु चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण १६६४
२५	संस्कृत साहित्य का इतिहास – ले. – आचार्य बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन, ५ बी, कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी, दशम संस्करण १६६७
२६	संस्कृत साहित्य में स्तोत्रकाव्य – ले. – दशरथ द्विवेदी, संस्कृत प्रकाशन, संस्कृत सेवा संस्थान, खुर्रमपुर, गोरखपुर, २७३ ००५, प्रथम संस्करण १६६०

२७	संस्कृत साहित्य एवं पर्यावरण – प्रो. सुषमा कुलश्रेष्ठ, (संपादिका – डॉ. लक्ष्मी शुक्ला), ईस्टर्न बुक लिंकर्स, ५८२५, न्यु चन्द्रावल, जवाहर नगर, दिल्ली–७, प्रथम संस्करण १९९९
२८	संस्कृत महाकाव्य की परम्परा, ले. – डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, गोल मन्दिर लेन, वाराणसी, प्रथम संस्करण वि. सं. २०२६
२९	हिन्दू–धर्म–जीवन में सनातन की खोज – ले. – पं. विद्यानिवास मिश्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, २/३८, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–२, प्रथम एवं द्वितीय संस्करण, १९७९–१९९१

अंग्रेजी ग्रंथों की सूची :

1	A History of Sanskrit Literature Classical Period Vol.-I, S. N. Desgupta, S. K. De, Universiy of Calcutta, 1947
2	An Outline of Religious literature of India, J. N. Farquhar, Humphery Milford, Oxford Uni. Press, Bombay, A.D. 1920
3	Alberunis India, E : Sachau, K. S. Chand & Co., Dlehi, A.D. 1964
4	Comparative Aesthetics Vol.-I, K. C. Panday, The Choukhamba Sanskrit Series Office, Varanasi, 1959
5	History of Dharmashara : P. V. Kane, Bhandarkar, Oriental Research Institute, Poona, 1930
6	History of Indian Philosophy : S. Dasgupta, Cambridge at the University Press, New York, 1968

7	History of Sanskrit Poetics : P. V. Kane, Motilal Banarasidas, Delhi, Varanasi, Patna, 1961
8	Puran Index, : V. R. R. Dikshitar, Madras University, Historical Series, 1951
9	The Number of Rasas : V. Raghavan, The Adyar Library, Adyar 1946, Srngava Prakasa Some Concepts of Alankara Sastra, Adyar Library, Adyar, 1942
10	The Philosophical : Works of Alizabeths, Descartes Kambridge University Press, 1912
11	Vedic Index : A. A. Macdonelland, A. B. Keith, Indian Texts Series, Motilal Banarasidas, Varanasi, 1958

शोध–पत्रिकाओं की सूची :	
१	आनंदबोध – हिन्दी पत्रिका, स्वामी श्री अखंडानन्द सरस्वती, सेवा संस्थान, अखंडानन्द पुस्तकालय, आनंदकुटीर मोतीलाल – वृन्दावन मथुरा, अंक जून–१९९८
२	कल्याण विशेषांक हिन्दू–संस्कृति अंक, कल्याण कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, द्वितीय संस्करण, संवत् २०५०
३	गांडीवम्–संस्कृत साप्ताहिकम्, संस्थापक – स्व. पं. रामबालक शास्त्री, संपादक – मंडलम् पं. कुबेरनाथ शुक्लः प्रकाशक : रघुनाथगिरी : हरिप्रसाद अधिकारी, संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १५ दिसम्बर १९९७, २०, जुलाई १९९८, जून २००३

४	पथिक–गुजराती त्रैमासिक, प्रो. सुभाष ब्रह्मभट्ट, पथिक कार्यालय, आश्रम रोड, अहमदाबाद, जुलाई–अगस्त–सितम्बर–२००१
५	प्रदीप, श्री द्वारकाधीश संस्कृत एकेडमी, वार्षिक पत्रिका, १९९५–१९९६–१९९८, १८ जनवरी २०००, १५ जनवरी २००३, सं. श्री जयप्रकाश नारायण द्विवेदी, प्रकाशक : श्री शारदापीठ विद्यासभा, द्वारका
६	व्रज–गंधा, संस्कृत–त्रैमासिकपत्रम्, प्रधान संपादक : डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, प्रकाशक : रामाश्रम : गतश्रम टीला, मथुरा, भारतम्, जुलाई–अक्तूबर, १९९८, जुलाई–अक्तूबर, २०००
७	सागरिका – प्रकाशिका सागरिका समिति, महामनापुरी, वाराणसी–५, संपादक–रामजी उपाध्याय, राधावल्लभ त्रिपाठी, रामगोपाल मिश्र, द्वितीय अंक, तृतीय अंक, सं. २०२६
८	साम्मनस्यम् – प्रा. सुरेशचन्द्र दवे एवं डॉ. भगवतीप्रसाद पंड्या, प्रकाशक : श्री वृहद् गुजरात संस्कृत परिषद्, अहमदाबाद –६, मार्च–१९९८
९	सारस्वती सुषमा – प्रकाशक : संपूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, त्रैमासिक पत्रिका, पौषी अमावस्या २०२४, ज्येष्ठ पूर्णिमा – २०२६, मार्गशीर्ष पूर्णिमा – २०२९
१०	संमेलन पत्रिका – जयशंकर त्रिपाठी, चैत्र ज्येष्ठ शक सं. १९८५
११	त्रिपथगा – सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ
१२	स्वर मंगला, प्रधान संपादक – डॉ. राघवाचार्य वेदांती, प्रकाशक : राजस्थान संस्कृत अकादमी, रमेशमार्ग : सी–स्कीम, जयपुर, त्रैमासिक संस्कृत शोध पत्रिका, अप्रैल–जून, २००६, अंक – २
१३	गुजरात वैभव (हिन्दी समाचार पत्र), ८, मार्च २००६

कोश ग्रंथ :	
१	अमरकोश – संग्रहकार – अमरसिंह (सं. – पं. शास्त्री हरगोविंद), चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, प्रथम संस्करण ई. स. १६७०
२	महाभारतकोश – संकलनकर्ता – डॉ. रामकुमार राय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, द्वितीय भाग, १६६६
३	वाचस्पत्यम् – तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, षष्ठ संस्करण, ई. स. १६६२
४	संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, संग्रहकार – वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, जवाहरनगर, दिल्ली–७, तृतीय संस्करण १६७३
५	हलायुधकोश (आभिधानरत्नमाला) सं. – जयशंकर जोशी, सरस्वती भवन, वाराणसी
६	हिन्दू–धर्म–कोश– सं. डॉ. राजबली पाण्डेय, उ.प्र. हिन्दी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, प्रथम संस्करण १६७८

❀❀❀